स्त्र० पुण्यश्लोका माता मृतिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साह शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

मारतीय ज्ञानपीड मातिहेकी जैन-यन्यमा F



> शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी

> > ग्रन्यमालामें प्रकाशित होंगे।

प्रन्यमाला सम्पादक डॉ॰ हीरालाल जैन, एम॰ ए॰, डी॰ लिट्॰ डॉ॰ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एम॰ ए॰, डी॰ लिट्॰

_{प्रकाशक} अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ

दुर्गाकुण्ड रोड, वनारस

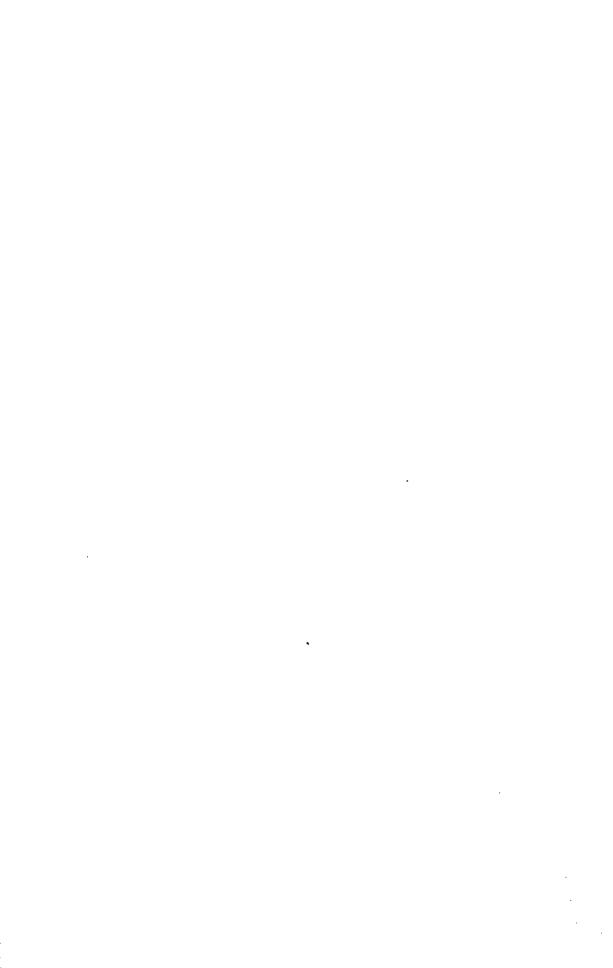
स्यापनाब्द फाल्गुन कृष्ण ९ वीर नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २००० १८ फरवरी सन् १९४४



स्वर्गीय मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन



JÑANAPITHA MURTIDEVI JAINA GRANTHAMALA

PRAKRIT GRANTHA NO 7

ዹዹቑዹ*፞ቚ*ቑቑዹዹቚቑዹዿቑቝጟዹቚጜዹዹቚጜዹቚጜዹቚጜቝጜኯጜዹጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜዹቚጜጜቚ

MAHĀBANDHO

[MAHĀDHAVALA SIDDHĀNTA SHĀSTRA]

Tadio Anubhaga bandhabiyaro

Vol. V

ANUBHAGA BANDHADHIKARA

WITH

HINDĪ TRĀNSLATION



Editor

Pandit PHOOL CHANDRA Siddhant Shastry

Published By

BHARATIYA JWANAPITHA KASHI

First Edition \\
1000 Copies.

ASHARH VIR SAMVAT **2482** VIKRAMA SAMVAT **2013** JUNE 1956

Price Rs. 11/-

BHĀRĀTĪYA JÑĀNA-PĪTHA KĀSHĪ FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRI MURTI DEVI

BHARATIYA JNANA PITHA MURTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

PRAKRIT GRANTHA NO. 7

IN THIS GRANTHAMALA CRITICALLY EDITED JAIN AGAMIC PHILOSOPHICAL, PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA AND TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors

Publisher

Dr. Hiralal Jain M. A., D. Litt. AYODHYA PRASAD GOYALIYA Dr. A.N. Upadhye M.A., D. Litt

Secy., BHARATIYA JNANAPITHA

All Rights Reserved.

पशस्ति

जितचेतोजातनुवींदवरमकुटतटोद्धष्टपादारविन्द-द्वितयं वाद्यामिनीपीवरकुचकलशालङ्कृतोदारहार । प्रतिमं दुर्देरसंस्त्यतुरुविपिनदावानरं माघनन्दि-व्यतिनाथं शारदाभ्रोज्ञवलविशदयशो राजिताशान्तकान्तम् ॥१॥ भावभवविजयिवस्वाग्देवीमुखद्रप्णनान-। मनावनि पालकनेसेदनिलाविश्तुतकित्ते माधनन्दिमुनीनद्रम् ॥ २ ॥ वरराद्धान्ताभ्भोनिधितरलतरङ्गोत्करक्षालितान्तः-करणं श्रीमेघचन्द्रवतिपतिपदपङ्के रहासक्तपट्-। चरणं तीव्रप्रतापोधतविततवलोपेतपुष्पेषु भृत्सं-हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेकळ दं माघनन्दिवतीन्द्रम् ॥ ३ ॥ महनीयगुणनिधानं सहजोन्नतवुद्धिवनयनिधियेने नेगळ दम्। महिचिन्तकिन्ते कित्तितमहिमानं मानिवाभिमानं सेनम् ॥ ४ ॥ विनयद शीलदोळ गुणदगाळिय पंपिनपुद्धिनमनो-जनरति रूपिनोळ पनिळिसिर्द-मनोहरमप्पुदोन्द्र रू-। पिन मने दानदागरमेनिष्प वधूत्तनेयष्प सन्दसे-नन सित मल्छिकच्चेगे धरित्रियोळार् दोरे सद्गुणङ्गळिम् ॥ ५ ॥ सक्छधरित्रीविनुत्रप्रकटितधीयशे मल्लिक्वे वरेसि सःपु-ण्याकरमहाबन्धद पुस्तकं श्रीमाधनन्दिमुनिगळिगित्तळ ॥ ६ ॥

जिसने मन्मथ को जीत लिया है, जिसके दोनों पादकमलों को राजाओं के मुकुट के अग्रभाग चूमते हैं, जो सरस्वती के पीवर स्तनकल्शोंसे अलंकृत मनोहर हार के समान है, जो दुर्निवार संसाररूपी विपुल कानन के लिये दावानलस्वरूप है, ऐसा माघनिद्वितिपती शरत्कालीन मेघके समान दिगन्तव्याप्त उज्ज्वल यश से विराजमान है।। १॥

मन्मथविजयी, सरस्वती मुख के लिये दर्पणरूप और पृथ्वीविध्रुतकीति माघनन्दिमुनीन्द्र पृथ्वी-पालक हैं॥ २॥

जो श्रेष्ठ सिद्धान्तरूपी समुद्र के तरल तरङ्गों से प्रक्षालित अन्तःकरणवाला है, जो श्री मेघचन्द्र व्रतिपति के पादकमलों में आसक्त भ्रमर के समान है, जो तीव प्रतापी है, जिसने अपने विपुलवल से मनमथ को जीत लिया है ऐसा माधनन्दि व्रतीन्द्र सैद्धान्तिकांग्रेसर के नाम से प्रख्यात था॥ ३॥

जो महनीय गुणों का आकर है, जो सहज और उन्नत बुद्धि तथा विनय का निधिस्वरूप है, पृथिवी में जिसकी कीर्ति वन्दनीय है, जिसकी महिमा विख्यात है और जिसका मान-सन्मान है वह सेन प्रसिद्ध है। । ४।।

पृथ्वी में सद्गुणों में विनयसुक्त, शीलवती, रित के समान मनोहर रूपवती और दानसूर ऐसी सन्दर्भन की भार्या मल्लिकच्चे के समान कौन है। १।।

सकल पृथ्वी मण्डल के द्वारा विनुत तथा प्रख्यात बुद्धि और यशवली मल्लिकव्वे ने पुण्याकर महाबन्ध पुस्तक लिखवाकर माधनन्दि मुनीन्द्र को भेट की ॥ ६॥

यह प्रशस्ति अनुभागवन्य के अन्त में उपलब्ध होती है। स्थितवन्धके अन्तमें भी एक प्रशस्ति आई है। गुणभद्रस्रिके उल्लेख को छोड़कर इस प्रशस्तिमें वही वात कही गई है जिसका निर्देश स्थिति-वन्धके अन्तमें पाई जानेवाली प्रशस्तिमें किया है। मात्र इसमें मेघचन्द्र त्रतपितका विशेष रूपसे उल्लेख किया है और माधनन्दि त्रतपितको इनके पादकमलोंमें आसक्त वतलाया है।



		•		, ,	
विषय-सूची					
सन्निकर्पश्ररूपणा	9	92	 अल्पनहुत्व	386	३२५
सन्निकर्पके दो भेद		श	पदनिक्षेप	રૂર્ ષ	૩ ૫૬
स्वस्थानसन्निकर्प	** ?	६८	समुत्कीतंना	•	३२५
स्वस्थानसान्मक्ष उत्कृष्ट सन्निकर्ष	રે	२७	दो भेद		. ૩૨૫
उन्हर चान्यम्य जघन्य सन्निकर्प	. ર હ	६८	उत्कृष्ट		३२५
		१२६	जयन्य [']		રૂ રેષ્
परस्यान सन्निकर्प	६८	33	ज्यस्य स्वामित्व	३२५	રૂહ્હ
उक्ट सन्निकर्प	६८	१२६	दो भेद	* * * *	३२५
ज्ञधन्य सन्निकर्ष	. ९३	150		३२५	₹ ४ ०
भंगविचयप्ररूपणा	176	. 1	उत्हृष्ट	380	३५५
उत्हर	१२६	१२७	ज्ञवन्य	३५६ ३५६	२५५ ३५९
जघ न्य	१२८	१२९	अत्यवहुत्व जे जे	२५५	३२६
त्ररूपणा	१२९	939	दो भेद	21.0	
ভক্তেঘ	१२९ -	१३०	<u> उत्ह्रय</u>	.રૂ ષ્ દ્	કૃ <i>ં</i> (હ
ू जवन्य	१३०	१३१	जघन्य	३५७	३५९
परिमाणप्ररूपणा	353	385	वृद्धि <u></u>	<i>₹</i> ′₹ <i>\$</i>	<i>३७२</i>
उत्कृष्ट	१३१	१३७	रमुत्कीर्तना	३५९	३६१
् जघन्य	१३७	१४२	स्वामित्व		३६१
क्षेत्रप्ररूपणा	. 185	343	काल •		३६१
उत्हर्य	१४२	१४६	अन्तर		३६२
ुजयस्य	१४६	१५१	भंगविचय		३६३
स्पर्शनश्ररूपणा	343	233	भागाभाग	३६३	३६४
उत्हर	१५१	१८२	प्रिमाण		३६४
जवन्य ।	े १८२	२११	क्षेत्र		३६५
कालप्ररूपणा	211	२१६	स्पर्शन	३६५	३६६
্ বক্তুত্ব	२११	२१४	काल	३६७	३६८
जघन्य	२१४	२१६	अन्तर	- ३६९	ं३७० .
अन्तरप्ररूपणा	२१६	२ १ ९	भाव		३७१
বক্তুত্ব 🐇	- २१६	२१७	अल्पवहुत्व	३७१	३७२
जघन्य	२१८	२१९	अध्यवसान्समुदाहार	३७२	.४१३
भावप्ररूपणा		२२०	्रतीन भेद		३७२
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	. २२०	२३९	प्रकृति ससुदाहार	ર્ ૭રે	३८६
अल्पवहुत्वके दो भेद		२२०	दो भेद	i	३७३
स्वस्थान अल्पवहुत्व	२२०	२२८	प्रमाणानुगम		३७३
उक्रष्ट	' २२०	२२४	अल्प्बहुत्व	३७३	३८६
जघन्य	२२४	२२८	दो भेद		३७३
परस्थान अल्पबहुत्व	226	२३९	स्वस्थान अल्पनहुत्व	३७३	३७७
ভ ক্তেট	२२८	२३३	परस्थान अल्पवहुत्व	ইওও	३८६
जघन्य	२३३	- २३९	स्थितिसमुदाहार	३८७	३९२
भुनगारवन्ध	236	ર્ ૨૫	दो भेद		३८७
अर्थपद 	२३९	२४०	प्रमाणा <u>न</u> ुगम	2 40	३८७
समुत्कीर्तना स्वामित्व	२४० `` २४१	२४१	श्रेणिप्ररूपणा	३८७	३८९
त्यामलः काल	े २४१	588	दो भेद अनन्तरोपनिघा	3 //p	३८७
	2546	588		३८७	366
अन्तर भंगविचव	. २४५ -	२७६ २७८	परम्परोपनिधा अनुसागवन्धाध्यवसानस्थान	३८८	३८९
मगावचव भागाभाग	२७८	२७८ २७९	दो भेद	३८९	३ ९२
माणामाण परिमा ण	२७८ २७९	२८३	अनन्तरोपनिधा	३९०	₹ ९ ० ३००
भरमाण क्षेत्र	· २८३	२८५ २८५	परम्परोपनिधा	३ <u>,</u> ,	३९१ ३९२
स्पर्शन	२८६ २८६	309	तीत्रमन्दता	२ <i>५</i> ६ ३ ९२	88 3
काल	. ३०९	₹°`\ ₹१२	अनुकृष्टि	३९२	३९८
अन्तर	322	३१७	तीव्रमन्द	388	₹ १ ३
भान	₹ १ ७	३१८	नीक्समुदाहार	४१२	834
	• •				- • •



सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

तदियो अणुभागवंधाहियारो १५ सणिणयासपरूवणा

१. सिष्णयासं दुविधं-सत्थाणं परत्थाणं च । सत्थाणं दुवि०-जह० उक्क० । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओघे आदे० । ओघे० आभिणिवोधियणाणावरणस्स उक्कस्सयं अणुभागं वंधंतो चदुंणाणावरणीयं णियमा वंधगो तं तु उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छहाणपदिदं वंधिद अणंतभागहीणं वा ५ । एवमण्णमण्णाणं । णिहाणिहाए उक्क० वं० अहदंस० णियमा वं० । तं तु छहाणपदिदं वंधिद । एवमण्ण-मण्णाणं । साद० उ० वं० असाद० अवंधगो । असाद० उ० वं० साद० अवंध० । एवं आउ-गोदं पि ।

्रेध सन्निकर्पपरूपणा

१. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—स्वस्थान सन्निकर्ष त्र्यौर परस्थान सन्निकर्ष। स्वस्थान सिनकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-श्रोध श्रौर श्रादेश। श्रोधसे श्रामिनिवोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरएका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट ग्रानुभागका भी वन्ध करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेदा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। या तो श्रनन्तभागहीन श्रनुभागका वन्ध करता है या श्रसंख्यात भागहीन या संख्यात-भागहीन या संख्यातगुणहीन या श्रसंख्यातगुणहीन या श्रनन्तगुणहीन श्रनुभागका वन्ध करता है। पाँचों ज्ञानावरणोंका इसी प्रकार परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए। निद्रानिद्राके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव आठ दर्शनावरणका नियमसे वन्ध करता है किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है ंतो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्यकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । सब दर्शनावरणोंका परस्पर इसी प्रकार सित्रकर्प जानना चाहिए । सातावेदनीयके उत्कृष्ट ्रश्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव श्रसातावेदनीयका वन्य नहीं करता है। श्रसातावेदनीयके उत्कृष्ट . अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीयका वन्ध नहीं करता है। इसी प्रकार श्रायु और गोत्र कर्मके विषयमें भी जानना चाहिए।

१. ता० प्रती श्रागुभागा (गं) चदु- इति पाठः ।

- २. मिच्छ० उ० वं० सोलसक० णवंस-अरिद्—सोग-भय०-दु० णिय० वं० । तं तु छहाण० । एवं सोलसक०-पंचणोक० । इत्थि० उ० वं० मिच्छ०-सोलसक०-अरिद्—सोग०-भय०-दु० णि० वं० अणंतगुणहीणं वं० । एवं पुरिस० । हस्स० उक्क० वं० मिच्छ०—सोलसक०-भय०-दु० णियमा वं० अणंतगुणहीणं वं० । इत्थि०-णवंस० सिया वं० सिया अवं० । यदि वं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं । रिद० णिय० तं तु० । एवं रदीए० ।
- ३. णिरयगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-वेउन्वि० श्रंगो०-पसत्थ० ४—अगु०३—तस०४—णिमि० णि० वं० अणंतगुणहीणं वं० । हुंड०-अप्पसत्थ०४— णिरयाणु०—उप०-अप्पसत्थ०—अथिरादिछ० णि० वं०। तं तु० छटाणपदिदं। एवं णिरयाणु०।
- २. मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव सोलह कवाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभाग वन्यकी अपेदा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार सोलह कवाय श्रीर पाँच नोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट त्रमुसागका वन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कपाय, त्रपति. शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार पुरुपवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुरो हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदका कदाचित् वन्ध करता है श्रीर कदाचित् नहीं वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो नियमसे इनके अनन्तगुरो हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। रतिका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उसके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुरकुष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह उसके उत्कृष्ट अनुभाग वन्धकी श्रपेचा छह स्थान पतित श्रनुत्ऋष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार रतिकी सुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।
 - ३. नरकगितके उत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव पद्धे न्द्रिय जाति, वैक्रियिक श्रिर, तैनस शरीर, कार्मण शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघु तीन, त्रसचतुष्क श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनके श्रमन्तगुणे हीन श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है। हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रौर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है। वह इनके उत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

रै. ता०-त्रा॰प्रत्योः 'रदि० शिय०' इत श्रारम्य 'शिमि० शि० ६० श्रर्शतगुर्शिशं ६०' इति यावत् पाठत्य पुनरावृत्तिः।

- ४. तिरिक्तादि० उ० वं० एइंदि०-अप्पसत्थिवि ०-थावर-दुस्सर सिया तं तु० इहाणपदिदं वं० । पंचिदि०-ओरालि० ग्रंगो०-असंपत्त-आदाउज्जो०-तस० सिया अणंत-ग्रुणहीणं वं० । ओरालिय०-तेजा०-फ०-पसत्थ०४—अग्रु०३—वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्ताणु०-उप०-अथिरादिपंच णिय० तं तु० इहाणपदिदं० । एवं तिरिक्ताणु० ।
- ५. मणुसग० उ० वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थवण्ण ४-अगु०४-पसत्थ०-तम०-४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अग्गंतगुणहीगां०। ओरालि०-ओरालि०त्रंगो०-वज्जिरिस०-मणुसाणु० णिय० वं० तं तु० छद्दाणपदिदं०। तित्थं० सिया० अणंतगुण० वं०। एवं ओरालि०-ओरालि०त्रंगो०-वज्जिर०-मणुसाणु०।
 - ६. देवगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउन्विय-
- थे. तिर्यक्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। पक्ष निद्रयज्ञाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, आतप, उद्योत और असका कदाचित् वन्य करता है और कदाचित् नहीं वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह इनके अपने उत्कृष्ट वन्यकी अपेचा अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है । औदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वयु तीन, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चनत्तगुणे हीन अनुकृष्ट अनुभागका वन्य करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चनत्तगुणे हीन अनुकृष्ट अनुभागका वन्य करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चनत्तगुणे, उपचात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए वन्य करता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चनात्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ण जानना चाहिए।
- 4. मनुष्यगितके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए वन्य करता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए वन्य करता है। तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है और कदाचित् नहीं करता। यदि वन्य करता है तो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिके समान औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रवभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।
 - ६. देवगतिके उत्कृष्ट श्रतुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर,
- १. ता० ग्रा० प्रत्यो० एइंदि० ग्रप्पस्य ग्रप्पस्यवि० इति पाठः । २. श्रा०प्रतौ पदिदं०। श्राहारदुगं तित्य० इति पाठः।

अंगो ०-पसत्य ०४ - देवाण ०-अगु०३ - पसत्य ०-तस०४ - थिरादिपंच ० - णिम० वं० । तं तु० छहाणपदिदं । आहारदुग-तित्य ० सिया० । तं तु० छहाणपदिदं । अप्प-सत्य ०४ - उप०- जस० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवमेदाओ पसत्याओ एकमेकस्स । तं तु० ।

७, एइंदि० उ० वं० तिरिक्तग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४ – तिरिक्ताणु०-उप०-थावर-अधिरादिपंच णिय०। तं तु० छहाणपदिदं०। ओराछि०-तेजा०-ऊ०-पसत्थ०४ – अगु०३ – वादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं थावर०। वीइंदि० उ० वं० तिरिक्तग०-ओराछि० – तेजा०-क०-हुंड०-ओराछि० अंगो० – पसत्थापसत्थ०४ – तिरिक्ताणु० - अगु० – उप०- तस० - वादर-

तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, विक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवनत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो उसका वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए वन्य करता है। आहारक द्विक और तीर्यङ्करका कदाचित् वन्य करता है और कदाचित् वन्य नहीं करता। यि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो उसका वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए वन्य करता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपचात और यशःकीर्तिका नियमसे अनन्तगुणी हानिको लिये हुए अनुत्कृष्ट वन्य करता है। इसी प्रकार इन प्रशस्त प्रकृतियोंका एक दूसरेकी मुख्यतासे सिन्नकर्य जानना चाहिए। किन्तु इनका परस्पर अनुभाग वन्य उत्कृष्ट भी करता है और अनुत्कृष्ट भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है तो उनका वह छह स्थानपितत हानिको लिये हुए अनुभाग वन्य करता है।

७. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चात्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। आतप और उद्योतका कदाचित वन्य करता है और कदाचित् नहीं वन्य करता। यदि वन्य करता है तो नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सित्रकर्ण जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाल। जीव तिर्यञ्चगिति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आक्षोपाक्च, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वी, अगुरुलवु, उपयात, त्रस, वादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। असस्याप्तासुपाटिका संहननका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है वा अनुत्कृष्ट अनुभागका नियमसे वन्य करता है वा अनुत्कृष्ट अनुभागका

२. ता०-म्रा०प्रत्योः समचदु० म्रप्यस्यवि० ग्रेगो० इति पाठः । 💛 🗀 🛒

अपंज्ञ०-पत्ते०-अधिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। [असंप० णि० तं तु०]। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि०।

- द्र. णगोद् ० उ० वं० तिरिक्ता०-मणुसग०-चहुसंघ०-दोआणु०-उज्जो० सिया अणंतगुणहीणं वं०। पंचिद्द ०-ओराह्यि०-तेजा०-क०-ओराह्यि० अंगो०-पसत्यापसत्य ०४— आगु०४—[अ—] पसत्य ०-तस०४—अथिरादिद्य०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। एवं सादि०। णवरि तिष्णिसंघ०।
- ह. खुज्ज० ड॰ अणु० वं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-ओराहि०ग्रंगो०-पसत्थापसत्य ०४-तिरिक्खाणु०-अग्र०४-[अ-] पसत्थ०-तस०४-अथिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। दोसंघ०-उज्जो० सिया० अणंतगु०। एवं वामणसंठा०। णवरि एयसंघ० -उज्जो० सिया अणंतगु०।
- १०. हुड० उ० वं० णिरय-तिरिक्खग०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ-विहा०-[थावर०]-दुस्सर० सिया०। तंतु० छद्टाणपदिदं०। पंचिदि०-ओराछि०-वेजिव०-दोश्रंगो०-आदाव०-तस० सिया० अणतगु०। तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-

भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति ख्रीर चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

इ. न्यप्रोध संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, मनुष्यगित, चार संहतन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदा चित् अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शारीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुशस्त वर्ण चतुष्क, अगुश्त चतुष्ठ, अगुश्त चतुष्क, अगुश्त चतुष्त, अगुश्त चतुष्क, अगुश्त चतुष्क, अगुश्त चतुष्क, अगुश्त चतुष्क,

- है. कुन्जक संस्थानके उत्कृष्ट अनुमागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्षगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, श्रप्रशस्त विहायोगिति, श्रसचतुष्क श्रिस्थर श्रादि छह और निर्माणका नियमसे श्रनन्तगुणा हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है। दो संहनन श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्य करता है। जो श्रमन्तगुणा हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वह एक संहनन श्रोर उद्योतका कदाचित् अनन्तगुणा हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है।
- १०. हुण्ड संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, तिर्येख्यगित, एकेन्द्रिय जाति, असंप्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, और दुःस्वरका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए वन्य करता है। पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-शारीर, विकियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ, आतप और असका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा

१. ता०-ग्रा० प्रत्योः अवंव० इति पाठः । २. ता०-ग्रा०प्रत्योः श्रादावुजी० तत्तव इति पाठः ।

वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुण०। उज्जोवं सिया अणंतगुणहीणं०। अप्पसत्य०४-उप०-अधिरादिपंच० णिय०ं। तं तु० छहाणपदिदं०। एवं हुंड०भंगो अप्पसत्यवण्ण०४-उप०-अधिरादिपंच। यथा संटाणं तथा चढुसघ०।

११. असंप० ७० अणु० वं० तिरिक्ख०--हुंड०--अप्पसत्थवण्ण०४-तिरि-क्खाणु०-७प०-अप्पस०-अथिराद्छ० णि०। तं तु० छहाणपदिदं०। पंचिदि०- ओराहि०-तेजा०-क०-ओराहि० ग्रंगो०-पसत्थ०४-अग्र०३-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं।

१२. आदाव० ७० वं० तिरिक्खग०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्यापसत्थ०४- तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-दूभ०-अणादे०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । थिराथिर-मुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणं०। उज्जो० ७० वं०ै तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-

हीन अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रक, वादर, पर्यात, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुण हीन
अनुस्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन
अनुस्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्कं, उपयात और अस्थिर आदि पाँच
का नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान
पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार हुण्डक संस्थानके समान अप्रशस्तवर्ण चतुष्क,
उपयात और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। जिस प्रकार चार
संस्थानोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष कहा है उसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष
जानना चाहिए।

११. श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहतनके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रास्थर श्रादि छहका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि वह इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए वन्ध करता है। पंचिन्द्रिय जाति, श्रीदारिक शारीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणेहीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचिन वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणेहीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है।

१२. श्रातपके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, ग्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, ग्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुत्वयु चतुष्क, स्थावर, वादर, पर्यात, प्रत्येक, दुर्भग, श्रनादेय और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग वन्धको लिये हुए होता है। स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, यशःकीर्ति श्रोर श्रयशःकीर्तिका कदाचित् वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। दशोतके स्त्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करने-

१. ता०-म्रा॰प्रत्योः पंच णिमि॰ णिय॰ इति पाठः । २. ता० म्रा॰प्रत्योः 'म्रणंतगुण्हीणं' म्रतोऽमे 'यथा गदितया त्राग्रुपुन्ति॰' इत्यधिकः पाठोऽस्ति । ३. ता० म्रा॰प्रत्योः उक्षो० उप० तिरिक्खि॰ इति पाठः ।

ओराहि० ग्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ० ४-तिरिक्खाणु०-अग्र०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतग्र०।

१३. अप्पसत्थ० उ० वं० णिरय०-तिरिक्त०-असंप०-दोआणु० सिया०।
तं तु० छहाणपदिदं० । पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—तस४—णिमि०
णिय० अणंतगुणहीणं० । ओरालि०-वेजिव्व०-दोश्रंगो०-उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं०। हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—उप०-अथिरादिञ्च० णिय० । तं तु० छहाणपदिदं०। एवं दुस्सर०।

१४. सहम० उ० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०--क०-हुंड०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । अपज्ज०-साधार० णिय० । तं तु० छहाणपदिदं० । एवं अपज्जत्त-साधारण० । पंचंतराइयाणं णाणावरणभंगो ।

१५. णिरएसु सत्तपणं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० उ० वं० पंचिदि०-

वाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, सम-चतुरस संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वज्रपेभ नाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रप्रस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलचु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, श्रसंचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है।

१३. अप्रशस्त विहायोगितिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, तिर्यञ्चनित, असम्प्राह्मास्पाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। प्रञ्चे न्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु विक, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। शौदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। विन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ण जानना चाहिए।

१४. सूर्मके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्येख्वगित, एकेन्द्रियजाति, ख्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, विर्येख्वगत्यानुपूर्वी, अगुरुलचु, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। पाँच अन्तरायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्पका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

१५. नारिकयोंमें सात कर्मीका भंग श्रोधके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका

ओराहि०- तेजा०- क०- पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु० छहाणपदिदं०। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०।

१६. मणुसगदि० उ० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४- मणुसाणु०-अगु०२- तस०४-पसत्थवि०-थिरादिछ०-णिमि० णिय०। तं तु० छहाणपदिदं। अप्पसत्थ०४-उप० णिय० अणंतगुणहीणं वं०। तित्थ० सिया०। तं तु० छहाणपदिदं। एवं पसत्थाओ एकमेक्केण सह। तं तु० तित्थय-रेण सह काद्वं। चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं। एवं छस्र पुढवीस्र। णवरि उज्जोवं उ० वं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-

वन्यक जीव पंचेन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रमुख्लघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रमुख्य श्रमुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, श्रमम्प्राप्तास्थपाटिकासंहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रोर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्थपिटकासंहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहकी मुख्यता से सन्निकर्प जानना चाहिए।

१६. मनुष्यगितके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक संस्थान, औदारिक प्राक्षोपाड्स, वर्ज्यभनाराच सहनन, प्रशस्त वर्ण्चनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण्चनुष्क और उपवालका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। त्रिक्करका कदाचित् वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे एक दूसरेके साथ सन्निकर्ष कहना चाहिए। किन्तु वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ कहना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन, और उद्योतका भङ्ग ओयके समान है। अर्थात् इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष आवके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रथमादि छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य कनेवाला जीव तिर्थेक्कगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क, जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क,

^{😳 💘} ग्रा॰ प्रती सिया॰। छुटाण्पदिनं इति पाठः। 💮 🚊 💢 💆

तिरिक्ताणु॰-अगु॰४-तस॰४-णिमि॰ णिय॰ अणंतगुणहीणं० । इस्संठा०-इस्संघ०-दोविहा०-इगुगल॰ सिया अणंतगुणहीणं। सत्तमाए णिरयोघ। णवरि दोसंठा०-दोसंघ० उ० व० तिरिक्त०-तिरिक्ताणु० णिय० अणंतगुणहीणं०।

१७. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयगिद् उ० वं० पिचंदि०-वेडिव्व०-वेडिव०-ग्रंगो०-पसत्य ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय० अणतगुण-हीणं०। हुंड०-अप्पसत्य ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु० छहाणपदिद । एवं णिरगदिभंगो अप्पसत्थाणं।

१८. तिरिक्खग० उ० बं० एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ णिय०। तं तु० छहाणपदिदं० । ओरास्ति०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ ०४—अगु०-उप०-अथिरादिपंच०--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ।

१६. मणुसग० उ० वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थै०४-

श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुत्वघु चतुष्क, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रीर छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। सातवीं प्रथिवीमें सामान्य नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो संस्थान श्रीर दो संहननके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति श्रीर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है।

१७. तिर्यक्रोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। नरकगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रोर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगतिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान श्रप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१८. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका नियससे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान एकेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१६. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रियजाति, तैजस शरीर,

२ आ० प्रती अगु० ४ तस० शिमि इति पाटः । २ आ० प्रती तेजाक० परस्थापसस्थ० इति पाठः ।

अगु०४-पसत्य ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। ओरालि०-ओरालि० अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० णि०। तं तु० इहाणपदिदं। तिण्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं मणुसगदिभंगो ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०।

- २०. देवगदि० उ० व० पंचिदि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्व०-ग्रगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय० । तं तु० छद्वाणपदिदं० । अप्पसत्थ०४-उप० णि० अणंतगुणहीणं० । एवं पसत्थाणं देवगदीए सह एक्कमेक्कस्स । तं तु० ।
- २१. वीइंदि० उ० व० तिरिक्ख०-ओराहि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओराहि० द्यंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०- उप०- तस०- वादर- अपज्ज०- पत्ते०-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । असंप० णि०। तं तु० इहाण-पदिदं०। एवं असंप० । तीइंदि०-चढुरिंदि० ओयं। चढुसंटा०-चढुसंघ०-

कार्मण शरीर, समचतुरस संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्पभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। तीन युगलका कदाचित् वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। तीन युगलका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्पभनाराच सहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२०. देवगतिके च्ट्छ अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रिय जाति, वैकियिक शरीर, तैज्ञस शरीर, कार्मण शरीर. समचतुरस संस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु त्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माण का नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्छ्छ अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपवातका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका देवगित के साथ विवक्षित प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। किन्तु विवक्षित प्रकृतिके च्त्वृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो उसी प्रकार वन्य करता है जिस प्रकर देवगितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष कहा है।

२१. द्वीन्द्रिय जातिके च्लुष्ट अनुमानका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्वनित, औदारिक शारीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येख्वनत्यानुपूर्वी, अगुरूलघु, उपघात, त्रस, वादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुमानको लिये हुए होता है। असम्प्राप्तास्पाटिका संहननका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुमानका वन्य करता है। विद अनुत्कृष्ट अनुमानका वन्य करता है या अनुत्कृष्ट अनुमानका वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुमानका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तास्पाटिका संहननकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी

आदाव० ओवं। उज्जोवं पढमपुढविभंगो। एवं पंचिदियतिरिक्ख०३।

२२. तस्सेव अपज्जतेमु छण्णं कम्माणं ओघं। मिच्छतं ओघं। एवं सोलसक०-पंचणोक०। इत्थि० उ० वं० मिच्छत्त-सोलसक०-भय०-दु० णिय० अणंतगुणहीणं। इस्स-रिद्-अरिद-सोग० सिया अणंतगुणहीणं०। एवं पुरिस०। इस्स० उ० वं० मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दुं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं०। रिद० णिय० तं तु० छहाणपदिदं०। एवं रदीए।

२३. तिरिक्तव उ० वं० एइंदि०-हुड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादि०पंच ० णि०। तं तु० छद्वाणपदिदं०। ओरास्ति०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु० णिमि० णिय० अग्तंतगुणहीगां०। एवं तिरिक्तगदिभंगो एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादिपंच०।

२४. मणुसगदि० उ० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-द्यगो०-वज्जरि०--पसत्थ० ४-मणुसाणु०--अगु०३-पसत्थवि०--तस०४-थिरादिद्य०-

मुख्यतासे सन्निकर्प त्रोघके समान है। चार संस्थान, चार संहनन त्रौर त्रातपकी मुख्यतासे सन्निकर्प त्रोघके समान है। उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्प पहली पृथिवीके समान है। इसी प्रकार त्र्यात् सामान्य तिर्यद्वीके समान पद्मे न्द्रिय तिर्यद्वित्रकमें जानना चाहिए।

२२. तिर्यञ्च अपर्याप्तकों में छह कमोंका भङ्ग अघिके समान है। मिध्यात्वका भङ्ग अघिके समान है। इसी प्रकार सोलह कपाय और पाँच नोकपायों की मुख्यतासे जानना चाहिए। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुस्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हास्य, रित, अरित और शोकका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पुरुपवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव मिध्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह इसके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। इसी प्रकार अश्वभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात हास्यके समान रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२३ तिर्यक्षगितिके उत्छष्ट अनुमागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचका निममसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्छष्ट अनुमागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुमागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुमागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुल्ख और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुमागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यक्षगतिके समान एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्च न्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, सचतुरस्त्र संस्थान, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ऋपभनाराच संहनन

१. श्रा॰ प्रती सोलस्क॰ भयदु॰ इति पाठः । २ श्रा॰ प्रती॰ श्रथिरादिछ॰ इति पाठः ।

णिमि॰ णि॰ । तं॰ तु॰ छहाणपदिदं । अप्यसत्थ॰४—उप॰ णि॰ अएांतगुणहीएां॰ । एवं पसत्थाएां सञ्चाएां मणुसगदीए सह एकमेकस्स । तं तु॰ छहाणपदिदं । वीइंदियजादि॰ जोणिणिभंगो । तीइंदि॰-चदुरिंदि॰ ओघं ।

२५. णगोद० ड० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्य०४-अगु०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-इभग-दुस्सर-अणादे०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० । तिरिक्त०-मणुस०-चदुसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अजस० सिया अणंतगुणहीणं०। एवं सादि०। णविर तिण्णिसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं खुज्जसंग्र०। णविर दोसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं वामण०। णविर असंपत्तसे० णिय० अणंतगुणहीणं। यथा संग्रणं तथा संघडणं। असंप० वीइंदियभंगो। आदाउज्जो० पंचिदियतिरिक्त्यभंगो।

प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरूलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। िकन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। विद अनुरकुष्ट अनुभागका नियमसे वन्य करता है। यदि अनुरकुष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सव प्रशस्त प्रकृतियोंका मनुष्यगतिके साथ परस्पर सित्रकर्ष कहना चाहिए। िकन्तु उनका परस्पर उत्कृष्ट अनुभाग वन्य भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। द्वीन्द्रियजाति की मुख्यतासे सित्रकर्ष जिस प्रकार तिर्यञ्जयोनिनीके कह आये हैं उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। विन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रयजातिकी मुख्यतासे सित्रकर्ष आप समान है।

र्थः न्ययोघसंस्थानके श्टूष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीवपख्रोन्द्रिय जाति, औदारिक-रारीर, तेनसरारीर, कार्मण्हारीर, ख्रोदारिक-आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलपुचतुष्क, अप्रशस्त विद्यागेगित, असचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और निर्माण्का नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यञ्जगित, मनुष्यगित, चार संहनन, दो आनुपूर्वा, क्योत, स्थिर, अस्थिर, ग्रुभ, अग्रुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् न्ययोधसंस्थानके समान स्थातिसंस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी यिशेपता है कि यह तीन संहननोंका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार कुट्यक संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि यह दो संहननोंका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि यह असम्प्रातास्थादिका संहननका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीने अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। यहां संस्थानोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्प कहा है उसी प्रकार संहननोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। मान्न असम्प्रातास्थादिका संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्प द्वीन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्पके समान है। आतप और स्थोतकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जिस प्रकार पश्चीन्द्रिय तियेख्वोंके कह आये हैं दसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। २६, अष्पसत्थ० उ० वं० तिरिक्तव०-वीइंदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओराहि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्तवाणु०-अगु०४-तस०-दूभ०-अणादे०-णिमि० णि० अण्तगुणहीणं। उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणं०। दुस्सर० णि०। तं तु छद्वाणपदिदं०। एवं दुस्सर०। एवं अपज्जताणं सन्वविगर्छिदि०-पुढवि०-आउ०-वणप्कदि-वादरपत्ते०-णियोद०।

२७. मणुसेस खिवगाणं ओघं । सेसाणं पंचिदियतिरिक्लभंगो ।

२८. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं ओवं। तिरिक्ता० उ० वं० एइंदि०-असंप०-अन्यसत्थ०-थावर० दुस्तर० सिया०। तं तु छ्टाणप०। पंचिदि०-ओरालि० ग्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणक्षणं। ओरालि०-तेजा०-क० पसत्थ०४—अगु०३— वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरि-क्ताणु०-उप०-अथिरादिपंच० णिय० तं तु छ्टाणपदिदं। एवं तिरिक्तगिदिभंगो

२६. अप्रशस्त विहायोगितिके एक्छ अनुमागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, हीन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्यों, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस चतुष्क, दुर्भग, अनादेय और
निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है।
उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित वन्ध करता है।
कन्तु वह उद्धृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। दुःस्वरका नियमसे वन्ध करता है।
किन्तु वह उद्धृष्ट अनुभागको भी वन्ध करता है।
यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है।
इसी प्रकार अर्थात् अप्रशस्त विहायोगितिके समान दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
इसी प्रकार अर्थात् पद्मेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय,
पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक वादर प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए।

२७. मनुष्योंमें चपक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रीयके समान है श्रीर शेव प्रकृतियोंका भङ्ग पंचे-न्द्रियतिर्यक्रोंके समान है।

२८. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोघके समान है। तिर्यक्रगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, असम्प्रामास्रुपिटका संहनन, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर श्रोर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातम, उद्योत श्रोर त्रसका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुक्क, श्रगुक्लधुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुक्क, तियंश्रगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रोर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यक्रगतिके समान हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुक्क, तिर्यक्रगतिक लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यक्रगतिके समान हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुक्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रोर श्रीस्थर श्रादि पाँचकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे

हुंड०-अप्पसत्य०४-तिरिक्खाणु०-उप०अथिरादिपंच० । मणुसगदिसंजुत्ताओ पसत्थाओ णिरयभंगो । एइंदि०-आदाव-थावरं ओवं । चदुसंठा०-चदुसंघ० ओवं ।

२६. असंप उ० वं० तिरिक्ख०-हुंडस०-अप्पस०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस०-अधिरादिछ० णि०। तं तु०। पंचिदि०-ओराछि०-तेजा०-क०-ओराछि-ग्रंगो०-पसत्य०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं अप्पसत्यविहायगदी। दुस्सर०-उज्जोव० पदमपुढविभंगो।

३०. भवणवासिय-वाणवं०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सर्तं ओघं । तिरिक्ख गदि० ७० वं० एइदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच णियमा । तं तु० । ओराह्णि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-वादर-पज्जत्त-पत्तेग०-णियि० णि० अणंतगु० । आदाउ० सिया० अणंतगुणहीणं० ।

३१. असंप० ७० वं० तिरिक्ख०-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०-

शेव प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है। जो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है या अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। मनुष्यगति संयुक्त प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग जिस प्रकार नरकगतिमें कह आये हैं उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

२६. श्रसम्प्राप्तास्त्पाटिका संहननके उत्हष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, हुं हं संस्थान, त्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपवात, श्रप्रशस्त विहायोगित, श्रीर श्रास्थर श्रादि छहका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्हष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है । यदि श्रनुत्हष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। पञ्च न्द्रियजाति, श्रीदारिक शारीर, तैजस शरीर, कामण शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुङ्गत्र श्रनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुङ्गत्र श्रनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रप्रशस्त विहायोगितिकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। दुःस्वर श्रीर उद्योतकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष प्रथम पृथिवीके समान जानना चाहिए।

३०. भवनवासी, न्यन्तर, न्योतियी श्रीर सौधर्म-ऐशान तकके देवोंमें सात कर्मोंका भंग श्रोयके समान है। तिर्यक्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपपात, स्थावर श्रोर श्रस्थर श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रोर निर्माण का नियमसे वन्य करता है जो नियमसे श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। श्रात्म श्रीर च्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणेहीन श्रनुभागको लिये हुए होता है।

३१. श्रसन्त्रात्रास्ट्रपटिका संदननके उत्हृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्वगति, पंचेन्द्रियज्ञाति, श्रीदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, श्रीदारिक

र. ता० मती रोधम्मी० तस्य श्रोघं, श्रा० मती सोधम्मीसाग्तस्य श्रोघं इति पाठः ।

त्र्यंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०४-तस०४-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं। अप्पसत्थ०-दुस्सर० णिय०।तं दु०। एवं अप्पसत्थवि०-दुस्सर०। सेसं देवोवं।

३२. सणक्कुमार याव सहस्सार ति विदियपुढिविभंगो । आणद याव णव-गेवज्ञा ति सो चेव भंगो। विर तिरिक्खगदिदुगं उज्जोवं वज्ज । अणुदिस याव सन्बद्ध ति छएएां कम्मा ं ओग्नं । अण्यचक्वाणकोध० उ० वं० एकारसकसाय-पुरिस०-अरिद – सोग – भव – दु० एग्य० । तं तु छहाएएपिद्दं० । एवमएएग्मएएगाएं । तं तु० ।

३३. इस्स० ७० वं० वारसक०-पुरिसवे०-भय-दु० णिय० अणंतगुणहीणं०। रिद० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। मणुसगदि० देवोघं। एवं पसत्थाओ सन्वाओ।

श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यश्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन श्रमुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रमुभागको लिये हुए होता है। श्रप्रशस्त विहायोगित श्रोर दुःस्वरका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रर्थात् श्रमुशासरपाटिका संहननके समान श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। श्रेष भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

३२. सनत्तुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ भैवेयक तकके देवोंमें वही भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यक्ष-गितिहिक और उद्योतको छोड़कर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिहि तकके देवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कपाय, पुरुपवेद, अरित, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्प होता है जो उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्प भी होता है। और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धस्प भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धस्प होता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है।

३३. हास्यके उत्हाट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव वारह कपाय, पुरुपवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्हाट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्हाट अनुभागका भी वन्ध करता है जो वह अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात हास्यके समान रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंमें जिस प्रकार कह आये हैं उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगितके समान सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

३४. अप्पसत्थवराग ० उ० वं० मणुस०-पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओराहि०अंगो०-वज्जिरि०-पसत्थ०४-धणुसाणु०-अगु०-पसत्थवि०-तस०४-स्भग-सुस्सर-आदे०-शिमि० शि० वं० अर्णातगुर्णाहीर्ण । अप्पसत्थगंघ०३-उप०-अथिर-असुभ-अजस० शि०। तं तु छहारापदिदं०। एवमएरापएरास्स । तं तु०। तित्थ० सिया० अर्णातगुर्णाहीर्ण०।

३५. एइंदिएसु सत्तरणं कम्मार्णं पंचिद्विवितिरिव्याज्ञवभंगो । पंचिद्विव उव वंवितिस्त्वविवित्ताणुवित्तया अणंतगुरणहीर्णंव । मणुसगव-मणुसाणुव-उज्जोवित्याव । तं तुव । ओरालिव-तेजाव-कव-समचदुव-ओरालिव-वज्जिरिव-पसत्यविध-अगुव ३-पसत्थव-तसव ४-थिरादिञ्चव-रिणिमिव शिव तं तुव । अप्पसत्यविध-उपविश्वायविद्यां पात्रिक्ति । एवं पंचिद्वियमंगो पसत्थाणं सन्त्राणं । मणुसव-मणुसाणुवज्जिरिवसेसाणं पंचिद्वितिरिक्स्वअपज्जत्तमंगो । एवं सन्त्रण्इंदियाणंव ।

३४. अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका यन्थ करनेवाला जीव मनुष्यगित पंचेन्द्रियजाति, अौदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरससंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभन्ताराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगित, जसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त गन्धआदि तीन, उपधात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन अशुभ प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ण जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करनेवाला जीव उन्हींमेंसे शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। तीर्थहर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। तीर्थहर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। तीर्थहर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है।

३५. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका मङ्ग पछ्छ न्द्रिय तिर्यछ अपर्याप्तकोंके समात है। पछ्छे निद्रय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यछगित और तिर्यछगित्यानुपूर्वीका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुर्णे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगित, मनुष्यगित, मनुष्यगित्यानुपूर्वी और उद्योतका कराचित् वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है जो यह छह स्थान पित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो यह छह स्थान पित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस संस्थान, औदारिक आज्ञापङ्ग, वअपभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वधुनिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है तो वह छह स्थानपित हानिको लिये हुए होता है। अपशस्त वर्णचतुष्क और उपयातका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पञ्चित्रय जातिके समान सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगित, मनुष्यगत्यापूर्वी और वज्रपंभनाराचसंहनन तथा शेप प्रकृतियोंकी मुख्यतासे

१ ग्रा० मही-वर्षा० ४ ड० इति पाठः।

तेउ०-वाउका० एइंदियभंगो०। णवरि तिरिक्खगदि०-तिरिक्खाणु० धुवभंगो। पसत्था उज्जो० सिया०। तं तु०।

३६. पंचिद्दि०-तस०२ ओघभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि४-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग ति । ओराहि० मणुसभंगो ।

३७. ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं अपज्जतभंगो । तिरिक्ख०-चढुजा०-पंचसंठा०-पंचसंव०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थाव-रादि०४-अथिरादिछँ० पंचिदियतिरिक्खअपज्जतभंगो । मणुसगदिपंचगं पंचि०-तिरिक्खभंगो । देवगदि उ० वं० पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचढु०-वेउव्वि० ग्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णि० ग्रगांतगुणहीणं० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स तं तु० ।

३८, वेडव्विथका०-वेडव्वियमि० देवोघं । एवरि उज्जो० मूलोघं । आहार०-

सिन्नकर्ष पंचेन्द्रिय तिर्यञ्ज अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्जगति और तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ध्रुवभङ्गके समान है। प्रशस्त प्रकृतयों और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है, किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिए हुए होता है।

३६. पचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें खोघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कपायवाले, खचलुदर्शनी, भन्य, संज्ञी ख्रोर खाहारक जीवोंके जानना चाहिए। ख्रोदारिककाययोगी जीवोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है।

३७. श्रीदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग श्रपर्याप्तकोंके समान है। तिर्यक्रगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपवात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्रोंके समान है। मनुष्यगितपञ्चकका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्रोंके समान है। देवगितिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्त संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपवातका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। विन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। विन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए।

ः १८ वैक्रियिककाययोगी श्रौर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान

१. ग्रा॰ प्रतौ थिरादिछ० इति पाठः ।

आहारिम० छण्णं कम्माणं सव्वह०भंगो । कोथसंज० उ० वं० तिण्णिसंज०-पुरिस०-अरिद-सोग-भय०-दु० णिय० । तं तु० । एवमेक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

३६. हस्सं ० ड० वं० चदुसंज ०-पुरिस ०-भय ०-दु० णि० अणंतगुणहीणं ० । रिद् णि० । तं तु० । एवं रदीए !

४०. देवगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेउन्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउन्वि०-श्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि०। तं तु० | अप्पसत्थवण्ण०४-उप० णिय० अणंतगुणहीणं० | तित्थ० सिया०। तं तु० | एवं पसत्थाओ एकमेकस्स । तं तु० |

४१. अप्पसत्यवर्णी० उ० वं० देवगदि ०-पंचिदि ०-वेउच्वि०-तेजा०-क०-

भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग मूलोयके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छह कर्मीका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके समान है। क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तीन संज्वलन, पुरुषवेद, अर्रात, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव शेषके उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है।

३६. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुरुष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थानपितत हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार रितको मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

४०. देवगितके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाना जीव पचेन्द्रिय जाति, चैिकियिक शारीर, तें नसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त संस्थान, चैिकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुरक, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुत्तघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुरक और उपचातका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। विन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका परस्पर सिक्रकर्य जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेषका उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्य भरेनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेषका उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है।

४१. अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव देवगति, पंचेन्द्रिय जाति,

१. आ॰ प्रती श्रप्यस्थवण्य ४ इति पाठः।

समचदु०-चेडिव्वि० त्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तसं०४ भग-सुस्सर-आदे ०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० । अप्पसत्थगंध०३-डप०-अथिर-असुभ-अजस० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणहीणं० । एवं अप्पसत्थमंध०३-[डप०-] अथिर-असुभ-अजस० ।

४२. कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं ओवं ! तिरिक्त ० उ० वं० एइंदि०-असंप०-अप्पस्थिवि०-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधार०-दुस्सर० सिया० । तं तु० ! पंचि०-ओरालि० श्रंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगुणहीणं०।ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० णिय० अणंतगु० ! हुंड०-अप्पस्त्थ०४—तिरिक्ताणु०-उप०-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । एवं तिरिक्तगदिभंगो हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-उप०-अथिरादिपंच० । मणुसग० उ० वं० णिरयोघं । एवं ओरालि०-ओरालि० श्रंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० । देवगदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो ।

वैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वा, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रान्तगुणे हीन श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागको लिये हुए होता है। श्राप्रशस्त गन्ध तीन, उपघात, श्रास्थर, श्राग्नुभ श्रोर श्राप्रशक्तिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रानुभागका भी वन्ध करता है श्रोर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रश्नतिका कदाचित् वन्ध करता है तो श्रानन्तगुणे हीन श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रार्थात् श्रप्रशस्त वर्णके समान श्रप्रशस्त गन्ध श्रादि तीन, उपघात, श्रस्थर, श्राग्नुभ श्रोर श्रयशाःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

४२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मांका भङ्ग श्रोघके समान है। तिर्यञ्चगितके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, श्रसम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, श्रपशस्त विहायोगित, स्थावर, सूत्त्म, श्रपर्याप्त, साधारण श्रीर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपितत हानिको लिये हुए होता है। पंचेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परवात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रसचतुष्कका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग रूप होता है। श्रीदारिक शारीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुत्तवु श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग रूप होता है। हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वों, उपघात श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्डक संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वों, उपघात श्रीर श्रस्थर श्रादि पाँचको मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्धकी मुख्यतासे सिन्नकर्प सामान्य नारिकयोंके जिसप्रकार कह श्राये हैं उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रीदारिकशरीर, श्रोदारिकशाङ्गोपाङ, वर्श्वप्रनाराच संहनन, श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वोकी

१ आ॰ मतौ अगु॰ ३ तव॰ इति पाठः। २ ता॰ प्रतौ अयादि॰ इति पाठः।

४३. पंचिद्दि० उ० वं० मणुसग०-देवग०-दोसरी०-दोस्रंगो०-वज्जिरि०-दो-आणु०-तित्थय० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ-०णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णिय० अणंतगु० । एवं पंचिद्यभंगो पसत्थाणं ।

४४. एइंदि० उ० वं० तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अधिरादिपंच० णि०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णि० अणंतगु०। पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-वादर-पज्जत्त०-पत्ते० सिया० अणंत-गुणहीणं०। मुहुम०-अपज्ज०-साधार० सिया०। तं तु०। एवं थावर०।

४५. मुहुम० उ० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अपज्ज०-साथार०-अथिरादिपंच० णि०। तं तु०। ओराल्ठि०-तेजा०-क०-

मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। देवगति चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्प स्रोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जिसप्रकार कह स्राये हैं उसप्रकार जानना चाहिए।

४३. पञ्चेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव मनुष्यगति, देवगति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वअर्पमनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। वजस्मरीर, कार्मण्यारीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुस्लयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माण्का नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग का भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्यं करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपयातका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीनं अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान प्रशस्त प्रकृतियों की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

४४. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्चगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुप्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अदि। किन्तु करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। परवात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। परवात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। सूदम, अपर्याप्त और साधारणका कदाचित वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकप जानवा चाहिए।

४५. सूद्रम प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुरक, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपयात, स्थावर, श्रपर्याप्त, साधारण श्रीर

पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । एवं अपज्ज०-साधार० । सेसं ओघं । तिरिक्ख०-मणुस० एइंदि० सुहुम०-अपज्जत्त०-साधारणसंजुत्तसंकिलेस्स णेरइय० पंचि-दियसंजुत्तसंकिलेस्स ति ।

४६. इत्थिवेदेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयग० ७० वं० पंचिदियादि-पसत्थाओ ओघं। हुंड०-अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु०। एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थिवि०-दुस्सर०।

४७. तिरिक्तव ७० वं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्तवाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपच० णिय० । तं तु० । ओरालियादिपगदीओ देवोघं। एवं एइंदि०-[हुंड०-अप्पसत्थ०४-]तिरिक्तवाणु०-[उप०-]थावर०-[अथिरादिपंच०]। तिण्णि जादि० पंचि०तिरिक्तकोणिणिभंगो।

४८. सेसाणं पगदीणं ओघं। णवरि असंप० उ० वं० तिरिक्तव ०-ओरालि०-तेजा ०-

अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्क्रष्ट अनुभागका भी वन्य करता है जो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैनस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् सूच्म प्रकृतिके समान अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियों की मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। श्रेप अग्रेघके समान है। तिर्थे अगरेप मनुष्य जीव सूच्म, अपर्याप्त और साधारण संयुक्त संक्लेश परिणामोंसे एकेन्द्रिय जातिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य करते हैं और पञ्चे न्द्रिय जाति संयुक्त संक्लेश परिणामोंसे नरकगतिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य करते हैं।

४६. स्त्रीवेदी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। नरकगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवके पद्धे निद्रय जाति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। वह हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रीर श्रिस्थर श्रादि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य भी करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानि को लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्र्यात् नरकगतिके समान नरकगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४७. तिर्यक्रगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपयात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर आदि प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष जिस प्रकार सामान्य देशोंमें कह आये हैं उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि ५ की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तीन जातिकी मुख्यता से सिन्नकर्ष पद्धे न्द्रिय तिर्यक्र योनिनीके जिस प्रकार कह आये हैं उस प्रकार है।

४८. शेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोचके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिका संह-

१. ता० प्रती श्रोघं। उ० वं० इति पाठः।

क०-हुंड०-ओरालि० ऋंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-अगु०-उप०-तस०४-अथि-रादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगु०। वे० सिया० तं तु०। पंचि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पस०-पड्जत्तापज्ज०-दुस्सर० सिया० अणंतगुण०। तिरिक्त-मणुसिणीओ वेइंदिय-संजुत्तं संकिलेस्सं ति। आदाउज्जो० देवोघं।

४६. चदुसंठा०-चदुसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ओवं । सुहुम० ड० वं० तिरिक्तव०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा० क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्तवाणु०-अगु०- डप०-थावर-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । अपज्जत्त-साधार० णिय० । तं तु० । एवं अपज्जत्त-साधार० ।

५०, पुरिसेस ओवं।

५१. णवुंसगे सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयगदि० उ० वं० पंचिदियादिपगदीओ सन्त्राओ ओघं। हुंड-अप्पसत्थवण्ण०४--णिर्याणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिञ्च० णिय०। तं तु०। एवं णिर्याणुषु०।

ननके ब्ल्ह्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, औदारिक शारीर, तेजस शारीर, कार्मण शारीर, हुं ह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलचु, उपयात, त्रसचतुष्क, अस्यिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। द्वीन्द्रिय जातिका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्य करता है तो व्ह्ष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुवन्य करता है तो वह नियमसे छह स्थानपतित हानिरूप होता है। पञ्च निद्रयन्ताति, पर्यात, उच्छ्वास. उद्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, पर्यात, अपर्यात और दुःस्वरका कदाचित्वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यञ्चयोनिनी और मनुष्यनी संक्लेश परिणामयुक्त द्वीन्द्रय जातिका वन्य करती है। आतप और उद्योतका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

४६. चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका भङ्ग ओघके समान है। सूत्तम प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयु, स्पघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारण का नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग वन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थानपितत हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

५०. पुरुवनेदी तीवोंमें श्रोचके समान भङ्ग है।

प्र. नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोघके समान है। नरकगितके उत्कृष्ट श्रनु-भागका वन्य करनेवाले जीवके पद्ध न्द्रिय जाति श्रादि सब प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। यह हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपवात, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य भी करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग वन्य भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

- ५२. तिरिक्लगदि० उ० वं० पंचिदियादिपसत्थाओ अणंतगुणहीणं० । हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्लाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु इहाणपदिदं० । एवं असंप०-तिरिक्लाणु० ।
- ५३. एइंदि० उ० वं० थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० णिय० । तं तु० । सेसं णिय० अणंतगुणहीणं । एवं एइंदियभंगो थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० । सेसं ओघं ।
- ५४. अवगदवेदे० आभिणि० उ० वं० चढुणा० णि० वं० णि० उक्कस्सं । एवं चढुणाणा०-चढुदंसणा०-चढुसंज०-पंचंतरा० । कोथादि०४ ओघं ।
- ५५. मदि०-सुद०-विभंग०-िमच्छादि० ओरालि० उ० वं० तिरिक्लग०-ितरि-क्लाणु० सिया० अणंतगुणहीणं०। मणुसगदिदुग-उज्जो० सिया०। तं तु०। पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-िणिम० णिय० अणंतगु०। ओरालि०अंगो०-वज्जरि० णिय०। तं तु०। एवं ओरालि०अंगो०-
- ५२. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पञ्च निद्रय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तास्-पाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तास्रपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।
- ५३. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव स्थावर, सूद्म, श्रपर्याप्त श्रीर साधारएका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेप प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो श्रमन्तगुर्णे हीन श्रमुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर, सूद्म, श्रपर्णात श्रीर साधारएकी मुख्यतासे सिन्निकर्प जानना चाहिए। श्रेप भङ्ग श्रोपके समान है।
- ५४. अपगतवेदी जीवोंमें आभिनियोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे वन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्यलन और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।
- ५५. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी और मिण्यादृष्टि जीवोंमें औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगतिद्विक और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है तो यह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। पद्ध न्द्रियज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मण्यारीर, समचतुरका संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्कष्ठ चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए

वज्जरि० | सेसाणं ओवं आहारदुगं तित्थयरं च वज्ज । णवरि देवगदि० ७० वं० जस० णिय० । तं तु० । एवं सञ्चाणं पसत्थाणं ।

५६. व्याभिणि०-सुद्०-बोधि० सत्तण्णं क० उक्कस्स० अणुद्दिसभंगों । अप्प-सत्यवण्ण० उ० वं० मणुसग०-देवग०-ओराह्मि०-वेर्डाव्व०-[ओराह्मि०व्यंगो०-वेर्डाव्व०-ग्रंगो०-] वर्ज्ञारि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतग्र०। पंचिद्यादिपसत्थाओ णिय० अणंतग्र०। अप्पसत्थगंथ०२—उप०-अधिर-असुभ-अजस० णिय०। तं तु०। एवं एदाओ एक्मेक्स्स । तं तु०। सेसं ओयं। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिन्छादि०।

५७. मणपञ्जव० खड्याणं ओघं।सेसाणं आहारका०भंगो। एवं संजद्-सामाइ०-छोदोव०। परिहारे आहारकायजोगिभंगो। णवरि आहारदुगं देवगदिभंगो। णवरि

होता है। श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वर्ञ्यभनाराच संहननका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य भी करता है श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य करता है। इसी प्रकार श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वर्ञ्यभनाराच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। श्रेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। किन्तु श्राहारकद्विक श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव यशःकोतिका नियमसे वन्य करता है। किन्तु उसका उत्कृष्ट वन्य भी करता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट वन्य भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

पद्द श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और श्रविध्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यका सित्रकर्ष श्रनुदिशके समान हैं। श्रप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव मनुष्याति, देवगति, श्रोदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक, श्राङ्गोपाङ्ग, वर्श्वमनाराच संहतन, दो श्रानुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। पश्च न्द्रिय जाति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे होन श्रनुभागको लिये हुए होता है। श्रप्रशस्त गन्य श्रादि तीन, उपयात, श्रस्थिर, श्रग्रुम और श्रयशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। विद श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सित्रकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। वेद कथन श्रोयके समान है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सम्यन्दिष्ट, क्षायिक सम्यन्दिष्ट, वेदकसम्यन्दिष्ट, उपशामसम्यन्दिष्ट और सम्यन्धिण्यादिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

५७. मनः पर्ययकज्ञानी जीवोंमें चायिक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। शेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्राधक समान है। शेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्राधक समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत श्रीर छुदोपस्थाना संयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविद्युद्धिसंयत जीवोंमें श्राहारकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि श्राहारकद्विकका भङ्ग देवगतिके समान है। इतनी श्रीर विशेषता है कि

रै. ता॰ प्रतौ पस्त्यार्णं पस्त्यार्णं १ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ उक्तस्त श्रगुक्तस्तर्भगो इति पाठः ।

संजदेस अप्यस्त्थाणं तित्थयरं ण वंधदि । एवं सन्त्राणं । सुहुमसंप॰ अवगतवेदभंगो । संजदासंजद॰ परिहारभंगो । णवरि अप्पणो पगदीओ णादन्वाओ । असंजदे मदि०भंगो । णवरि तित्थयरं० उ० वं० देवगदि०४ णि० वं०। तं तु०। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो ।

४८, किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयगदिदंडओं तिरिक्खगदिदंडओं एइंदियदंडओं णवुंसगदंडगभंगो। मणुसगदिदंडओं णिरयोघं। देवगदि० उ० वं० वेजिव्व०-वेजिव्व० ग्रंगो०-देवाणु० णिय०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। सेसाणं पसत्थाणं अप्पसत्थाणं च णिय० अणंतगु०। एवं देवगदि०४-तित्थ०। सेसं ओघं।

४६. णील-काऊणं सत्तण्णं क० ओघं। णिरय० उ० वं० णिरयाणु० णिय०। तं तु०। सेसाओ पगदीओ णिय० अणंतगु०। एवं णिरयाणु०। तिरिक्खग० उ० वं० हुंडसंटाणादि० णिरयोघं। सेसाणं किण्णभंगो। काऊए तित्थ० मणुसगदिभंगो।

संयत जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके साथ तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध नहीं करता। इसी प्रकार सबके जानना चाहिए। सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। असंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिचतुष्कका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो नियमसे छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चजुदर्शनवाले जीवोंमें असपर्यात जीवोंके समान भंग है।

पन कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रोधके समान है। नरकगितदण्डक, तिर्येश्चगितदण्डक श्रोर एकेन्द्रिय जाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेददण्डकके समान है। मनुष्यगिति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। देवगितिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। विश्वद्धर श्रनुतिका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका नन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीद श्रमुत्कृष्ट श्रमुत्विचे समान है। तीर्थङ्कर श्रमुतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। श्रीद भङ्ग श्रोधके समान है।

48. नील श्रीर कापोतलेश्यावाले जीवों में सात कर्मीका भन्न श्रोधके समान है। नरकगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। विन्तु वह श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। शेप प्रकृतियों का नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। तिर्यञ्चगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवके हुण्डसंस्थान श्रादिका भन्न सामान्य नारिकयों समान है। शेप प्रकृतियों का भन्न स्थण लेश्याके समान है। कापोत लेश्यामें तीर्थेङ्कर प्रकृतिका भन्न मनुष्यगतिके समान है।

२. ता॰ प्रतौ खिरवगदिदंडग्रो:एइंदिवदंडग्रो इति पाठः ।

- ६०. तेऊए सत्तणं कम्माणं ओघं। तिरिक्स० ड० वं० एइंदि०-हुंडसं०-सोधम्मपदमदंडओ मणुसगदिपंचगरस ओघं। देवगदिदंडओ परिहार०भंगो। असंप० ड० वं० तिरिक्स०-पंचिदियादि-सोधम्मदंडओ अप्पसत्थ०-दुस्सर० णि०। तं तु०। चदुसंठा०-चदुसंघ० सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि अप्पसत्थाणं सहस्सार-भंगो। सुकाए सत्तणणं कम्माणं मणुसगदिपंचगस्स खविगाणं च ओघं। हुंडगादीणं अप्पसत्थाणं णवगेवज्जभंगो।
- ६१. अञ्भवसि० सत्तण्णं क० ओघं। दुगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवण्ण०४-दोआणु०-उप०-थादाउच्जोव०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४ अथिरादि-छ० ओघं। मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ तिरिक्खोघं। पंचिदि० उ० वं० दुगदि-दोसरी०-दोअंगो००वच्चरि०-दोआणु०-उच्जो० सिया०। तं तु०। सेसाओ पगदीओ पसत्थाओ णिय०। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थाणं णिय० अणंतगुणही०।

६२. सासणेद्रण्णं कम्माणं ओघं। अणंताणुवं० कोघ० उ० वं० पण्णारसक०

६० पीत लेश्यावाले जीवों में सात कमोंका भङ्ग छोघके समान है। तियँख्रगतिके एत्हुष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, सोधर्मकल्पसम्बन्धी प्रथम दण्डक छोर मनुष्यगतिपद्धकका भङ्ग छोघके समान है। देवगतिदण्डकका भङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। असम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहननके एत्हुष्ट अनुभागको बाँधनेवाला जीव तिर्यद्धगति, पद्धोन्द्रिय जाति आदि सोधर्मदण्डक, अप्रशस्त विहायोगित छोर दुःस्वरका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह एत्हुष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। विद्यान वह एत्हुष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कुष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कुष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चार संस्थान छोर चार संहननका भङ्ग सीधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्वार कल्पके समान है। हुण्डक संस्थान आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग छोघके समान है। हुण्डक संस्थान आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग छोघके समान है। हुण्डक संस्थान आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग छोघके समान है।

६१. श्रभन्यों सात कर्मीका भङ्ग श्रोचके समान है। दो गित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, दो श्रानुपूर्वी, उपघात, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगिति, स्थायर श्रादि चार श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक श्रीर देवगितचतुष्कका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चोन्द्रय जातिके उत्स्रष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो गित, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, चल्रपभनाराचसंहनन दो श्रानुपूर्वी श्रोर श्रोतका कराचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्स्रप्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है। किन्तु वह उत्स्रप्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्स्रप्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है। श्रम्शस्त वर्ण चार, उपघात श्रीर श्रम्यस्त विहायोगितका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है।

६२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें छह कर्मीका भङ्ग छोघके समात है। छनन्तानुबन्धी

२. ग्रा॰ प्रती-पंचग॰ देवगदिमंगो । देवगदि० इति पाठः।

इत्थि०-अरिद-सोग-भय-दु० णिय०। तं तु०। एवमेदाओ एकमेकस्स । तं तु०। पुरिस०-हस्स-रिद ओघं। तिरिक्लग० उ० वं० वामण०-खीलि०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्लाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णि०। तं तु०। पंचिदियादि० णिय० अणंत- गु०। उज्जोवं सिया० अणंतगु०। सेसं ओघं। असण्णी० तिरिक्लोघं। णवरि मोह० मणुसअपज्जतभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उकस्सओ सण्णियासो समतो।

६३. जहण्णए पगदं । दुर्वि०-ओघे० आदे० । ओघे० आभिणिवोधियणाणा-वरणस्स जहण्णयं अणुभागं वंधंतो चदुणाणाव० णिय० वं० । णिय० जह० । एव- . मण्णमण्णस्स जहण्णा । एवं पंचण्णं झंतराइयाणं । णिदाणिदा० जह० अणु० वं० पचलापचला-थीणगि० णिय० वं० । तं तु० छद्दाणप० । अणंतभागव्भहि०५ । छदंसणा०

क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पन्द्रह कपाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित द्दानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्थ करनेवाला जीव शेष प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनु· भागवन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पुरुषवेद, हास्य श्रीर रतिका भङ्ग श्रोघके समान है। तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट श्रतुभागका वन्ध करनेवाला जीव वामन संस्थान, कीलक संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगति श्रीर श्रस्थिर छादि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रनुत्हृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्हृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पछ्छेन्द्रिय जाति स्रादिका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। शेप भङ्ग ओघके समान है। असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्युद्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भक्त है।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

६३. जयन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—अाय और आदेश। आयकी अपेक्षा आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे वन्ध करता है जो नियमसे जयन्य अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका जयन्य अनुभागवन्धके साथ सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँच अन्तरायका सिन्नकर्ष जानना चाहिए। निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धिका नियमसे वन्ध करता है जो जघन्य भी होता है। यह अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो छह स्थान पतित वृद्धिको लिये हुए होता है। या तो अनन्तभागवृद्धिकप होता है या असंख्यातभागवृद्धि आदि पाँच वृद्धिकप होता है। छह दर्शनावरणका नियमसे वन्ध

^{.} अतौ लहर दुवि इति पाठः]

णियः अणंतगुणन्भहिः। एवं पचलापचला-थीणगिद्धिः। णिद्धाए जहः वं पचलाः णियः। तं तुः छहाणः। चढुदंसणाः णियः अणंतगुणन्भः। एवं पचलाः। चक्खुदं जिं वं तिण्णिदंसः णिः वं । णिः जहण्णा। एवं तिण्णिदंसः। सादाः जहः वं असादस्स अवं । एवं असादः। एवं चढुआउ०-दोगोः।

६४. मिच्छ० जह० वं० अणंताणु०४ णि० । तं तु० । वारसक०--पुरिस०हस्स-रिद-भय-दु० णिय० अणंतगुणव्भ० । एवं अणंताणु०४ । अप्पचक्ताणकोध०
ज० वं० तिण्णिकसा० णिय० । तं तु० । अद्दक०-पंचणोक० णिय० अणंतगुणव्भ० ।
एवं तिण्णिक० । पचक्ताणकोध० ज० वं० तिण्णिक० णिय० । तं तु० । चदुसंज०-पंचणोक० णिय० अणंतगुणव्भ० । एवं तिण्णं क० । कोधसंज० ज० वं० तिण्णिसंज०
णि० अणंतगु० । माणसंजै० ज० वं० दोण्णं संज० णिय० अग्तगुणव्भ० ।

करता है जो अनन्तगुण्यृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। निद्राके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव प्रचलाका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो वह छह स्थान पितत युद्धिरूप होता है। चार दर्शनावरणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुण्यृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। चजुदर्शनावरणके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तीन दर्शनावरणका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे जघन्य होता है। इसी प्रकार तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे जानना चाहिए। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव असातावेदनीयका वन्य नहीं करता। इसी प्रकार असातावेदनीयकी अपेदा जानना चाहिए। इसी प्रकार चार आयु और दों गोत्रके सन्वन्थमें जानना चाहिए।

६४. मिथ्यात्वके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव श्रनन्तानुबन्धी चारका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता हैं। वारह कषाय, पुरुपवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्त-गुणी वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण कोधके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तीन कपायोंका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्राठ कपाय श्रीर पाँच नोकपायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यान मान आदि तीन कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकप जानना चाहिए। प्रत्याख्या-नावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव शेष तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागवन्ध भी करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्य भी करता है। यदि श्रज्ञवन्य श्रतुभागवन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार संज्वलन श्रीर पाँच नोकपायका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शेप तीन प्रत्याख्यानावरण कपायोंकी मुख्यतासे सन्निक्ष जानना चाहिए। क्रोधसंज्वलनके जवन्य अनुभाग का वन्य करनेवाला जीव तीन संज्वलनोंका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः छुटाणः । चदुसंजः शियः श्रगांतगुणः । एवं इति पाठः । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः तिष्णिसंजः शियः श्रगांतगुः। माणसंजः जिल्लासंजः स्थियः श्रगांतगुः। माणसंजः इति पाठः।

मायसंज्ञ जिं वं लोभसंज्ञ णिय अणंतगुणव्म । लोभसंज्ञ जिं वं सेसाणं अवंध । इत्थि जिं वं मिच्छ । सोत्तसक । एवं णवंस । पुरिस जिं वं हस्स-रिद् । अपंतगुणव्म । एवं णवंस । पुरिस जिं वं च दुसंज्ञ णिय अणंतगुणव्म । हस्स जिं वं च दुसंज्ञ पिय अणंतगुणव्भ । हस्स जिं वं च दुसंज्ञ पुरिस णिय अणंतगुणव्भ । रिद् भय दुगं जिं णिय । तं तु । एवं रिद भय दुं । अरिद जिं वं च दुसंज्ञ - पुरिस । सोग णिय । तं तु । एवं सोग । पिय । तं तु । एवं सोग ।

६५. णिरयमित ज० वं० पंचिति०--वेउन्वि०-तेजा०--क०--वेउन्वि०त्रंगो०--पसत्थापसत्थवण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० । हुंड०--णिरयाणुपु०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु० । एवं णिरयाणु० । तिरिक्ख० ज० वं० पंचिति०-ओराछि०--तेजा०-क०-समचदु०-ओराछि०त्रंगो०-वज्जरि०-पसत्था-

है। मानसंज्वलनके जयन्य श्रनुभागका घन्य करनवाला जीव दो संज्वलनोंका नियमसे वन्य करता है ो अनन्तगुरावृद्धिरूप होता है। मायासंज्वलनके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव लोभमंज्यलनका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। लोभसंज्यलनके जधन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष संज्वलनोंका श्रवन्यक होता है। स्त्रीवेदके जवन्य श्रनुभाग का वन्च करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय श्रीर जुगुष्साका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। हास्य, रति, अरित और शोकका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तराण्युद्धिरूप होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी सुखातासे सन्निकर्प जानना चाहिए। प्रस्थवेदसे जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणवृद्धिरूप होता है। हास्यके जघन्य श्रानुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन त्रीर पुरुपवेदका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। रति, भय श्रीर जुगुप्सा का नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागवन्ध भी करता है और अजधन्य अनुभागवन्य भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार रित, भय श्रीर जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अरातके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार सञ्चलन, पुरुपवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। शोकका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागवन्ध भी करता है ख्रोर अजघन्य अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

६५. नरकगतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रिय जाति, वैक्रियिक-शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुण्यृद्धिस्प होता है। हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागवन्य भी करता है और अजधन्य अनुभागवन्य भी करता है। यदि अजधन्य अनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीको मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्चगितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-

१. ग्रा॰ मतौ एवं रदीए भयदु॰ इति पाठः।

पसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणग्भ० । तिरिक्लाणु० णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० अणंतगुणग्भ० । एवं तिरिक्लाणु० । मणुसगिद० ज० वं० पंचिदि० ओराहि०-तेजा०-क०-ओराहि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४ अगु०-उप०-तस०-वादर०-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणग्भ० । इस्संठा०-इस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिइयुग० सिया० । तं तु० छहाणपदिदं० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-पज्ज० सिया० अणंतगुणग्भ० । एवं मणुसाणु० । देवगदि०-ज०वं० पंचिदि०-वेचिव०-तेजा०--क०--वेचिव० श्रंगो० -पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अग्रंतगुणग्भ० । समचदु०--देवाणु०--पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० णिय० । तं तु० ! थिराथिर-सुभासुभ--जस०--अजस० सिया० । तं तु० । एवं देवाणु० ।

चतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग, वञ्जर्वभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुस्तघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह वघन्य अनुभागवन्य भी करता है और अजयन्य अनुभागवन्य भी करता हैं। यदि श्रजघन्य श्रनुभागवन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुगा अधिक होता है। इसी प्रकार तिर्यक्रमात्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पछ्योन्द्रिय जाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियम से वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, श्रपर्याप्त श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित चृद्धिरूप होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परचात, उच्छ्वास श्रौर पर्याप्तका कदाचित बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीको मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। देवगतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पञ्च न्द्रिय जाति, वैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यायोगित, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेयका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य फरता है तो यह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रश्चम, यशा-कीर्ति श्रीर अवशःकीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जधन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यता से सिशक्यं जानना चाहिए।

६६. एइंदि० ज० वं० तिरिक्ख०-ओराहि०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४तिरिक्खाण०-अगु०-डप०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भिह्यं० । हुंड०-थावर-दूभग-अणादे०
णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-वादर-पज्जत-पत्ते० सिया० अणंतगुणव्भ० ।
ग्रुहुम-अपज्ज०--साधार०-थिराथिर--गुभागुभ-जस०--अजस० सिया० । तं तु० । एवं
थावरं । वीइंदि० ज० वं० तिरिक्ख०-ओराहि०-तेजा०-क०-ओराहि०द्यंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०--तस०--वादर०--पत्ते०--णिमि० णिय० अणंतगुणव्भिह्यं० । हुंड०-असंप०-दूभग०-अणादे० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-उज्जो०पज्ज० सिया० अणंतगुण० । अप्पसत्थ०-अपज्ज०-थिराथिर०--गुभागुभ-दुस्सर-जस०अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०--चदुर्रिं० । पंचिदि० ज० वं० णिरय०-तिरिक्खग०-असंपत्त०-दोआणु० सिया० अणंतगुणव्भ० । ओराहि०-वेउव्व०-दोश्रंगो०उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०--पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० ।

६६. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, श्रोदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्भग श्रीर श्रनादेयका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है श्रीर अजयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्यन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छवास, श्रातप, च्योत, वादर, पर्याप्त श्रीर प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। सूद्रम, श्रपर्याप्त, साधारण, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, यशाकीर्ति श्रीर श्रयशाकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजधन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजयन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्जगति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुस्लघु, उपचात, त्रस, वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, दुर्भग श्रीर श्रनादेयका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परवात, उच्छ्वास, उद्योत और पर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुःस्वर, यशःकीति श्रीर श्रयशः कीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति त्रीर चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे जानना चाहिए। ेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, तिर्यख्यगति, असम्प्राप्तास्रपाटिका संहनन श्रौर दो श्रानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर अजघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान

जिं वं तिरिक्ख - तिरिक्खाणु - उच्जो विस्याव अणंतगुण मणुस व - इस्संय - मणु- साणु - दोविहा - थिरादि इयुग विस्या । तं तु । पंचिदि - ओराहि - तेजा - क - ओराहि - श्रेगो - पसत्थापसत्थ - अगु - विस्या - स्थापसत्थ - अगु - स्थापस्थ - स्थापस्थ - अगु - स्थापस्थ - स्थापस्थ - स्थापस्थ - स्थापस्थ - स्थापस्थ - स्थापस्य - स्थापस्य - स्थापस्य - स्थापस्य - स्थापस्य - स्थाप । तं तु । तिरिक्ख - पंचिदि - दोसरीर - दोश्रंगो - तिरिक्ख - पर - उस्सा - आदा - आदा - तस - धिया व अणंत - स्थापस्थ । तेजा - क - पसत्थापसत्थ - अगु - उप - णिमि - णिय - अणंत - गुणव्भ - । एवं दृभग - अणादे - ।

६६. ओरालि०श्रंगो० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणग्भ०। पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०२-तस०४-णिमि० णिय०। तं तु०। उज्जोवं सिया०। तं तु०।

श्रादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। न्ययोधपरिमण्डल संस्थानके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्येख्यगति, तिर्येख्यगत्यानुपूर्वी और दयोतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुरण अधिक होता है। मनुष्यगति, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति श्रौर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्च न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैनसशरीर, कार्मणुशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार तीन संस्थान त्रौर पाँच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हुण्डसंस्थानके जघन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, मनुष्यगित, चार जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर श्रादि चार श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वह वन्य करता है तो नवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। तिर्येख्यगति, पख्चे न्द्रियजाति, दो शारीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छवास, श्रातप, खोतं, श्रोर त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होतो है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुर्भग और श्रनादेयकी सुख्यतासे सन्निकर्पं जानना चाहिए।

६६. श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके लघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड-संस्थान, श्रसन्त्राप्तास्प्राटिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विद्यायोगित श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अन्तगुणा अधिक होता है। पद्ध न्त्रिय जाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, असचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। द्योतका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है ७०, असंप० ज० वं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-पज्ज० सिया० अणंतगुणव्भ० । मणुसगदि-तिण्णिजादि-झसंठी०-मणुसाणु०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिझयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-तस०-शदर-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० ।

७१. अप्पसत्थवण्ण० ज० वं० देवगदि-पंचिदि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-सम-चदु०-वेडिव्व० अंगो०-पसत्थवण्ण०४—देवाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। आहारदुगं तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ०। अप्पसत्थ-गंध-रस-परस०-उपै० णि०। तं तु०। एवं अप्पसत्थगंध-रस-परस०-उप०। यथा गदी तथा आणुपुच्ची।

७२. आदाव० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भ०। ओरास्ति०-तेजा०-क०-

तो वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

७०. श्रसम्प्राप्तास्तृपादिका संहननके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यश्चगति, पश्चे न्द्रिय जाति, तिर्यश्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत श्रीर पर्याप्तका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। मनुष्यगति, तीन जाति, छह संस्थान, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, श्रपर्याप्त श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त होता है। श्रीदारिकशरीर होता है।

०१. अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव देवगति, पश्च न्द्रिय जाति, वैकियिकशारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विद्यायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। आश्रास्त गन्ध, अप्रशस्त रास, अप्रशस्त वर्ण और उपघातका नियमसे वन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार अप्रशस्त गन्ध, रस व स्पर्श और उपघातकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। गितयोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्प कह आये हैं उसी प्रकार आनुपूर्वियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

७२. त्रातपके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यद्वगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, त्रप्रशस्त वर्णेचतुष्क, तिर्यद्वगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा श्रियक होता है। श्रीदारिकशरीर, तैजसंशरीर,

१. श्रा॰ प्रतौ छस्तंघ॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ श्रप्पस्यगंधस्य पस॰ उप॰ इति पाठः ।

तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थ०-अधिराद्विछ० णि० अणंतगुणन्भ० । एवं तस० ।

६७. ओरालि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणव्मिहयं०। एइंदि०-असंपत्त०-अप्पस०-थावर०-दुस्सर०
सिया० अणंतगुणव्मिह०। पंचि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया०। तं
तु०। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—वादर-पज्जत-पर्ने०--णिमि० णि०। तं तु०।
एवं उज्जो०। वेडव्वि० ज० वं० णिरय०--हुंड०-अप्पसत्थ०४—णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णियं० अणंतगुणव्मिहयं०। पंचिदि०-तेजा०-क०-वेडव्वि०अंगो०-पसत्थ०४—अगु०३—तस०४—णिमि० णि०। तं तु० छहाणपिददं०। एवं
वेडव्वि०अंगो०। आहार० ज० वं० देवगदि०--पंचिदि०--वेडव्वि०-तेजा०--क०-समचदु०-वेडव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-

पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है, जो तं तु रूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार त्रसप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६७. श्रौदारिक शरीरके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यद्वगत्यानुपूर्वी श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, श्रसम्प्राप्तास्रपाटिका संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर स्रोर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पछ्छे न्द्रियजाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रौर त्रसका कदाचित् वन्ध्र करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका यन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। जो जघन्य व अजयन्य अनुसाग वन्ध करता है। यदि अजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार च्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पछ्छोन्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यता-से सिनकर्प जानना चाहिए। आहारकशारीरके जयन्य अनुभागका यन्य करनेवाला जीव देवगति, पख्ने न्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैनसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक छाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त

१. ता॰ प्रतौ श्राधिरादिछ । गिमि । गिय इति पाठः।

णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० । आहार० अंगो० णि० वं० । तं तु० । तित्थय० सिया० अणंतगुणव्भ० । एवं आहारअंगो० । तेजा० जह० वंधै० णिरय०-तिरिक्ख०- एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसथ०-थावर-दुस्सर० सिया० अणंतगु० । पंचिदि०-दोसरी०-दोअंगो०-आदाङक्जो०-तस० सिया० । तं तु० । कम्मइ०-पसत्थ०४—अगु०३—वादर-पक्जन-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—उपै०-अथि-रादिपंच० णि० वं० अणंतगुणव्भिहयं० । एवं कम्मइ०-पसत्थ०४—अगु०३—वादर-पक्जन-पत्ते०-णिमि० ।

६८. समचदु० ज० वं० तिरिक्ल०-दोसरीर०-दोश्रंगो०-तिरिक्लाण०-उज्जो०-सिया० अणंतग्र० । मणुसग०-देवग०-इस्संघ०-दोआण०-दोविहा०--थिरादिञ्चयुग० सिया० । तं त्र० । पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अग्र०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतग्रणव्भ० । एवं समचदुर०भंगो पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० । णगोद०

विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर छादि छह और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तग्णा श्रिविक होता है। श्राहारक श्राङ्गोपाङ्गका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार आहारक आङ्गोपाङ्गकी सुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तैजसशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रसम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहतन, दो श्रानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पख्ने न्द्रिय जाति, दो शारीर, दो आङ्गो-पाङ्ग, त्रातप, द्योत त्रौर त्रसका कदाचित वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुत्वधुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक स्त्रीर निर्माण का निययसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य स्त्रनुभागका भी वन्ध करता है और अजवन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, उपघात और श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार कार्मणशारीर, प्रशस्त, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

६०. समचतुरस्रसंस्थानके ज्ञान्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्येख्यगित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्येख्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, देवगित, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। पख्चे न्द्रिय जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, असचतुष्क, और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरहासंस्थानके समान प्रशस्त विदायोगिति, सुभग, सुस्वर और

१. ता॰ प्रतौ श्राहारमं॰ (ग्रं) गो॰, श्रा॰ प्रतो श्राहारमंगो॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ तेजाक॰ वंघ॰ इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रसंपत्तवण्ण० ४ उप॰ इति पाठः ।

पसत्थ०४-अगु०२-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । उज्जोवं ओरालिय-भंगो० ।

७३. अप्पसत्थवि० ज० वं० णिरय०-मणुस०-३जादि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दो-आणु०-थिरादिछयु० सिया० । तं तु० । तिरिक्ख०-पंचिदि०-दोसरी०-दोग्रंगो०-तिरि-क्लाणु०-उज्जो० सिया० अणंतग्रणहभ० । तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहभ० । एवं दुस्सर० ।

७४. सहुम० ज० वं० तिरिक्ख०—ओरालि०--तेजा०--क०-पसत्थापसत्थ०४— तिरिक्खाणु०-अग्र०-डप०-णिमि० णि० अणंतग्रणब्भ० | एइंदि०-हुंड०-थावर०-दूभ०-अणादे०-अजस० णिय० | तं तु० | पर०-डस्सा०-पज्जत्त०-पर्ने० सिया० अणंतग्र-णव्भ० | अपज्ज०-साधा०-थिराथिर०-सुभासुभ० सिया० | तं तु० | एवं साधार० |

७५. अपज्ज० ज० वं० तिरिक्खं०-पंचिंदि०-ओराल्वि० अंगो०-तिरिक्ख०-तस०-

कार्मण्शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुस्लघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है।

७३. अप्रशस्त विद्यागातिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, मनुष्यगित, तीन जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका
कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और
अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह
स्थान पितत वृद्धिकप होता है। तिर्यञ्चगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर,
कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और
निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुःस्वरकी
मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

७४. सूदमप्रकृतिके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, श्रोदारिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्मग, श्रनादेय श्रोर श्रयशःकीतिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त श्रोर प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा अधिक होता है। श्रपर्याप्त, साधारण, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ श्रोर श्रशुभका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह जवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार साधारण प्रकृतिकी मुख्यतासे जानना चाहिए।

७५. अपर्याप्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चोन्द्रय-

१. श्रा॰ प्रती सुभासुभ० सिया॰ तं तु० तिरिक्ख॰ इति पाठः ।

७६. थिर०ज० वं ० तिरिक्ख०-पंचिदि०-दोसरी०-दोश्रंगो०-तिरिक्खाणु०-आदा-उज्जो०-तस०४—ितत्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। मणुसग०-देवग०-चढुजादि-इस्संटा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुहुम०-साधार०-सुभादिपंचयुग०सिया०। तं तु०। तेजा०-कम्म०-पसत्थापसत्थ०४—पज्ज०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भै०। वादर-पत्तेय० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं सुभ०-जसगि०। णवरि जस०-सुहुम-साधारणं वन्जं।

७७. अथिर० ज० वं० णिरय-देवगदि-मणुसगदि-चदुजादि-छस्संटा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४—सुभादिपंचयुग० सिया० । तं तु० । तिरिक्ख०-

नाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रस, वादर श्रीर प्रत्येकका कदाचित् वन्य करता है नो श्रनन्तगुणा श्रिधिक होता है। मनुष्यगति, चार जाति, श्रसम्प्राप्तास्प्रपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूच्म श्रीर साथारणका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि त्रा अनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञावन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञावन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित द्रिष्ठिक्प होता है। श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त श्रीर श्रित्वर श्रीर प्राचका नियमसे वन्य करता है नो अनन्तगुणा श्रिष्ठक होता है। हुण्डसंस्थान, श्रीर श्रित्वर श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह ज्ञवन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रज्ञवन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञवन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है।

७६. स्थिर प्रकृतिके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यद्वगति, पद्धे निद्रयजाति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यद्वगत्यानुपूर्वी, आतप, ज्योत, असचतुष्क और तीर्यङ्कर प्रकृतिका कराचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगित, देवगित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर, सूदम, साधारण और शुभादि पाँच युगलोंका कदाचित् वन्ध करता है। चिद वन्ध करता है तो ज्यन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज्ञधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत बृद्धिस्प होता है। तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, पर्याप्त और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। चादर और प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो धनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार शुभ और यशाकीर्तिकी सुख्यतासे सिन्नकपे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशाकीर्तिके भङ्गमें स्थावर, सूद्म और साधारणको छोड़ देना चाहिए।

७७. श्रस्थिर प्रकृतिके वायन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, देवगित, मनुष्यगित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर श्रादि चार श्रोर शुभादि पाँच युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्ध करता है तो जवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रोर श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगित, पञ्चे न्द्रिय-

१. ता० प्रतौ थिमि० श्रर्णतगुर्ण० इति पाठः।

पंचिद्दि०-दोसरीर-दोश्चंगो०-तिरिक्खाणु०- पर०-उस्सा०-आदावुज्जो०-तस०४-तित्थै० सिया० अणंतगुणव्भ०। तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय०अणंत-गुणव्भ० । एवं अग्रुभ-अजस० ।

७८. तित्थय० ज० वं० देवगदि-पंचिदि०-देखिव०-तेजा०-क०-समचढु०-वेखिव० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४ - देवाणु०-अगु०४ - पसत्थवि०-तस०-४-अथिर-असुभ-सुभग-सुरसर-आदे०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्यहियं वंधदि ।

७१. णिरएस आभिणिवोधि० ज० अणु० वं० चढुगाणा० णिय० ! तं तु० ! एवमण्णमण्णस्स । एवं पंचंतराइ० । णिहाणिहाए ज० वं० पचलापचला-थीणिति० णि० । तं तु० । छदंसणा० णि० अणंतगुण्या । एवं पचलापचला-थीणिति ० णिहा० ज० वं० पचढंस० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० ! वेदणीय-आउग-गोद० ओघं ।

जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, परवात, उच्छ्वास, आतप, उचोत, त्रस चतुष्क और तीर्यङ्करका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अग्रुम और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

उन. तीर्थेङ्कर प्रकृतिके ज्ञान्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चे न्द्रिय जाति, विक्रियिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरस्रसंस्थान, विक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, अस्चतुष्क, अस्थिर, अग्रुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे वन्य होता है जो अनन्तगुणा अधिक वाँधता है।

७६. नारिकयोंमें त्राभिनिवोधिक ज्ञानावरणके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरएका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह ज्ञवन्य अनुभागका भी वन्य करता है। और श्रजयन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँच अन्तरायका परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए। निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव प्रचलाप्रचला स्त्रौर स्त्यानागृद्धिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि वह श्रजयन्य श्रनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। छह दर्शनावरणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यान-गृहिकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। निर्हाके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच दर्शनावरएका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सबका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमंसे किसी एकके जवन्य ष्यतुभागका वन्य करनेवाला जीव शेपका नियमसे वन्य करता है जो जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है छौर अजवन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजवन्य श्रतुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। वेदनीय, श्राय

२. श्रा० प्रतौ श्रादाबुजी । तित्य० इति पाठः । २. श्रा० प्रतौ थियागि०३ इति पाठः ।

- द्र०. मिच्छ० ज० वं० अणंताणु०४ णि० वं० । तं० तु० । वारसक०-पंच-णोक० णि० अणंताणु०भिह्यं० । एवं अणंताणु०४ । अपचक्वा०कोध० ज० वं० एकारसक०-पंचणोक० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० ! इत्थि० ज० वं० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु० णिय० अणंतगुणव्भिह्र० । हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं णवुंस०। अरदि० ज० वं० वारसक०-पुरिस०-भय- ०-णिय० अणंतगुणव्भ०। सोग० णि० ! तं तु० । एवं सोग०।
- ८१. तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं। मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। णवरि अप-ज्जतं वज्ज । पंचिदि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिञ्च० णिय० अणंतगुणव्भ०। ओराछि०-तेजा०-क०-ओराछि० ग्रंगो०--पसत्थ०४ — अगु०३ — तस०४ — णिमि० णिय०। तं तु०। उज्जो० ग्रोर गोत्र कर्मका भङ्ग ग्रोघके समान है।
- ८०. मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुवन्धी चारका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भीः वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। वारह कपाय श्रीर पाँच नोकपायका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कपाय श्रीर पाँच नोकपायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसीं प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जवन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे वन्य करता है जो जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है ख्रौर अजघन्य अनुभागका भी वन्धं करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय श्रौर जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुरणा श्रधिक होता है। हास्य, रति, अरति श्रौर शोकका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपु सक वेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वारह कपाय, पुरुववेद, भय श्रीर जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्त-गुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी सुख्यतासे सन्निकप जानना चाहिए।
 - दश्. तिर्येद्धगित श्रीर तिर्येद्धगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोधके समान है। तथा मनुष्यगित श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रपर्याप्तको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। पद्धे न्द्रिय जातिके जधन्य अनुभागका चन्ध करनेवाला जीव तिर्यद्धगित, हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्षाचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, उपधात, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रिधिक होता है। श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलधुनिक, त्रसचतुष्क, श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी

ता० श्रा० प्रत्योः श्रणंतागु०४ णिमि० णि० इति पाठः।

सिया० | तं तु० | एवं एदाओ एकमेकस्स | तं तु० | इस्संठा०-इरसंघ०-दोविहा०-इयुगल०--ितत्थय० ओघं | अप्पसत्थवण्ण० ज० वं० मणुस०-पंचिद्दि०-ितिण्णिसरीर-समचदु०-ओराल्ठि०झंगो०---वज्जिर०---पसत्थव०४-मणुसाणु०--अगु०३--पसत्थ०-तस०४-थिराद्विछ०-णिमि० णिय० अणंतगुण्णाच्म० | अप्पसत्थगंध०३--उप० णिय० | तं तु० | एवं पदाओ एकमेकस्स | तं तु० | इस्र उविरमास्र तिरिक्ख०-ितिरिक्खाणु० मणुसगदिभंगो | सेसं णिरयोघं |

८२. सत्तमाए तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओवं । मणुसग० ज० वं० पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-समचढु०-ओराहि०त्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर--आदे०-अजस०--णिमि० णि० अणंत-गुणव्भ० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं मणुसाणु० । पंचिदियदंडओ णिरयोघं ।

वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभाग का वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरुप होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए । किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका वन्ध करनेवाला जीव शेपके जवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिकृप होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, छह युगल और तीर्थकर प्रकृतिका भङ्ग श्रोघके समान है। अप्रशस्त वर्णके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव मनुष्यगति, पल्ले न्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, त्रौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलंबुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्यत्रिक और रपयातका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजधन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमें से किसी एकका वन्य करनेवाला जीव शेषका उसी प्रकार वन्य करता है जिस प्रकार अप्र-शास्त वर्णकी मुख्यतासे कह आये हैं। ऊपरकी छह पृथिवियोंमें तिर्येक्चगित और तिर्येक्चगत्यानु-पूर्वीका भङ्ग मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। शेप भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

द्रश्य सत्वीं पृथिवीमें तिर्यञ्चर्गात और तिर्यञ्चर्गात्म नाराक्ष्याक समान है।

मनुष्यगितके ज्ञान्य अनुमार्गका वन्य करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समुचतुरस्र संस्थान. श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराच संहनन, प्रशस्त
वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर,
श्रभुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशाःकीर्ति और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा
श्राधक होटा है। मनुष्यगत्यानुपूर्धीका नियमसे दन्य करता है। किन्तु ज्ञयन्य श्रनुभागका भी

वन्य करता है और श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्य
करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे
सित्रकर्ष जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

[?] ता॰ श्रा॰ प्रत्योः तं तु॰ विया॰ श्रर्गतगु॰ एवं इति पाठः ।

८३. समचढु० ज० वं० तिरिक्ख०-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि०-श्रंगो ०---पसत्थापसत्थ ०४ -तिरिक्खाणु ०---अगु ०४ -तस ०४ --णिमि० णिय० अणंत-गुणव्भ० । इस्संघ०-दोबिहा०-थिरादिइयुग० सिया० । तं तु० । उज्जो० सिया० अणतगुणव्भ० । एवं पंचसंटा०-इस्सव०-दोविहा०-मिक्सिल्लाणि युगलाणि । थिर० ज० वं० तिरिक्ख०--मणुस०--दोआणु०--उज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०। पंचिदियदंडओ णिय० अर्णातगुणवभ०। इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०-सुभगादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०। सेसाणं णिरयोघं।

८४. तिरिक्खेसु छण्णं कम्माणं णिरयोघभंगो । मोहणीयं ओघो । णवरि पचक्वाण०कोघ० ज० वं० सत्तक०-पंचणोक० णिय०। तं तु०। एवमण्णमण्णस्स। तं तु० । अरदि० ज० वं० अद्दक०-पुरिस०-भय०-दु० णिय० अणंतगुणव्भ० । सोग० णि०। तं तु०। एवं सोग०।

मरे. समचतुरक्तसंस्थानके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगित, जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यख्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संहनन, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु यह जयन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है श्रौर अनघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हिद्दरूप होता है। ज्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसीप्रकार पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित और मध्यके तीन युगलोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुमागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्वगति, मनुष्यगति, दो त्रानुपूर्वी त्रौर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो त्र्यनन्तगुणा त्रधिक होता है। पञ्चे न्द्रियनातिदण्डकका नियससे बन्ध करता है जो अनन्तगुगा अधिक होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित और सुभग त्रादि पाँच युगलका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज-वन्य अनुमागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, श्रशुभ, यशःकीर्ति श्रौर श्रयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। शेष प्रकृति-योंका भन्न सामान्य नारिकयोंके समान है।

५४. तिर्यख्रोंमें छह कर्मीका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। मोहनीय कर्मका भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य श्रनुभागका वन्य करने-वाला जीव सात कपाय और पाँच नोकपायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनु-भागका भी वन्य करता है श्रीर श्रजवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्यः श्रनु-भागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित चृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। जो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और श्रजघन्य श्रतुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रतुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अरितके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव आठ। कपाय, पुरुपवेद, भय श्रोर जुगुप्साका नियमसे वन्ध करता है जो अनंतगुणा श्रधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रौर श्रजधन्य श्रनु-

८५. चदुग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं। पंचिदि० ज० वं० णिरय०--हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणव्भ०। वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि० ग्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि०। तं तु०। एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स। तं तु०।

द्धः ओरास्ति० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४—अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० । ओरास्ति०श्रंगो० ज० वं० तिरिक्ख०--वेइंदि०--ओरास्ति०--तेजा०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०-वाद्र-अपज्ज०-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० ।

८७, आदाव० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्या-पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णि० अणंतगु०। एवं उज्जो०। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। एवं पंचिदियतिरिक्ख०३।

भागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

द्यावर यादि वार जाति, वार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि वार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चे न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव नरकगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वैक्रियक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार इनका परस्पर सङ्गकर्ष जानना चाहिए। किन्तु वह उसी प्रकार जानना चाहिए जिस प्रकार पञ्चे न्द्रिय जातिकी मुख्यतासे कहा है।

न्द. श्रौदारिकरारीरके जयन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, एकेन्द्रियजाति, तेजसरारीर, कार्मण्रारीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्या- जुपूर्वी, श्रगुरुलवु, उपचात, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जयन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, हीन्द्रियजाति, श्रौदारिकशारीर, तेजसरारीर, कार्मण्रारीर, हुण्ड-संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्थपाटिका संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्या- जुपूर्वी, अगुरुलवु, उपचात, त्रस, वादर, श्रपर्याप्त, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है।

दश्यातपके जयन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुस्तघु चतुष्क, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रोर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी णवरि [तिरिक्ल०-] तिरिक्लाणु० परियत्तमाणियासु दव्वं।

८८. पंचिदि०तिरिक्ख०अपज्ज० पंचण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णिदाणिदाए ज० वं० अहदं० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० ।

८६. मिच्छ० ज० वं० सोलसक०-पंचणोक० णिय०। तं तु०। एवमेदाओ एकमेकस्स । तं तु०। संसं णिरयभंगो ।

६०. तिरिक्ख० ज० वं० पंचजादि-इस्संटाण-इस्संघ०--दोविहा०-तस०-थाव-रादिद्सयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०--उप०-णिमि० अणंतगुणव्भ० । ओरालि०झंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । तिरिक्खाणु० णिय० । तं तु० । एवं तिरिक्खाणु० ।

मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क श्रोर उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्ष श्रोघके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रर्थात् सामान्य तिर्यञ्चके समान पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च-त्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति श्रीर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी परिगणना परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करनी चाहिए।

दन. पछ्चे न्द्रिय तिर्यद्ध अपर्याप्तकों में पाँच कर्मों का भक्त नारिकयों के समान है। निद्रानिद्राके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव आठ दर्शनावरणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सवका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए जो उसी प्रकार होता है जैसा निद्रानिद्राकी मुख्यतासे कहा है।

दश्च. मिध्यात्वके तघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला तीव सोलह कपाय और पाँच नोक-षायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे वन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप प्रकृतियोंका भक्ष सामान्य नारिकयोंके समान है।

हैं तिर्यक्चगितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगिति, त्रस छौर स्थावर छादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत बृद्धिरूप होता है। अौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, छपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यक्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बंध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। विर्यक्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे वंध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यक्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिक्कपे जानना चाहिए।

तेजा०-क०-ओरालि०त्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ०। उज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं समचढुरभंगो-चढुसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-ग्रुभग-ग्रुस्सर-आदे०।

६७, हुंड० ज० वं० तिरिक्ख०-मणुस०-पंचजादि-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुगल्ज० सिया०। तं तु०। ओराल्ठि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४— अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ०। ओराल्ठि० छंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं हुंड०भंगो अथिरादिपंच०। ओराल्ठि० छंगो० तिरिक्खोघं।

६८. असंपत्त० ज० वं० दोगिद्--चढुजाद्--छस्संठाण--दोआणु०--दोविहा०-पज्जतापज्जत्त०--थिरादिष्ठयुग० सिया०। तं तु०। सेसं हुंड०भंगो। अप्पसत्थ०४--जप० णिरयभंगो०।

६६. पर० ज० वं० एइंदि०-ओराह्यि०-नेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर०-सुहुम०-पज्जत्त०-साधार-दृभग०-अणादे०--अजस०-

शरीर, कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलवु-चतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। उद्योतका कराचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरस्तसंस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर श्रोर श्रादेयकी सुख्यतासे सित्रकर्ष जानना चाहिए।

हण्डकसंस्थानके ज्ञान्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और त्रस-स्थावर आदि दस युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह ज्ञान्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छहस्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयु, उपयात और निर्माणका नियमसे यन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परयात, उच्छ्वास, आतप और उचोतका कदाचित वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्डसंस्थानके समान अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ज्ञानना चाहिए। औदारिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य तिर्येक्रोंके समान है।

६न. असम्प्राप्तास्रपाटिका संहतनके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गित, चार जाति, छह संस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, पर्याप्त, अपर्याप्त और स्थिर आदि छह युगलका कहाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग हुण्ड संस्थानके समान है। अप्रशस्त वर्ण चतुक्क और उपचातका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

हह. परवातके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैनसारीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूद्रम, पर्याप्त, साधारण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीति और

णिमि० णि० अर्णतगुणब्भ० । उस्सा० णि० । तं तु० । थिराथिर-सुभासुभ० सिया० अर्णतगुणब्भ० । एवं उस्सासं० ।

१०० आदाव० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर०--वादर०--पज्जत०-पत्ते०--दूभग-अणादे०-णिमि०'णि० अणंतगुणब्भ०। थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणं-तगु०। एवं उज्जो०।

१०१. पसत्यवि० ज० वं० दोगदि०-चदुजादि०-छस्संठा० छस्संघ०-दोआणु ०-थिरादिञ्चगुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०--क०-ओरालि०ग्रंगो०-पसत्या-पसत्य०४-अगु०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ०। उज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०।

०४ सिया । तं तु । एवं दुस्सर । एवं चेव तस । णवरि पज्जतापज्जत ० सिया । तं तु ।

inniminamentalismentelli internationalismentelli inter

निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्छ्वासका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उच्छ्वासकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१००. श्रातपके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्वगति, एकेन्द्रियजाति, श्रोदा-रिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, श्रमादेय श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, अश्रुम, यशःकीर्ति श्रोर श्रयशःकीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०१ प्रशस्त विहायोगितिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका कराचित् वन्य करता है। यि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। अौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उसचतुष्कका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह पर्याप्त और अपर्याप्तका कराचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थानपित वृद्धिरूप होता है। यदि वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थानपित वृद्धिरूप होता है।

१. ग्रा॰ प्रतौ छुस्तंठा॰ दोन्राग्रु॰ इति पाठः।

- ६१. मणुस० ज० वं० पंचिदि०-मणुसाणु०-तस-वादर-पत्ते० णिय०। तं तु०।सेसं तिरिक्खगिद्भंगो । एवं यणुसाणु० ।
- ६२. एइंदि० ज० वं० तिरिवख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०--थादर-दूभ०-अणादे० णियमा० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अग्र०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । वाद्र-मुहुम-पज्जत्त०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिरादितिण्णियुग० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।
- ६३. वेइंदि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंपट-तिरिक्खाणु०-तस-वादर-पत्ते०-दृभ०-अणादे० णिय० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०--पसत्था-पतत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतग्रुणव्भ० । पर०-उस्सा०-उज्जो० सिया० अणंतग्रुणव्भ० । अप्पस०-पज्जत्तापज्ज०-थिराथिर०-सुभासुभ०-दृभग०-दुस्सर०-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०-चदुरिंदि० ।
- ६१. मनुष्यगितके जघन्य श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रिय जाति, यनुष्यगत्यानु-पूर्वी, त्रस, वादर श्रीर प्रत्येकका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है। श्रमुख श्रा श्रा श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यद्भगतिके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिश्चिकपे जानना चाहिए।
- हर. एकेन्द्रिय लातिके लघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला लीव तिर्यख्रगति, हुण्ड संस्थान, तिर्यख्रगत्यानुपूर्वा, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह लघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अलघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अलघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तेलसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वादर, सूद्म, पर्याप्त, अरयेक, साधारण और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
 - हैं हीन्द्रिय जातिके जयन्य अनुभागका यन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्पादिकासंहनन, तिर्यञ्चगत्यातुपूर्वी, त्रस, वादर, प्रत्येक, हुर्भग और अनादेयका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका यन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धित्व होता है। औदारिक शारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णवतुष्क, अपरास्त वर्णवतुष्क, असुरत्वयु, स्पयात और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परयात, स्टब्स्वास और स्थोतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अपरास्त विहायोगित, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् वन्य करता है। यदिःवन्य

- ६४. पंचिदि० ज० वं० तिरिक्त०--मणुसग०-- इस्संग्र०-इस्संग०-दोआणु०-दोविहा०-पज्जतापज्ज०-थिरादिछ० सिया०। तं हु०। ओरात्ति०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्यापसत्यवण्ण०४-अगु०--उप०--णियि० णिय० अणंतगुणव्भ०। पर०-उस्सा०-आदाङ्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०।
- ६५. ओरास्ति० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्प-सत्य०४-थावरादि०४--अधिरादिपंच० णिर्यं० अणंतग्रुणव्भ० । तेजा०-क०-पसत्य०४-अग्रु०-णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ एक्कमेक्स्स । तं तु० ।

६६. समचदु० ज० वं० तिरिक्ख०--मणुस०--इस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-थिरादिइयुग० सिया०। तं तु०। पंचिदि०-तस०४ णियमा०। तं तु०। ओराहि०-

करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रीन्द्रिय श्रीर चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

६४. पद्धे न्द्रियजातिके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यद्धगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, पर्याप्त, श्रपर्याप्त श्रोर स्थिर श्रादि छहका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत युद्धिसप होता है। श्रोदारिकशारीर. तेजसरारीर, कार्मण्यारीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्ता है। परचात, उच्छ्यास, श्रातप श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। परचात, उच्छ्यास, श्रातप श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है।

हपः श्रौदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागका बन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्थावर श्रादि चार श्रोर श्रस्थर श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलयु श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन तेजसशरीर श्रादि सब प्रश्नतियोंका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव शेषका नियमसे वन्य करता है जो व घन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

६६. समचतुरहापंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्य करनेवाला जीव तिर्यद्वगति, मनुष्यगित, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचिन् बन्ध फरता है। यदि वन्ध करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है श्रार अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित गृद्धिरूव होता है। पद्धे न्द्रियजाति और असचतुष्कका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। औदारिक्शारीर, तैजस-

१. ता० झा० प्रत्याः-पंच० खिनि० खिन० इति पाठः ।

१०२. वाद्र० ज० वं० दोगदि-पंचजादि-इस्संटा०-इस्संघ०-दोआण०-दोविहा०-तस-थावर-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिरादिद्यगुग० सिया०। तं तु०। ओरात्ति०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ०। ओरात्ति०अंगो०--पर०-उस्सा०--आदाउज्जो० सिया० अणतगुणव्भ०। एवं पज्जत्त-पत्ते०। णवरि पहिपक्ता ण वंधदिं।

१०३. स्रुहुम० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-हूमग-जणादे०-जजस० णिय०। तं तु०। ओराल्डि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अजह० अणंतगुणव्भ०। पज्जतापज्जत-पत्तेय-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ० सिया०। तं तु०। एवं साधार०।

१०४. अपज्ज० ज० वं० दोगदि-पंचजादि-असंप०-दोआणु०-तस०-थावर-वादर-मुहुम-पत्तेय-साधार० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०--क०-पसत्थापसत्थ०४-

१०२. वाद्र प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आजुपूर्वी, दो विहायोगित, जस, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिस्प होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्य करता है को अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पर्याप्त और प्रत्येककी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका वन्य नहीं करता।

१०३. सूच्यके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यद्वगित, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यद्वगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका नियससे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अविद्यास्थारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपवात और निर्माणका नियमसे बन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, ग्रुप और अग्रुपका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। इसी प्रकार साधारणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१०४. अपर्याप्तके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, असम्प्राप्तास-पाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, त्रस, स्थावर, वादर, सूदम, प्रत्येक और साधारणका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तेजसंशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. श्रा॰ प्रतौ गुं वंघदि इति पाठः।

अगु०-उप०--णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। हुंड०--अथिरादिपंच णिय०। तं ०। ओरालि०श्रंगो० सिया० अणंतगुणब्भ०।

१०५, यिर० ज० वं० दोगदि-पंचजादि-इस्संडा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०--थावर-वादर-सुहुम-पत्तेय-साधारण-सुभगादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। ओरालि० अंगो०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। पज्जत्त० णि०। तं तु०। एवं भ-जस०। णवरि जस० सुहुम-साधारणं वज्ज। एवं सन्वअपज्जत्तयाणं सन्वविगलिदि०--पुढ०-आड०--वणप्पदिपत्तेय-वणप्पदि-णियोदाणं च। तेष-वाद्णणं पि तं चेव। णवरि तिरिक्तवै०-तिरिक्तवाणु०--णीचा० धुवं काद्व्वं। मणुस०--मणुसाणु०--उच्चा० व। णवरि अप्पसत्थ०४-उप० णिय०। तं तु०। सन्वएइंदियाणं पि तं चेव। णवरि तिरिक्तवगदि०३ तेष्ठ०भंगो। अप्पसत्थवण्ण० ज० वं० तिरि ०--तिरिक्तवा०

अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड संस्थान और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुमागका भी बन्ध करता है। चिद अजधन्य अनुमागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुमागका करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्गका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१०५. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो छानुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर, वादर, सूदम, प्रत्येक, साधा-रण और शुभ आदि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य श्रातुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रातघन्य श्रातुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रातघन्य श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्रीदारिक शरीर, तेजस-शारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप श्रीर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पर्याप्तका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्यन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शुम ऋौर यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका सूचम त्रौर साधारणको छोड़कर सिः र्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार त्र्थात् ति ' अपर्याप्तकों के समान सब श्रपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकाथिक प्रत्येक शरीर, वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद जीवोंके जानना चाहिए। तेजस्कायिक श्रीर वायु-कायिक जीवोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रको ध्रुव करना चाहिए। तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रको छोड्-कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। इतनी और विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनु-भागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित ष्टिद्धरूप होता है। सब एकेन्द्रियोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्र्यातिक त्रिकका भङ्ग त्र्यग्निकाथिक जीर्वोंके समान है। तथा अप्रशस्त वर्णके जवन्य अनुभागका गन्ध

१. ता॰ प्रतौ तिरिक्ख०३ इति पाठः ।

सिया । तं तु । मणुस ०-मणुसाणु ०- उज्जोव ० सिया ० अणंतगुणव्भ ० । पंचिदियादि-धुवियाओ णिय ० अणंतगुणव्भ ० । अप्पसत्थगंध ० ३ – उप ० णिय ० । तं तु ० ।

१०६. मणुस०३ खवियाणं आहारदुगं तित्थय० ओघं। सेसं पंचिदियतिरिक्ख-भंगो।

१०७. देवेसु सत्तणं कम्माणं णिरयभंगो । तिरिक्त जिं वं एइंदि०इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०-थावर०-थिरादिइयुग० सिया० । तं तु० । पंचिदि०ओराहि० त्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणव्भ० । ओराहि०-तेजा०-क०पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—वादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । तिरिक्लाणु० णि० । तं तु० । एवं तिरिक्ताणु० । मणुसगदि० तिरिक्लभंगो । णवरि
एइंदियं आदाउज्जोवं थावरं च वज्ज । एवं मणुसाणु० ।

१०८. एइंदि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादे० णिय० | तं तु० | ओराल्ठि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—वादर-पज्जत०-

करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभाग का भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्च निद्रयज्ञाति आदि ध्रुव प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्य आदि तीन और उपघातका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है।

१०६. मनुष्यत्रिक्में खपक प्रकृतियां, आहारकद्विक और तीर्थद्धर प्रकृतिका भङ्ग ओघके न है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

१०७. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। तिर्यद्वगितके ज्ञान्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो ज्ञान्य अनुभागका भी वन्ध करता है वो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। पद्धे निद्रय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित वन्ध करता है तो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शारीर, तैनसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यद्धगत्यानुपूर्वोका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह ज्यान्य अनुभागका भी वन्ध करता है । तिर्यद्धगत्यानुपूर्वोका नियमसे वन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यद्धगत्यानुपूर्वोकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका भङ्ग तिर्यद्धगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत और स्थावरको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वो की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका मङ्ग तिर्यद्धगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत सीनकर्ष जानना चाहिए। सनुरुकर्ष जानना चाहिए। सनुरुकर्ष जानना चाहिए। सनिरुकर्ष जानना चाहिए। सनिरुकर्ष जानना चाहिए।

१०८. एकेन्द्रिय जातिके जयन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड-संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग श्रीर श्रनादेयका नियमसे वन्य करता है । किन्तु णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० । आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । थिराथिर-सुभा-सुभ-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।

१०६. पंचिद्दि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०--असंप०--अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०--अधिराद्दिछ० णिय० अणंतगुणव्भ० । ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि० अंगो०--पसत्थ०४-अगु०३- ०४-णिमि० णि०। तं तु०। उज्जोव० सिया०। तं तु०। एवं ओरालि० अंगो०-तस०।

११०. ओरालि० ज० वं० तिरिक्ति०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—तिरिक्ताणु०-डप०-अथिरादिपंच णि० अणंतगुणन्भ०। एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर०-हुस्सर० सिया० अणंतगुणन्भ०। ओरालि०झंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया०। तं तु०। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-पर०-उस्सा०-वादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० णि०। तं तु०। एवं

वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। आतप और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशा-कीर्ति और अयशाःकीर्तिका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सित्रकर्ण जानना चाहिए।

१०६. पञ्चे न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तास्पाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अौदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, अौदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुन्त्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है जो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रस प्रकृतिकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

११०. श्रौदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रौर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है श्रो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, श्रसम्प्राप्तास्रुपाटिका संहतन, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रौर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रौर त्रसका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रौर श्रज्ञघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तेजसशरीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, वाद्र, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रौर श्रज्ञघन्य श्रनुभाग

तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-वादर-पज्जत-पत्ते०-णिमिणं ति । आदावं एवं चेव । णवरि एइंदि०-थावर० णिय० अणंतगुणव्भ० । चदुसंठा०-चदुसंघ०-दोविहा०-सुभग-दोसर०-अणादे० पढमपुढविभंगो ।

१११. हुंड्० ज० वं० दोगदि-एइंदि०-इस्संघ०-दोआणु०--दोविहा०--थावर-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०। पंचिदि०-ओरालि० श्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणव्म० । ओराह्मि०-तेजा०-ऋ०-पसत्थापसत्थ०४-अगु.०४-वाद्र-पज्जत-प्ते०-णिमि० णि० अणंतगु० । एवं हुंडभंगो दूभग-अणादे० । अप्पसत्थ०४-उप० णिरयभंगो ।

११२ थिर० ज० वं० दोगदि-एइंदि०-इस्संठा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुभादिपंचयुग० सिया० । तं तु० । पंचि०-ओरालि० श्रंगो०-आदाउजो०-त्तस०-तित्य० सिया० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-वादर्-पज्जत-पत्ते०--णिमि० णि० अणंतगुणव्म०। एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० । तित्थ० णिरयभंगो ।

का भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैनसंशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। आतपकी मुख्यतासे भी सन्नि-कर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका नियमसे वन्य करता है जो अनन्त्राणा अधिक होता है। चार संस्थान, चार संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर श्रीर श्रनादेयका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है।

१११. हुण्डसंस्थानके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संदत्तन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्रप होता है। पञ्चे न्द्रिय जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रौर त्रसका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रौदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अपशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग, श्रनादेय की मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी मुख्यतासे सन्निकर्षःनारिकयोंके समान है।

११२ स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थात, छह संहत्तन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थायर और शुभादि पाँच युगलका कदाचित् वत्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनु-भागका भी वन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभोगका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित ्यद्विरूप होता है। पञ्चे न्द्रिय जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत, अस श्रौर तीर्थङ्करका कदाचित् वत्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक अौर निर्माणका नियमसे बन्य करता है जो अतन्त्गुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर,

, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकृषे जानना चाहिए। तीर्थक्कर

११३. भवण०-वाणवंतर-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तणणं कम्माणं देवोघं। तिरिक्लग० ज० वं० दोजादि--इस्संठाण--इस्संघ०--दोविहा०-- -थावर--थिरादि-- इयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४-वादर--पज्जत-पत्ते०-णिम० णि० अणंतगु०। ओरालि० त्रंगो०---आदाउज्जो० सिया० अणंतगु०। तिरिक्लाणु० णिय०। तं तु०। एवं तिरिक्लाणु०।

११४. मणुसग० ज० वं० तिरिक्खगिद्भंगो । णवरि पंचि०-मणुसाणु०- ० णि०। तं तु० । एवं मणुसाणु० । एइंदि०-धावर० देवोवं ।

११५. पंचिदि० ज० वं० दोगदि-इस्संठा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थिरादिइयुग० सिया०।तं द्य०। ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्था-पसत्थ०४-अगु०४-वादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणन्भ०। उज्जो० सिया०

प्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

११३. भवनवासी, न्यन्तर, ज्योतिपी और सौधर्म ऐशान कल्पके देवोंमें सात कर्मीका भक्त सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगतिके ज्ञयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित वन्ध करता है। किन्तु वह ज्ञयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। अति अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अत्रदारिक आङ्गोपङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। ज्ञोदारिक आङ्गोपङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह ज्ञयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

११४. मनुष्यगित के नघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यक्रगितिके समान है। इतनी विशेषता है कि पक्षे निर्य जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसका नियमसे बन्ध होता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित दृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यता सिन्नकर्प जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प सामान्य देवों के समान है।

११५. िन्द्रिय जातिके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयु चतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो नत्युणा अधिक होता है। उद्योतका कदाचित वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक

[े] १. ता० आ० प्रत्योः थावरादि इति पाठः ।

अणंतगुणन्भ० । तस० णि० । तं तु० । एवं पंचिद्यि०भंगो चदुसंटा०-चदुसंघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे० ।

११६, हुंड० ज० वं० दोगिद-दोजािद-इस्संघ०-दोआणु०दोिवहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग० सिया० । तं द्य० । सेसं तिरिक्खगिद्भंगो । एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादे० । एवं चेव थिराथिर--सुभासुभ--जस०-अजस० । णविर तित्य० सिया० अणंतगुणव्भ० ।

११७. ओराहि० ज० वं० तिरिक्त०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्य०४—तिरिक्ताणु०-डप०-थावर-अथिरादिपंच० णि० अणंतगुणव्भ०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय०। तं तु०। आदाङ्को० सिया०। तं तु०। एवं एदाओ एक्कमेक्कस्स। तं तु०।

११८. ओरालि०श्रंगो० ज० वं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसंटा०--असंप०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अगु०४--अप्पसत्थ०---तस०४-

होता है। त्रसका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह तयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अत्याय अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अत्याय अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार पञ्चे न्द्रिय जातिके समान चार संस्थान, चार संहनन, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयकी सुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

११६. हुण्ड संस्थानके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, दो जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित चृद्धित्प होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्येख्यगितके समान है। इस प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग और अनादेय की मुख्यतासे सिन्नकर्ण जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थद्वर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

११७. श्रौदारिक शरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रौर श्रस्थिर
श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रियक होता है। तैजसशरीर,
कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणका नियमसे
वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रजवयन्य श्रनुभाग का
भी वन्य करता है। यदि श्रजवयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप
होता है। श्रातप श्रौर उद्योतका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जधन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है और श्रजवयन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजवयन्य श्रनुभाग
का वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियों का
परस्पर सित्रकर्प जानना चाहिए किन्तु वह उसी प्रकारका होता है।

११८. श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके लघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यद्धगति, पञ्चे-निद्रय जाति, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रसम्प्राप्तास्त्पाटिका संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, श्रप्रशस्त विहायो- अथिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुणन्भ० । उज्जो० सिया० अणंतगुणन्भ० ।

११६. सणक्कुमार याव सहस्सार ति पहमपुहिवभंगो । आणद याव णव-गेवज्ञा ति सत्तण्णं कम्माणं देवोघं। मणुस० ज० वं० पंचिदि०-ओराल्ठि०-तेजा०-क०-ओराल्ठि० ग्रंगो०--पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-तस४-णिमि० णि० । तं तु०। हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०अप्पसत्थवि०-अथिरादिञ्च० णि० अणंतगुणव्भ०। एवं मणुसगदिभंगो पंचिदियादि तं तु० पदिदाणं सन्वाणं।

१२०. समचदु० ज० वं० मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० अणंतगुणब्भ०। इस्संघ०-दोविहा०-थिरादिइयुग० सिया०। तं तु०। एवं पंचसंठा०-इस्संघ०-दोविहा०-थिरादि-इयुग०। जवरि तिण्णियुग०-तित्थय० सिया० अणंतगुणव्भ०। अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थयरं च देवोघं।

१२१. अणुदिस याव सन्वद्द ति सत्तण्णं कम्माणं आणदभंगो। णवरि थीण-गिद्धि३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० वज्ज । मणुस० ज० वं०

गति, त्रसचतुष्क, अस्थिर श्रादि छह श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रिधिक होता है। उद्योतका कदाचित वन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रिधिक होता है।

११६. सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवों में प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नो प्रवेचक तकके देवों में सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवों के समान है। मनुष्यगतिके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तेजस्शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुन्निक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है शोर अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्यपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिके समान पद्धे न्द्रिय जाति आदि 'तं तु' पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

१२०. समचतुरस संस्थानके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, पञ्चे निद्रय जाति, श्रौदारिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रंगुरुलघु चतुष्क, त्रस चतुष्क श्रौर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। छह संहनन, दो विहायोगित श्रौर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है श्रौर अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित चुद्धिष्ठप होता है। इसी प्रकार पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगिति श्रौर स्थिर श्रादि छह युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन युगल श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात श्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंके इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जैसा कह श्राये हैं वैसा है।

१२१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कमोंका भङ्ग आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिण्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपु सकवेद आणद्भंगो । णविर अप्पसत्य०४-उप०-अथिर०-असुभ०-अजस० णिय० अणैतगुणव्भ० । समचढु०-वज्जिरि०-पसत्यवि० - सुभग - सुस्सर० - आदे० णि० । ते तु० ।
तित्य० सिया० । तं तु० । एवं तं तु० पदिदाओ एक्समेक्स्स । तं तु० । अप्पसत्य०४उप० देवोधं ।

१२२, थिर० ज० वं० सुभासुभ-जस०-अजस० सिया०। तं तु०। तित्थय०

सिया० अर्णतगुणव्भ० । एवं तिण्णियुग० ।

१२३. पंचिदि०--तस०२-पचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओराल्यिका०-कोधादि०४-चक्खु०-अचक्खु०-धवसि०-मिच्छादि०-मिद्-सुद्०-विभंग०-असंजद०-सिण्य-असिण्य-आहारग ति ओघभंगो। णवरि किचि विसेसो णाद्व्यो। ओराल्यि-का० मणुसोघं। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० तिरिक्खोधं। कोधे कोधसंज० ज० वं० तिण्णं संज० णि० जहण्णा। माणे माणसंज० ज० वं० दोसंज० णि० जहण्णा।

श्रीर तीचगोत्रको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। मनुष्यगितके तघन्य अनुभागका वन्य करने वाले देवका भङ्ग श्रानत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपयात, श्रास्यर, श्रशुभ श्रोर अयशाकीर्तिका नियमसे वन्य करता है जो श्रानन्तगुणा श्राधिक होता है। समचतुरत्र संस्थान, वर्ष्यभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर श्रोर श्रादेयका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह तघन्य अनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रावघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रावघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। विश्वहर प्रश्नतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जघन्य श्रनुभाग का भी वन्य करता है श्रोर श्रावघन्य श्रनुभागका का भी वन्य करता है तो वह लघन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिक्ष होता है। इसी प्रकार 'तं तु' पितत जितनी प्रकृतियां हैं उनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य श्रनुभागका वन्य करता है जो वघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। जो जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिक होता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिक होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुक्क श्रोर उपघात प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जैसा इनकी मुख्यतासे सामान्य देवोंके कह श्राये हैं उसी प्रकार यहां जानना चाहिए।

१२२. स्थिर प्रकृतिके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत ष्टिहरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्त-गुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१२३. पद्ध न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रोदा-रिककाययोगी, कोघादि चार कपायवाले, चलुद्र्शनी, अचलुद्र्शनी, भन्य, मिध्यादृष्टि, मत्यज्ञानी, श्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, संज्ञी, असंज्ञी श्रोर आहारक जीवोंके श्रोपके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कुछ विशेषता जाननी चाहिए। श्रोदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य मनुष्यों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहां तिर्यञ्जगित श्रोर विर्यञ्जगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जिस प्रकार सामान्य विर्यञ्जोंमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहा है इस प्रकार जानना चाहिए। कोवकपायमें क्रोध संव्यलनके जयन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव तीन संव्यलनोंका

र. ता अवी विस्किल विस्किलोधं इति पाठः । २. ता अती मार्यासंबर्धं इति पाठः ।

मायाए मायसंज्ञ ज्ञ वं छोभसंज णि जहण्णा। सेसाणं ेहविसेसो णादव्यो।

१२४. ओरालियमिस्से सत्तणं कम्माणं देवोघं। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु० ओघं। मणुस०-पंचजादि-इस्संटाण-इस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तस-थावरादि०४— सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदे०-अणादे० पंचिदि०तिरि०अपज्ज०भंगो। देवग० ज० वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४-पसत्थ०- ०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुण्ठभ०। वेचिव्व०-वेचिव० स्रंगो०--देवाणु० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं चदुपगदीस्रो०। ओरालिय-तेजइगादीओ ओरालि० झंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० पंचिदि०तिरि०-अपज्जतभंगो।

१२५. अप्पसत्थवण्ण० जं० वं० देवगदि-पसत्थपगदीणं णिय० अणंतगुणव्भ०। अप्पसत्थगंघ०३–उप० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। थिरादि-

नियमसे जघन्य अनुभागवन्य करता है। मानकपायमें मानसंज्यलनका जघन्य अनुभागवन्य करने-वाला जीव दो संज्यलनोंका नियमसे जघन्य अनुभागवन्य करता है। मायाकपायमें माया संज्यलन-का जघन्य अनुभागवन्य करनेवाला जीव लोभ संज्यलनका नियमसे जघन्य अनुभागवन्य करता है। शेष प्रकृतियोंका मोहके समान विशेष जानना चाहिए।

१२४. श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग सामान्य देवोंके तिर्यञ्जगति त्र्यौर तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वीका भङ्ग त्रोघके समान है। मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहत्तन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर त्रादि चार युगल, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय और अनादेयकी सुख्यतासे सन्निकर्प जिस प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे पख्रीन्द्रय तिर्यद्ध अपर्याप्तकोंके कह आये हैं उस प्रकार जानना चाहिए। देवगति के जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतु-रससंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्ररास्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर, श्रशुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, श्रयशःकीर्ति श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यातु-पूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थेङ्कर प्रकृतिका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजयन्य त्रजुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर त्रादि चार प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। त्रीदारिकशरीर त्रीर तैजसशरीर श्रादि तथा श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप श्रीर उद्योतका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय तिर्ये श्व श्रपर्याप्तकों के समान है।

१२५. अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीन देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्य आदि तीन और उपघातका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। तीर्यद्वर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक

तिण्णियुग० पंचिदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । णवरि तिरिवख०--देवगदि-वेउन्वि०-ओराछि०-वेउन्वि०त्रंगो०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया० अणंत-गुणव्भ० ।

१२६. वेडिव्ययकायजोगीस सत्तण्णं कम्माणं देवभंगो। तिरिक्त - तिरिक्त ए० णिरयोघं। मणुस०-मणुसाणु० देवोघभंगो। एइंदि०-थावर० देवोघभंगो। णविर तिरिक्त ०-तिरिक्त ए० णिय० अणंतगुण्य । पंचिदि०-ओरालि० अंगो० - तस० णिरयोघं। ओरालि० ज० वं० तिरिक्त ०-हुंड०-अप्पसत्थ०४ - तिरिक्त णु०-उप०-अधिरादिपंच० णि० अणंतगुण्य । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर - दुस्सर० सिया० अणंतगुण्य । पंचिदि०-ओरालि० अंगो० -- आदा उज्जो० -- तस० सिया०। तं तु०। तेजा-क०-पसत्थ०४ -- अगु०३ -- वादर-पज्जत्त -पत्ते०-णिम० णि०। तं तु०। एवं तेज इगादीणं एक मेक स्स। तं तु०। सेसाणं देवोघं। एवं वेडिव्यमि०।

१२७. आहार०-आहारमि० सत्तण्णं कम्माणं अणुदिसभंगो । णवरि अद्वक०

होता है। स्थिर आदि तीन युगलोंका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्चगति, देवगति, वैकियिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और तीर्यङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१२६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्येख्न-गति श्रौर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। मनुष्यगति और मनुष्य-गत्यानुपूर्वीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्जगित और तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चे न्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रीदारिक शरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला नीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रोर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा श्रिधक होता है। एकेन्द्रिय नाति, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्च न्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, ख्योत श्रौर त्रसका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य शनुभागका भी वन्ध करता है और अजवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव शेपका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य श्रतुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रजवन्य श्रतुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रतुमागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोके जानना चाहिए।

१२७. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रनुदिशके

वज्ज । देवगदि० जं० वं० पंचि०-वेडिव्य०--तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्व० ग्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप०-अधिर- असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणव्भ० । तित्थ० सिया०।तं तु० । एवं देवगदिआदीओ तप्पाओग्गाओ तित्थयरं च एक्कमेक्स्स ।तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० ओदं ।

१२८. थिर० ज० वं० देवगदिसंजुत्ताणं पसत्थापसत्थाणं पगदीणं णिय० अणंत-गुणव्भ० । सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ० । एवं अथिर-सुभ-असुभ-जस०-अजस० ।

१२६. कम्मइ० सत्तरणं कम्माणं देवोघभंगो । तिरिक्ख०-मणुसग०-चढुजादि-इस्संटा०-इस्संघ०-दोञाणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिइयुग० ओघं । देवगदि४-ओरालियमिस्स०भंगो । पंचिदि० ज० वं० तिरि०--हुंड०-असंप०--अप्पसत्थ०४-

समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कपायोंको छोड़कर सिलकर्ष कहना चाहिए। देवगतिके ज्ञान्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पद्धे न्द्रियजाति, वैक्षियिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्षियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्त्रर, आदेय और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह ज्ञान्य अनुभागका भी वन्य करता है। विह अज्ञान्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात, अस्थिर, अग्रुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है तो ज्ञान्तगुणा अधिक होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो ज्ञान्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञान्य अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तत्यायोग्य देवगित आदि और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सिलकर्प ज्ञानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके ज्ञान्य अनुभागका वन्य करता है और अज्ञान्य अनुनन्त भी करता है। यदि अज्ञान्य अनुभागका वन्य अनुभागका वन्य करता है हो को क्षान्य अनुभागका वन्य करता है । को ज्ञान्य अनुभागका वन्य करता है और अज्ञान्य अनुनन्त भी करता है। यदि अज्ञान्य अनुभागका वन्य करता है हो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और नप्यातका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और नप्यातका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और नप्यातका मङ्ग आयके समान है।

१२८. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुमागका वन्ध करनेवाला जीव देवगति संयुक्त प्रशस्त आर अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशः-कीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१२६. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यद्भगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर छादि चार छोर स्थिर छादि छह युगलका भङ्ग छोषके समान है। देवगित चतुष्कका भङ्ग छोदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके । त है। पछ्छ न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव

तिरिक्ताणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । ओरात्ति-यादि० णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० । तं तु० । एवं ओरालि० ग्रंगो नतस० ।

१३०. ओराहि० ज० वं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-डप०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणव्भ० । एइंदि०-अप्पसत्थ०-थावर्-दुस्सर० सिया० अणंतगुणव्भ० । पंचिदि०-ओराहि० श्रंगो०-आदा उन्तो०-तस०४ सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ एक-मेकस्स । तं तु० ।

१३१. तित्थ॰ ज॰ वं॰ मणुसगदिपंच॰ सिया॰ अणंतगुणःभ॰ । देवगदि०४ सिया॰ । तं तु॰ । पंचिदियादि॰ णि॰ अणंतगुणःभ० ।

तिर्यद्भगित, हुण्डसंस्थान, श्रसम्प्राप्तास्रुपाटिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्येश्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह श्रोर निर्माणका नियमसे वन्य करता है । को स्वान्य श्राद्यका नियमसे वन्य करता है । किन्तु वह जयन्य श्रानुभागका भी वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका भी वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिक्ष होता है । उद्योतका कदाचित् वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका कदाचित् वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका भी वन्य करता है । यदि श्रजघन्य श्रानुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिका होता है । इसी प्रकार श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर त्रस प्रकृतिकी सुख्यता से सिन्नकर्ष जानना चाहिए ।

१३०. श्रोदारिकशरीरके जघन्य अनुमागका चन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रोर श्रस्थिर श्रादि पांचका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, श्रप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर श्रोर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा श्रधिक होता है। पल्लोन्द्रिय जाति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रोर त्रस चतुष्कका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका नियमसे वन्ध करता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलश्चित्रक श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार इन सव प्रश्नतियोंका परस्पर सिन्नकर्प जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है श्रोर श्रजधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है।

१३१. तीर्थेट्कर प्रकृतिके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगित , पद्धकका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। देवगितचतुष्कका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पद्ये न्द्रियजाति आदिका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१. श्रा० प्रती श्रोरालि०भंगो० इति पाठः । २. ता० प्रती श्रप्पसत्थ० श्ररपसत्थ० (१) थावर इति पाठः ।

१३२. इत्थिवे० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णविर कोधसंज० ज० वं० तिण्णि-संज०-पुरिस० णिय० वं० णियमा जहण्णा । चढुगदि-चढुजादि-छस्संठाण--छस्संघ०-चढुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० पंचिदि०तिरि०भंगो।

१३३. पंचि० ज० वं० णिरयगदि-हुंड०-अप्पसत्थ०४—णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थवि०-अथिरादिछ० णि० अणंतगुणव्भ० । वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०ञ्जंगो०-पसत्थ०४—अगु०३--तस०४—णिमि० णि० । तं तु० । एवं [वेउव्वि०-] वेउव्वि०-ऋंगो०-तसं० । ओराछि०-आदाउज्जो० सोधम्मभंगो ।

१३४. ओरालि०त्रंगो० ज० वं० तिरिवल०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्लाणु० - अगु०-उप० - तस० - वादर० -पत्ते० - अथिरादिपंच०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । वेइंदि०--पंचिदि०--पर०-उस्सा०-उज्जो०--अप्पसत्थ०-पज्जत्तापज्ज०-दुस्सर० सिया० अणंतगुणव्भ० ।

१३५. तेजा०-कम्पइ० ओघं। णवरि [ओरालियअंगो०-] असंपत्तं वज्ज।

'३२. स्त्रीवेदी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रांघके समान है। इतनी विशेषता है कि कोध संज्ञलनके जवन य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव तीन संज्ञ्ञलन श्रोर पुरुषवेदका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे जघन्य होता है। चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संह्वन, चार श्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर श्रादि चार श्रोर स्थिर श्रादि छह युगलका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय तियैक्चोंके समान है।

१३३. पद्ध न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव नरकगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुनिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। औदारिकशरीर, आतप और उद्योतका भंग सौघर्मकरपके समान है।

१३४. श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रसम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, स्त-वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपचात, त्रस, वादर, प्रत्येक, श्रस्थर श्रादि पाँच श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता:है। द्वीन्द्रिय जाति, पञ्चोन्द्रय जाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, पर्याप्त, श्रप्रयाप्त श्रोर द्वःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है।

१३५. तैजसरारीर श्रीर कार्मणरारीरका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रोदारिकश्राङ्गोपांग श्रोर श्रसम्प्राप्तास्रपाटिका संहननको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

१. ता॰ प्रतौ कोघवंन॰ पुरिष० शिय० वंघ० शियमो० (मा०) जहण्या इति पाठः। २ ता॰ श्रा॰ प्रत्योः -जादि चदुवंठाणं श्रोरालि॰ श्रंगो॰ छत्त्वंन॰ इति पाठः। ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः तत्त ४ इति पाठः।

पंचिद्वि-ओरास्टि०-वेस्टिव-०वेस्टिव ० अंगो०-आदारुको०-[तस०] सिया०। तं तु०। एइंदि॰-थावर० सिया० अणंतगुणव्मै०। कम्मइगादि० णिमि० णि०। तं तु०। एवं तेजइगादि० अण्णमण्णस्स । तं तु०। आहारदुग-अण्पसत्थ०४—उप०-तित्थय० ओद्यभंगो०।

१३६. पुरिसेम् सत्तण्णं कम्माणं इत्थिभंगो । सेसं ओघं । णवरि तिरिक्खगदिदु० परियत्तमाणिगा काद्वा ।

१३७. णवुंसगे सत्तण्णं कस्माणं इत्यिवेदमंगो । चढुगदि-चढुजादि-छस्संठा०-इस्संघ०-चढुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं । पंचिदि० ज० वं० दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया० अणंतगुणव्भ० | दोसरीर-दोझंगो०-उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-पसत्य०४-अगु०३-तस०४ [-णिमि०] णि० । तं तु० ।

पञ्चे न्द्रियताति, श्रोदारिकशारीर, वैक्रियिकशारीर, वैक्रियिकश्चाङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रौर श्रमका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह वयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रमवन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमवन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। एकेन्द्रियताित श्रौर स्थायरका कदाचित् वन्य करता है तो श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक होता है। कार्मणशारीर श्रादि श्रौर निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह वयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रमवन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रमवन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमचन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशारीर श्रादिका परस्पर सिन्नकर्य जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके वयन्य श्रमुभागका वन्य करनेवात्ता जीव शेषका नियमसे वन्य करता है जो ववन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रौर श्रमवन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमवन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्राहारिकद्विक, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्पघात श्रौर तीर्थङ्कर प्रद्विका भड़ग श्रोघके समान है।

१३६. पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । शेप भंग श्रोघके समान । है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विककी परिवर्तमान प्रकृतियोंमें परिगणना करनी चाहिए ।

१३७. नपुं सकवेदी जीवोंमं सात कर्मीका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। चार गित, चार जाति, छह संस्थान छह संहनन, चार त्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर त्रादि चार त्रोर स्थिर त्रादि छह युनलका भङ्ग त्रोचके समान है। पछ न्त्रिय जातिके जधन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव हो गित, असन्प्राप्तास्पादिका संहनन त्रीर दो आनुपूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि प्रजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि प्रजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत दृद्धिरूप होता है। तेजसशरीर, कार्मणुशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुस्त्रयुत्रिक, त्रस चतुष्क और त्रिमण्का नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत दृद्धिरूप होता है। करता है। विन्तु वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत दृद्धिरूप होता है।

१. ता॰ श्रा॰ मत्योः स्था॰ तं तु० श्रर्णतगुण्यन्म० इति पाठः।

्रिं ०-] अप्पसत्थवण्ण०४-उप० [-अप्पसत्थ०-] अथिरादिछ० णि० अणंत-गुणव्भ० | एवं तेजइगादि० | एवं ओराहिगादीणं पि सिया० | तं तु० | ओराहि० ओराहि०त्रंगो० सिया० | सेसं मणुसभंगो | [णवरि आदवं तिरिक्लोघं] |

१३८. अवगद्वे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० णि० वं० णि० जहण्णा। च संज० ओघं।

१३६, आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। मणुसग० ज० वं० पंचिद्दि०-ओराल्ठि०-तेजा०-क०-समचदु०--ओराल्ठि० ग्रंगो०-वज्जरि०--पसत्थ०४-मणु-साणु०-अगु०३--पसत्थ०-तस०४-सभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणव्भ०। एवं मणुसगदि-चदुक्क०।

१४०. देवगदि ज० वं० मणुसभंगो । णवरि तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं देवगदिचदुकस्स वि ।

हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नियमसे तं तु पतित तैजस-शरीर आदिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सिया तं तु पतित औदारिक-शरीर आदिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभाग का वन्य करनेवाला जीव शेषका कदाचित् वन्य करता है। जो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। अदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर के जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव औदारिक आङ्गोपाङ्गका कदाचित् वन्य करता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। किन्तु आतपका भङ्ग सामान्य तिर्थक्कोंके समान है।

१३८. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पांच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे जघन्य होता है। तात्पर्य यह है कि इन चौदह प्रकृतियोंमेंसे किसी एकके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव शेषका नियमसे जघन्य श्रनुभागवन्य करता है। चार संज्यलनका भङ्ग श्रोघके समान है।

१३६. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोधके समान है। मनुष्यगतिके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पद्धे न्द्रियज्ञाति, श्रीदारिक शारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्जपभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर तिर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, अस्थिर, श्रशुभ श्रीर अययशकीर्तिका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्य-गत्यानुपूर्वी श्रादि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१४०. देवगतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवका भङ्ग मनुष्यके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थेङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। इसी प्रकार देवगत्यानु-

१४१. पंचिद् जि० वं दोगदि-दोसरीर-दोग्रंगो०-वज्जरि०-दोग्राणु०-तित्य० सिया०। तं तु०। तेजा०-क०-समचदु०-पसत्यवण्ण०४-अगु०३--पसत्यवि०-तस०४- सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्य०४--डप०-अथिर-असुभ- अजस० णि० अणंतगुणव्भ०। एवं पंचिद्यि०भंगो तेजङ्गादीणं पसत्थाणं ।

१४२. तित्थ० ज० वं० देवगदि० णि० । तं तु० । आहारदुगै-अप्पसत्य०४-

१४३. थिर० ज० वं० दोगदि-दोसरीर० सिया० अणंतगुणव्भ०। पंचिदि-यादि० णि० अणंतगुव्णभ०। दोयुग० सिया०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंत-गुणव्भ०। एवं तिण्णियुग०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइगस०। णवरि खइगे मणुसगदिपंचग० जह० तित्थ० सिया०। तं तु०।

पूर्वी चतुप्ककी सुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

१४१. पछ न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीय दो गित, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्यद्धर प्रकृतिका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरहासंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुरक, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुरक, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है जो अनन्त-गुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियजातिके समान तेजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१४२. तीर्थेद्धर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव देवगतिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भंग ओच के समान है।

१४३. स्थिर प्रकृतिके जघन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गित श्रीर दो शरीरका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रिधिक होता है। पछ्रोन्द्रिय जाति श्रादिका नियमसे वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रिधिक होता है। दो युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो यह जघन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमन्तगुणा श्रिधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंका भक्त है। इसी प्रकार त्रमें श्रामिनवोधिक हानी श्रादि जीवोंके समान श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दि श्रीर क्षायिक सम्यग्दि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिक सम्यग्दि जीवोंमें मनुष्यगित पश्रकके जयन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रीर

२. ता॰ प्रतौ तेनइगादीणं पसं (स) त्याणं। तित्य॰, स्रा॰ प्रतौ तेनइगादीणं तित्थ॰ इति पाठः।
२. ता॰ प्रतौ णि॰। तित्य स्नाहारदुगुं॰ (गं), स्ना॰ प्रतौ णि॰ तं तु॰ स्नाहारदुगं इति पाठः।

१४४. मणपज्जवे सत्तण्णं कम्माणं ओधिभंगो० । णवरि अद्वकसायं वज्ज । णाम० ओधिभंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं वज्ज। तित्थ० ओघं । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० । सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो ।

१४४. किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । संसं णवुंसगभंगो । णील-काऊणं सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णिरयगदि० ज० ओघं० । पंचिदि० ज० वं० तिरिक्त०-हुंड० णि० अणंतगु० । ओरालि० णि० । तं तु० [संसं] णिरयदंडओ भाणिद्व्यओ । वेउव्वि० जं० वं० णिरयगदिअहावीसं अणंतगुणव्भ० । वेउव्वि०-श्रंगो० णि० । तं तु० । एवं वेउव्विय०श्रंगो० । संसं किण्णभंगो० । काऊ० तित्थ० णिरयभंगो ।

१४६. तेऊए सत्तण्णं कम्माणं देवगिंदभंगो। णविर कोधसंज ज वं तिण्णि-संज - पंचणोक णि । तं तु । दोगिंद-दोजिंदि-इस्संटा - इस्संघ - दोआणु -अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह

स्थान पितत वृद्धिरूप होता है।
१४४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कपायोंको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। नामकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगितपञ्चकको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। तीर्रङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ज्योपके समान है। इसी प्रकार संयत, छेदोपस्यापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और संययासंयत जीवोंके जानना चाहिए। सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

१४५. कृष्ण लेश्यामें सात कर्मीका भंग नारिकयों के समान है। शेप भङ्ग नपुं सकों के समान है। नील श्रीर कापोत लेश्यामें सात कर्मीका भङ्ग नारिकयों के समान है। नरकगति के जघन्य श्रमुभागके वन्धक जीवों का भङ्ग श्रोधके समान है। पश्च न्द्रिय जाति के जघन्य श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति श्रोर हुण्डसंस्थानका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणा श्रधक होता है। श्रोदारिकशरीरका नियमसे वन्ध करता है जो जघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है तो वह श्रह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। शेष प्रश्वतियोंका भंग नरकदण्डक समान कहना चाहिए। विक्रियकशरीरके जघन्य श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव नरकगित श्रादि श्रहाईस प्रश्वतियोंका वन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। विक्रियक श्राङ्गोपाङ्गका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रमुभागका भी वन्ध करता है। श्रेप प्रश्वतियोंका भन्न करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह श्रह स्थानपतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार विक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गका भी मङ्ग जानना चाहिए। श्रेप प्रश्नतियोंका भङ्ग श्रुप्ताकों समान है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रश्नतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

१४६. पीत लेश्यामें सात कर्मोंका भंग देवगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन और पाँच नोकपायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित,

१. श्रा॰ प्रती भाणिदन्त्राश्रो इति पाठः ।

[दोविहा०-] तस-थावर-तिष्णियुग० सोधम्मभंगो। देवगदि० ज० वं० पंचिदियादि णि० अणंतगुणव्भ०। वेचिवव०-वेचिवव०अंगो०-देवाणु० णि०। तं तु०। एवं वेचिवव०-वेचिवव०अंगो०-देवाणु०। ओराल्ठ०--तेजा०-क०--पसत्थ०४—अगु०२—[आदाउज्जो-वादर-पज्जत-पत्ते०-] णियि०-[तित्थ०] सोधम्मभंगो। थिरादितिष्णियुगलाणं [ज० वं०] दोगदि० सिया०। तं तु०। देवगदि०४ सिया० अणंतगुणव्भ०। सेसं सोधम्मभंगो। [आहारदु०-अप्पसत्थवण्ण४-उप० मणुसभंगो।] एवं पम्माए वि। णवरि पंचिदि०-ओराल्ठि०अंगो०--तस० सव्वाणं संकिलेस्सपगदीणं सहस्सार-भंगो। तित्थय० देवभंगो।

१४७, सुक्काए सत्तण्णं क० ओघं। देवगिदै०४-आहारदुगं पम्माए भंगो। सेसाणमाणदभंगो। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। अव्भव० मिद०भंगो। णविर अप्पसत्थ-वण्ण० ज० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० सिया०। तंतु०। दोगिदि-दोसरीर-दोस्रंगो०-

त्रस, स्थावर श्रीर तीन युगलका भंग सौधर्म कल्पके समान है। देवगतिके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पद्धे निद्रय जाति त्रादिका नियमसे वन्य करता है जो स्रनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य छातुभागका भी वन्य करता है छोर छाजयन्य छातुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो यह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक ब्राङ्गोपाङ्ग ब्रौर देवगत्यानुपूर्वीका भङ्ग जानना चाहिए। ब्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशंस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलवुत्रिक, आतप, उद्योत, वादर, पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह ज्ञचन्य श्रतुभागका भी वन्य करता है और श्रज्ञचन्य श्रतुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रमुभागका यन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। देवगति चतुष्कका कदा-चित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसका शेप भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपवातका भङ्ग मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार पद्म-लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पछ्छे न्द्रिय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, त्रस श्रीर सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे वॅथनेवाली सर्व प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। तथा तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग देवोंके समान है।

१४% शुक्तलेश्यामें सात कर्मीका भङ्ग श्रोधके समान है। देवगति चार श्रोर श्राहारक दिकका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रानतकल्पके समान है। श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क श्रोर उपघातका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रमञ्योंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियों के समान है। इतनी विशेषता है कि श्रप्रशस्त वर्णके जयन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति श्रोर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जघन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गित, दो शरीर, दो

रे. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः णिमि॰ णि॰ तं तु॰ सोघम्ममंगो इति पाठः । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रोधं । यामगदि देवगदि० इति पाठः ।

वज्जरि०-दोआणु०- ज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । पंचिदि०-तेजा०-क०-समचढु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । अप्पसत्थगंध३-उप० णि० । तं तु० ।

१४८. वेदग०-उवसम० अधिदंसणिभंगो। अप्पसत्थ०४-उप० ओघं। सासा०
मिद्दिणंगो। मिच्छत्तं वज्ज । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं। दोगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० ओघं। णविर पज्जतसंजुत्तं कादव्वं। पंचिदि०
ज० वं० तिरिक्खगदिआदिं० णि० अणंतगुणव्भ० । ओरालिगादिसव्वसंकिलिटाणं
णि०। तं तु०। उज्जो० सिया०। तं तु०। एवं मणुस०-मणुसाणु०। तं तु०। वेउव्विय० ज० वं० पंचिदियादि० णि० अणंतगुणव्भ०। तिण्णियुगल् सिया०। तं तु०।

त्रांगोपांग, वर्ज्यमनाराचसंहनन, दो त्रानुपूर्वी श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पद्ये न्द्रियजाति, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त
वर्णचतुष्क, श्रगुरुत्वधुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रोर निर्माणका
नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्य श्रादि तीन श्रोर उपघातका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जबन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रोर अजघन्य
श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान
पतित वृद्धिष्प होता है।

१४८. वेदकसम्यादृष्टि स्त्रीर उपश्रमसम्यादृष्टि जीवोंमें स्त्रविदर्शनी जीवोंके समान भङ्ग है। मात्र श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भङ्ग श्रोघके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवींमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तिर्यञ्चगति श्रौर तिर्यञ्चगत्यातुपूर्वीका भंग श्रोचके समान है। दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित स्त्रीर स्थिर स्त्रादि छह युगलका भंग स्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्त प्रकृतिको संयुक्त करके कहना चाहिए। पञ्चे न्द्रिय जातिके जयन्य श्रनुभागका यन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति श्रादिका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्त-गुणा अधिक होता है। औदारिक आदि सर्व संक्लिप्ट परिणामोंसे वन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह नघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रनघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अन्नघन्य श्रमुभागका चन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगति श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भंग है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अलघन्य अनुभाग वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। वैक्रियिक शरीरके जयन्य श्रनुभागका बन्य करनेवाला जीव पञ्चे न्द्रिय जाति श्रादि का नियमसे वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन युगलका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है और श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका यन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है।

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः श्रोधं श्रव्भव॰ मदिभंगो । मिच्छतं इति पाठः । २, ता॰ प्रतौ जादि॰ इति पाठः ।

किंचि० विसेसी जाणिद्व्वो । एवं वेडव्वि० ग्रंगो० । [सम्मामि० वेद्ग०भंगो । विसेसी जाणिद्व्वो ।] मिच्छादिद्दी० मदि०भंगो । अणाहार० कम्महगभंगो ।

एवं जहण्णसिण्णयासो समत्तो । एवं सत्थाणसिण्णयासो समत्तो ।

१४६. परत्थाणसण्णिगासे दुवि०-जह० उक्क० । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओये० आदे० । ओये० आभि० उक्क० अणुभागं वंधंतो चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०- मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० णिय० वंध० । तं तु० इहाणपिद्दं वंधदि । अणंतभागहीणं वा०५ । णिरय०- तिरिक्ख०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर-दुस्सर० सिया० । तं तु० । पंचिदि०-दोसरीर-दोझंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-पर०-उस्सा०-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० । एवं आभिणि०भंगो चढुणा०-णवदंसणा०-असादा० - मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०- हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंतरा० ।

जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। इसी प्रकार वैक्रियिक आंगोपांग की मुख्यतासे सिन्निकर्ष है। सन्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। किन्तु कुछ विशेषता जाननी चाहिए। मिण्यादृष्टि जीवोंका भंग मत्यद्वानी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंका भंग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है। इस प्रकार जयन्य सिन्नकर्ष समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वस्थान सन्निकर्प समाप्त हुन्या।

१४६. परस्थान सिन्नकर्पकी अपेज्ञा निर्देश दो प्रकारका हे—ज्ञयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेज्ञा निर्देश दो प्रकारका हे—आेप आोर आदेश । ओपकी अपेक्षा आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्याद्य, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण्यनुष्क, प्रयात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है । किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है । तो वह छह स्थान पतित हानि रूप वाँचता है । असंख्यातगुणहीन वाँचता है, या असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन वाँचता है । वाँचता है । नरकगित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियज्ञाति, असम्प्राप्तासपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्यावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्य करता है । यदि वन्य करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है । पञ्च न्त्रियज्ञाति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् वन्य करता है । पञ्च न्त्रियज्ञाति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् वन्य करता है । पञ्च न्त्रियज्ञाति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् वन्य करता है । पञ्च न्त्रियज्ञाति, दो शारीर, दो क्राङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् वन्य करता है हो अनन्तगुणा हीन होता है । तैनसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णच करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है । वैज्ञसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णच करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है । इसी प्रकार आभिनिवोधिकङ्गानावरणके समान चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्य, सोलह कथाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड

२. ता॰ प्रती श्रर्णतमागं इति पाठः।

१५०. सादावेदणीयं उक्कः अणुभागं वंधंतो पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं वं० | जसगि०-उच्चा० णि० उक्कस्स० | एवं जस०-उच्चा० |

१५१. इत्थिवे० उक्क० वं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-भिच्छ०-सो क०अरिद-सोग-भय- ०- तिरिक्तव०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४ — तिरिक्तवाणु० - अगु०४—अप्पसत्थ० - तस०४—अथिरादिछ० - णिमि०णीचा०-पंचंत० णि० वं० अणंतगुणही० । तिण्णिसंटा०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० सिया०
अणंतगुणही० । एवं पुरिस० । णवरि दोगदि--पंचसंटा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०
सिया० अणंत०हीणं०।

१५२. हस्स० उक्क० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-अथिरादिपंच०-णिमि०णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगु०हीणं० । इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचजादि-पंचसंठा०-ओरालि० ग्रंगो०-पंचसंघ-दोआणु०-पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०--तस-थावर-वादर-मुहुम-पज्जतापज्ज०-पत्ते०-साधार०-दुस्सर० सिया० अणंतगु०ही० । रदि० णि० ।

संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका भङ्ग जानना चाहिए ।

१५०. सातावेदनीयके उत्कृष्ट श्रदुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रनन्तगुणा हीन होता है। यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१४१. स्त्रीवेदके ए.छ.ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित, पञ्चे निदय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विद्यागिति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। तीन संस्थान, तीन संहनन और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुपवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि दो गित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है।

१५२. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, आसातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, पळ्ळ िन्द्रयजाति, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त विद्वार्थे अति होता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गित, पाँच जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, परवात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विद्वार्थोगिति, त्रस, स्थावर, वादर, सूदम, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। रितका नियमसे वन्ध करता है जो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है तो

तं तु०। एवं रदीए०।

१५३. णिरयायु० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयगदिअहावीस०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०हीणं०।

१५४. तिरिक्लायु० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ल०-पंचिदि०- ओरालि०-तेजा०-क० - समचदु०-ओरालि० ग्रंगो० - वज्जरि०-पसत्यापसत्य०४ - तिरिक्लाणु० - अगु०४-पसत्यवि० - तस४ - सुभग-सुस्सर--आदे०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-अरिद-सोग-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणही० । एवं मणुसायु⁹० । णवरि उच्चा० णि० अणंतगु० ।

१५५. देवायु० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चढुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवगदिसत्तद्दावीसं--उच्चा०--पंचंत० णि० अणंतग्रणहीणं०। आहारदु०-तित्थय० सिया० अणंतग्रणहीणं०।

१५६. णिरयगिद उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

१५३. नरकायुके एकुष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, नरकगित आदि अहाईस अकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनन्तरायो हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है।

१५४. तिर्येख्रायुके एत्हप्ट अनुमागका वन्ध करनेवाला लीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यद्धगति, पद्धोन्द्रियलाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिक श्रांगोपांग, वर्ल्रपमनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुववेद, हास्य, रित, श्ररित, शोक, उद्योत, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, यशःकीर्ति श्रौर श्रयशःकीर्तिका कदाचित वन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार समुष्यायुकी सुख्यतासे स्विकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्यगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है।

१५५. देवायुके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देवगित आदि सत्ताईस या श्रष्टाईस प्रकृतियाँ, रचगीत्र और पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट श्रनन्त-गुणा हीन होता है। श्राहारकद्विक श्रोर तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रनन्त-गुणा हीन होता है।

१५६. नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-

१: ता० त्रा० प्रत्योः मगुनागु० इति पाठः । 🕖

पंचणोक ०-णीचा ०-पंचंत ० णि० । तं तु० छद्टाणपदिदं० । णामपसत्थाणं णिय० अणंत-गुणहीणं । णामअप्पसत्थाणं णाणावरणभंगो । एवं णिरयाणु० । एवं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१४७, मणुस०-मणुसाणु० उ० वं० पंचणा०--छदंसणा०-सादावे०-वारसक०-पंचणोक०--उचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो० । एवं मणुस-गदिपंचगस्स ।

१४८. देवगदि० उ० वं० पंचणा०-चढुदंसणा०--सादा०-चढुसंज०-पंचणोक०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं देवगदिसंजुत्तागं पसत्थाणं णामाणं ।

१५६, वेइं०-तेइंदि०-चदुरिं० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंते० णिय० अगांत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो । णग्गोद० उ० वं० पंचणा०--णवदंसणा०- असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--चदुणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अगांत०ही० । इत्थि०-णवुंस० सिया० अगांत०ही० । णाम०

वरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकां नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। नामकर्मकी प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्त-गुणा हीन होता है। नामकर्मकी अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु यहां नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

१५७. मनुष्यगित श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, उचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मकी प्रकृतियों का भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५८. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार देवगतिसंयुक्त प्रशस्त नामकर्मकी प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

१५६. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति श्रीर चतुरिन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। न्यश्रोधसंस्थानके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, चार नोकपाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट

१. ग्रा॰ प्रतौ० ग्रि॰ पंचंत॰ इति पाठः।

सत्थाणभगो । एवं सादि० । एवं खुज्ज०-वामण० । णवरि णवंस० णियमा अएंत०ही० । चढुसंघ० चढुसंठाणभंगो । असंप० णाणावरणभंगो हेटा उवरि । णाय० सत्थाणभंगो । एवं एइंदि०-थावर० ।

- १६०, आदावि उ० वं वं पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० । सादासाद०-चढुणोक० सिया० अणंत०-ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।
- १६१. उज्जो० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छ०--सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रिद्-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंत०ही०।णाम० सत्याणभंगो ।
- १६२. अप्पसत्थवि०-दुस्सर० ड० वं० हेटा उत्ररि णिरयगदिभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।
 - १६३. सुहुम०-अपज्जत--साधार० उ० वं० पंचणा०--णवदंसणा०--असादौ०-

श्रनन्तगुणा हीन होता है। खीवेद श्रीर नपुंसकवेदका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार स्वाति-संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार कृद्यत श्रीर वामन संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह नपुंसकवेदका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। चार संहननका भंग चार संस्थानके समान है। श्रसम्प्राप्तासृपाटिका संहननका भंग नामकर्मसे पहलेकी श्रीर श्रागेकी प्रकृतियोंकी श्रपेक्षा ज्ञाना-वरणके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार श्रर्थात श्रस-स्प्राप्तासृपाटिका संहननके समान एकेन्द्रिय जाति श्रीर स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

१६०. त्रातप प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुष्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्त-रायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकपायका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

१६१. च्योतके च्त्कृष्ट श्रनुमानका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दराँनावरण, सातावेदनीय, मिण्यात्य, सोलह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, नीचनोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुष्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सित्रकर्पके समान है।

१६२. अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका भन्न नरकगतिके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है।

१६३. सूत्तम, अपर्यात और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला, जीव पाँच

२. ग्रा॰ पती एइंदि॰ ग्रादाय यावर उ॰ वं॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती पंचणा॰ ग्रासादा॰ इति पाठः।

मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०--णीचा०--पंचंत० णिय० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो ।

१६४. णिरएसु आभिणिनो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०--हुंड०-असंप०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उपघा०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० अणंत०ही०। उज्जो० सिया० अणंत०ही०। एवं णाणावरणादि० तं तु० पदिदाओ ताओ अण्ण-मण्णस्स । तं तु० ।

१६५. सादा० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०-ग्रंगो० - वज्जरि० - पसत्थ०४-मणुसाणु० - अगु०३-पसत्थवि० - तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो तं तु० पदिदाणं० ।

ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पांच नोकपाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नाम-कर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है।

१६४. नारिक्यों में श्राभिनियोधिक ज्ञानावरण्के उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण्, नो दर्शनावरण्, श्रमाता वेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगति. हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्पाटिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, रुपयात, श्रप्रशस्त विहायोगिति, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रौर पांच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष्य होता है। पञ्च न्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण्शरीर, श्रौदारिक श्रागोपांग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रगुरुत्वपुत्रिक, श्रमचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु पतित ज्ञानावरणादि जितनी प्रकृतियां हैं उनका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु श्राभिनियोधिक ज्ञानावरण को मुख्य करके जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार तं तु पतित श्रेष सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहना चाहिए।

१६५. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपचात और पांच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तरायणा हीन होता है। मनुष्यगति, पञ्चे न्द्रियजाति, तीन शारीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आंगोपांग, वज्रपेभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि

१६६. सेसं ओघं। णविर तिरिक्तायु० उ० वं० पिच्छ० णि० अणंतगु०ही०। एवं धुवियाणं०। सादासाद० सिया० अणंत०ही०। एवं परियत्तमाणियाओ सव्वाओ सादभंगो। मणुसाउ० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओराहि० छंगो ०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४—मणुसाणु०--अगु०४—पसत्थ०--तस०४—सभग-सुस्सर-आदे०-णिपि०--उच्चा०-पंचंत०णि० अणंत०ही०। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग०-तित्थ० सिया० अणंत०-ही०। चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं०। एवं छसु पुढवीसु। णविर उज्जो० तिरिक्तायुभंगो। सत्तमाए पुरिस०-हस्स-रदि-[चदु-] संठा०-पंचसंघ० उ० वं० तिरिक्ता गदी ध्वं कादव्वं। सेसं णिरयोघं।

१६७. तिरिक्खेसु आभिणिवोधि० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--णिरयग०-हुंड०--अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। पंचिदि०-तिण्णिसरीर-वेडिव्व०-

अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु पतित जितनी प्रकृतियां हैं उनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

१६६. शेव प्रकृतियोंका भंग त्रोचके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यद्वायुके उत्कृष्ट अनुसागका वन्य करनेवाला जीव मिथ्यात्वका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार ध्रुव वन्धवाली प्रकृतियों का जानना चाहिए। सातावेदनीय ख्रीर श्रसातावेदनीयका कदाचित् वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। परिवर्तमान जितनी प्रकृतियाँ हैं उनका इसी प्रकार सातावेदनीयके समान भंग है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभाग का वन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चे न्द्रिय जाति, त्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रौदारिक श्रांगोपांग, वत्रर्पभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थेंद्धर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तर्गुणा हीन होता है। चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भंग त्रोघके समान है। इसी प्रकार प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। सातवीं पृथिवीमें पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और पाँच संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगतिका ध्रुव वन्ध करता है अर्थात् नियमसे बन्ध करता है। शेप सब प्ररूपणा सामान्य नारिकयोंके समान है।

१६% तिर्यक्वोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्य, सोलह कपाय, पांच नोकपाय, नरकगित, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है।

१. ग्रा॰ प्रती तेलाक॰ ग्रोरालि॰ श्रंगो॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती तिण्णियुग॰ सिया॰ इति पाठः ।

त्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस४-णिमि० णि० अणंत०ही०। एत्थ एदाओ तं तु पदिदाओ अण्णमण्णस्स आभिणि०भंगो।

१६८. साद० उ० वं० पंचणा०-छटंसणा०-अद्दक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० | देवगदिसत्तावीस-उचा० णि० | तं तु० | एदाओ सादभंगो | चदुणोक०-चदुआयु० ओघं |

१६६. तिरिक्लग० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलस-क०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत णि० अणंत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं चढुजादि-असंप०-तिरिक्लाणु०-थावरादि४० ।

१७०. मणुसग० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचत० णि० अणंतगु०ही० | सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंत०-ही० | णाम० सत्थाणभंगो | एवं मणुसगदिपंच० | चदुसंठा०--चदुसंघ०--आदाव० ओवं | उज्जो० पढमपुढविभंगो | अथवा वादर-तेउ०-वाउ० उक्कस्सयं करेदि | सन्व-

भागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। पख्चे न्द्रिय जाति, तीन शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहां ये तं तु पितत जितनी प्रकृतियां हैं उनका परस्पर आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके समान भङ्ग है।

१६८. सातावेदनीयके उत्छष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कपाय, पाँच नोकपाय, श्राप्रस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। देवगित श्रादि सत्ताईस प्रकृतियाँ श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। यहां देवगित श्रादि प्रकृतियोंका भंग सातावेदनीयके समान है। चार नोकपाय श्रीर चार श्रायुका भंग श्रोवके समान है।

१६६. तिर्यद्भगितिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार चार जाति, असम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनन, तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१७०. मनुष्यगतिके उत्हृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्हृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकपायका कदाचित वन्य करता है जो अनुत्हृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगति पञ्चककी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन और आतपका भंग छोवके समान है। उद्योतका भंग पहली पृथिवीके समान है। अथवा वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव उत्कृष्ट करते हैं।

१. ता० प्रतौ आदावु० श्रोघं, श्रा० प्रतौ श्रादाउनो० श्रोघं इति पाठः।

विसुद्धा मृलोघो । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ ।

१७१. पंचि०तिरि०अपज्जत्तगेष्ठ आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरि-क्खाणु० - उप० - थावरादि४—-अथिरादिपंच० - णीचा० - पंचंत० णि० । तं तु०। ओराल्टि०--तेजा०-क०--पसत्थ०४—अग्र०--णिमि० णि० अणंत०ही०। एवमेदाओं अण्णोण्णस्स तं तु०।

१७२. सादा० ड० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतग्रणही० । मणुसग०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचढु०-ओरालि०ग्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०--अग्र०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० । तं तु० । एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स । तं तु० ।

१७३. इत्थि० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अप्पसत्थ०-

यदि सर्वे विशुद्ध तिर्येक्च करते हैं तो मूलोयके समान भंग है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्येक्चोंके समान पक्चे न्द्रिय तिर्येक्चित्रकके जानना चाहिए।

१७१. पञ्चे न्द्रिय तिर्ये अपर्याप्तकों में आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। अौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहां तं तु पतित जितनी प्रकृतियां हैं उनकी अपेक्षा परस्पर इसी प्रकार सिन्नकर्प जानना चाहिए।

१७२. सातावेदनीयके उत्हृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पांच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पांच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अन्तरागुणा हीन होता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्चपभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलवुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह दत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यहां तं तु पतित जितनी प्रकृतियां हैं उनकी अपेचा परस्पर जैसा सातावेदनीयकी अपेचा सिन्नकर्ष कहा है उसी प्रकार सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१७३. स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, पञ्च न्द्रिय जाति, औदारिक शारीर, तैजसशारीर, कार्मण- शारीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण्वनुष्क, अप्रशस्त वर्ण्वनुष्क, अप्रशस्त विद्योगिति,

०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०--णिमि०--णीचा०-पंचंत० णिय० अणंतगुणहीणं०। दासाद०--चदुणोक०-दोगदि--तिण्णिसंठा०--तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिरादि-तिण्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं पुरिस०। णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ०।

१७४. हस्स० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु ०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४-थिरादिपंच०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं०। रदी णि०। तं तु०। एवं रदीए०। दोआउँ० णिरयभंगो।

१७५. वेइं ०-तेइं ०-चढुरिं० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णबुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतग्रणही०। सादासाद०-चढुणोक० सिया० अणंतगुणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो।

१७६. चदुसंठा० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छै०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहोणं० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० अणंत-

त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नोकषाय, दो गित, तीन संस्थान, तीन संहनन, दो श्रानुपूर्वी, उद्योत श्रौर स्थिर श्रादि तीन युगलका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहां तीन संस्थान श्रौर तीन संहननके स्थानमें पांच संस्थान श्रौर पाँच संहनन कहने चाहिए।

१७४. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपु सक वेद, भय, जुगुष्मा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। रितका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रित की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। दो आयुओंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष नारिकयोंके समान है।

१७५. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति श्रौर चतुरिन्द्रियजातिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करने-वाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुतकृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय श्रौर चार नोकपायका कदाचित वन्ध करता है जो श्रनुतकृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सित्रकर्षके समान है।

१७६. चार संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो वेद और

१. श्रा॰ प्रतौ सोलसक॰ भयदु॰ इति पाठः। २. ग्रा॰ प्रतौ दोश्रागु॰ इति पाठः। ३. ता॰ प्रतौ एवदस्या॰ मिच्छ० इति पाठः।

१७७, अप्पसत्थ०-दुस्सर० ७० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-भिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दुं०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंतगुणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो। आदाङज्जो० पंचिदियतिरिक्तभंगो। एवं सन्त्रअपज्जत्त-सन्त्रविगलिंदियाणं पुढ०-आड०--वणप्फदिपत्तेय--णियोदाणं च। तेउ०-वाऊणं पि तं चेव। णवरि मणुसायु०-मणुस०-मणुसाणु०-उचा० वज्ज०।

१७८. मणुसेम्र खिवनाणं ओघं । सेसं पंचिदियतिरिक्खभंगो । एवं मणुसपज्जत-मणुसिणीम् ।

१७६. देवेसु आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अथिरादि-

चार नोकषायका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि न्ययोधपरिमण्डल संस्थान और स्वाति संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो वेदका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तथा कुञ्जक संस्थान और वामन संस्थानके उत्कृष्ट अनुभाग का वन्य करनेवाला जीव नपुंसकवेदका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। असम्प्राप्तास्रपादिकासंहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष द्वीन्द्रियजातिके समान है।

१७०० अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकपायका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। आतप और उद्योतकी मुख्यतासे सिन्नकर्प पख्चे न्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है। इसी प्रकार अर्थात् पख्चे न्द्रिय तिर्यक्च अपर्याप्तकोंके समान सव अपर्याप्तक, सव विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पति प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी यही सिन्नकर्प है। इतनी विशेपता है कि इनके मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको छोड़कर सिन्नकर्प कहना चाहिए।

१७८. मनुष्योंमें चपक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। शेष भङ्ग पञ्चीन्द्रय तिर्यक्रोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्यात श्रोर मनुष्यिनियोंके जानना चाहिए।

१७६. देवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र

१. ग्रा॰ प्रती चदुसंघ॰ ग्रप्पस्य॰ वेइंदियभंगो इति पाठः। २. ग्रा॰ प्रती सोलसक॰ भयदु॰ इति पाठः।

पंच-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थावर०-दुस्सर० सिया०।तं तु०। पंचिदि०-ओरालि० ग्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतग्रणहीणं०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-ग्रगु०३-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंत-गुणहीणं। एवं तं तु० पदिदाणं। साददंडओ इत्थि०-पुरिस० णिरयोघभंगो।

१८०. हस्स० उ० ओवं। णविर दोर्गाद-दोजादि-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०-पंचसंव०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पत्थवि०-तस०-थावर०-दुस्सर०सिया० अणंतगुण-हीणं०। इत्थि०-णवुंस० सिया० अणंतगुणहीणं०। रिद० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। एइंदि०-थावर० ओवं। चदुसंठा०-चदुसंघ० ओवं।

१८१. असंप० उ० वं० हेटा उवरि तिरिक्लभंगो। णाम० सत्थाणभंगो।सेसं णिरयभंगो।

१८२. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० आभिणिवोधि० उ० वं० चढुणा०-

श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्क्रष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। एकेन्द्रियजाति, श्रसम्प्राप्तास्ट्रपाटिकासंहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्क्रष्ट श्रनुभाग का भी वन्ध करता है श्रीर श्रनुत्क्रष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्क्रष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। पञ्च न्द्रियजाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रसका कदाचित वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रीदारिकशारीर, तेजसहारीर, कार्मणहारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुत्वधृत्रिक, वादर, पर्याप्त प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रमी प्रकार तं तु पितत प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक, स्त्रीवेद श्रीर पुरुपवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य नारिकयोंके समान है।

१८०. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग श्रोवके समान है। इतनी विशेषता है कि दो गति, दो जाति, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, त्रस, स्थावर श्रौर दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। रितका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है जो वह छह स्थान पितत हानिकृप होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। एकेन्द्रियज्ञाति श्रौर स्थावरकी मुख्यतासे सिन्नकर्प श्रोघके समान है। चार संस्थान श्रौर चार संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्प श्रोघके समान है।

१८१. असम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहत्तनके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। शेष भङ्ग नारिकयोंके समान है।

१८२. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें श्राभिनि-बोधिक ज्ञानावरणके उत्दृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--तिरिवत्त०-एइंदि०-हुंड०-अप्प-सत्य०४-तिरिक्ताणु० -उप०-थावर० - अधिरादिपंच० - णीचा० - पंचंत० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्य०४-अगु०३-वादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंत०-हीणं० । आदाउज्जो० सिया० अणंत०हीणं० । एवमेदाओं तं तु० पदिदाओं एक-मेकस्स । तं तु० ।

१८४. सणक्कुमार याव सहस्सार ति पढमपुढिवभंगो । आणद् याव णवगेवज्ञा त्ति आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-भिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप० अप्पसत्थ०४-उप०अप्पसत्थिव०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-ओरालिझंगो०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-णिमि० णि० अंणंतगुणही० । एवमेदाओ एक्कमेक्कस्स तं तु० ।

श्रसाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्चगित, एकेन्द्रिय जाति. हुण्ड-संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, स्थायर, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीच-गोत्र श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिक्तप होता है। श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रातप श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्त-गुणा हीन होता है। इसी प्रकार यहां जितनी तं तु पितत प्रकृतियां हैं उनकी मुख्यतासे परस्पर उसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए जिस प्रकार श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहा है।

१८३. असम्प्राप्तास्पादिका संहत्तके एत्हृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पृवंकी और आगेकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यक्ष्यगितिके समान है। इतनी विशेषता है कि नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन वन्य करता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह एत्हृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनु-त्हृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनु-त्हृष्ट अनुभागका वन्य करता है। यदि अनु-त्हृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष्य होता है। शेष प्रकृतियोंका मङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

१८४. सनत्तुमारसे लेकर सहस्रार करपतकके देवोंमं पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत करपसे लेकर नो प्रवेचक तकके देवोंमं आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तात्तृणिहका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका नय करता है तो वह छह स्थान पतित हानिह्म होता है। मनुष्यगति, पश्च न्द्रिय जाति, तीन शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुस्त्वधृत्रिक, प्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त वर्णचत्रिक, प्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त वर्णचत्रिक, प्रशस्त वर्णचत्रिक, प्रशस्त वर्णचत्रक, प्रशस्त वर्णचति, वर्णचत्रक, प्रशस्त वर्ण

सेसं सहस्सारभंगो । णवरि मणुसगदि [२] धुवं कादव्वं ।

१८५. अणुदिस याव सन्वद्द ति आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-छढ्ंसणा०असादा०-वारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत णि०।
तं तु०। मणुस०-पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क०-समच ०-ओराहि० ग्रंगो०-वज्जिर०पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग०-सुस्सर०--आदे०-णिमि०उच्ची० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगुणही०। एवं आभिणि०भंगो
अप्पसत्थाणं सन्वाणं। सादादीणं आणदभंगो।

१८६. एइंदिएसु साद० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत णि० अणंत०हीणं०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंत०हीणं०। मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उचा० सिया०। तं तु०। पंचिंदियादिवंधगा णिय० वं०। तं तु०। एवं तं तु० पदिदाणं सञ्चाणं। सेसाणं अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार यहां तं तु पतित जितनी प्रकृतियां हैं उनकी

अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा होन होता है। इसा प्रकार यहा त तु पातत जितना प्रकृतिया है उनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे जैसा कहा है वैसा जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सहस्रार कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति दिकको भ्रुव करना चाहिए।

१८५. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरण्के उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण्, छह दर्शनावरण्, असाता वेदनीय, वारह कषाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पांच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष्प होता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरस्त संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, व्यवंभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण् और उच्चगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दसी प्रकार सव अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान जानना चाहिए। तथा सातादिककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष, आनत करपमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्ष कहा है, उस प्रकारका है।

१८६. एकेन्द्रियों सातावदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पांच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्य करता है। यदि बन्य करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है।

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः गिमि॰ गि॰ उचा॰ इति पाठः।

अप्पज्जत्तभंगो ।

१८७. पंचिदि० - तस०२ - पंचमण० - पंचवचि० - काययोगी० ओघो । ओरालियका० मणुसभंगो। ओरालियमि०आभिणि०दंडओ पंचि०तिरि०अपज्ञ० पहमदंडओ।
साददंडओ तिरिक्लोघो । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-दोआड०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०चदुसंघ०-आदाउज्जो०-पसत्थवि०-दुस्सर० अपज्जत्तभंगो। मणुसग० उ० वं० पंचणा०णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतग्र०ही०।
दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० अणंतग्र०ही०। णाम० सत्थाणभंगो।

१८८. वेडिव्यका०-वेडिव्यिम० देवोघं। उज्जोवं ओघं। आहार०-आहारिम० आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-छदंसणा०--असादावे०--चढुसंज०--पंचणोक०--अप्पसत्थ०४--उप०-अथिर--असुभ०--अजस०--पंचंत० णि०। तं तु०। पसत्थाणं ध्विगाणं णि० अणंतगुणही०।

तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु पितत जितनी प्रकृतियां हैं उन सबकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जैसा सातावेदनीयकी मुख्यतासे कहा है वैसा जानना चाहिए। शेप प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प अपर्याप्तक जीवोंके समान है। अर्थात् पहले जिस प्रकार अपर्याप्तक जीवोंके सिन्नकर्प कह आये हैं उस प्रकार यहां शेप प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

१८७. पख्ने न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी ख्रीर काययोगी जीवोंका मङ्ग ख्रोघके समान है। ख्रोदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान मङ्ग है। ख्रोदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें ख्रामिनिवोधिक ज्ञानावरण ख्रादि श्रथम दण्डककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष पद्धे-न्द्रिय तिर्थे ख्र अपर्याप्तकोंके प्रथम दण्डकके समान है। सातावेदनीयदण्डककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य तिर्थे ख्रोंके समान है। ख्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, दो ख्रायु, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, ख्रातप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित ख्रीर दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्प ख्रप-र्याप्तकोंके समान है। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट ख्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र ख्रोर पाँच ब्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो खनुतकृष्ट ख्रनन्तगुणा हीन होता है। दो वेदनीय ख्रोर चार नोकपायका कदाचित वन्ध करता है जो खनुतकृष्ट ख्रनन्तगुणा होन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है।

१८८. वैकियिककाययोगी और वैकियिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें सत्र प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंके समान है। उद्योत प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोयके समान है। श्राहारककाययोगी और श्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्राह्मागका वन्य करनेवाला जोव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रासतावेदनीय, चार संज्ञलन, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात, श्रस्थिर, श्रश्चभ, श्रयशाकीर्ति और पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्राहत्त्रप्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। प्रशस्त ध्रुव प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है।

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः श्रोगितियमि॰ त्रामिणियो॰ उ० वं॰, एवं श्रामिणिदंडश्रो इति पाठः। २. श्रा॰ प्रतौ -दंडश्रो तिरिक्खोघो इति पाठः।

१८६. सादा० उ० वं० अप्पसत्थाणं णि० अणंतगु०। देवगदिपसत्थद्वावीसं उचा० णि०। तं तु०। तित्थकरं सिया०। तं तु०। एवं पसत्थाणं एकमेकस्स तं तु०।

१६०. हस्स० उ० वं० धुवियाणं अप्पसत्थाणं असाद०-अधिर-असुभ-अजस० णि० अणंतगु०ही० । सेसाणं पि णि० अणंतगुण०ही० । रदि० णि० । तं तु० । एवं रदीए० ।

१६१. कम्मइगका० आभिणियो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ० - सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख० - हुंड०-अप्पसत्थ०४ - तिरिक्खाणु० - उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थाव-रादि०४ - दुस्सर० सिया० । तं तु० । पंचि०-ओरालि० अंगो०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगु०ही० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४ - अगु०-

१६६. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव अप्रशस्त प्रकृतियों का नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। देवगित आदि प्रशस्त अहाईस प्रकृतियाँ और उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियों में मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष कहना चाहिए जो सातावेदनीयकी मुख्यतासे जैसा कहा है उसी प्रकारका है।

१६०. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव श्रप्रशस्त ध्रुव प्रकृतियाँ, श्रमातावेदनीय, श्रास्थर, श्रमुभ श्रीर श्रयशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे वन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। रितका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिक्य होता है। इसी प्रकार अर्थात् हास्यके समान रितकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१६१. कार्मणकाययोगी जीवोमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तियञ्जगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच. नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे चन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है जो यह अतुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिह्म होता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार और दुःस्वरका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिह्म होता है। पञ्च निद्रयज्ञाति, औदारिक आङ्गोपङ्ग, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और असचतुष्कका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। औदारिक

णिमि० णि० अणंतगु०ही० । एवं तं तु० पदिदाओ सन्वाओ !

१६२. साद० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०--वारसक०--अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही०। दोगदि-दोसरीर-दोझंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० तं तु०। पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उचा० णि०। तं तु०। एवं तं तु० पदिदाओ सन्वाओ। इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघो।

१६३. इत्थिवेदेसु आभिणिशो० उ० वं० चढुणा०--णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। णिरयग०-तिरिवल०-एइंदि०-दोआणु०-अप्पसत्थिवि०-धावर-दुस्सर० सिया० तं तु०। पंचिं०-दोसरीर-वेडिव्व० ग्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगु०-

शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरूलघु श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ठ श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं उनकी मुख्यतासे सन्निकर्प श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्पके समान जानना चाहिए।

१६२. सातावेदनीयके उत्हृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा होन होता है। दो गित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभन्नाराच सहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिक्ष होता है। पर्छोन्द्रय जाति, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरक्त संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरु-लयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। अनित्कृष अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत हानिक्ष होता है। इसी प्रकार तं तु पितत सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। स्तिवेद, पुरुप्वेद, हास्य, रित, तीन जाति, चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष ओयके समान है।

१६३. स्रीवेदी तीवोंमें आमितिवोधिक ज्ञानावरएके उत्तृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, नो दर्शनावरए, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पांच नोकपाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चार, उपघात, अस्थिर आदि पांच, नीचगोत्र और पांच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। नरकगित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है अरेर अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः दोश्राग्रु॰ दुवि॰ श्रप्पस्त्यवि॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ सिया॰ पंचि॰ इति पाठः ।

ही० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंत०ही० । एवं तं तु० पदिदाणं अण्णमण्णस्स । तं तु० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि--चदुआउ०-मणुसगदिपंच०-सादादिखविगाणं तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुंसंघ०-मुहुम०-अपज्ज०-साहा० ओघं ।

१९४. णिरय० उक्क० वं० ओघं। एवं णिरयाणु०--अप्पसत्थवि०-दुस्सर०। तिरिक्ति० ड० वं० हेटा उवर्रि एइंदियसंजुत्ताओ सोधम्मपदमदंडओ।

१६५. असंप० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०३-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि० अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-तस०-वादर-पत्ते०--अथिरादिपंच०--णिमि० णीचा० पंचंते० णि० अणंत-गुणही० । पंचिं०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-पज्जतापज्ज० सिया० अणंतगु०-ही० । वेई० सिया० । तं तु० ।

छह स्थान पितत हानिरूप होता है। पछ्छे न्द्रिय जाति, दो शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु पितत जितनी प्रकृतियां है उनकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष जिस प्रकार आभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहा है उस प्रकार जानना चाहिए। स्नीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, चार आयु, मनुष्यगि क, सातावेदनीय आदि क्षपक प्रकृतियाँ, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सूद्म, अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोघके समान है।

१६४. नरकगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवके सब प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष श्रोधके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रीर दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। तिर्यञ्चगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर वादकी एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सौधर्मकल्पके प्रथम दण्डकके समान है।

१६५. श्रसम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहननके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पांच ह्रानावरण, नो दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति- त्रिक, श्रोदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त विद्यागित श्रीर पांच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। पश्च निद्रयज्ञाति, पर्यात, उच्छ्वास, उद्योत, श्रप्रशस्त विद्यागेगति, पर्याप्त श्रीर श्रप्रयाप्तका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है।

१ त्रा० प्रतौ० गिमि० गि० पंचंत० इति पाठः।

१६६. पुरिसेम्र ओघो । णवरि उन्नोवं देवोघं ।

१६७. णवुंस० आभिणिवो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक-०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया०। तं तु०। पंचि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णियमा अणंतगु०। दोसरीर-दोश्रंगो०-उज्जो० सिया० अणंत०ही०। णिर्यग० ओघं।

१६८. तिरिक्ख॰ ड॰ वं॰ असंपत्त०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर० णि॰।तंतु०। पंचि०-ओरालि० ग्रंगो०-तस०४ णि० अणंत०ही०।

१६६. एइंदि० उ० वं० थावरादि०४ णि०। तं तु०। एवं थावरादि०४। सेसं ओघं।

२००. अवगद्वे० आभिणिवो० ७० वं० चढुणा०--चढुदंसणा०--चढुसंजै०-

१८६. पुरुववेदी जीवोंमें स्रोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतकी मुख्यतासे सिनकर्ष सामान्य देवोंके समान है।

१६७. नपुं सकवेदी जीवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गित, असम्भातास्पादिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अमुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पख्च निद्रयज्ञाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अमुक्तपुत्रिक, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपङ्ग और उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नरकगितकी मुख्यतासे सिन्नकर्प औपके समान है।

१६८. तिर्यञ्चगतिके च्ट्हप्ट श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चे न्द्रियज्ञाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसचतुष्कका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणाहीन होता है।

१६६. एकेन्द्रियजातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव स्थावर आदि चारका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो यह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। शेष भङ्ग आधिके समान है।

२००. श्रपगतवेदी जीवोंमें श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला

२. आ॰ प्रतौ चढुगा॰ चढुमंज॰ इति पाउः हि

पंचंत० णि० उक्क० । साद०-जस०-उच्चा० णि० अणंतग्र०ही० । एवं अप्पसत्याणं । साद०-जस०-उच्चा० ओघो । एवं सुहुमसंप० । कोधादि०४ ओघो । णविर साद०-जस०-उच्चा० उ० वं० पंचणा०-चढुदंसणा०-चढुसंज०-पंचंत० णि० अणंतग्र० । माणे तिण्णिसंजल० णि० अणंतग्र०ही० । मायाए दोसंज० णि० अणंतग्र०ही० । लोभे ओघं ।

२०१. मिद्दि अधि आभिणि व्हंडओ ओघो । साद्दंडओ ओघो । णविर पंचणा - णवदंसणा - मिच्छ - सोलसक - पंचणोक - अपसत्थ ०४ - उप - पंचंत ० णि ० अणंतगु ० । देवगदिसं जुताओ याव जस ० - उचा ० गोद त्ति णि ० । तं तु ० । सेसं ओघं । एवं विभंगे ।

२०२, आभिणि०--मुद्द० -ओधि० आभिणि० उ० वं० चढुणा०-छदंसणा-० [असाद०--वारसक०-पुरिसवे०-अरिद०-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-] उप०-अथिर -अमुभ-अजस०-पंचंत० णि०। तं तु०। दोगदि-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरि०-

वीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्ञवल श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे उत्हृष्ट श्रनुमागवन्य करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार श्रप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोघके समान है। इसी प्रकार सूच्मसाम्परायिक संयत जीवोंके जानना चाहिए। क्रोध श्रादि चार कपायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशः कीर्ति श्रीर उचगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुमागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्ञवल श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। मानमें तीन संज्ञवलनका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। मायामें दो संज्ञवलनका नियमसे वन्ध होता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रीघके समान भन्न है।

२०१. मत्यज्ञानी श्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग श्रोधके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि यह पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, श्राशस्त वर्णचतुष्क, उपधात श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रन्तत्तगुणा हीन होता है। देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंसे लेकर यशाःकीर्ति श्रीर उचगोत्र तककी प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिकृष होता है। श्रेष भङ्ग श्रोधके समान है। इसी प्रकार श्रयांत् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

२०२. श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रोर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें श्राभिनियोधिक ज्ञाना-वरणके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, वारह कपाय, पुरुववेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रस्थिर, श्रिशुभ, श्रयशःकीर्ति श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गित, दो शारीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, वश्रपंभ-

१. ता० प्रतौ एवं विभंगे श्राभिणि० उ० वं० चटुणा० छुदँस० उप० श्रीथ० इति पाठः।

दोआणु०--तित्थ० सिया० अणंतगु०ही० । पंचि०-तेजा०-क०--समचढु०--पसत्थ०४--अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-सुभगं-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उचा० णि० अणंतगु०ही० । एवं अप्पसत्थाणं उक्कस्ससंकिलिहाणं ।

२०३. हस्स० उक्क० वं०'पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिदि०--तेजा०--क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थवि॰-तस०४--अथिर-अग्नुभ-ग्नुभग-ग्रुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। रिद० णि०। तं तु०। दोगिद-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगु०ही०। एवं रदीए०।

२०४. मणुसाउ० देवोघ । सादादीणं खिवगाणं देवाउ० मणुसगिद्वंचगस्स य अधो । एवं आभिणि०भंगो ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम० । मणपज्ज० आभिणि०भंगो । णविर असंजदपगदीओ वज्ज । एवं संजद-सामाइय-च्छेदो०-परिहार० । संजदासंज० आभिणि०दंडओ साददंडओ ओधि०भंगो । णविर संजदासंजदपगदीओ

नाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पञ्चे न्द्रियजाति, तैजस शारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्तसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुन्निक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट वन्धको प्राप्त होनेवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए।

२०३. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रियज्ञाति, तेजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरल संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, अस्थिर, अञ्चम, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। विहन्तु उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वअर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२०४. मनुष्यायुक्ती मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीय आदि खपक प्रकृतियाँ, देवायु और मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सिन्निकर्ष ओयके समान है। इसी प्रकार आभिनिवोधिक ज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदग-सम्यग्दृष्टि और उपरामसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका भङ्ग आभिनिवोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतोंके वँधनेवाली प्रकृतियोंको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहार-विशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरण दण्डक और सातावेदनीय दण्डक अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि संयतासंयत प्रकृतियोंको

१. ता० पती तस० सुम० इति पाठः ।

धुविगाओ काद्व्वाओ । सेसं ओघो । असंजदेसु मदि०भंगो । णवरि असंजदसम्मादिहि-पगदीओ णाद्व्याओ । चक्खु०-अचक्खु० ओघभंगो ।

२०५. किण्णाए आभिणि०दंडओ णवुंसगभंगो। साददंडओ णिरयभंगो। चंदुआए० ओघं। णविर देवार्ड० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०--सादा०--वारसक०-पंचणोक०--देवगदिअहावीस-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगु०। अथवा मिच्छादिही यदि करेदि तो मिच्छादिहिपगदीओ सम्मादिहि-पगदीओ विं णाद्व्वाओ।

२०६. देवगदि० उ० वं० पंचणा०-छदंस०-साद०-वारसक०-पंचणोक०-पंचिदि-यादिपसत्थाओ-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०ही०। वेउन्वि०-वेउन्वि० त्रंगो ०-देवाणुपुन्वि० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एव देवगदिभंगो वेउन्वि०-वेउन्वि० ो०-देवाणु०-तित्थ०। तिरिक्ख०-एइंदि० णवुंसगभंगो। सेसं ओघं।

२०७, णील-काऊणं आभिणि०दंडओ साददंडओ णिरयभंगो । इत्थि०-पुरिस०-

ध्रुव करना चाहिए। रोप भङ्ग श्रोवके समान है। श्रसंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विरोपता है कि श्रसंयतसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। चज्जुदर्शनी श्रोर श्रचजुदर्शनी जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है।

२०५. कृष्णलेश्यामें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डक नपुंसकोंके समान जानना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक नारिकयोंके समान जानना चाहिए। चार श्रायुत्रोंका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट श्रमागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकपाय. देवगित श्रादि श्रष्टाईस प्रकृतियाँ, ज्ञम्गोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थ- क्रुर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। श्रथवा मिध्यादृष्टि यदि करता है तो मिथ्यादृष्टि प्रकृतियाँ श्रोर सम्यग्दृष्टि प्रकृतियाँ भी जाननी चाहिए।

२०६. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, सातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकपाय. पञ्च न्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ, निर्माण, उच्चगोत्र, और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। विक्रियिकशरीर, विक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार देवगतिके समान वैक्रियिकशरीर, विक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्थेक्चगित और एकेन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष नपुंसक जीवोंके समान है। शेप भङ्ग ओष्के समान है।

२०७. नील और कापोतलेश्यामें आभिनिवोधिक ज्ञानावरण दण्डक और सातावेदनीय

१. आ॰ पती मिन्छादिहिपगदीश्रो वि इति पाठः। २. आ॰ पती श्रणंतगु॰ही॰। चैडिन्ब॰ श्रंगो॰ इति पाठः।

हस्स-रिद्-चहुसंटा०-चहुसंघ०-उज्जो० णिरयभंगो । चहुआउ० ओघं । णविर देवाउ० उ० वं० पंचणा०--छदंसणा०-साद०-वारसक०--पंचणोक०--देवगिदअहावीस-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० । तित्थ० सिया० अणंतगुणही० । अथवा पुण मिच्छा-दिहिस्स पि होदि तदो णाद्व्या विभासा । णिरयगिद० उ० वं० णिरयाणु० णि० । तं तु० । सेसाओ णि० अणंतगु० । एवं णिरयाणु० । देवगिदि४--तित्थय० किण्ण०-भंगो । चहुजादि-आदाव--थावरादि०४ णवंसगभंगो । उज्जोवं पढमपुढविभंगो । काऊए तित्थ० णिरयभंगो ।

२०८. तेऊए आभिणि०दंडओ सोधम्मभंगो। साददंडओ परिहार०भंगो। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद--दोआड०--चदुसंठा०--पंचसंघ० सोधम्मभंगो। देवाड० ओघो। मणुसगदिपंचगं ओघं। एवं पम्माए वि। णवरि अप्पसत्थाणं सहस्सारभंगो णादन्वो। सुक्काए आभिणि० ं ओ इत्थि०--पुरिस०--हस्स-रिद-मणुसाड०--चदुसंठा०-चदुसंघ० आणदभंगो। सेसं ओघं।

२०६, भवसि० ओघं। अब्भवसि० आभिणि०दंडओ ओघं। साद० उ० वं० पंचणा०- णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचत० णि०

दण्डकका भङ्ग नारिकयों के समान है। खीचेद, पुरुषचेद, हास्य, रित, चार, संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भङ्ग नारिकयों के समान है। चार श्रायुका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, देवगित श्रादि श्रमुहंस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच श्रम्त-रायका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। त्रीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। श्रयवा यदि मिथ्यादृष्टिके भी होता है तो विकल्प जानना चाहिए। नरकगतिके उत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करते है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभाग का भी वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभाग का भी वन्य करता है। विवाद श्रमुभाग का भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानि-रूप होता है। श्रेप प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानि-रूप होता है। श्रेप प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्निकर्प कुष्णलेश्याके समान है। चार जाति, श्रातप श्रोर स्थावर श्रादि चारकी मुख्यतासे सिन्निकर्प नहली प्रथिवीके समान है। कापोतलेश्यामें वीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्निकर्प पहली प्रथिवीके समान है। कापोतलेश्यामें वीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्निकर्प नारिकर्यों समान है।

२०८. पीत लेखामें आभिनियोधिक ज्ञानावरण दण्डकका अङ्ग सौधर्म करपके समान है। सातावेदनीयदण्डकका अङ्ग परिहारिवशुद्धसंयत जीवोंके समान है। स्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, हो आयु, चार संस्थान और पाँच संहननका भङ्ग सौधर्म करपके समान है। देवायुका भङ्ग आधके समान है। मनुष्यगित पद्धकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेख्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार करपके समान है। शुक्तलेख्यामें आभिनियोधिकज्ञानावरणदण्डक, स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, मनुष्यायु, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग आनत करपके समान है। शेप भङ्ग आयके समान है।

२०६. भन्य जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। श्रभन्य जीवोंमें श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरण दण्डक श्रोघके समान है। सातावेदनीयके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण अणंतगु० । तिरिक्तव०--तिरिक्त्वाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु० । मणुसगदिपंचग-देवगदि४-जज्जो ०-ज्जा० सिया० । तं तु० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०[४-] अगु० ३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० । तं तु० । एवं ज्जागोदं पि । णवरि तिरिक्त्यसंजुत्तं वज्ज ।

२१०. मणुस-देवगदि० उ० वं० पसत्थाणं णि० | तं तु० | अप्पसत्थाणं अणंत-गु०ही० | एवं मणुसाणु०-देवगदि०४ |

२११. ओरात्ति० उ० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु०। मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जो० सिया०। तं तु०। सेसं मणुसगदिभंगो। एवं ओरालि०-श्रंगो०-वज्जरि०। एवं उज्जो०। सेसं ओघो।

२१२. सासणे आभिणि० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-सोलसक०-

नी दर्शनावरण, मिथ्याव, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका कदाचित वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगतिपञ्चक, देवगति चतुष्क, उद्योत श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह चत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्च निद्रयजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह चत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह चतुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। वान वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार उच्चगोत्रकी मुख्यतासे भी सिक्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिसंयुक्त प्रकृतियोंको छोड़कर सिक्नकर्प कहना चाहिए।

२१०. मनुष्यगित श्रीर देवगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है। वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुण्हीन वन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर देवगितचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२११. श्रोदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रनुभागका चन्ध करनेवाला जीव तिर्ये श्राति, तिर्ये श्रात्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्रका कदाचित चन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रोर उद्योतका कदाचित चन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी चन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी चन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिकृप होता है। श्रेप भङ्ग मनुष्यगतिक समान है। इसी प्रकार श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर चल्रवभनाराच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। श्रेप भङ्ग ओधके समान है।

२१२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें त्र्याभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट त्र्रानुभागका वन्ध

१. ग्रा॰ प्रतौ श्रप्पसत्य४ उज्जो॰ इति :।

इत्थि०--अरिद्--सोग-भय--दुगुं०--तिरिक्ख०--नामण०-खीलिय०--अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु०-उप० अप्पसत्थिव-अथिरादिञ्च०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०--क०--ओरालि०ग्रंगो०--पसत्थ०४-अगु०२-तस०४-णिमि० णी० अणंतगु०ही०। उज्जोवं सिया० अणंतगु०। एवं तं तु० पदिदाणं।

२१३. साद० उ० वं० तिरिक्त०-तिरिक्ताणु०-णीचा० सिया० अणंतर्गु० । दोगिद-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरिस०-दोआणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० । तं तु० । पंचणाणावरणादिअप्पसत्थाणं णिय० अणंतर्गु० । पंचिदियादिपसत्थाणं णि० । तं तु० । इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रिद्-तिण्णिआउ-तिण्णिसंद्या०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० ओदं। सेसाणं कम्माणं हेद्याँ उवरिं सादभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

२१४. सम्मामिच्छादिद्दी० आभिणि०भंगो । मिच्छादिद्दी० मदि०भंगो । ओराह्मि० ड० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतग्रणही०। मणुसगदि-

करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, सोलह कपाय, खीवेद, श्ररति, शोक, भय, जुगुप्सा, तियं त्राति, वामन संस्थान, कीलक संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुप्क, तिर्यञ्चन्त्यातुपूर्वी, उपवात, श्रप्रशस्त विहायोगिति, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्हृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करता है जो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चोन्द्रय जाति, श्रोदारिक शारीर, तेजस शरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राह्मेपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् वन्य करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२१३. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानु-पूर्वी और नीचगोत्रका कराचित् वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो गति, दो रारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वअर्पभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कराचित् वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। वा आनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है। वा आनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पञ्चित्रय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। स्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, तीन आयु, तीन संस्थान, तीन संहनन और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। शेप कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वको और वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वायान सिन्नकर्पके समान है।

२१४. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानी जीवोंके समान मङ्ग है। मिथ्या-दृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। किन्तु औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् वन्य करता

रे. श्रा॰ प्रतौ तिस्वितागु॰ ग्रणंतगु॰ इति पाठः। २. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः सेसागं गामागं हेटा इति पाठः।

उज्जोवं सिया । तं तुं ० । ओराहि० श्रंगो०-वज्जरि० णि० । तं तु० । सेसाओ पसत्याओ णि० अणंतगु० । एवं ओराहिश्रंगो०-वज्जरि० ।

२१५. सिण्ण० ओघं। असण्णी० तिरिक्खोघो। साददंडओ मदि०भंगो। आहार० ओघं। अणाहार० कम्गइंग०भंगो।

एवं उकस्सं सम्मत्तं।

२१६. जहण्णपरत्थाणसिण्णियासे पगदं। दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० आभिणि० जह० अणुभागं वंधंतो चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० वं० जहण्णा। साद०-जस०-उच्चा० णि० वं० णि० अजहण्णं अणंतगुणव्भिह्यं वंधदि। एवं चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत०।

२१७. णिदाणिदाए जहण्णं वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-वारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०--देवगदि-पंचिदि०-वेडिव्य०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडिव्य०श्रंगो०-पसत्यापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि०- उच्चाँ०-

है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगित और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है आरे अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पित हानिरूप होता है। औदारिक आङ्गोपाङ और वज्जपभनाराच संहननका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ और वज्जपभनाराच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२१५. सिज्ञयोंमें श्रोयके समान भङ्ग है। श्रसंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यख्रोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयदण्डक मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें श्रोषके समान भङ्ग है। श्रमाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुन्ना।

२१६. जघन्य परस्थान सिन्नकर्षका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओव और आदेश। श्रोचसे आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागका नियमसे वन्य करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ज्ञानना चाहिए।

२१७ निद्रानिद्राके नघन्य श्रतुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, सातावेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्च निद्रयज्ञाति, विक्रियिक शरीर, तैनस शरीर, कामंणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस-चतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, एच्चगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो

े १. ता० प्रती उनोवं तं तु० इति पाठः। २. श्रा• प्रती शिमि० शि० उचा० इति पाठः।

पंचंत०-णि०वं० णि० अज० अणंतगु०। पचलापचला-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि०। तं तु०। छहाणपदिदं वं० अणंतभागव्भिह्यं वा ५। एवं पचलापचला०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

२१८. णिहाए ज० वं० पंचणा०-चढुदंस०-सादा०-चढुसंज०-पंचणोक०-णामाणि णिहाणिहाए भंगो । उच्चा०-पंचंत० [णि०] अणंतग्रणन्भ० । पचला० णि० । तं तु० छट्टाणपदिदं० । आहारदुग-तित्थ० सिया० अणंतग्रणन्भ० । एवं पचला० ।

२१६. साद० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्या- पसत्य०४—अगु०--छप०--णिमि०--पंचंत० णिय० अणंतगुणव्भ० । थीणगिद्धिर् मिच्छ०-वारसक०--सत्तणोक०--तिरिक्ख०-पंचिदि०--दोसरीर-दोश्रंगो०-तिरिक्खणु०- पर०-छस्सा०-आदाङ्जो०-तस०४--तित्थ०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ० । तिण्णि- आछ-दोगदि-चढुजादि-छरसंठा०-छरसंघ०-दोआणु०-दोविहा०--थिरादिछयुग०-छचा०

नियमसे अनवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिध्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। अर्थात् वह अवचन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजवन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप वन्य करता है। अर्थात् या तो अनन्तभागवृद्धिरूप या असंख्यातभागवृद्धिरूप, संख्यातगुणवृद्धिरूप, असंख्यातगुणवृद्धिरूप या अनन्तगुण-वृद्धिरूप वन्य करता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिध्यात्व, और अनन्तानुवन्धी चार की मुख्यतासे सित्रकर्ष जानना चाहिए।

२१८. निद्राके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय और नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग निद्रानिद्राके समान है। उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है खौर अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२५६. सातावेदनीयके जधन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, वारह कपाय, सात नोकपाय, तियें अग्रति, पञ्चों निर्में जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्ये अगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, असचतुष्क, तीर्थे द्धर और नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, दो गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है । विह्न अज्ञघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। विह्न अज्ञघन्य अनुभागका वन्ध करता है। वह अज्ञघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक होता है। इसी प्रकार

सिया । तं तु । एवं असाद ०-अथिर-असुभ-अजस । णवरि णिरयाणु-णिरयगिद-देवगदि-दोआणु ० सिया ० । तं तु ० । देवाउ ० वज्ज ।

२२०, अपचक्ला० कोध० ज० वं० तिण्णि क०। तं तु०। सेसं णिदाए भंगो। णवरि अहकसायं भाणिदव्वं । एवं तिण्णं क०।

२२१. पचक्लाणकोध० ज० वं० तिण्णि क० णि० । तं तु० । सेसं णिद्दाए भंगो । एवं तिण्णिं क० ।

२२२, कोधसंज० ज०वं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-तिण्णिसंज०-जसिग०-उचा०-पंचंत०णि अणंतगुणव्भ०। माणसंज० ज०वं० दोसंज०णि० अणंतगुणव्भ०। सेसं० कोधभंगो। मायसंज० ज०वं लोभसंज०णि० अणंतगुणव्भ०। सेसं माणभंगो। लोभ-संज०ज०व०पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०जस०-उचा०-पंचंत०णि० अणंतगुणव्भ०।

२२३, इत्थि० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-

श्रसातावेदनीय, श्रस्थिर, श्रशुभ श्रीर श्रयशाःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्षं जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नरकायु, नरकगित, देवगित श्रीर दो श्रानुपूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है । यदि वन्ध करता है तो जवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मात्र देवायुको छोड़कर इन श्रसातावेदनीय श्रादिकी मुख्यतासे यह सन्निकर्ष कहना चाहिए।

२२०. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तीन कपायोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग निद्राके समान है। इतनी विशेपता है कि आठ कपाय कहलाना चाहिए। इसी प्रकार तीन कपायोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२२१. प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तीन कपायोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप भङ्ग निद्राप्रकृतिके समान है। इसी प्रकार तीन कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२२. क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो संज्वलनका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेप भङ्ग क्रोध संज्वलनके समान है। मायासंज्वलनके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव लोभ संज्वलनका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेप भङ्ग मान संज्वलनके समान है। लोभ संज्वलनके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२३. स्त्रीवेदके जघन्य श्रानुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

१. ता॰ प्रती मणिद्व्यं इति पाठः।

पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिम०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। सादासाद०-चदुणोक०-तिण्णिगदि-दोसरीर-तिण्णिसंद्य०-तिण्णिशंप०-तिण्णिश्राणु०-उज्जो०--थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-णीचुचागो० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं णवुंस०। णवरि पंचसंद्या०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुणव्भ०।

२२४. पुरिस० ज० वं० कोधसंजलणभंगो। णविर चढुसंज० णि० अणंतगुणन्भ०। २२५. हस्स० ज० वं० पंचणा०-चढुदंसणा०-सादी०-चढुसंज०-पुरिस०-जस०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणन्भ०। रदि-भय-दु० णियमा। तं तु०। एवं रदि-

भय-दु० ।
२२६. अरदि० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पसत्यद्वावीस-ज्ञा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । तित्थ० सिया० अणंत-गुणव्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

सिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, तीन गिति, दो शरीर, तीन संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, तीन संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशः-कीर्ति, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२४. पुरुपवेदके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवका भङ्ग क्रोध संज्वलनके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे वन्ध करता है जो अजहान्य धनन्तगुणा अधिक होता है।

२२५. हास्यप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उचगात्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। आदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह अह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२२६. अरितके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावदनीय, चार संव्यलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित आदि अशस्त अष्टाईस प्रकृतियाँ, एवगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थंद्धर प्रकृतिका कदाचित वन्ध करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जबन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अज्ञवन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज्ञधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिर होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

१. श्रा० प्रतौ पंचणा० सादा० इति पाठः।

२२७. णिरयाड॰ ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-पंचि॰-वेडिव्व०-तेजा०--क०--वेडिव्व०द्यंगो०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४- ०४-णिमिं०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । असाद०-णिरय०-हुंड०-णिरयाणु०-अपसत्थवि०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० । एवं णिरयगदि-णिरयाणु० ।

२२ द्र. तिरिक्लाउ० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-तिरिक्ल०-ओरालि०-नेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०३—उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुण०भ०। सादासा०-चदुजादि-असंप०-थावर-मुहुम-साधार० सिया०। तं तु०। चदुणोक०-पंचि०-ओरालि० श्रंगो०-तस०-वादर-पत्ते० सिया० अणंतगुण०भ०। हुंड०-अपज्ज०-अथिरादिपंच० णि०। तं तु०। मणुसाउ० ज० तिरिक्लाउ०भंगो । णविर मणुस०-हुंड०-असंप०-मणुसाणु०-अपज्ज०-अथिरादिपंच णि०। तं तु०।

२२७. नरकायुके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, पञ्चे न्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसम्चतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्त-गुणा अधिक होता है। असातावेदनीय, नरकगित, हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। विक्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार नरकगित और नरकगत्यानुपूर्वी की मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२२८ तिर्यक्रायुके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यक्रगति औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघृत्रिक, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार जाति, असम्प्राप्तास्तपाटिका संहनन, स्थावर, सूच्म और साधारणका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार नोकपाय, पञ्चोन्द्रय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, त्रस, बादर और प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड संस्थान, अपर्यात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है जो यह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चिद अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगित, हुण्डसंथान, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अपर्याप्त और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है कि मनुष्यगति,

१. त्रा॰ प्रतौ तस॰ णिमि॰ इति पाठः। २. त्रा॰ प्रतौ पत्ते॰ त्र्यांतगुण्डम॰ इति पाठः। ३. त्रा॰ प्रतौ मणुसाउ॰ उ॰ तिरिक्लभंगो इति पाठः।

२२६. देवाड० ज० वं पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचि०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-वेडिव्व०त्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचेत० णिय० अणंतगुणव्य० । सादी०-देवग०-समचदु०--देवाणु०--पसत्थवि०-थिरादिछ०-उचा० णि० । तं तु० । इत्थि०-पुरिस० सिया० अणंतगुणव्य० ।

२३०. तिरिक्ख० ज० वं० पंचणा०--णवदंस०--सादा०-मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। णीचा०। तं तु०। एवं तिरिक्खाणु०-णीचा०।

२३१. मणुस० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-मणुसाउ०-इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिइयुग०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-पर०-उस्सा०-पज्ज०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ० । पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० अंगो-पसत्था-

भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धि-रूप होता है।

२२६. देवायुके तथन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रियजाति, वैक्रियिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस्च चतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, देवगति, समचतुरहासंस्थान, देवगत्यातुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि छह और उच्चेगत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। खीवेद और पुरुषवेदका कदाचित् वन्य करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२३०. तिर्येख्यगितके जघन्य अनुभागका यन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्य, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। नीचगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यद्धनत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२३१. मनुष्यगितके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, सिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुष्सा, और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, अपर्याप्त, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह ज्ञचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अज्ञचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोक्याय, परधात, उच्छ्वास, पर्याप्त और नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चे न्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

१. श्रा॰ प्रती चादाचाद॰ इति पाठः।

पसत्थ०४-अगु०-उप०-तस्०-वाद्र-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ०। मणुसाणु० णि०। तं तु०। एवं मणुसाणु०।

२३२. देवगिदै० ज० वं पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंते० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-देवाड० सिया० । तं तु० । इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रिद-अरिद-सोग० सिया० अणंतगुणव्भ० । उच्चा० णि० । तं तु० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं देवाणु० ।

२३३. एइंदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय०-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-तिरिक्त्वाच० सिया० । तं तु० । हस्स-रिद-अरिद-सोग० सिया० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं वेइं०-तेइं०-चदुरिं० हेटा उवरिं एइंदियभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुत्वयु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्वेक श्रीर निर्माणका नियमसे वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। मनुष्य-गत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३२. देवगतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञ घन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और देवायुका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजवन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित चृद्धिरूप होता है। स्निवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, अरित और शोकका कदाचित् वन्य करता है जो अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञ घन्य अनुभागका वन्य करता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२३३: एकेन्द्रिय जातिके जधन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, और तिर्यञ्चायुका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। हास्य, रित, अरित और शोकका कदाचित् वन्ध करता है तो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके न है। इसी प्रकार द्वीन्द्रियज्ञाति, जीन्द्रियज्ञाति और चतुरिन्द्रिय ज्ञातिकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और वादकी प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष एकेन्द्रिय ज्ञातिके समान है तथा नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है।

१. ता॰ प्रतौ एवं मणुसाग्तु॰ । णि॰ तं तु॰ एवं मग्तु॰ [एतचिन्हान्तर्गतः पाठोऽधिकः प्रतीयते ।] देवगदि॰, श्रा॰ प्रतौ एवं मग्रुसग्रु॰ णि॰ तं तु॰ एवं मग्तुस॰ देवगदि॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ सोलसक॰ ण्वुंस॰ मयदु॰ णीचा॰ पंचंत॰ इति पाठः ।

२३४. पंचिदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं तस० ।

२३५. ओरालि० जं० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-पीचा०-पंचत० णि० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं उज्जो० ।

२३६. वेडिव्व० ज० वं० हेटा उविर पंचिदिय०भंगो । णाम० सत्थाणभंगो । एवं वेडिव्व० अंगो० ।

२२७. आहार० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-सादा०-चहुसंज०-पंचणोक०-देव-गदिपसत्थद्वाचीसं-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। आहार०ग्रंगो ० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं आहारंगोवंग०।

२२८. तेजाक० हेटा उवरि पंचिंदियभंगो | णाम० सत्याणभंगो | एवं तेजइग-भंगो कम्मइ०-पसत्थवण्ण४-अगु०२-वाद्र-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० |

२३४. पञ्चे न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्त-रायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२३५. श्रोदारिकशरीरके जवन्य श्रमुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र श्रौर पांच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रजधन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार उद्योतकी सुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

२३६. वैकियिकशरीरके लघन्य अनुभागका वन्य करनेवाले लीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर घादकी प्रकृतियोंका मङ्ग पञ्चे न्द्रिय लातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार वैकियिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्प लानना चाहिए।

२३७. आहारकशरीरके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, देवगित आदि प्रशस्त अद्वाईस प्रकृतियाँ, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनुभागका अधिक होता है। आहारक आङ्गोपाङ्गका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह ज्ञवन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञवन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। तीर्थद्धर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार आहारक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ज्ञाना चाहिए।

२३८. तैनसरारीरके नयन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रोर वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चे न्द्रिय जातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार तैजसशरीरके समान कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुरक, अगुरुलघुन्निक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१. ता० श्रा∙ प्रत्योः श्राहारभंगो० इति पाठः।

२३६. समचदु० ज० वं० पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि०अणंतगुणव्भ०। सादासाद०-देवाड०-उचा० सिया०। तंतु०। सत्तणोक०-दोआड०--णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ०। णाम० सत्याणभंगो। एवं पसत्यवि०-भग-मुस्सर-आदे०।

२४०, णगोद० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णिय० अणंतगुणव्भ०। सादासाद०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक०-दोआउ०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं णगोद०भंगो तिण्णिसंठा०-पंचसंघ०।

२४१. हुंड० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । दोवेदणी०-तिण्णिआउ०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भहियं०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादे०।

२३६. समचतुरस्र संस्थानके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रज्ञचन्य श्रन्तरागुणा श्रधिक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, देवायु श्रीर स्वागेत्रका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय, दो श्रायु श्रीर नीचगोत्रका कदाचित वन्ध करता है जो श्रज्ञचन्य श्रन्तरागुणा श्रधिक होता है। नांमकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४०. न्ययोध संस्थानके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दुर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और उचगोत्रका

चित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रज-घन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय, दो श्रायु श्रीर नीचगोत्रका कराचित् वन्य करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके ान है। इसी प्रकार न्यग्रोध संस्थानके समान तीन संस्थान श्रीर पाँच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२४१. हुण्ड संस्थानके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो वेदनीय, तीन आयु और उचगोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है जो एअजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। सात नोकपाय और नीचगोत्र का कदाचित वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। ना का भक्क स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग और अनादेयकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४२, बोराहि० ब्रंगो ज० वं० हेट्टा उविर बोराहिय० भंगो। णाम० सत्थाणभंगो। २४३, असंप० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोहसक०-भय०-दुर्गं०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। दोवेदणी०-तिरिक्ख०-मणुसाउ०-उच्चा० सिया०। तं तु०। सत्तणोक्क०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ०। णाम० सत्थाणभंगो।

२४४. आदाउज्जो० ज० वं० पंचणा०-णवदंस >-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो० ।

२४५. अप्पतत्यवि० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-णिरयाड०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-दोआड०--णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं दुस्सर० ।

२४६. सहुम० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक्त०-णवुंस०-भय०-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। सादासाद०-तिरिक्लाड० सिया०।तंतु०।

२४२. श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जवन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रोर वादकी प्रकृतियोंका भंग श्रोदारिकशरीरके समान है। तथा नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्नि-कर्षके समान है।

२४३. असम्प्राप्तास्पाटिका संहतनके जयन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञाना-वरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो वेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय और नीचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४४. आतप और द्योतके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलंह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्त-रायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४५. अप्रशस्त विहायोगितिक तथन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अविक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, नरकायु और द्वागोत्रका कहाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो ज्ञवन्य अनुभागका भी वन्य करता है खोर अज्ञवन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञवन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत यदि हमा होता है। सात नोकपाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प ज्ञानना चाहिए।

२४६ स्ट्रमके लघन्य अनुभागका बन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, नपु सकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र छोर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और तियंद्धायुका कदाचित् बन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी बन्य करता है और अज-

चदुणोक० सिया० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्याणभंगो । एवं अपज्ज०-साधार० । णवरि अपज्जनो दोआउ० सिया० । तं तु० ।

२४७. थिर० ज० व० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-वारसक०--सत्तणोक०--तिरिवख-मणुसाउ०-णीचा० सिया० अणंतगु० । सादासाद०-देवाउ०-उचा० सिया० । तं तु० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं सुभ-जस० ।

२४८. तित्थ० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-असाद०-वारसक०-पुरिस०-अरिद-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो ।

२४६. उचा० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०- ०-पंचिं०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०--पंचंत० णि० अणंत-गुणव्भिह्यं० । सादासाद०-देवाउ०-छसंटा०-छस्संघ०-दोगिद-दोआणु०--दोविहा०-

घन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। चार नोकपायका कदाचित् वन्य करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार श्रपर्थाप्त श्रीर साधारण प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि श्रपर्याप्तके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो श्रायुश्रोंका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज- चन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

२४७. स्थिरके तघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संव्यलन, भय, जुगुप्सा और पाँच अनतरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्त-गुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, वारह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। साता-वेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और उचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार शुभ और यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२४८. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्श-नावरण, असातावेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४६. उचगोत्रके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय जुगुप्सा, पश्च न्द्रिय जाति, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो गति, 'दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो

थिरादिञ्चयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक० मणुसाउ०-दोसरीर-दोत्रांगो० सिया० अणंतगुणव्भहियं वंधदि ।

२५०. आदेसेण णिरएसु आभिणि० ज० वं० चदुणा०-छदंसणा०-वारस-क०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। साद०-मणुसग०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०--क०-समचदु०--ओरालि०अंगो०--वज्जरि०-पसत्थ०-४-मणुसाणु०--अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०--उच्चा० णि० अणंत-गुणव्भ०। तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं आभिणि०भंगो० तं तु० पदिदाणं सच्वाणं।

२५१. णिद्दाणिद्दाए ज० वं० पंचणा०-छदंस०-साद०-वारसक०-पंचणोक०-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचढु०-ओरालि०ग्रंगो०--वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४— अगु०४—पसत्थवि०--तस०४—थिरादिछ०-णिमि०--पंचंत० णि० अणंतगु०। पचला-पचला०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि०। तं तु०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया०। तं तु०। मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उचा० सिया० अणंतगुणव्भ०।

वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय, मनुष्यायु, दो शरीर ख्रौर दो खाङ्गोपाङ्ग-का कदाचित् वन्ध करता है जो ख्रजघन्य श्रनन्तगुणा ख्रधिक ख्रनुभागवन्ध करता है।

२५०. त्रादेशसे नारिकयोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, त्रप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, उपघात और पाँच त्रान्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित यद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, मनुष्यगित, पज्र निद्रयजाित, अत्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रपभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधृत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदिछह, निर्माण और उद्यगित्रका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तं तुपितत सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

२५१. निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, सातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकपाय, पछ्छे न्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक छाङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यपेमनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, छप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर छादि छह, निर्माण् छौर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगित, मनुष्यगत्यान्य

र. आ॰ प्रती थीरागिद्धि॰३ मिच्छा॰ इति पाठः।

एवं पचलापचला ०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

२५२, साद० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-भय०-दु०-पंचिदि०-ओराहि०-तेजा०-क० - ओराहि० ग्रंगो०-पसत्यापसत्य०४—अग्र०४—तस०४—णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु०। थीणगिद्धि०३—मिच्छ०-अणंताणु०४—सत्तणोक०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-तित्य०-णीचा० सिया० अणंतगुणन्भ०। दोआउ०-मणुसग०-इस्संटा०-इस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थिरादिछ०-उचा० सिया०। तं तु०। एवं सादभंगो असाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०।

२५३. इत्थि० ज० वं० पंचणा० - णवदंस० - मिच्छ० -सोलसक० - भय - दु०-पंचिद्दि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—पसत्थ०-तस०४—सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-चदु-णोक०-दोगदि-तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उच्जो०—थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-दोगोद० सिया० अणंतगुणव्भ० । एवं णर्बुस० । णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुणव्भ० ।

नुपूर्वी, च्योत त्रौर च्यगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो त्राज्यन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे जानना चाहिए।

२५२. सातावेदनीयके जबन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्ता, पञ्चे न्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रजवन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिध्यात्व, श्रन्तनानुयन्धी चार, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तीर्यञ्चर श्रोर नीचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है जो श्रजवन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। दो श्रायु, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिर श्रादि छह श्रोर उचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो ज्ञवन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है । यदि श्रजवन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है । यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित ग्रहिरूप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान श्रसातावेदनीय, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रग्रुम, यशःकीर्ति श्रोर अयशः-किर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२५३. स्निवेदके तघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ द्र्यनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, पश्चे न्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रास्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नोकपाय, दो गित, तीन संस्थान, तीन संहनन, दो श्रानुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, श्रश्च, यशःकीर्ति, श्रयशःकीर्ति श्रोर दो गोत्रका कदाचित् वन्य करता है जो अज्ञवन्य अनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार नपुसक्वेदकी सुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह पाँच संस्थान श्रीर पाँच संहननका कदाचित् वन्य करता है जो श्रज्ञवन्य

२५४. अरदि० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसग०-पंचिदि० - ओरालि० - तेजा०-क० - समचदु० - ओरालि० झंगो० - वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४—मणुसाणु०-अगु०४—पसत्थवि०-तस०४—थिर—ग्रुभ - ग्रुभग - ग्रुस्सर-आदे०-जसगि०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । तित्थ० सिया० अणंत-गुणव्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

२५५. तिरिक्लाउ० ज० वं० पंचणी०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-भय०-दु०-तिरिक्ल०-पंचिदि०- ओराल्लि०-तेजा०-क० - ओराल्लि० ग्रंगो० - पसत्थापसत्थ०४— तिरिक्लाणु०-अगु०४—तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादा-साद०-इस्संठा०-इस्संघ०-दोविद्दा०-थिरादि इग्रुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-उज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । एवं मणुसाउँ० । णवरि सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ० । सादादि याव उच्चा० सिया० । तं तु० । मणुस०-मणुसाणु०

श्रनन्तगुणा अधिक होता है।

२५४. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला लीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुत्सा, मनुष्यगित, पञ्चे निद्रय जाति, श्रोदारिक शारीर, तेजस्थारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्श्वभनाराच-संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभा, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशाक्षीति, तिर्माण, उच्चगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्यङ्कर प्रश्नतिका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्यक्त प्रश्नतिका करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है जो यह छह स्थान पतित यद्विस्प होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२५५. तिर्यक्चायुके जयन्य श्रमुभागका यन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यक्चगति, पक्च न्द्रिय जाति, श्रीदारिकरारीर, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी. श्रमुरुलयुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य श्रन्तत्तगुणा श्रिषक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, श्रह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रोर स्थिर श्राद छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञयन्य श्रमुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय श्रोर ज्योतका कदाचित् वन्य करता है तो श्रज्यन्य श्रमन्तगुणा श्रिषक होता है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात नोकपाय श्रोर नीचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है जो श्रज्यन्य श्रमन्तगुणा श्रिषक होता है। सातावेदनीयसे लेकर उचगोत्र तककी प्रकृतियोंका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य श्रमुभागक का भी वन्य करता है तो जयन्य श्रमुभागका भी वन्य करता है तो जयन्य श्रमुभागका का भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञपन्य श्रमुभागका का भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञपन्य श्रमुभागका का भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञपन्य श्रमुभागका

१. ता० प्रती० ज० वं० पं० (१) पंचणा० इति पाठः। २. ता० ग्रा० प्रत्योः मंगुसागु० इति पाठः।

मणुसाउ०भंगो० ।

२५६. पंचिदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरिद-सोग-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाण-भंगो। एवं पंचिदियभंगो ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० श्रंगो०-पसत्थ०४—अगु०३— उज्जो०-तस०४—णिमि०।

२५७. समचढु० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-दोआड०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं समचढुर०भंगो पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभादितिण्णियुग० ।

र्ध्यः, तित्थ० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-वारसक०-पुरिस०-अरिद-सोग-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० | णाम० सत्थाणभंगो |

२५६, उचा० ज० वं० पंचणा०--णवद्स०-मिच्छ०-सोलसक०--भय० ०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४ -

वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति श्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष मनुष्यायुके समान जानना चाहिए।

२५६. पद्धे न्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दशनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरित, शोक, भय, जुगुष्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार पद्धे न्द्रिय जातिके समान औदारिकश्ररीर, तैजसश्ररीर, कार्मणश्ररीर, अोदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-निक, उद्योत, असचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२५७. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और उचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपाय और नीचगोत्रका कदाचित वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार समचतुरस्तसंस्थानके समान पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगित और शुभादि तीन युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२५८. तीर्थद्धर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, श्ररित, शोक, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रजघन्य अनन्तगुणा श्रधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२५६. उच्चगोत्रके लघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, ेन्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर,

१. ग्रा॰ प्रतो परस्थापसस्य॰ ४ तस॰ ४ इति पाठः ।

णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०--मणुसाउ०-इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०थिरादिइयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक० सिया० अणंतगुणव्भ० । मणुसगदिमणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णविर मणुस०-मणुसाणु०-उचा०
तित्थयरभंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०--णुवुंस०-पंचसंटा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० एदेसिं तिरिक्खगदी धुवं काद्व्वं ।
णविर थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा०
णि० । तं तु० । एवमेदाबो अण्णोण्णस्स तं तु० । णविर साद० ज० वं० दोगदिदोआणु०-उज्जो०-दोगो० सिया० अणंतगुणव्भ०। एवं असाद०-थिरादितिण्णियुगलाणं ।
छम्र उविरमामु णिरयोघो । णविर तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० परियत्तमाणियाणं काद्व्यं । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंसगाणं मणुसगदिदुगं काद्व्यं ।

कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क श्रौर निर्साणका नियमसे वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह लघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। सात नोकपायका कदाचित् बन्ध करता है को अवयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्व करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातर्वी पृथिवीमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी और उच्चगोत्रका मङ्ग तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान है। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व अन-न्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्र इनकी मुख्यतासे सन्निकर्प कहते समय तिर्येश्वगतिको ध्रुव करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व ख्रीर ख्रनन्तानुवन्वी चारके जघन्य श्रतुभागका वन्ध करनेवाला लीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्रका नियमसे वन्ध करता है । किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभाग का भी वन्य करता है। यदि अजयन्य अनुमानका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु वह स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, दो श्रातुपूर्वी, उद्योत श्रीर दो गोत्रका कदाचित बत्य करता है जो श्रातवन्य श्राननत्गुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलोंकी अपेदा जानना चाहिए। प्रारम्भकी छह प्रथिवियों में सामान्य नारिकयों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्युख्यगति, तिर्युख्य-गत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अन्नतानुबन्धी चार, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके मनुष्यगति द्विक करना चाहिए।

१. ता॰ प्रती परियमाणि कादव्यं इति पाठः । वर्षा के वर्षा वरा वर वर्षा वर्षा वर वर्षा वर्षा वर्षा वर्षा वर्षा वर्षा वर्षा

२६०. तिरिक्लेसु आभिणि० ज० वं० चढुणा०-छदंस०-अहकसा०-पंचणोर्कं०-अप्पस्थ०-४-उप०-पंचंत० णिय०। तं तु०। साद०-देवग०पसत्थसत्तावीसं-उचा०णि० अणंतगुणवभ०। एवं तं तु पिददाओं अण्णमण्णस्स तं तु०। सेसं ओघं। णविर अरिद० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-अहक०-पुरिस०-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि अणंतगुणवभ०। सेसं णामाणं णाणावरणभंगो। एवं पंचिदिय०तिरि०३। णविर तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० परियत्तमाणियाणं कादव्वं तिरिक्खेसु०। णविर पंचिदियजादीणं ओरालि०-ओरालि० छंगो०-उज्जो०-तिरिक्खगिदियुग० अप्पप्पणो सत्थाणं कादव्वं।

२६१. पंचिदि०तिरि०अपज्ज० आभिणि० ज० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। साद०-मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-समचढु०--ओरालि०अंगो० - वज्जरि०-पसत्थ०४-मणु-साणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० अणंतगुणव्भ०। एवं तं तु० पदिदाओ अण्णोणं तं तु०।

२६०. तिर्यञ्चोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ष्याठ कपाय, पाँच नोकपाय, श्राप्रशस्त, वर्णचतुष्क उपघात, और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगति आदि अशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तं तु पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं उनकी मुख्यतासे परस्पर आभिनिवोधिकज्ञानावरणकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्ष कहा है उस प्रकार जानना चाहिए। शेष भङ्ग त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि अरितके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण छह दर्शना-वरण, स्राठ कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। रोप नामकर्मकी प्रकृतियोंका ज्ञानावरणके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सव प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्जोंमें तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पद्धे न्द्रियजाति श्रादिमें श्रोदारिकशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, उद्योत श्रीर तिर्यव्यगतिद्विकका श्रपना श्रपना स्वस्थान सन्निकर्प कहना चाहिए।

२६१. पश्चे न्द्रिय तिर्थे अपर्याप्तकों में आभिनिवोधिकज्ञानावरण्के जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण्, नौ दर्शनावरण्, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशास्त वर्ण्चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, मनुष्य गति, निद्रयज्ञाति, तीन शरीर, समचतुरलसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच-संहनन, प्रशस्त वर्ण्चनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और दचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक

१. श्रा॰ प्रती चटुगोक॰ इति पाठः।

२६२. साद॰ ज॰ वं॰ पंचणा ०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०--णिमि०--पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। सत्तणोक०--ओरा०ऋंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ०। दो आउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघै०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगो० सिया०। तं तु०। एवं सादभंगो असाद०-अथिर-असुभ०-अजस०।

२६३. इत्थि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-मणुस०-पंचिद्दि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थिवि ०तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंत-गुणव्भ० । सादासाद०-चदुणोक०-तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-थिरादितिण्णियुग० सिया अणंतगुणव्भ०। एवं णवुंस०। णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ०।

२६४. अरदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-

होता है। इसी प्रकार तं तु पतित जितनी प्रकृतियां हैं उनकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष श्राभिनि-वोधिकज्ञानावरएके समान जानना चाहिए।

२६२. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका गन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा. औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सात नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो आयु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, अस्थिर, अजुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२६३. स्रीवेदके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पळ्ळ द्वियजाति, छौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उचगोत्र, और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, तीन संस्थान, तीन संहनन और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसक्येदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें पाँच संस्थान और पाँच संहनन कहने चाहिए।

२६४. अरितके जयन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

१. ता॰ प्रतौ पंचनादि॰ छ्हर् घ॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ श्रगु॰ पस्त्यापुस्त्यु॰ इति पाठः ।

०-दु०-मणुसं०-पंचिद्दि०-ओरालि०-तेजा०क०-समचदु०-ओरालि० अंगो०-वज्जिरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४- सुभग-सुस्तर-आदे०-णिमि०-उचा०-पंचत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० सिया० अणंतगुणव्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० । तिरिख०-मणुसाउ०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं ।

२६५. तिरिक्ल० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। सादासाद०-तिरिक्लाउ० सिया०। तं तु०। सत्त-णोक० सिया० अणंतगुणव्भ०। णीचा० णि०। तं तु०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं तिरिक्लाणु०-णीचा०। चदुजादि-इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०-थिरादि०४ ओघं।

२६६. पंचिंदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णियमा० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-दोआड०-दोगोद० सिया० । तं तु० ।

मिध्यात्व, सोलह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक श्रांगोपांग, वर्श्वपमनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रवधन्य श्रन्तरागुणा श्रधिक होता है। सातावेदनीय, श्रमातावेदनीय श्रोर स्थिर श्रादि तीन युगलका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रवधन्य श्रन्तरागुणा श्रधिक होता है। शोकका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रोर श्रवधन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्थञ्चायु, मनुष्यायु, मनुष्याति श्रोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोधक समान है।

२६५. तिर्युद्धगितके जघन्य अनुभागका चन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे चन्य करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और तिर्यञ्चायुका कदाचित् बन्य करता है जो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञचन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका चन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपायका कदाचित् वन्य करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नीचगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञचन्य अनुभागका भी वन्य करता है। विद्युज्ञचन्य अनुभागका वन्य करता है जोर अज्ञचन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्युद्धगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित और स्थिर आदि चार युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आविक समान है।

२६६. पञ्चे न्द्रिय जातिके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सात्विदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और दो गोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह

१ ता० प्रती भय० मग्रा० इति पाठः ।

सत्तणोकः सियाः अणंतगुणव्भः। णामः सत्याणभंगोः। एवं पंचिदियजादिभंगो तसः । थिरादिञ्चयुगः हेद्दा उवरिं पंचिदियभंगोः। णामाणं अप्पष्पणो सत्थाणभंगोः।

२६७. ओरालि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्याणभंगो । एवं ओरा-लियभंगो तेजा०--क०-पसत्थव०४—अगु०-णिमि०-ओरालि० अंगो०-पर०-अस्सा० । आदाउज्जो० एवं चेव । सादासाद०-चढुणोक०सिया० अणंतगुणव्भ० । णाम० सत्याण-भंगो । उच्चा० ओघो । णविर पंचिदिय० णि० । तंतु० । एवं सव्यअपज्जताणं सव्यविग-लिदियाणं पुढ०-आउ०-वणप्पदि०-बादरपत्ते०-णियोदाणं च । तेऊणं [वाऊणं] पि एवं चेव । णविर मणुसगदिचढुक्कं वज्ज । तिरिक्तगिद्धिविगाणं सव्वाणं आभिणि०भंगो । एइंदिएसु अपज्जतभंगो । णविर तिरिक्तगिदितिगं तिरिक्तवोधं ।

२६८. मणुस०३ खविगाणं संजमपाओग्गाणं ओघं । सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो ।

छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकपायका कदाचित् वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्त्रस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार पञ्चे न्द्रियजातिके समान त्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। स्थिर आदि छह युगलकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और वादकी प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष पञ्चे न्द्रियजातिके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने अपने स्वस्थान सिन्नकर्पके समान जानना चाहिए।

२६७. श्रौदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्त-रायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार औदारिकशरीरके समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परवात और उच्छ्वासकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। त्र्यातप त्रीर उद्योतकी मुख्यतासे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, श्रीर चार नोकपायका कदाचित् वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। उचगोत्रकी मुख्यतासे स्रोवके समान सिन्नकर्प है। इतनी विशेषता है कि यह पद्धे न्द्रिय जातिका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अर्थात पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सब अप-र्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, प्रथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक वादर प्रत्येक श्रीर निगोद जीवोंके जानना चाहिए। श्रग्निकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके भी इसी अकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति चतुष्कको छोड़कर जानना चाहिए। तथा तिर्यञ्चगति त्र्यादि सव ध्रुव प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनियोधिकज्ञानावरणके समान है। एकेन्द्रियोंमें श्रपयाप्तिकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यद्भगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यद्भोंके समान है।

२६८ मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियाँ और संयम प्रायोग्य प्रकृतियाँ इनका भङ्ग श्रोघके समान है। रोप प्रकृतियोंका भङ्ग पख्चे द्विय तिर्यद्योंके समान है।

२६६. देवेस सत्तण्णं कम्माणं पढमपुढिविभंगो । सादावे ज वं दोगिद-एइंदि०-अस्संटा०-अस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिअयुग०-दोगो० सिया०। त तु०। पंचि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस०-तित्थ० सिया० अणंतगुण्यभ०। सेसाणं णिरयभंगो । णामाणं तिरिक्तगिदितिगं परियत्तमाणियाणं कादव्वं। एइंदि०-आदाव-थावर० ओघं। पंचि०-ओरालि०अंगो०-तस० णिरयभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। सेसं पुढविभंगो।

२७०. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तणणं कम्माणं देवोघं। णामाणं हेटा उविरं देवोघं। णविर णामाणं अप्पूपणो सत्थाणभंगो। सणवकुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविभंगो। आणद याव णवगेवज्ज ति सत्तणणं कम्माणं एवं चेव। णामाणं पि तं चेव। णविर मणुस० ज० वं पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुण्याक । णामाणं सत्थाणभंगो। एवं सव्वसंकिलिद्दाणं।

२७१. अणुदिस याव सन्बह ति आभिणि०दंडओ देवीघं। साद० ज० वं०पंचणा०-

२६९. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनु-भागका बन्य करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो छह स्थान पतित चुद्धिरूप होता है। निद्रय-जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आवप, उद्योत, त्रस और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। किन्तु नामकर्मकी तिर्यद्धगतित्रिकको परिवर्तमान करना चाहिए। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरका भङ्ग ओघके समान है। पद्ध न्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसप्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। नाककर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके ान है। शेप भंग पहली पृथिवीके समान है।

र७०. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान करपके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। नामकर्मके पहले और अन्तकी प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने अपने स्वस्थानके समान है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार करप तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत करपसे लेकर नौ ग्रैवे-यक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग इसी प्रकार है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग भी उसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य वंधनेवाली प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिए।

२७१. अनुदिशसे तेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरण दण्डकका

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः यावरादि इति पाठः । २, श्रा॰ प्रतौ गाम सत्यागं हेडा इति पाठः ।

छदंस०-वारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसगिद-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ०। चदुणोक०-तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। मणुसाउ०-थिरादितिण्णियुग० सिया०। तं तु०। एवं सादभंगो असाद०-मणुसाउ०-थिरादितिण्णियुग०। अरदि-सोगं देवोघं०।

२७२. मणुसग० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-असादा०-वारसक०-पंचणोक०-पंचंत० णि० अणंतगुणन्भ०। उचा० णि०। तं तु०। णाम० सत्याणभंगो०। एवं सन्वसंकित्तिहाण भंगो उचा०।

२७३. पंचिद् ०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगी० ओघो। ओरालि० मणुसभंगो । णवरि तिरिक्ख०३ मूलोघं। ओरालियमि० आभिणि०दंडओ तिरि-क्लोघं। णवरि वारसक० णि०। तं द्व०। तित्य० सिया० अणंतगुणव्भ०। थीण-

भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, मनुप्यगति, पज्जोन्द्रय जाति, अौदारिकरारीर, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरहा संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वऋष्मनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुरक, अप्रशस्त वर्णचतुरक, मनुप्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगिति, ज्ञसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकपाय और तीर्थङ्करका कदाचित वन्ध करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकपाय और तीर्थङ्करका कदाचित वन्ध करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित वन्ध करता है। यदि अज्ञघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह अह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सिनकर्ष जानना चाहिए। अरित और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

२७२. मनुष्यगितके लघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला लीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कपाय, पाँच नोकषाय और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता
है जो अलघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्चगोत्रका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह
जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अलघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि
अलघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। नामकर्मका सङ्ग
स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इस प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य वन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके
समान उच्चगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२७३. पञ्चे न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी छोर काययोगी जीवोंमें छोयके समान भङ्ग है। छोदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मुलोधके समान है। छोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छाभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वारह कपायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है छोर छावपन्य अनुभागका भी वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिक होता है। तीर्थेक्टर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है तो अजघन्य

१. ता० श्रा० प्रत्योः मणुनगदिभगोः इति पाठः ।

गिद्धि०३—अणंताणुवं०४ देवोघं। दासाद०-थिरादितिण्णियुग० ओघं। णविर असाद० जह० वंधगस्य विसेसो। देवगदिपंचग० सिया० अणंतगुणवभ०। इत्थि०- पुरिस०-दोआड०-मणुसग०-पंचजादि-ओरालि०--तेजा०-क०--अस्संठा०--ओरालि०- अंगो०-अस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-दोविहा०-त - दिदसयुग०-उचा० पंचिदियतिरिक्लभंगो। अरदि-सोगं देवोघं। णविर देवगदिसंजुत्तं। तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु०-णीचा० ओघं। देवगदिपंचगं तित्थयरभंगो।

२७४. वेडिवि० आभिणि०दंढओथीणगिद्धिदंढओ च णिरयोघं। तिरिक्खायु-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयोघं। सेसाणं पगदीणं देवोघं। णवरि इत्थि०-णद्यंस० णिरयोघं। एवं वेडिव्वयमि०।

२७५. [आहार०-]आहारमि० आभिणि० ज० वं० चढुणा०-छदंसणा०-चढुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० । तं तु० । साद०-देवगदिआदिसत्तावीसं-उचा० णि० तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ० । एवमण्णोण्णं तं तु० । साद ज० वं० सन्बद्द०भंगो । णवरि अद्दक्त० वज्ज० । देवगदी धुवं। एवं सादभंगो देवाउ०-थिर-सुभ-

अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुवन्धी चारका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि असातावेदनीयके लघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवके विशेष जानना चाहिए। देवगति पञ्चकका कदाचित् वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्नीवेद, पुरुप्वेद, दो आयु, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संस्तान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल और उचगोत्रका भंग पञ्च न्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है। अरित और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। तिर्यक्चगित, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओयके समान है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग तीर्यद्भर प्रकृतिके समान है।

२०४. वैक्रियिककायोगी लीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणदण्डक श्रौर स्त्यानगृद्धिदण्डक सामान्य नारिकयोंके समान है। तिर्यश्चायु, तिर्यश्चगित, तिर्यश्चगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रका सङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्नीवेद श्रौर नपुंसकवेदका सङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्नीवेद श्रौर नपुंसकवेदका सङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

२७५. श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणके जघन्य श्रम्भागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकंपाय, श्रम्भागका वन्य करनेवाला जीव चार श्रानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकंपाय, श्रम्भागका भी वन्य करता है। िकन्तु वह जबन्य श्रम्भागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रम्भागका वन्य करता है तो वह छह स्थानपितत वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगित श्रादि सत्ताईस प्रकृतियां श्रोर उच्चगोत्रका नियमसे तथा तीर्थद्धर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रमन्तगुणा श्रिष्ठक होता है। इसी प्रकार तं तुपितत प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवका भक्त सर्वाथिसिद्धिके है। इतनी विशेषता है कि श्राठ कथायोंको छोड़कर कहना चाहिए।

जस० । एवं तप्पडिपक्लाणं । णवरि देवाउ० णत्थि ।

२७६. देवगदि० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चंदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्य०४-छप०- पंचंत० णि० अणंतगुण्डभ०। उचा० णि०। तं तु०। णामाणं सत्थाणभंगो । एवं सन्वसंकिलिहाणं ।

२७७. कम्मइ० आभिणि० ज० वं० दोगदि०-दोसरीर०-दोश्रंगा०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ०। सेसं ओरालियमिस्स०भंगो। थीणगि०[३-] मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० वं० मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उचा० सिया० अणंतगुणव्भ०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया०। तं तु०। सेसाणं ओघं। णवरि दोगदि-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरि०-दोआणु० सिया० अणंतगुणव्भ०। देव-गदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सत्तमपुढविभंगो।

२७८. ओरालि० ज० वं० एइंदि०-थावरादि०४ सिया० अणंतगुणव्म०।

देवगतिको ध्रुव करना चाहिए। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान देवायु, स्थिर, हुभ श्रीर यशः कीर्तिकी मुख्यतासे अत्रिकर्प जानना चाहिए। इसी प्रकार इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सत्रिकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवायु नहीं है।

२७६. देवगतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उचगोत्रका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अज्ञघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अज्ञघन्य अनुभागका वन्न करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य वँधनेवाली प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

२७७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनिवोधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुवन्धीचारके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उद्यगित्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्थञ्चगति, तिर्थञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिस्प होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यपमनाराच संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। तिर्थञ्चगति, तिर्थञ्चगति, विर्वञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातवीं प्रिथिवींक समान है।

२७न. श्रीदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावर श्रादि चारका कदाचित् वन्य करता है जो श्रज्ञवचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। पंचिं ०-ओरालि ० ग्रंगो० - पर० - उस्सा० - आदाउज्जो० - तस४ सिया० । तं तु० । एवं ओरालिय० भंगो तेजा० - क० - पसत्थ०४ - अगु० - णिमि० - पंचि० - पर० - उस्सा० - उज्जोव० । तस०४ मुलोघं । सेसाणं ओरालियमिस्स०भंगो ।

२७६. इत्थिवेदेसु आभिणि० ज० वं० चढुणा०-चढुदंस०-चढुसंज०-पुरिस०-पंचंत० णि० जहण्णा० । साद०-जस०-उच्चा० णि० अणंतगुणन्भ० । एवमेदाओ अण्णोग्यां जहण्णा० । संसामां खवगपगदीमां ओघं ।

२८०, सादा० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-चहुसंज०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० अणतगुणव्भ० ! सेसं पंचिदियतिरिक्त्वभंगो | तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ० | एवं असाद०-थिरादितिरिग्णयु० | इत्थि०-णबुंस०-चदुआड०-चदुगदि-चदुजादि छस्संटा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-मिन्भिञ्ज०३-दोगो० पंचि०तिरिक्तभंगो ।

२८१. पंचिदि० ज० वं पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-हुंडसंठा०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अथिरा-दिछ०-णीचा०-पंचंतरा० णि० अणंतगुणव्भ०। वेडव्वि०-तेजा०-क०-वेडव्वि० श्रंगो०-

पख्ने निद्रयजाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रसचतुष्कका कदाचित् वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो वह जयन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका बन्य करता है तो वह छह स्थानपितत वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रीदारिकशरीरके समान तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलयु, निर्माण, पञ्चे निद्रयजाति, परघात, उच्छ्वास श्रीर उद्योतकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। त्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। त्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष मूलोचके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके न है।

२७६. स्त्रीवेदी जीवोंमें आभितिवोधिकज्ञानावरणके जयन्य श्रानुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे जयन्य श्रानुभाग वन्य करता है। सातावेदनीय, यशाःकीर्ति श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्य करता हैं । स्तातावेदनीय, यशाःकीर्ति श्रीर उचगोत्रका नियमसे वन्य करनेवाली हैं जो श्रज्जवन्य श्रानुभाग वन्य करनेवाली इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे संश्रिकर्प जानना चाहिए। श्रेष क्ष्पक प्रकृतियोंका मङ्ग श्रोयके समान है।

२८०. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग निद्रय तिर्यक्रोंके समान है। तीर्थद्वर प्रकृतिका कदाचित वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रका भङ्ग निद्रय तिर्यक्रोंके है।

२५१. पद्धिनिद्रयज्ञातिके जघन्य श्रतुभागका चन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह य, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यातुपूर्वी, उपचात, श्रेप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रोर पांच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रिये श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरू-

पसत्य ०४-अगु०३-तस ०४-णिमि० णि०। तं तु०। एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-[तस०]।

२८२. ओरालि० ज० वं० हेट्टा उविर पंचिदियजादिभंगो । तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचत० णि० अणंतगुणव्भ०। तेजइगादीणं० णि०। तं तु०। आदाउज्जो० सिया०। तं तु०। [एवं आदाउज्जो०]।

२८३. तेज० जह० हेटा उवरिं ओरालिय०भंगो । दोगदि-एइंदि-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर०--दुस्सर० सिया० अणंतगु०। पंचि०-ओरालि०--वेडिवयदुग-आदाउ०-तस० सिया०। तं तु०। कम्म०--पसत्थ०४-अगु०३-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि०। तं तु०। हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच० णि० अणंतगु०। एवं कम्मइगादिसंकिलिटाणं।

लघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजयन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशारीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर त्रसकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।

२८२. औदारिकरारी के जबन्य अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भन्न पछ निद्रयजातिके समान है। तिर्यछगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यछगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजधन्य अनुनतगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर आदिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिष्ठप होता है। आतप और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि अजन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजन्य अनुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात औदारिकशरिरके भन्न समान आतप और उद्योतका भंग है।

२५३. तेनसश्रीरके जघन्य अनुमागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका मंग औदारिकश्रिर समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्च न्द्रियजाति, औदारिकश्रीर, विक्रियकश्रीरिद्धिक, आतप और असका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित गृद्धिरूप होता है। कार्मणश्रीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधृत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। विन्तु वह जघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित गृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उप्धात और अधियर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है जो अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है तो इस्थर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है जो अजधन्य अनुनतगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अवलेशसे वँधनेवाली कार्मणश्रीर आदि प्रकृतियोंका सिक्षकर्ष जानना चाहिए।

२८४. ओराहि०्यंगो० ज० वं० हेटा उवरि तेजइगभंगो। बीइंदि०-पंचि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अपसर्थ०-पज्जत्तापज्जत्त०-दुस्सरै० सिया० अणंतग्र०। तिरिक्ख-गृदिसंजुताओ णिय० अणंतग्र०। तित्थयरं ओघं।

२८५. पुरिसेसु सत्तण्णं कम्माणं इत्थिभंगो । पंचिदिय०--ओराल्ठि०-वेष्ठविव०-आहार०-तेजा०-क०-तिणि० ग्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०२-आदाष्ठजो०- ०४-णिमि०-खविगाणं तित्थय० ओघं । सेसाणं इत्थिभंगो ।

२८६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो | सेसं ओघं । णविर पंचिदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०- अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-पीचा०-पंचंत० णि० अणंतग्र० | दोगिदि ०-असंप०-दोआणु ०-णीचा० [सिया०] अणंतग्र० | दोसरीर-दोश्रंगो०-उज्जो० सिया० | तं तु० | तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु ०३-तस०४-णिमि० णि०। तं तु० | एवं पंचिदि-यभंगो तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० । ओरालि ०-ओरालि०-

२८४. श्रौदारिक श्राङ्गोपांगके जधन्य श्रनुभागका वन्य करनेशले जीवके पूर्वकी श्रौर श्रन्तकी प्रकृतियोंका भंग तेजसशरीरके समान है। द्वीन्द्रियजाति, पश्चीन्द्रयजाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, पर्याप्त, श्रप्रपात श्रौर दुःस्वरका कदाचित् वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। तिर्थञ्चगित संगुक्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। तीर्थञ्चगित संगुक्त श्रोषके समान है।

२८५. पुरुपवेदी जीवोंमें सात कर्मांका भङ्ग छीवेदी जीवोंके समान है। पछ न्द्रियजाति, ख्रीदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, ख्राहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तीन ख्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, ख्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, क्षपक प्रकृतियाँ ख्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ख्रोचके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग छीवेदीके जीवोंके समान है।

२-६. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भक्त स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेप भक्त स्त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पक्चे न्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, जयघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो गित, असम्प्राप्तासपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धित्प होता है। तैजसशारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है स्थार अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। इसी प्रकार पद्ध निर्मणका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धित्प होता है। इसी प्रकार पद्ध निर्मण जीविक समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी सुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। औदारिक चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी सुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। औदारिक चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी सुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। औदारिक

१. त्रा॰ प्रती अप्पस्तथ०४ इति पाठः । २. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः -पजत्त पत्ते॰ दुस्सर इति पाठः । ३. ता॰ प्रती दोगदि॰ असंप (अप्पस्त) त्य दोश्रासु॰, श्रा॰ प्रती दोगदि॰ अप्पस्तथ॰ दोश्रासु॰ इति पाठः । ४. ता॰ प्रती असु॰४ इति पाठः । ५. त्रा॰ प्रती तस ४ सिमि॰ श्रोरालि॰ इति पाठः । श्रंगो : उज्जो : णिरयमंगो । आदाव : तिरिक्खभंगो । सेसं ओघं ।

२८७. अवगद्वेदेसु अप्पूषणो पगदीओ ओघो ।

२८८. कोघादि०४ ओघं। णवरि कोघे०१८ णिय० जहा। माणे०१७ जहा। मायाए१६ जहा। लोभे० ओघो।

२८६. मिद्-सुद्०-आभिणि० ज० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल-सक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। सादावे०-देवगदिसत्ता-वीसं-उच्चा० णि० अणंतगु०। एवमेदाओं तं तु० पदिदाओं अण्णमण्णस्स तं तु०।

२६०. अरदि० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थै०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०--णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु०। सादासाद०-तिण्णिगदि-दोसरीर-दोग्रंगो ०वज्जरि०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-थिरादि तिण्णियुग०-दोगो०सिया०अणंतगु०।

शारीर, श्रीदारिकश्रांगीपांग श्रीर उद्योतका भंग नारिकयोंके समान है। श्रातपका भंग तिर्यख्रोंके समान है। श्रेप भंग श्रीयके समान है।

ं २८७. श्रपगतवेदी जीवोंमें श्रपनी श्रपनी प्रकृतियोंका भंग श्रोघके समान है।

२८८. क्रोधादि चार कपायों में श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध कपायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच अन्तराय इन अठारह प्रकृतियोंका नियमसे एक साथ जयन्य अनुभागवन्य होता है। मानकपायमें संज्वलन क्रोधके सिवा सत्रह प्रकृतियोंका नियमसे जयन्य अनुभागवन्य होता है। माया कपायमें संज्वलनक्रोध और संज्वलन मानके सिवा सोलह प्रकृतियोंका नियमसे जयन्य अनुभागवन्य होता है। लोभकपायमें श्रोधके समान भंग है।

२८६. मत्यज्ञानी श्रोर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणके जवन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, श्रुप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच श्रुन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रुज्ञघन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रुज्ञघन्य श्रनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगित श्रादि सर्चाईस प्रकृतियां श्रोर इचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञवन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। इसी प्रकार इन तं तु पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष परस्पर श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

२६०. व्यरतिके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुर्गुप्सा, पञ्च निद्रय जाति, तेजसरारीर, कार्मण्रारीर, समचतुरस्तरसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन गति, दो शरीर, दो आंगोपांग, वर्ञुपभनाराचसहनन, तीन आनुपूर्वी, ह्योत, स्थिर आदि तीन युगल और दो गोत्रका कदाचित वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भंग ओघके

१. ता॰ प्रतौ तं तु॰ पंचिदा (दिया) थ्रो, ग्रा॰ प्रतौ तं तु॰ पंचिदियात्रो इति पाठः । २. श्रा॰प्रतौ श्रागु॰ ३ पसत्य॰ इति पाठः। ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः दोगो॰ इति पाठः । ४. श्रा॰ प्रतौ तिण्णि श्रागु॰ थिरादि॰ इति पाठः ।

सेसं ओघं। एवं विभंग०।

२६१. आभिणि०-सुद्०-ओथि० खिवगाणं पगदीणं अरदि-सोगाणं च ओधं संजमपाओग्गाणं च । साद० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचि०-समचदु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु० । अहक०-चदुणोक०-दोगदि-दोसरीर-दोत्रंगा०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतगु० । दोआउ०-थिरादितिण्णियुग० सिया० । तं तु० । एवमसा०-दोआउ०-थिरादितिण्णियु० ।

२६२, मणुस० ज० वं० पंचणा०-छद्सणा०-असादा०--वारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० णि० त्र्रणंतगु०। पंचिदियादि याव णिमि०-उचा० णि०। तं तु०। एवं मणुसगदिपंच०।

२६३. देवगदि ज० वं० हेडा उवरि मणुसगदिभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। एवं देवगदि०४।

२६४. पंचिदि० ज० वं० हेडा उवरि मणुसगदिभंगो । णामाणं० दोगदि-

समान है । इसी प्रकार ऋर्थान् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए ।

२६१. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमं चपक प्रकृतियोंका, अरित शोकका व संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका यन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, पक्चे न्द्रियज्ञाति, समचतुरह्मसंस्थान, तें तसशरीर, कामण्णशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्शस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, स्वागेत्र और पांच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। आठ कपाय, चार नोकपाय, दो गित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् वन्ध करता है जो अज्ञचन्य अननन्तगुणा अधिक होता है। दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो ज्ञचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो ज्ञचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित दुद्धिष्ठ होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय, दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलको सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२६२. मनुष्यगितके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय वारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पख्रे निद्रयजाितसे लेकर निर्माण तक और उच्चगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है । यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२६३. देवगतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग सनुष्यगतिके समान है। तथा नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए।

२६४. पछ्चे न्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर

दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरिस०-दोआण०--तित्थ० सिया०। तं तु०। तेजइगादिपस-त्थाओ उच्चा० णि०।तं तु०। अप्पसत्थवण्ण०-[उप०-अथिर-असभ-अजस०] णि० अणंतगु०। एवं सञ्वसंकित्तिहाणं पंचिदियभंगो। [श्रहारदुगं श्रप्पसत्थ०४-उप० ओघं।] एवं श्रोधिदं०-सम्मादि०-खइगसम्मा०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णवरि उवसम० पसत्थाणं तित्थ० वज्ज असंजमपाओग्गा काद्व्वा।

२६५. मणपज्जवे खिवनाणं ओद्यो । सेसाणं ओिधभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार-संजदासंजद० । णवरि परिहारवज्जाणं पसत्थपगदीणं तित्थयरं वज्ज० । सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो ।

२८६. असंजदेस आभिणि०दंडओ धीणगिद्धिदंडओ देवगदिसंजुत्तं कादव्वं। सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० सम्मादिष्टि-मिच्छादिष्टिसंजुत्ताओ कादव्वाओ। इत्थि०-णवुंस० ओर्घ।

२६७. अरदि० ज० वं० दोगदि--दोसरीर--दोश्रंगो०--वज्जरि०-दोआणु०-

वादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगितके समान है। नामकर्मकी दोगित, दो शरीर, दो आंगोपांग, यअपंभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थद्धर प्रकृतिका कराचित् यन्य करता है। यदि यन्य करता
है तो जयन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता
है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है।
तैजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ और उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जयन्य
अनुभागका भी वन्य करता है और अजयन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजयन्य
अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क,
उपवात, अस्थिर, अञ्चुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा
अधिक होता है। इस प्रकार जिनका सर्वसंक्तेशसे जयन्य अनुभागवन्य होता है उनकी मुख्यतासे
सिन्नकर्ष पद्धे निद्रयज्ञातिके समान ज्ञानना चाहिए। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्ण चार और उपवातकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष अधिक समान है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके
समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दिष्ठ, क्षायिकसम्यग्दिष्ठ, वेदकसम्यग्दिष्ठ, ज्यशमसम्यग्दिष्ठ और सम्यगिमध्यादिष्ठ जीवोंके ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है उपशमसम्यग्दिष्ठ जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंको
तीर्थक्करप्रकृतिको छोड़कर असंयमप्रायोग्य करना चाहिए।

२६५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग त्रोधके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग त्रविध्वानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामियकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि परिहारिवशुद्धिसंयतोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। सूद्मसान्यरायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

२६६. श्रसंयत जीवोंमें आभिनिवोधिकदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकको देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय श्रोर स्थिर आदि तीन युगलको सम्यग्दृष्टि श्रोर मिध्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए। स्त्रीवेद श्रोर न्युंसकवेदका भङ्ग श्रोघके समान है।

२९७. अरतिके जधन्य अनुसागका वन्य करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गी-

१. श्रा॰ प्रती श्राभिणिदंडश्रो देवगदिवंजुत्तं इति पाठः ।

तित्थ० सिया० ं ु०। सेसं ओवं।

२६८. चक्खु०-अचक्खु० ओघं । किण्णाए आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ णिरयभंगो । सादादिचदुयुग०--अरदि--सोगं असंजदभंगो । इत्थि०--णवुंस० स्रोघं । सेसं णवुंसगभंगो ।

२८६. णील--काऊए पढमदंडओ विदियदंडओ तिदयदंडओ अरिद-सोगदंडओ किण्णभंगो । इत्थि० ज० वं० तिरिक्लोघं । मणुस०--देवगदि--दोआणु० सिया० अर्णतगु० । णबुंस०-थीणगिद्धिदंडओ पंचिदि०दंडओ णिरयोघं ।

३००. वेउव्वि० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-भिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--णिरयगद्अद्वावीसं-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। वेउव्वि०श्रंगो० आदावं तिरिक्तवोघं। सेसं किण्णभंगो।

३०१, तेऊए आभिणि०दंडस्रो परिहार०भंगो । विदियदंडओ ओघं । साद० ज० वं० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--भय--दु०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४ — अगु०४—गदर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु० । थीणगि०३—मिच्छ०- वारसक०-सत्तणोक०-देवगदि-दोसरीर-दोस्रंगो०-देवाणु०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया०

पाङ्ग, वर्ज्ञर्पभनाराचसहनन, दो श्रानुपूर्वी श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। शेप भङ्ग श्रोघके समान है।

२६८. चजुदर्शनी और अचजुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। कृष्णलेश्यामें आभि-निवोधिकज्ञानावरणदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। साता आदि चार युगल, अरित और शोकका भङ्ग असंयतोंके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग स्त्रोघके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

२६६. नील श्रोर कापोत लेश्यामें प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक, तृतीय दण्डक श्रोर श्ररति-शोकदण्डकका भङ्ग छुष्णलेश्याके समान है। स्रीवेदके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग सामान्य तिर्यख्रोंके समान है। मनुष्यगति, देवगति, श्रोर दो श्रानुपूर्वीका कदाचित वन्ध करता है जो श्रजघन्य अनन्तगुणा श्रधिक होता है। नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धिदण्डक श्रोर पद्धे न्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

३००. वैक्रियिकशारीरके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, नरकगित आदि अहाईस प्रकृतियाँ नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियससे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और आतपका भङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। शेष प्रकृतियों का भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है।

३०१. पीतलेश्यामें आभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डक परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। द्वितीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्ध करने वाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अज्ञयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व, वारह कषाय, सात नोकपाय, देवगित, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानु,

अणंतगु० । तिण्णिआड०-दोगदि-दोजादि-छस्संटा०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । एवं असाद०-थिरादितिण्णि-युग० । इत्थि० ज० वं० णीलभंगो । णहुंस०-दोआड० देवभंगो ।

३०२. देवाउ० ज० वं० सादा०-थिर-स्रभ-जस० णि०। तं तु०। मिच्छा-दिहिसंजुत्ता काद्व्या। संसं णि० अणंतगु०।

३०३. देवगदि ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-इत्थि०-अरिद-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। वेडिव्व०-वेडिव्वि० श्रंगो०-देवाणु० णि० । तं तु० । णामाणं सत्थाणभंगो । सेसं सोधम्मभंगो । एवं पम्माए वि० । णवरि णामाणं सहस्सारभंगो । देवगदि०४ तेडभंगो । णवरि पुरिस० धुवं० ।

३०४. सुकाए खिवगाणं ओघं । सादादिचदुयुग० पम्पमंगो । देवगदि०४ पम्पमंगो । सेसं णवगेवज्जभंगो ।

पूर्वी, श्रातप, उद्योत श्रोर तीर्थङ्करका कदाचित वन्य करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। तीन श्रायु, दो गित, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रातुपूर्वी, दो विहायो-गित, त्रस स्थावर, स्थिर श्रादि छह युगल श्रोर दो गोत्रका कदाचित वन्य करता है। यदि वन्य करता है तो जयन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी वन्य करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका वन्य करता तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। इसी प्रकार श्र्यांत सातावेदनीयके समान श्रसातावेदनीय श्रोर स्थिर श्रादि तीन युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। स्रीवेदके जघन्य श्रनुभागका वन्य करनेवाले जीवका भङ्ग नीललेश्याके समान है। नपुंसक्वेद श्रोर दो श्रायुका भङ्ग देवोंके समान है।

३०२. देवायुके लघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजध्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। किन्तु इन्हें मिध्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका नियमसे वन्य करता है तो अजघन्य अननत्गुणा अधिक होता है।

३०३. देवगतिके तथन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, एचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अज्ञधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। विकि-यिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अज्ञधन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अज्ञधन्य अनु-भागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसिक्षकंपके समान है। शेष भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार अर्थात् पीत लेश्याके समान पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें नामकर्मकी प्रकृतियों का भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। तथा देवगितचतुष्कका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। इतनी

३०४. शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रश्नितयोंका भङ्ग श्रोधके समान है। सातावेदनीय श्रादि चार युगलोंका भङ्ग पद्मलेश्यांके समान है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। शेप प्रश्नृतियों का भङ्ग नौयैवेयकके समान है। ३०५. भवसि० ओघं। अवभवसि० आभिणि०ं ओ [मिद्दि०भंगो। णविरि]
तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया०। तं तु०। दोगदि-दोसरीर--दोझंगो०व०ज्जरि-दोआणु०-उज्जो०-उचा० सिया० अणंतगु०। इत्थि०-णवुंस० ओघं। अरदिसोग० मदि०भंगो। उवरि सन्वमोघं।

३०६. सासणे आभिणि० ज० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-पंच-णोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। सादा०-पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगु०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० सिया०। तं तु०। दोगदि--दोसरीर--दोश्रंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगु०। एवमेदाओ एकमेकस्स तं तु०।

३०७. सादा० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दु०--पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४-तस०४-णिमि० णि० अणंतगु०। चदुणोक०-

३०५ भव्योंमें श्रोघके समान भङ्ग हैं । श्रभव्योंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरणदण्डकके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्रका कदाचित वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रज्ञवन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रज्ञवन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत वृद्धिक्प होता है। दो गित, दो शारीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, वल्र्षभनाराच संहनन, दो श्रानुपूर्वी, उद्योत श्रोर उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रज्ञवन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। स्नीवेद श्रोर नपुंसकवेदका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रारित श्रोर शोकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। श्रागेका सब भङ्ग श्रोघके समान है।

३०६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण्के जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण्, नौ दर्शनावरण्, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुक्क, उपघात श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, पञ्चे न्द्रियजाति, तेजस-शरीर, कार्मण्शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध होता है को अजघन्य अनुनतगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका कदाचित् वन्ध होता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रोर अजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गित, दो शरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्यभागताच संहनन, दो श्रानुपूर्वी, उद्योत श्रीर उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध होता है जो अजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इस प्रकार तंतु पतित इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए।

३०७. सातावेदनीयके जघन्य श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

र. ग्रा॰ प्रतौ चन्वमोहं इति पाठः।

तिरिक्तव०३-दोसरीर-दोद्यंगो०-उज्जो० सिया० अणंतग्र० । तिण्णिआउ०-मणुसग०-देवग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-थिरादिइयुग०-उच्चा० सिया० । तं तु० । एवं तंतु पिददाणं सन्वाणं सादभंगो । पंचिदियदंडओ णिरयभंगो । दोआउ० देवभंगो । देवाउ० ओघं ।

३०८. मिच्छादिद्दी० मदि०भंगो । सण्णी० छोघो । असण्णीसु आभिणि-दंढओ देवगदिसंज्ञत्तं० कादव्वं । सेसं तिरिक्खोघं । आहार० ओघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं जहण्णपरत्थाणसिण्णकासो समतो।

१६ भंगविचयपरूवणा

३०६. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुवि०-जह० उकस्सयं च । उक्क० पगदं । तत्थ इमं अद्वपदं मूलपगिदभंगो । एदेण अद्वपदेण दुवि०-ओवे० आदे० । ओवे० सन्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्स० द्यभंगा । तिण्णिआऊणं उक्कस्साणुक्कस्स० सोलसभंगा । एवं ओवभंगो तिरिक्खोवं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्म-इग०--णवंस०--कोधादि०४-मिद०--सुद०--असंजद०--अचक्खु०--तिण्णले०--भवसि०

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अवधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकपाय, तिर्यञ्चगतित्रिक, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो अवधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, मनुष्यगति, देवगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वचन्य अनुभागका भी वन्ध करता है है और अवधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अवधन्य अनुभागवन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तंतु पतित सव प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष सातावेदनीयके समान है। पञ्च निद्रयन्तातिदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग ओवके समान है।

३०८. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। श्रसंज्ञियोंमें श्रामिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डक देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। श्रनाहारक जीवोंमें कार्मणकाय-योगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार जघन्य परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुत्रा ।

१६ भङ्गविचयमरूपणा

३०६. नाना नीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण हैं । उसके विषयमें यह अर्थपद मूलप्रकृतिके समान है । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टअनुमागवन्यके छह भङ्ग हैं। तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके सोलह भङ्ग हैं । इस प्रकार ओघके समान सामान्य तियंक्ष, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी,

अवभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु-देवगदिपंच० उकस्साणुकस्स० सोलस भंगा।

३१०, णेरइएसु-दोआउ० दो वि पदा सोलस भंगा। सेसाणं सन्वपगदीणं दोपदा छभंगा। एवं णिरयभंगो पंचिं०तिरि०अपज्ज० मणुस०३—सन्वदेव०-सन्व-विगलिदि०-पंचि०--तस० तेसि पज्जतापज्जता वादर-वादरपुढवि०-आउ०--तेउ० वाउ०-वादरवणप्पदिपत्तेयपज्जताणं च पंचमण०--पंचवचि०-वेउन्वि०--इत्थि०-पुरिस०--विभंग--आभिण०--सुद०--ओध०--मणपज्ज०-संजद० याव संजदासंजदा० चक्खुदं०-ओधिदं०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-सण्णि ति।

३११. मणुस०अपज्ज०-वेडिव्वयमि०-आहार०-आहार०-आहारमि०-अवगद०सुद्वमसं०--उवसम०--सासण०-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० सोलस भंगा। एइंदिएसु
दोआउ ओघं। सेसाणं उक्कस्साणुक्कस्स० अथिरवंधगा य अवंधगा य। एवं एइंदियभंगो
वादरपुढवि०-आउ०-तेउ०--वाउ०अपज्ज०--सव्ववणप्फिदिवादर-पत्तेय०अपज्ज०--सव्विणयोदाणं सव्वसुहुमाणं च। णवरि एइंदि०-वादरएइंदि० तस्सेव पज्जत्तगेसु उज्जोवं
ओघं। पुढ०- आउ०-तेउ०-वाउ०-वादर-पत्ते० सव्वपगदीणं ओघं।

एवं उकस्सं समत्तं।

क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, श्रमन्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राहारक श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंमें देवगतिपद्धकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्थके सोलह भङ्ग है।

३१०. नारिकयों में दो आयुओं के दोनों ही पदों के सोलह भड़्त हैं। शेष सब प्रकृतियों के दो पदों के छह भड़्त हैं। इसी प्रकार नारिकयों के समान पछ्छे न्द्रिय तिर्ये छ तीन पछ्छे न्द्रिय तिर्ये छ अपर्याप्त, मनुष्यत्रिक, सब देव, सब विकलिन्द्रिय पछ्छे न्द्रिय और बस तथा इन दोनों के पर्याप्त छीर अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर और इन पाँचों के पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, बैकि-यिककाययोगी, खीवेदी, पुरुपवेदी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिव्हानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयतों से लेकर संयतासंयत तकके जीव, चजुदर्शनी, अवधिदर्शनी, तीन लेश्या-वाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, और संज्ञी जीवों के जानना चाहिए।

३११. मनुष्यत्रपर्याप्त, वैक्रियि किमश्रकाययोगी, त्राहारककाययोगी, त्राहारकिमश्रकाययोगी, त्रप्रपातवेदी, सूचमसाम्परायिक संयत, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि स्रोर सम्यग्मिण्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागवन्थके सोलह भङ्ग हैं। एके-न्द्रियोंमें दो त्रायुत्रोंका भङ्ग त्रोवके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्थके वन्थक जीव हैं और अवन्थक जीव हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियोंके समान वादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सब वनस्पति कायिक, वादर प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सब निगोद और सब सूच्म जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें उद्योत अभिवके समान है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक

३१२. जहण्णए पग०। तत्य इमं अद्वपदं मूलपगिद्धभंगो। एदेण अद्वपदेण दुवि०-म्रोघे० आदे०। योघे० सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-छस्संठा०- छस्संघ०-मणुसाणु०--दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयु०--उचा० ज०अज० अत्य वंधगा य अवंधगा य। सेसाणं पगदीणं ज० अज० उकस्सभंगो। एवं ओघभंगो तिरिक्लोघं कायजोगि--ओराल्टिय०--ओराल्टियमि०--कम्मइ०--णवुंस०--कोघादि०४-- मिद्०-मुद्०-असंज०-अचक्खु०--तिण्णिले०-भवसि०-अञ्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०- आहार०-म्रणाहारए ति।

३१३. एइंदिय-वादरएइंदिय-पज्जत्त मणुसाउ०-तिरिक्खगदितिगं ओघं।सेसाणं ज० अज० अत्थि वंधगा य अवंधगा य। वादरएइंदियअपज्ज० सन्वसुहुमाणं वादर-चंदुक्कायअपज्जत्तगाणं सन्ववणप्पदि—वादरपत्तेयअपज्जत्त०—सन्वणियोद० मणुसाउ० ओघं। सेसाणं ज० अज० अत्थि वंध० अवंध०। पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादर-पत्ते ०-वादरपुढवि०-आउ०-तेउ० [वाउ०] धुविगाणं पसत्थापसत्थाणं केसिं च परियत्तीणं च मणुसाउ० ज० अज० उक्कस्सभंगो। सेसाणं ज० अज० अत्थि वंधगा

श्रीर वाद्र प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें सव प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोयके समान है। इस प्रकार उत्कृष्ट समाप्त हुआ।

र्१२ वयन्यका प्रकरण है। उसके विषयमं यह अर्थपद मूल प्रकृतिके समान है। इस अर्थ-पदके अनुसार दो प्रकारका निर्देश है-ओय और आदेश। ओयसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्षायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उचगोत्रके नयन्य और अनयन्य अनुमागवन्यके वन्यक जीव हैं और अवन्यक नीव हैं। शेप प्रकृतियोंके नयन्य और अनयन्य अनुमागवन्यका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार ओयके समान सामान्य तिर्यक्ष, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिध्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके नानना चाहिए।

३१३. एकेन्द्रिय, वाद्र एकेन्द्रिय और वाद्र एकेन्द्रिय पर्याप्त तीवोंमें मनुष्यायु और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग त्र्योवके समान है। शेप श्रक्तियोंके त्रधन्य और अलघन्य अनुभागके वन्यक
तीव हैं और अवन्यक जीव हैं। वाद्र एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब सुद्दम, वाद्र चार कायवाले अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, वाद्र प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त और सब निगोद तीवोंमें
मनुष्यायुका भङ्ग ओवके समान है। शेप प्रकृतियोंके त्रधन्य और अलघन्य अनुभागके वन्धक
तीव हैं और अवन्यक तीव हैं। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक,
वाद्र प्रत्येक वनस्पतिकायिक, वाद्र प्रथिवीकायिक, वाद्र जलकायिक, वाद्र अग्निकायिक
और वाद्र वायुकायिक तीवोंमें प्रशस्त और अप्रशस्त ध्रुववन्ध्याली, कितनी ही प्रावर्तमान
प्रकृतियाँ और मनुष्यायुके त्रधन्य और अज्ञवन्य अनुभागक वन्धक तीव हैं और अवन्धक तीव हैं।

१. भा० प्रती श्रज्ञ० गारिय इति पाठः । २. श्रा० प्रती तेउ० बादरपत्ते० इति पाठः ।

य अवंधगा य । वाद्रपज्जताणं उकस्सभंगो । संसाणं णेरइगादीणं याव अणाहारगे ति उकस्सभंगो ।

एवं भंगविचयं समतं ।

१७ भागाभागपरूवणा

३१४, भागाभागं दुवि०-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउवित्रयछ०-तित्थ० उक्कस्सअणुभागवंधगा जीवा सव्वजीवाणं केविडियो भागो ? असंखेज्जिदभागो । अणुक० अणुभागवं० जीवा० सव्वजीवाणं केवै० भागो ? असंखेज्जा भागा । आहारदुगं उक्क० अणुभागवंध० सव्यजी० केव० ? संखेज्ज० । अणु० संखेज्जा भागा । सेसाणं उक्क० केव० ? अणंतभा० । अणु० केव० ? अणंता भागा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि०--ओरालि०-ओरालियमि०--कम्मइ०-णवंस०-कोधादि०४-मिद०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अञ्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारणसु देवगदिपंचग० आहारसरीरभंगो । किण्ण-णीलाणं तित्थ० आहार०भंगो । एवं ओरालिय० इत्थ०वं० । णिरएस सन्वपगदीणं उक्क० असंखेज्जिदि० । अणु० असंखेज्जा

बादर पर्याप्त जीवोंका भङ्ग रुख्छिके समान है। शेष नारिकयोंसे लेकर खनाहारक तकके जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१७ भागाभागप्ररूपणा

३१४. भागाभाग दो प्रकारका है-जघन्य छोर उत्हुछ। उत्हुछका प्रकरण है। उसकी छपेना निर्देश दो प्रकारका है-छोय और छादेश। छोयसे तीन छायु, चैकियिक छह और तीर्यहुर उत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं १ असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। अनुत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं १ असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। आहारकहिकके उत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं १ संख्यात वें भागप्रमाण हैं। अनुत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव संख्यात वहुभागप्रमाण हैं। अनुत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव संख्यात वहुभागप्रमाण हैं। अनुत्हुछ अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं १ अनुतहुछ अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ अनुतहुष्ठ जीवोंके जानना पादिए। इतनी विशेषता है कि खोदारिक समान है। एएए और नीनलेटश्यामें सीर्यहुष्ठ प्रहतिका भन्न आहारक शरीरके समान है। एसी प्रकार खीदारिक नाम्धण जीवोंने सीवेदिक प्रमुख जीवोंका भन्न आहारक शरीरके समान है। एसी प्रकार खीदारिक नाम्धण अनुतान विशेष समान है। नामिक्योंने सम्बार खीदारिक नाम्धण अनुतान विशेष समान है। नामिक्योंने समान है। नामिक्योंने नामिक्योंने नामिक्योंने समान है। नामिक्योंने सम्बार खीदारिक नाम्धण अनुताने विशेष सम्बार जीवोंने सामिक्योंने सा

१. सा० प्रती एपं भागामानं चमचे इति पाठी नास्ति। २. सा० सा० प्रत्योः शीपार्यं इति पाठः। १. सा० प्रती सत्यवीपे० केप० इति पाठः। ४. सा० प्रती ध्यमंत्रमामा इति पाठः।

भागा। णवरि मणुसाउ० आहारभंगो। एवं सेसाणं पि ओघेण साधेद्व्यं। एवं ए असंखेजजीविगा ते देवगदिभंगो। ए संखेजजीविगा ते आहार०भंगो। एइंदिय-वणप्फदि०-णियोदेसु तिरिक्खाउँ० ओघं। एइंदिए उज्जो० उ० अणंतभागा। अणु० अणंता भागा। सेसाणं णिर्यभंगो।

३१५. जहण्णए पगदं । दुवि०-आघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्ख०--पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०झंगो ०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अग्र०४-आदोष०-तस०४--णिमि०-णीचा०पंचंत० जह० अणुभा० सव्वजी० केव० १ अणंतभा० । अज० अणंता भा ० । सादासाद०-चदुआए०-तिण्णिगदि-चदुजादि--इस्संदा०--इस्संघ०--तिण्णिआणु०--दोविहा०थावरादि४-थिरादिइयुग०--उच्चा०--वेउव्व०--वेउव्व०-चंपवि०-आंगो०--तित्थ० ज० असंखेज्जदिभा० । अज० असंखेज्जा भागा । आहारदुगं उक्कस्सभंगो । एवं ओघभंगो
तिरिक्खोचं कायजो०-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४--मदि०सुद्०-असंज०--अचक्खु०--तिण्णिले०-भविरा०--अव्यवसि०---मिच्छादि०-असण्ण०-

हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात वहुभागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। इसी प्रकार शेष मार्गणाओं में भी ओघके अनुसार साध लेना चाहिए। इसी प्रकार जो असंख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं उनमें देवगतिके समान भङ्ग है और जो संख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग है। एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें तिर्यञ्चायुका भङ्ग ओघके समान है। एकेन्द्रियोंमें च्योतके चत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्त वहुभागप्रमाण हैं। शेष प्रकृतियोंक। भङ्ग नारिकयोंके समान है।

३१५. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-आंघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, तिर्यञ्चगित, पञ्चे निर्वयज्ञाति, अौदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागके वन्यक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। अन्तरत्वें भागप्रमाण हैं। अन्तयन्य अनुभागके वन्यक जीव अन्तत्व वहुभागप्रमाण हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, तीन गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल, उच्चगोत्र, विकियकशरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जयन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। आहारकद्विकका भंग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकायोगी नपुंसकवेदी, कोवादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताङ्गानी, असंयत, अचजुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिध्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहरिक जीवोंके जानना चाहिए।

१. स्रा॰ प्रतो पि साधेदत्वं इति पाठः । २. स्रा॰ प्रतो वर्गण्यदि॰ तिरिक्लाउ॰ इति पाठः । ३. ता॰ स्रा॰ प्रत्योः स्रग्तमागा इति पाठः । ४. स्रा॰ प्रतो पचि॰ स्रोरालि॰ स्रंगो इति पाठः । ५. ता॰ स्रा॰ प्रत्योः स्रग्तमा॰ इति पाठः ।

आहार०-अणाहारगं ति । णवरि ओराछि०-ओराछियमि०--इत्थिवे०-किण्ण--णीछ०-चवसम० तित्थ० ज० अर्जं० आहार०भंगो । ओराछियमि०-कम्मइ०--अणहार० देव-गदिपंचगं उक्कस्सभंगो । सेसाणं णिरयादि याव सण्णि ति अप्पप्पणो उक्कस्सभंगो संखेज्जजीविगाणं असंखेज्जजीविगाणं अणंतजीविगाणं च । णवरि एइंदिएसु तिरिक्ख-गदितिगं ओयं । सेसं णिरयोधं । अवगद०-सुहुमसंप० ज० अज० आहार०भंगो ।

एवं भागाभागं समत्तं ।

१= परिमाणपरूव ा

३१६. परिमाणं दुवि०-जह० उक्क० | उक्क० पगदं | दुवि०-ओघे० आदे० | ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगिद-चदुजादि- ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि० ग्रंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०-आदावै०-अप्पसत्थि० -- थावरादि४—अथिरादिछ० -- णीचा० -- पंचंत० उक्कस्सअणुभागवंधगा केत्तिया ? असंखेजा । अणुक्क० अणुभा०वं० के० ? अणंता । साद०-तिरिक्खाउ०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४—अगु०३-पसत्थव०-तस०४-थिरादिछ०-णिर-णिम०-उच्चा० उक्कस्स० संखेजा० । अणु० अणंता । णिरयाउ०-णिरयगदि०-णिर-

इतनी विशेषता है कि श्रौदारिककाययोगी, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, स्नीवेदी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले श्रौर उपरामसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका भंग श्राहारकशरीरके समान है। श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रौर श्रनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष नरकगितसे लेकर संज्ञी तककी संख्यात जीवोंवाली, श्रमंख्यात जीवोंवाली और श्रनन्त जीवोंवाली मार्गणाश्रोंमें श्रपने श्रपने उत्कृष्ट के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगितित्रिकका भंग ओवके समान है। श्रोप सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रपगतवेदवाले श्रौर सूत्त्मसाम्पराय संयत जीवोंमें जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका भंग श्राहारकशरीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

१८ परिमाणप्ररूपणा

३१६. परिमाण दो प्रकारका है जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकार का है-स्राय और आदेश । स्रोधसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, दो गित, चार जाति, स्रोदारिकश्रारीर, पाँच संस्थान, स्रोदारिक आंगो-पांग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपधात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, स्थायर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सातावेदनीय, तिर्यक्षायु, पख्ने न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणश्रीर समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलध्रात्रक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, हिथर आदि छह, निर्माण और

१. ग्रा॰ प्रतौ तित्य॰ ग्रज॰ इति पठः । २. ता॰ प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाठो नास्ति । . २. ग्रा॰ प्रतौ त्रादाव॰ इति पाठः ।

या ० उक्क० अणु० असंखेळा । दोआउ०-देवग०-[वेडिव्व०-] वेडिव्व०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० उ० संखेळा। अणु० असंखेळा। आहारदुगं उक्क० अणु० संखेळा। एवं त्रोघभंगो कायजोगि-ओरालि०--णवुंस०-कोधादि०४-यदि०--सुद०--असंज०-अचक्खु०-भवसि०-अवभवसि०-मिच्छा०-आहारग ति। णवरि ओरालि० तित्थ० उक्क० अणुक्क० संखेळा।

३१७. णेरइएसु मणुसाउ० उक्क० अणुक्क० केत्तिया ? संखेळा । सेसाणं उक्क० अणुक्क० असंखेळा । एवं सञ्चणेरइगाणं ।

उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने-वाले जीव अनन्त हैं। नरकायु, नरकगित और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग का वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। दो आयु, देवगित, वैक्षियिकशारीर, वैक्षियिक आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आहारकिष्ठक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इस प्रकार खोवके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचनुदर्शनी, भन्य, अभन्य, मिध्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिक-काययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए यहाँ इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं, इसलिए ये असंख्यात कहे हैं। तथा दो आयु आदि दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं यह स्पष्ट ही है। यह सब संख्या उत्कृष्ट अनुभागका क्या करनेवाले जीव संख्यात हैं यह स्पष्ट ही है। यह सब संख्या उत्कृष्ट अनुभागका स्वामित्व और तत्तत् प्रकृतिके बन्धक जीवोंका विचार करके कही गई है। आगो ऐसी मार्गणाएँ गिनाई हैं जिनमें यह आध्यक्षपणा अविकल वन जाती है। उनमें एक मार्गणा औदारिककाययोग भी है। परन्तु इस मार्गणामें तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्ध पर्याप्त मनुष्य ही करते हैं और उनका परिमाण संख्यात हैं, इसलिए औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं।

३१७. नारिकयोंमें मनुष्यायुके दत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारिकयोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी जीव यदि सनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तो गर्भज मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनमें मनुष्यायुके उत्हृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे ३१८. तिरिक्खेसु णिर्याउ०-वेडिव्यळ० उक्क० अणु० असंखेजा । तिण्णि-आउ० [ग्रोघं |] सेसाणं उ० असंखेजा । अणु० अणंता । पंचि०तिरि०३ तिण्णि-ग्राउ० उ० संखेजा । अणु० असंखेजा । सेसाणं उ० अणु० असंखेजा । पंचि०-तिरि०अपज्ज० मणुसाउ० उ० संखेजा । अणु० असंखेजा । सेसाणं उक्क० ग्रणुक्क० के०? [अ०-] संखेजा । एवं सन्वअपज्जत्ताणं [पंचिदिय०-]तसाणं सन्वित्रगिलंदियाणं सन्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०--वादरपत्तेगसरीराणं च । णवरि तेउ-वाऊणं मणुस-गदिचदुक्कं णित्थ ।

३१६. मणुसंसु दोआड०--वेडिवयछ०--आहारहु०--तित्थ० एक० अणुक० संखेजा। सेसाणं ७० संखेजा। अणु० असंखेजा। मणुसप०-मणुसिणीसु सन्व-पगदीणं [उक्क०] अणु० संखेजा।

३२०. देवाणं णिरयभंगो याव अपराजिता ति । सन्बहे सन्वपगदीणं ७०

हैं। शेष कथन सुमम है।

३१८. तिर्यंख्रोंमं नरकायु श्रीर वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट श्रीर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका वन्ध करनेवाले जीव श्रमंख्यात हैं। तीन श्रायुश्रोंका भङ्ग श्रोघके समान है श्रीर श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रानुभागका वन्ध करनेवाले जीव श्रमंख्यात हैं तथा श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका वन्ध करनेवाले जीव श्रमन्त हैं। पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चित्रकमें तीन श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव श्रमंख्यात हैं। पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। पश्चे न्द्रिय तिर्यञ्च श्रपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्रेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव कितने हें? श्रमंख्यात हैं। इसी प्रकार सब श्रपर्याप्त, पञ्चे न्द्रिय श्रपर्याप्त, तस श्रपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब श्रानिकायिक, सब वायुकायिक श्रीर सब वादर प्रत्येकशरीर जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रानिकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतिचतुष्कका वन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—श्रोवसे देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। किन्तु ति ोंके वह संयतासंयतके होगा श्रोर इनका परिणाम श्रसंख्यात है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्जोंमें नरकायु श्रादिके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात कहे हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३१९. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिक लह, आहारकद्विक और तीर्थक्करके उत्कृष्ट और अनु-त्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। शोप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्ध जीव असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें नरकायु, देवायु, वैक्रियिक छह, श्राहारकद्विक श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध श्रपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनका दोनों प्रकारका परिमाण संख्यात कहा है। शेप स्पष्ट ही है।

३२०. देवोंमें अपराजित तक नारिकयोंके समान भङ्ग है। सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियोंके

१. त्रा॰ प्रतौ संखेजा॰ इति पाठः।

अणु० संखेजा !

३२१, एइंदिय--सन्ववणप्फिदि--णियोदाणं तिरिक्खाड० ड० असंखेजा। अणु० अणंता। यणुसाड० ओघं। सेसाणं उक्क० अणु० अणंता। णवरि एइंदि०-उज्जो० ओघं।

३२२. पंचि०-तस०२ साद्ग्-तिण्णिञ्चाड०-देवगदि-पंचि०-वेड०-तेजा०-क०-समचदु०-वेड०ञ्चंगो०-पसत्थव०४-देवाणु०--ञ्चगु०३-पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उचा० उँ० संखेज्जा। अणु० असंखेज्जा। संसाणं ड० अणु० असंखेज्जा। आहारदुगं ओद्यं। एवं एस भंगो पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खदं०-सण्णि ति। णवरि इत्थि० तित्थ० उक्क० अणु० संखेज्जा।

चत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेपार्थ—अपरानित तक प्रत्येक स्थानमें देवोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए वहाँ तक नहाँ नितनी प्रकृतियोंका वन्ध होता है उनकी अपेक्षा नारिकयोंके समान मंग वननेमें कोई वाधा नहीं आती। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३२१. एकेन्द्रिय, सत्र वनस्पति और निगोद जीवोंमें तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्त हैं। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली होकर भी इनमें तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले सर्वविद्युद्ध जीव होते हैं जिनका प्रमाण असंख्यातसे अधिक नहीं होता, क्योंकि एकेन्द्रियोंके सिवा शेष तिर्यक्ष्य ही असंख्यात हैं, इसलिए इनमें तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले संख्यात जीवोंका कारण जानना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र तथा अन्य प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्वामित्वकी जो विशेषता कही है उसके अनुसार यह प्रकरण दृष्टव्य है। स्वामित्व सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताऐं भी ध्यान देने योग्य हैं।

३२२. पञ्चे न्द्रिय, पञ्चे न्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवों के सातावेदनीय, तीन आयु, देवगित, पञ्चे न्द्रियजाति, वैक्रियिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्तसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघृत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थेङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात
हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं । शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं । आहारकदिकका भङ्ग आधिक समान है । इसी प्रकार यह भङ्ग पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्नीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चजुदर्शनी और संज्ञी जीवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्नीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थद्धर प्रकृतिका वन्य करनेवाले जीव मनुष्योंमें ही होते हैं, इसिलए इनमें उसके दोनों प्रकारके अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। शेष कथन सुगम है।

रै. ता॰ त्रा॰ प्रत्यो: चादि॰ इति पाठः । २. ग्रा॰ प्रतौ तित्य॰ उ० इति पाठः ।

३२३. ओरालियमि० दोआउ० एइंदियभंगो । देवगदिपंचगः उ० अणु० संखेजा । सेसाणं उ० अणु० ओघं । एवं कम्मइग०-अणाहार० । वेउव्वि० देवोघं । एवं चेव वेउव्वियमिस्स०। णवरि तित्थ० उक्क० अणु० संखेजा । आहार०-आहारमि० सव्वद्वभंगो । एवं अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सा इ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम० ।

३२४. त्राभिणि-सुद्-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०--असादा०--वारसक०-सत्त-णोक०-मणुस०-ओरा०-ओरा०त्रंगो०-वज्जिर०-ग्रप्पसत्थ०४ -मणुसाणु०-उप०-अथिर-असुभ०-अजस०-पंचंत० उ० अणु० त्र्रसंखेज्जा। सेसाणं उ० संखेज्जा। त्र्रणु० असंखेज्जा। णविर मणुसाउ०-आहारदुगं उ० अणु० संखेज्जा। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०--वेदगस०--उवसम०। णविर सन्वाणं मणुसाउ० उ० ग्रणु० संखेज्जा। खइगस० दोआउ० उ० अणु ० संखेज्जा। उवसम० ग्राहारदुगं तिथं० उ०

३२३. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें दो श्रायुश्रोंका भद्ग एकेन्द्रियोंके ान है। देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। शेप श्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रोधके समान है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समानके भद्ग है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वाथसिद्धिके समान भद्ग है। इसी प्रकार श्रपगतवेदी, मनः-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविश्चिद्धसंयत श्रीर सूद्मसाम्पराय संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशोपार्थ—नो सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं उनके अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। इसी प्रकार तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्य करनेवाले जो मनुष्य देवों और नारिकयों में उत्पन्न होते हैं उन्हींके वैक्रियिक-मिश्रकाययोगमें तीर्थकर प्रकृतिका वन्य होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। शोप कथन स्पष्ट ही है।

३२४. श्राभिनीवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रोर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रसातावदनीय, वारह कपाय, सात नोकपाय, मनुष्यगित, श्रोदारिकशरीर, श्रोदारिक श्रागेपांग, वर्ज्ञपभनराच संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रस्थिर, श्रागुभ, श्रयशाकीर्ति श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायु श्रोर श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। इतनी विशेषता हैं। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सन्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसन्यग्दृष्टि, वेदकसन्यग्दृष्टि श्रोर उपश्मसन्यग्दृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए। इतनी विशोषता है कि इन सबमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। क्षायिक सन्यग्दृष्टि जीवोंके दो श्रायुक्रोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। क्षायिक सन्यग्दृष्टि जीवोंके दो श्रायुक्रोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं तथा उपशाससन्यग्दृष्टि

श्रा॰ प्रती दोश्राउ॰ श्रागु॰ इति पाटः । होत्र विकास करा ।

अणु० संखेजा।

३२५ संजदासंजदेमु सादादीणं उक्क० संखेजा। अणु० ग्रसंखेजा। तित्थ० मणुसि०भंगो। सेसाणं उ० त्रणु० असंखेजा।

३२६. किण्ण०-णील० चढुआड०-वेडिव्वयद्य० ओघं। तित्य० मणुसि०भंगो। सेसाणं उक्क० असंखेजा। अणु० अर्णता। एवं काऊए पि। णवरि तित्य० उ० अणु० असंखेजा।

३२७. तेऊए सादादीणं तिणियाड० देवगदिपसत्थाणं तित्य० उचा० उ० संखेजा। त्रणु० त्रसंखेजा। सेसाणं उ० अणु ० त्रसंखेजा०। एवं पम्माए। सुकाए

जीवोंमें आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीव संख्यात हैं।

विशेपार्थ—गर्भज मनुष्य संख्यात हैं और इन्होंमें आहारकद्विकका वन्य होता है, इसलिए आभितिवोधिकज्ञानी आदिमें मनुष्यायु और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। आगे अवधिदर्शनी आदि मार्गणाओं में भी इन प्रकृतियों के सम्यन्य में इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ मनुष्य करते हैं और ये ही चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुके समान देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। तथा जो मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं या ऐसे जीव मर कर देव होते हैं उनमेंसे ही तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्य करनेवाले होते हैं अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि नहीं, अतः इनमें आहारकद्विकके समान तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं। शेप व्ययन सुगम है।

३२५. संवतासंयत जीवोंमें सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं।

विशेपार्थ—जो मनुष्य संयतासंयत होते हैं उनमें ही कुछ तीर्थद्धर प्रकृतिका वन्ध करते हैं, श्रातः यहाँ तीर्थद्धर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शोप कथन स्पष्ट ही है।

३२६. कृष्ण और नील लेश्यामें चार आयु और वैक्रियिक छहका भङ्ग आघके समान है। तीर्यह्मर प्रकृतिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शोप प्रकृतियोंके उत्स्रष्ट अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव अमन्त हैं। इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें तीर्थह्मर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात हैं।

विशेषायं—जो नारकी कृष्ण और नील लेश्यावाले होते हैं उनमें नरकायु, देवायु और विकियिक छहका वन्य नहीं होता, इसलिए यह प्रक्षपणा श्रोयके समान वन जाती है। तथा इन लेश्याश्रोंमें नरकमें तीर्थकर प्रकृतिका वन्य नहीं होता, श्रतः यहाँ तीर्थक्कर प्रकृतिका मंग मर्नुष्य-नियोंके समान कहा है। मात्र कापोत लेश्यामें नरकमें भी इसका वन्य होता है, इसलिए इस लेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात कहे हैं। श्रेष क्यन सुगम है।

३२७. पीतलेरयामें सातावेदनीय, तीन श्रायु, देवगति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियाँ तीर्थङ्कर श्रीर च्चगोत्रके च्ट्रुप्ट श्रनुमागके वन्यक जीव संख्यात हैं। श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागके वन्यक जीव श्रसंख्यात

१. ता॰ प्रती सेसार्ग श्रागु॰ इति पाठः।

खड्गाणं पंचिद्यभंगो । दोआउ० मणुसि०भंगो । सेसाणं आणदभंगो । आहारदुगं ओघं ।

३२८. अञ्भवसि० णिरयाउ०-वेउ०छ० उ० ऋणु० असंखेजा । तिण्णिआउ० ओघं। सेसाणं उ० ऋसंखेजा। अणु० ऋणंता। सासणे दोआउ० उ० ेे जा। अणु० असंखेजा। मणुसाड० मणुसि०भंगो। सेसाणं ड० अणु० असंखेजा। सम्मामि० सन्वपगदीणं ७० अणु० असंखेजा । असण्णीसु दोत्राउ०-वेउन्वियछ० **७० अणु० असंखे**ज्ञा । मणुसाउ० ग्रोघं । सेसाणं उ० असंखेज्ञा । अणु० अणंता ।

्एवं उक्कस्सं परिमाणं समत्तं ।

३२६. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अणु० केत्तिया ? चदुजादि-छस्संटा०-छस्संघ०-मणुसाणु ०- दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछ०-उचा०

हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। छुक्ललेश्यामें चायिक प्रकृतियोंका भंग पछ्चे निद्रयों-के समान है। दो आयुत्रोंका भंग सनुष्यिनियोंके समान है। शेप प्रकृतियोंका भंग आनत कल्पके समान है। श्राहारकद्विकका भंग श्रोधके समान है।

विशेपार्थ—शुक्ललेश्यामें मनुष्यायुका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य श्रसंयतसम्यग्दृष्टि देव श्रीर देवायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्य अप्रमत्तसंयत मनुष्य करता है। इसी प्रकार इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागके वन्धक भी संख्यात हैं, इसलिए इनका भंग मनुष्यिनियोंके समान कहा है। शेप कथन सुगम हैं।

३२= श्रभन्योंमें नरकाय श्रौर वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। तीन आयुओंका भङ्ग खोचके समान है। शेष प्रकृषियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अनन्त हैं। सासादनसम्यन्द्रष्टि जीवोंमें दो आयुत्रोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यायुका भंग मनुष्यिनियोंने समान है। शेष प्रकृतियोंने उत्कृष्ट श्रीर श्रनुस्टृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। श्रसंज्ञी जीवोंमें दो श्रायु श्रीर वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट ख्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव अं यात हैं। मनुष्यायुका भंग ख्रोधके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव अनन्त हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

३२६. जवन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-स्रोघ स्रोर स्रादेश। स्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजधन्य अनुभागके वन्यक जीव कितने हैं ? श्रनन्त हैं। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यक्रायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर स्रादि चार, स्थिर

१. ता॰ प्रती एवं उकस्वं परिमार्गं समत्तं इति पाठो नास्ति । २. ता॰ प्रती मगुसाउ इति पाठ: ।

जे॰ अज॰ अणंता । इत्थि॰ णवुंस॰ - तिरि॰ - पंचिदि॰ - ओरा॰ - तेजा॰ - क॰ - ओरा॰ - अगो॰ - पसत्थव॰ ४ - तिरिक्खाणु॰ - अगु॰ ३ - आदाउजो॰ - तस०४ - णिमि॰ - णीचागो॰ ज॰ असंखेजां । अज॰ अणंता। तिण्णिआउग॰ - वेडिक्यछ० ज॰ अज॰ असंखेजां । आहारदुगं ज॰ अज॰ संखेजा। तित्थ॰ ज॰ संखेजा। अज॰ असंखेजा। एवं ओघभंगो कायजोगि - ओरालि॰ - णवुंस॰ - कोधादि॰ ४ - अचक्खु॰ - भवसि॰ - आहारए ति। णविर औरालि॰ [तित्थ॰] ज॰ अज॰ संखेजा।

श्रादि छह श्रीर टचगोत्रके लघन्य श्रीर श्रलघन्य श्रनुभागके वन्धक लीव श्रनन्त हैं। स्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगित, पञ्चे न्द्रियलाति, श्रीदारिकशरीर, तैलसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्रांगोपांग, प्रशस्त वर्णच्तुप्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरूलघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, त्रसचलुष्क, निर्माण और नीचगोत्रके लघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। तीन श्रायु श्रीर वैक्रियिक छहके लघन्य और श्रलघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। तीन श्रायु श्रीर वैक्रियिक छहके लघन्य और श्रलघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। श्राहारकदिकके लघन्य श्रीर श्रलघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। तीर्यङ्कर प्रश्नतिके लघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार श्रोचके समान काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले श्रचजुदर्शनी, भव्य और श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्यङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रीर श्रलघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेपार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिमें से कुछ का ज्ञवन्य अनुभागवन्य ज्ञपकश्रेणिमें होता है, स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुवन्धी चारका जवन्य श्रनुभागवन्ध संयमके श्रभिमुख हुए मिथ्यादृष्टिके होता है। आठ कपायोंका जघन्य अनुभागवन्य भी संयमके अभिमुख हुए अविरत-सम्यादृष्टि ख्रौर संयतासंयतके होता है। अरित ख्रौर शोकका जवन्य ख्रनुभागवन्ध प्रमत्तसंयतके होता है। यतः इन प्रकृतियोंके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं अतः ये संख्यात कहे हैं। इनके श्रवचन्य अनुभागके वन्वक नीव अनन्त हैं यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदिका जयन्य अनुभागवन्य चारों गतिके जीव करते हैं और तिर्यद्यायु और तीन जातिका जघन्य अनु-भागवन्य तिर्चेख्य श्रीर मनुष्य तथा एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका जघन्य श्रनुभागवन्य तीन गतिके नीव करते हैं। ये वन्ध करनेवाले नीव अनन्त हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके नघन्य श्रीर श्रज-घन्य श्रतुभ।गके वन्धक कीव श्रनन्त कहे हैं। स्त्रीवेद आदिका जघन्य अनुभागवन्ध यथायोग्य संज्ञी पख्ने न्द्रिय जीव ही करते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीव अनन्त कहे हैं। तीन आयु आदिके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव पञ्चे न्द्रिय हैं सात्र मनुष्यायुके विषयमें यह नियम नहीं है, पर मनुष्य ऋसंख्यात होते हैं, इसलिए इनके वन्धक भी असंख्यात ही होंगे, इसलिए इनके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात कहे हैं। आहारकद्विकक्षे जवन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं यह स्पष्ट ही हैं। तीर्थद्धर प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्य मनुष्य ही करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके वन्यक जीव संख्यात और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात कहे हैं। यह श्रोव प्ररूपणा काययोगी श्रादि मार्गणाश्रोंमें घटित हो जाती है इसलिए उनकी प्ररूपणा श्रोघके समान कही है। मात्र श्रोदारिककाययोगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्य गर्भज मनुष्य

१. श्रा॰ प्रतौ यिरादिछ॰ उद्घ॰ उद्घा॰ ज॰ इति पाठः। २. श्रा॰ प्रतौ संखेजा इति पाठः। ३. श्रा॰ प्रतौ ज॰ श्रमंखेजा इति पाठः।

३३०. णेरइग-सन्वदेवाणं ज० अज० उक्करसभंगो । तिरिक्ते साददंडओ तिण्णिआउ०--वेउन्वियञ्च० ओघं । सेसाणं ज० असंखेज्जा । अज० अणंता । सन्व-पंचिदिय तिरि० सन्वपग० ज० अज० असंखेज्जा । एवं सन्वअपज्ज०-सन्वविगिलिदि०-सन्वपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरपत्ते० ।

३३१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओराहि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—श्रादण्ड्जो०-तस०४— णिमि०--पंचंत० ज० संखेजा । श्रज० असंखेजा । सादासाद०--दोआण०--दोगदि-चदुजा०-छस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०--थावरादि०४—थिरादिछ्यु ०-दोगो० ज० श्रज० श्रसंखेजा । दोआण०-वेणिवयछ०-आहोरदुग-तित्थ० ज० अज० संखेजा । मणुसज्जत्त-मणुसिणीसु सन्वपग० ज० अज० एकस्सभंगो।

३३२. एइंदिएसु तिरिक्ख-मणुसाउ०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० अज० ओद्यं । सेसाणं ज० अज० अणंता । वणप्फदि-णियोदाणं मणुसाउ०-तिरिक्ख०-

ही करते हैं श्रौर वे संख्यात हैं, श्रतः इस योगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनु-भागके वन्यक जीव संख्यात कहे हैं ।

३३०. नारिकयों और सब देवोंमें सब प्रकृतियोंके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका भङ्ग उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान है। तियञ्जोंमें सातावेदनीयदण्डक, तीन आयु और वैक्रियिकछहका भङ्ग ओवके समान है। शेष प्रकृतियोंके जवन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात हैं और अजवन्य अनुभागके वन्यक जीव अनन्त हैं। सब ेन्द्रिय तिर्यञ्जोंमें सब प्रकृतियोंके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्यक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार अपर्यात, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, वायुकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

३३१ मनुष्यों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, पश्चे न्द्रियज्ञाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रार्मित वर्णचतुष्क, श्रार्मित वर्णचतुष्क, श्रार्मित वर्णचत्र क्रियात हैं। श्रां व्याप्त क्रियात हैं। श्रां वर्ण्यक जीव श्रां स्थात हैं। स्थातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, दो आयु, दो गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रामुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर श्रादि चार, स्थिर श्रादि छह युगल श्रीर दो गोत्रके ज्ञयन्य श्रीर श्राच्यात हैं। दो श्रायु, वैकियिक छह, श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थेङ्करके ज्ञयन्य श्रीर श्राज्ञवन्य श्रमुभागके वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियोंमें सत्र प्रकृतियोंके ज्ञयन्य श्रीर श्राज्ञवन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका भंग उत्कृष्टके समान है।

२२२. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका भंग श्रोषके समान है। रोप प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रनन्त हैं। वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद जीवोंमें मनुष्यायु, तिर्यञ्च-

१. ता० प्रतो थावरादि० थिरादिछुयु० इति पाठः। २. ता० श्रा० प्रत्योः श्रमंखेजा० इति पाठः।

तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० अज० ओघं । सेसाणं ज० अज० अणंता । पंचि०-तस०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-तित्थय०-पंचंत० ज० संखेज्जा । अज० असंखेज्जा । आहारदुगं ओघं । सेसाणं ज० अज० असंखेज्जा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

३३३. ओरालियमि० पंचणा०-छदंसणा०--वारसक०--अप्पसत्य०४-उप०पंचंत० ज० संखेजा। अज० अणंता। मणुसाउ० ओघं। देवगदिपंचगस्स उक्तस्सभंगो। संसाणं ओरालियकायजोगिभंगो। वेउिव्व०-वेउिव्यिम०-आहार०-आहारमि०
उक्तस्सभंगो। कम्मइ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ-०सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०पंचि०--ओरा०-तेजा०-क०--ओरा०झंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अग्र०४आदाउज्जो०-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० असंख०। अज० अणंता। देवगदिपंचगं उक्तस्सभंगो। सेसाणं सादादीणं ज० अज० अणंता।

३३४. अवगद०--मणपज्जव०-संजद्--सामाइ०-छेदो०--परिहार० - सुहुमसंप० उक्तस्सभंगो ।

गति, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका भंग श्रोघके समान है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रननत हैं। पद्धे न्द्रिय, पद्धे निद्रय प्राप्ति, त्रस श्रौर त्रसपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह केपाय, सात नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थह्वर श्रौर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्रज्ञवन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्राहारकद्विकका भंग श्रोघके समान है। शेप प्रकृतियोंके जवन्य श्रौर श्रज्ञवन्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्नीवेदी, पुरुपवेदी, विभंगज्ञानी, चज्जदर्शनी श्रौर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

३३३. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके ज्ञान्य श्रनुभागके वन्यक जीव संख्यात हैं। श्राव्यान्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रन्त हैं। मनुष्यायुका भंग श्रायके समान है। देवगतिपञ्चकका भंग उत्हृष्टके समान है। श्रेप प्रकृतियोंका भंग श्रीदारिककाययोगी जीवोंके समान है। वैक्रियककाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्हृष्टके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्च न्द्रियज्ञाति, श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, श्रीदारिक श्रांगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुल्लायुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके ज्ञान्य श्रनुभाग के वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। श्रज्ञान्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्रमन्त हैं। देवगतिपञ्चकका भङ्ग उत्हृष्टके समान है। शेष विदनीय श्रादिके ज्ञान्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्रमन्त हैं।

३३४. श्रपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

१. ता० प्रतौ -िण्योदाणं मगुसाउ० त्रोघं इति पाटः । २. ता० प्रतौ ज० ग्रणंता इति पाटः ।

३३५. मदि-सुद् पंचणाणावरणादिदंडओ सादादिदंडओ पंचिदियदंडओ ओघं। णविर अरिद-सोग जि असंखेडजा। अजि अणंता। एवमसंजदा मिच्छा-दिहि ति । आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०-सत्तणोक०-अप्प-सत्थ०४-एप०-तित्थ०-पंचंत० जि के० १ संखेडजा। अजि० असंखेडजा। मणुसाए०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। सेसाणं जि० अजि० असंखेडजा। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइ्ग०-वेद्ग०-उवसम०। णविर खइ्गे दोआउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो। उवसम० तित्थ० उक्कस्सभंगो। संजदासंजदे तित्थ० मणुसि०भंगो। सेसाणं ओधिभंगो।

३३६. किण्ण०-णील०-काउ० तिरिक्लोघं । णविर तित्थ० मणुसि०भंगो । काऊए णिरयभंगो । तेऊए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्प-०४-उप०-पंचंत० ज० संत्वे० । अज० असंत्वे० । मणुसाउ०-आहारदुगं उक्कस्स-भंगो । सेसाणं ज० अज० असंत्वे० । एवं पम्माए । सुकाए खिवगाणं संजमपाओ-गाणं ज० संत्वे० । अज० असंत्वे । दोत्राउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो । सेसाणं ज० अज० असंत्वे । दोत्राउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो । सेसाणं ज० अज० असंत्वे० ।

३३५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डक, सातावदनीयदण्डक और ेन्द्रियज्ञातिदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्ररति श्रोर शोकके ज्ञान्य श्रमुभागके वन्धक जीव श्रमंत्र्यात हैं श्रोर श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्धक जीव श्रमन्त हैं। इसी प्रकार श्रसंयत और मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रोर श्रमधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, सात नोकपाय, श्रप्रस्त वर्ण्च कुक, उपचात, तीर्थद्वर श्रोर पाँच श्रन्तरायके ज्ञचन्य श्रमुभागके वन्ध जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यायु श्रोर श्राहारकद्विकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके ज्ञचन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार श्रव्यविदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि श्रीर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो श्रायु श्रोर श्राहारकद्विकका मंग उत्कृष्टके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थद्वर प्रकृतिका मंग अविद्यत जीवोंमें तीर्थद्वर प्रकृतिका मंग श्रव्यविज्ञानी जीवोंके समान है।

३३६. कृष्ण, नील खाँर कपोतलेश्यामें सामान्य तिर्यक्रोंके समान भक्न है। इतनी विशेषता है कि तीर्यक्कर प्रकृतिका भक्न मनुष्यिनियोंके समान है। मात्र कापोतलेश्यामें नारिकयोंके समान भंग है। पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, खप्रशास्त वर्णचतुष्क, उपयात छोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकदिकका भंग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें चपक और संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार प्रजुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रज्ञाय अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रज्ञाय अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रज्ञाय अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं।

३३७. अवभवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचिदियजादि-तिण्णसरीर-ओरा० श्रंगो०--पसत्थापसत्थ०४ - तिरिक्खाणु०-अगु०४ -आदाउज्जो०-तस०४ - णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० असंखे०। अज० अणंता। सेसाणं ओद्यं। एवमसिण्णं ति। सासणे मणुसाउ० देवभंगो। सेसाणं ज० अज० असंखे०। सम्मामि० सन्वपग० ज० अज० असंखेजा। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं परिमाणं समत्तं ।

१६ खेत्तपरूवणा

३३८. खेत्तं दुविधं — जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्क० पगदं । दुवि० — त्रोघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउिव्ययछ०-आहारदुग-तित्थ० उक्क० अणुक्क० अणु-भागवंध० केविह खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जिदिभागे । सेसाणं उ० अणुभा० केव० ? लोगस्स असंखेज्ज० । अणुक्क० सञ्चलोगे । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०--ओरालियमि०-कम्मइ०--णवुंस०--कोधादि०४—मदि०-सुद०--असंज०--

३३७. श्रभव्यों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगित, पञ्च न्द्रियजाति, तीन शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके जयन्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्र यात हैं। श्रजयन्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्रनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। इसी प्रकार श्रसंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसन्यन्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यायुका भंग देवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके ज्ञयन्य श्रौर श्रजयन्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके ज्ञयन्य श्रौर श्रजयन्य श्रनुभागके वन्यक जीव श्रसंख्यात हैं। श्रनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—श्रोवसे सब प्रकृतियोंके तबन्य और श्रज्ञबन्य श्रनुभागके बन्धक जीव कितने हैं इसका स्पष्टीकरण किया ही है। उसी प्रकार श्रपने श्रपने स्वामित्वको ध्यानमें रखकर सब मार्ग- णात्रोंमें स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे श्रलग श्रलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

१६ क्षेत्रप्ररूपणा

३३८. चेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—आप और आदेश । आघसे तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अतुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग चेत्र है । श्रव्यक्तियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकका असंख्यातवां भाग चेत्र है । अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोक चेत्र है । इस प्रकार ओवके समान सामान्य तिर्यक्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, आदारिकिसिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी,

रे. आ० प्रतो एवं सिण्ण चि इति पाठः । २. ता० प्रतौ एवं परिमाणं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

त्रचक्खु ०-तिष्णिले ०-भवसि ०-अवभवसि ०-भिच्छा ०-असप्णि ०-आहार ०-अणाहारग ति ।

३३६. एइंदि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्त०--एइंदि०--हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०--उप०-थावरादि४-अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सन्वलोगे। दोआउ०-मणुस०--मणुसाणु०-उचा० ओवं। सेसाणं उ० लोग० संत्वे०, अणु० सन्वलोगे।

क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शन, तीन लेश्यावाले, भन्य, श्रभन्य, मिध्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राहारक श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तरकायु, देवायु श्रौर वैक्रियिक छहका श्रसंज्ञी श्रादि, श्राहारकद्विकका श्रप्रसत्तसंयत श्रौर तीर्थकरका सम्यग्दिए जीव वन्य करते हैं। इन जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें
भाग प्रमाण होनेसे इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रातुःकृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र उक्त
प्रमाण कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट श्रातुभागवन्ध संज्ञी पश्चिन्द्रिय तिर्थेश्च श्रौर मनुष्य करते हैं,
इसलिए इनका चेत्र तो लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है ही परन्तु मनुष्यायुके श्रातुःकृष्ट श्रनुभाग
के वन्यक जीवोंका भी लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है, क्योंकि एकेन्द्रियादि सभी जीव
इसका वन्य करनेवाले होते हुए भी वे स्वरूप हैं। उन जीवोंके चेत्रका योग लोकके श्रसंख्यातवें
भागसे श्रियक नहीं होता, इसलिए मनुष्यायुकी श्रपेक्षा भी यह चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। श्रव
रही शेप प्रकृतियाँ सो उनके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य सामान्यतः संज्ञी पश्चिन्द्रिय जीव करते हैं
श्रोर इनका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके
वन्यक जीवोंका चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य एकेन्द्रियादि
सभी जीव करते हैं, इसलिए यह सर्वलोक कहा है। यहाँ श्रन्य जितनी मागणाएँ कही हैं उनमें
यह प्रह्मणा वन जाती है, इसलिए उनको श्रोघके समान कहा है।

३३६. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, श्रासातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियनाति, हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है। दो श्रायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रोर उन्योत्रका भंग श्रोधके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है।

विशेषार्थ — पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अन्यतर यथायोग्य संक्लेश युक्त एकेन्द्रिय जीव करते हैं और ये सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका सर्व लोक चेत्र कहा है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका भंग आयके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक वादर प्रथिवीकायिक, वादर जलकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव हैं और इनका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा एकेन्द्रिय जीव सव लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र सव लोक है। ओयसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र सव लोक है। अव रहीं शेप प्रकृतियाँ सो उनमेंसे प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका वन्य वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव करते हैं और जो एकेन्द्रिय सम्बन्धी न होकर अन्य प्रकृतियाँ हैं उनके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य अन्यतर करते हुए वे

१. ता० श्रा० प्रत्योः सन्यलोगो इति पाठः ।

३४०. वादरएइंदियपज्जतापज्जता० पंचणावरणादि याव अप्पमत्थाणं थावर-पगदीणं उक्क० अणु० सन्वलो० । सादावे०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-थिर-सुभ०-णिमि० उ० लोग० संखे०, अणु० सन्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-चढुजादि-पंचसंटा०-ओरालि०अंगो०-इस्संघ०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०-वादर०-सुभग०-दोसर०-आदेज्ज०--जस० उ० अणु० लोग० संखे० । तिरि-क्लाउ० उ० लोग० असंखे०, अणु० लोग० संखे० । मणुसाउ०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० लोग० असंखे । सन्वस्नुहुमाणं तिरिक्ख०-मणुसाउ० ओघं। संसाणं उ० अणु० सन्वलो० ।

३४१. पुढवि०-आड०-तेउ० सर्व्वयावरपगदीणं उ० लो० असंखे०, अणु० सन्वलो० १ णविर मणुसाउ० ओघं । वादरपुढवि०-आड०-तेउ० पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०-भिच्ल०-सोलसक०-सत्तणोक०--तिरि०-एइंदि०-त्रोरालि०--तेजा०--क०-हुंड०-पसत्यापसत्य०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-म्रहुम-पज्जतापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-

सव लोकमें नहीं पाये जाते, अतः उन सव प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक कहा है। आगे अन्य मार्गणाओं में जो चेत्र कहा है उसे इसी प्रकार स्वामित्वका विचार कर घटितकर लेना चाहिए। विचार करनेकी दिशाका ज्ञान इससे ही हो जाता है।

३४०. वादर एकन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त जीवों में पाँच ज्ञानावरए से लेकर श्रप्रशस्त स्थावर प्रकृतियों के उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का चेत्र सव लोक है। सातावेदनीय, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, ग्रुभ श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का चेत्र ले व लोक से संख्यात मागप्रमाण है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का सव लोक चेत्र है। स्विवेद, पुरुपवेद चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्रांगोपांग, श्रह संहनन, श्रातप, द्योत, दो विहायोगिति, श्रस. वादर, मुभग, दो स्वर, श्रादेय श्रीर यशाःकीतिक उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। तिर्यञ्चायुक्त उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। मनुष्यायु, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। मनुष्यायु, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। सव सुदम जीवों विर्यञ्चायु श्रीर मनुष्यायुका भंग श्रोयके समान है। श्रीष प्रकृतियों के दत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का सव लोक चेत्र है।

३४१. पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंमें सब स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका सब लोक त्रेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग ओवके समान है। वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक और वादर अग्निकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

र. श्रा० प्रतो जस० उ० श्राणु० लोग० श्रमंखे० सन्त्रसहुमार्गं इति पाठः । १. ता० श्रा० प्रत्योः तेड बादरपत्ते० सन्त्र- इति पाठः ।

थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० छ० होगस्स अस्रेलेज्जदिभागे। अणुक्कस्सं सन्वहोगे । सेसाणं सन्वतसपगदीणं वादर-जसगिति-सिहदाणं छ० अणु० हो० असंखे०। वादरपुढ०-आछ०-तेष्ठ०पज्जता पंचि०तिरि०-अपज्ज०भंगो। वादरपुढ०-आछ०-तेष्ठ०अपज्जत्त० पंचणा०--णवदंसणा०--असादा०-मिच्छ०-सोहसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-छप०-थावरादि४-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० छ० अणु० सन्वलो०। सादा०-ओरालि०--तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्जत्त-पत्ते०-थिर०-सुभ०-णिमि० छ० होग० असं०, अणु० सन्वलो०। सेसाणं तसपगदीणं वादर-जसिगत्तिसहिदाणं छ० अणु० हो० असंखे०। वाऊणं पि तेष्ठभंगो। णविर यम्हि होग० असंखे० तिम्ह होग० संखे कादन्वं। णविर वादरवाष्ठ० आड० वादरएइंदियभंगो।

३४२. वणप्पदि-णियोद० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं ७० अणु० सन्वलो० । सेसाणं सादादीणं तस-थावरपगदीणं ७० छो० असंखे०, अणु० सन्वछो० । मणु-साउ० ओघ । वादरवणप्पदि-वादरणियोद-पज्जत्तापज्जत्त० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं

श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूत्तम, पर्याप्त, श्रपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्चम, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है। वादर श्रीर यशःकीर्ति सहित शेष सव त्रसप्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त श्रीर वादर श्रान्तकायिक पर्याप्त जीवोंमें पख्ने न्द्रिय तिर्यद्ध अपर्याप्तकोंके समान भंग है। वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जल-कायिक अपर्याप्त और वादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंका चेत्र सब लोक है । सातावेदनीय, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु-त्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके श्रसं-ख्यातंचें भागप्रमाण चेत्र हैं श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोक चेत्र हैं। वादर और यशःकीर्ति सहित शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वत्यक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। वायुकायिक जीवोंका भी अग्निकायिक जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा है वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक जीवों में आयुका भंग वादर एकेन्द्रियोंके समान है।

३४२. वनस्पितकायिक और निगोद जीवोंमें अप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। शेप सातावेदनीय श्रादि त्रस-स्थावर-प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है श्रीर अनु-त्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। मनुष्यायुका भंग श्रोवके समान है। वादर

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः सन्वलोगो इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ तेउ॰ वाउ॰ पर्जता इति पाठः ।

उ० अणु० सन्बलो० । सादा०-ओरा०--तेजइगादीणं थावरपगदीणं पसत्थाणं उ० लो० असंखे०, अणु० सन्बलो० । सेसाणं तसपगदीणं आदाउज्जो०-वादर-जसगिति-सिहदाणं उ० अणु० लो० असंखे० । वादरपत्ते० वादरपुढविभंगो । णेरइगादि याव सिण्ण ति उक्क० अणु० लोग० असंखेजिदि० ।

एवं उकस्सं समतं।

३४३. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०पिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्त०-पंचिदि०-ओरालि०--तेजा०-क०-ओरालि०ग्रंगो०--पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्ताणु०--ग्रगु०४—आदाउजो०-तस०४-णिपि०-णीचा०-पंचंत० ज० ग्रणुभागवंधगा केविह खेरो १ लोग० ग्रसंखे० । ग्रज० ग्रणु०
केव० १ सव्वलो० । सादासाद०-तिरिक्ताड०-मणुस०-चदुजादि-इस्संटा०-इस्संघ०मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिइयुग०-उचा० ज० ग्रज० सव्वलो० ।
तिण्णित्राड०-वेडव्वियछ०-ग्राहारदुग-तित्थ० ज० अज० लो० असंखे० । एवं ग्रोधभंगो कायजोगि--णवुंस०-कोधादि४-पदि०-मुद्०--ग्रसंज०-ग्रचक्ख०--किण्ण०-

वनस्पतिकायिक, वादर निगोद तथा इनके पर्याप्त श्रोर श्रप्यांप्त जीवोंमें श्रप्रशस्त स्यावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। सातावेदनीय, श्रोदा-रिकशरीर श्रोर तेजसशरीर श्रादि प्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। श्रातप, उद्योत, वादर श्रोर यशःकीर्ति सहित शेष त्रसप्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका वादर प्रथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है। तथा नारिकयोंसे लेकर संज्ञी तक श्रम्य जितनी मार्गणाएं शेष रही हैं उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवों का चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट चेत्र समाप्त हुन्ना।

३४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोव ग्रोर ग्रादेश। ग्रोघसे पाँच हानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, तिर्यञ्चगित, पञ्चे न्द्रियजाति, ग्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रप्रश्चरत्वातुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रप्रमुक्तवुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका कितना चेत्र है १ लोकके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। त्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका कितना चेत्र है १ सव लोक चेत्र है। सातावेदनीय, त्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थायर श्रादि चार, स्थिर श्रादि छह गुगल श्रोर उच्चगोत्रके ज्ञयन्य श्रोत्मागके वन्यक जीवोंका सव लोक चेत्र है। तीन आयु, वैक्रियिक छह, श्राहारकद्विक श्रोर तीर्यङ्करके ज्ञयन्य श्रोर अज्ञवन्य श्रनुमागके वन्यक जीवोंका लोकके श्रसंख्यानत्वें मागप्रमाण चेत्र है। इसी प्रकार श्रोघके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायन्वाते, मत्यहानी, श्रुताहानी, श्रसंयत, श्रचजुदर्शनी, छष्णलेहयावाले, भव्य, श्रमव्य, मिध्यादिष्ठ

भवसि०-ग्रब्भवसि०-मिच्छा०--ग्राहारए ति । तिरिक्खोघं ओरा०--ग्रोरालियमि०-णील०-काउ०-ग्रसण्णीसु च ओघं। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० लो० संखे०, ग्रज० सभ्वलो०।

३४४. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-त्रोरालि०ग्रंगो०--अप्पसत्थ०४-तिरक्खाणु०--उप०-त्रादाउज्जो०--[अप्पसत्थवि०-] णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सन्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-

श्रीर आहारक जीवोंके जानना चाहिए। सामान्य तिर्यञ्च, श्रीदारिककाययोगी, श्रीदारिकमिश्र-काययोगी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले श्रीर श्रसंज्ञी जीवोंमें भी श्रीपके समान मंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है श्रीर श्रज्ञघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है।

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि मकृतियोंका जघन्य अनुभाग-वन्य या तो गुण्स्थानप्रतिपन्न जीव करते हैं श्रीर जिन स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिका मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं वे सब संझी पञ्चेन्द्रिय ही होते हैं श्रीर ऐसे जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जयन्य अनुभागवन्धका चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्य एकेन्द्रिय श्रादि सव जीव करते हैं, श्रतः इनके श्रज्ञघन्य श्रनुभाग के वन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदिका जघन्य श्रीर श्रज्ञवन्य श्रनुभागवन्य एकेन्द्रिय श्रादि चारों गतिके जीव करते हैं, श्रतः इनके दोनों प्रकारके श्रमभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक कहा है। शेप रही वीसरे दण्डकमें कही गई तीन श्राय श्रादि प्रकृतियाँ सो इनमेंसे मनुष्यायुक्ते सिवा शेष प्रकृतियोंका वन्ध यथायोग्य पञ्चे न्द्रिय जीव ही करते हैं और मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात होनेसे मनुष्यायुका वन्ध करनेवाले जीव स्वरूप हैं, इसलिए इनके जयन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ काययोगी श्रादि श्रन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह श्रोध-प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको अधिके समान कहा है। यद्यपि सामान्य तिर्येख्य आदि मार्गणाओं में भी यह श्रोघप्ररूपणा घटित हो जाती है श्रीर इसलिए उनकी प्ररूपणाको भी श्रोवके समान जाननेकी सूचना की है पर उनमें तिर्यक्रगति श्रादि तीन प्रकृतियोंकी अपेना कुछ विशेषता है। वात यह है कि श्रोघमें श्रीर काययोगी श्रादि मार्गणाश्रोमें तो तिर्यञ्चगति त्रादिका जवन्य श्रनुभागवन्य सन्यक्त्वके श्रभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी जीव करता है और सामान्य तिर्यक्त आदि मार्गणाओं में बादर अग्निकायिक और वादर वायु-कायिक जीव इन प्रकृतियोंका जवन्य अनुभागवन्ध करता है श्रौर वाद्र वायुकायिक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण है, इसलिए इन मार्गब्रोंमें उक्त तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनु-भागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रजधन्य श्रतुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक कहा है।

३४४. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नी नोकषाय, तिर्यञ्चगित, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके ज्ञान्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातचे भागप्रमाण है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक

१, ता॰ प्रतौ तिरिक्खोधं स्रोरालियमि॰ इति पाठः ।

मणुस०-पंचनादि--ओराहि०--तेना०--क०-छस्सांठा०-छस्सांघ०--पसत्थ०४--मणुसाणु०-त्रगु०३-[पसत्थवि०-] तसथावरादिदसयुग०-णिमि०-उचा० न० अन० सन्वहो०। मणुसाउ० न० अन० ओघं।

३४५. वादरपज्जत-[अपज्जत्त०] पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०--पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०--हुंड०--पसत्थ-वण्ण४-अगु०३-थावर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०--पत्ते०-साधार०--थिराथिर--सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिरिक्खाड०-चदुजादि--पंचसंठा०-ओरा०अंगो०--अस्संघ०-आदारुजो०-दोविहा०-तस०-वादर०-

है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगित, पाँच जाति, श्रौदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कामणशरीर, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरु-लघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस-स्थावर श्रादि दस युगल, निर्माण श्रौर उच्चगोत्रके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है। मनुष्यायुके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनु-भागके वन्धक जीवोंका चेत्र श्रोघके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियों सं सब प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्य वादर जीव करते हैं और इनका स्वस्थानकी अपेक्षा ज्ञेत्र लोकका संख्यातवां भागप्रमाण है और समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक ज्ञेत्र है। इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर यहाँ ज्ञेत्र कहा है। जिन प्रकृतियों का सर्व विशुद्ध और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभागवन्य होकर भी जो प्रतिष्क प्रकृतियों से रहित हैं उनका जघन्य अनुभागवन्य स्वस्थानमें होता है, इस्तिए इनके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवों को ज्ञेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का ज्ञेत्र सव लोक कहा है। मात्र परघात और उच्छ्वास इस नियमकी अपवाद प्रकृतियाँ हैं, क्यों कि उपघात अपशस्त प्रकृति है और ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका प्रहुण सातावेदनीय आदिके साथ होता है। अब रहीं श्रेष सातावेदनीय आदि उत्कृष्ट संक्लिप्ट या तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट परिणामों से वैंधनेवाली प्रकृतियाँ सो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का सव लोक ज्ञेत्र कहा है, क्यों कि इनका मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जघन्य अनुभागवन्य हो सकता है। मात्र दो आयुओं के विषय में स्वतन्त्रह्म विचार करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार आगे भी स्वामित्वका विचार कर ज्ञेत्र लेना चाहिए।

३४५. वादर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्य, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचंगोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञान्य अनुभागके वन्यक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र सव लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, स्थावर, सूच्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणके ज्ञयन्य और अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका क्षेत्र सव लोक है। स्रीवेद, पुरुपवेद, तिर्यञ्ज्यायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उयोत, दो विहायोगित, त्रस, वादर, सुभग, दो स्वर, आदेय

सुभग०-दोसर०-आदे०-जस० ज० अर्ज० होग० संखे० | मणुसाउ०-मणुसग०-मणु-साणु०-उचा० ज० अर्ज० हो० असंखे० | सन्वसुहुमाणं सन्वपगदीणं ज० अज० सन्वहो० | णवरि मणुसाउ० ओघं |

३४६, पुढ०-ञ्चाउ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-ञ्चोरा०तेजा०-क०-ओरालि०ञ्चंगो०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-आदाउज्जो०-णिमि०-पंचंत०
ज० लो० असंखे०, ञ्चज० सव्वलो० । सादासाद०--तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादिछस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तसादिदसयुगल-दोगो० ज० अज० सव्वलो० ।
मणुसाउ० [ज० अज० ओघं ।] वादरपुढ०--आउ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०सोलसक०-सत्तणोक०-ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थामसत्थ०४-अगु०--णिमि०-पंचंत०
ज० लो० ञ्चसंखे०, अज० सव्वलो० । सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०--हुंड०-तिरिक्खाणु०--थावर--सुहुम०--पज्ज०--ञ्चपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर--सुभासुभ--दूभगअणादे०-ञ्चजस०-णीचागो० ज० ञ्चज० सव्वलो० ! सेसाणं ज० अज० लो० असंखे० ।
वादरपुढ०-आउ०पज्ज० मणुसअपज्जतभंगो । वादरपुढ०-आउ०अपज्ज० पंचणा०-

श्रीर यशःकीर्तिके जयन्य श्रीर अजयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रके जयन्य श्रीर श्रजयन्य श्रनु-भागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। सब सूच्म जीवोंमें सब प्रकृतियों के जयन्य श्रीर श्रजयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का सब लोक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग श्रोधके समान है।

३४६. पृथिवीकायिक श्रीर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, त्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, त्रौदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि दसं युगल श्रीर दो गोत्रके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रतुभागके वन्यक जीवोंका सव लोक क्षेत्र है। मनुष्यायुके जवन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वम्धक जीवोंका क्षेत्र श्रोघके समान है। वादर पृथिवीकायिक और वादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकपाय, त्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यात में भागप्रमाण है श्रीर अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका क्षेत्र सव लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूर्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, श्रयशः कीति श्रौर नीचगोत्रके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र सब लोक हैं। शेप प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त श्रौर वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंमें मनुष्य

रै. ग्रा॰ प्रतो जस॰ ग्रज॰ इति पाठः।

णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० लो० असं०, अज० सन्वलो०। सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हंड०-पसत्थ०४- [तिरिक्तवाणु०-]अगुं०३-थावर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभा-सुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सन्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चढुजा०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगों०-छस्संघ०-मणुसाणु०--आदा-एज्जो०-दोविहा०-तस-वादर-सुभग-दोसर-आदे०-जस०-उच्चा० ज० अज० लो० असंखे०। एवं वादरवणप्पदिका०-वादरणियोद-पज्जतापज्जत्त-वादरपत्तेयअपज्जताणं-च। तेउ० पुढविभंगो। णवरि तिरिक्तव०-तिरिक्तवाणु०-णीचा० आभिणि०भंगो। एवं चेव वाउका०। णवरि यम्ह लोग० असंखे० तिर्ह० लोग० संखेज्जो कादच्यो।

३४७. वणप्पिद्--िणयोदेसु पंचणा०--णवदंसणा०--िमच्छ०-सोलसक०--णव-णोक०-ओरालि० झंगो०-अप्पसत्थ०४-डप०-आदाउज्जो०-पंचंत० ज० लो० असंखे०, अज० सव्वलो० सादासाद०-तिरिक्ताड०-दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-इस्संठा०-इस्संघ०-पसत्थव०४-दोआणु०-अगु०३-दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुग०-

अपर्याप्तकों के समान भङ्ग है। वादर प्रांथवीकायिक अपर्याप्त श्रीर वादर जलकायिक अपर्याप्त जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात श्रीर पाँच अन्तरायके ज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका क्षेत्र लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूरुम, पर्याप्त, अर्पात, अर्यात, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, ग्रुभ, अग्रुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके ज्ञयन्य और अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोक होते हैं। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, अह सहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, वादर, सुभग, दो स्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उचगोत्रके ज्ञयन्य और अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वादर वनस्पतिकायिक और वादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक जीवोंमें प्रथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा है वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा हो वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा हो वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा चाहिए।

३४७. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रातप, उद्योत श्रोर पाँच श्रन्तरायके जयन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातचे भागप्रमाण है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका चेत्र सव लोक है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह

ता० श्रा० प्रत्योः अप्पस्त्य४ श्रगु३ इति पाठः ।

णिमि०-दोगो० ज० अज० सन्वली०। [मणुसाउ० ज० अज० ओघं।] पत्तेय० वादरपुढविभंगो। कम्मइ० अणाहारए ति मूलोघं। सेसाण णिरयादीणं याव सण्णि त्ति ज० अज० लोगस्स० असंखे०।

एवं खेतं समतं ।

३४८. फोसणं दुविधं-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-त्रोघे० त्रादे० । अघे० पंचणा०--णवदंस०-असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-अप्प-सत्थ०४- तिरिक्खाणु०--उप०-अधिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणुभागवंधगेहि केविछ खेतं फोसिदं १ लोगस्स असंखे०, अद्व-तेरह चोदसभागा वा देसणा । अणुक० अणुभागवंध० के० फोसिदं० १ सन्वलोगो । सादा०-तिरिक्खाउ०-चदुजा०-तेजा०-[क०-] समचदु०--पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-पसत्थ०--तस०४-धिरादिछ०--णिमि०-उच्चा० उ० लो० असंखे० । अणु० सन्वलो० । इत्थि०-पुरिस०--चदुसंठा०-पंचसंघ०--ग्रप्प-सत्थिव०-दुस्सर० उक्क० अणुभा० अद्व--वारह चोद० । अणु० सन्वलो० । इस्स-रदि

संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो चानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, दो विहायोगित, त्रस-स्थावरादि दस युगल, निर्माण और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोक चेत्र है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका भङ्ग वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है। नरकगितसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणार्धे कही हैं उन सबमें अपने खेपने खेप छोर स्वामित्वका विचारकर अपनी अपनी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का चेत्र ले आना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

३४८. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ग्रोघ और आदेश । त्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागपमाण, कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, चार जाति, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरकासंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पुरुपवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुरस्वरके उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतौ एवं खेतं इति पाठो नास्ति । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः पंचसंठा॰ इति पाठः ।

उक्क० अहचो० सन्वलो०। अणु० सन्वलो०। णिरय-देवाउ०-आहारदुगं उक्क० अणु० लो० असंखे०। मणुसाउ० उ० लो० असंखे०। अणु० लो० असंखे० अहचो० सन्वलोगो वा। णिरयगिद्-िणिरयाणु० उ० अणु० लो० असंखे० छचो६०। मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०--वज्जिर०--मणुसाणु०--आदाव० उ० लो० असंखे० अह चो०। अणु० सन्वलो०। देवग०-देवाणु० उ० खेत्तभंगो०। अणु० छचो०। एइंदि०-थावर० उ० अह-णवचो०। अणु० सन्वलो०। वेउन्वि०-वेउन्वि०-अंगो० उ० खेत्तभंगो। अणु० वारह चो०। सुहुम०-अप०-साधार० उ० लो० असंखे० सन्वलो०। अणु० सन्वलो०। तित्थ० उ० खेत्तभंगो। अणु० [लोग०] असंखे० अह चोह०।

अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रितके एत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रीर सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक न्तेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु श्रीर श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्नन किया है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागंके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजु और सव लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगित श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनु-भागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, श्रौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्क, वर्त्रपंभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रातपके उत्कृष्ट त्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके त्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृप्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ऋौर ऋतुत्कृष्ट श्रतुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरके उत्कृष्ट श्रतुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम नौ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्परान किया है। वैक्रियिकशरीर थ्रीर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्दृष्ट श्रनुभागके वन्धक जोबोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तथा श्र<u>तुत्कृष्ट श्रतुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह</u> वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सत्र लोक चेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर तीर्थङ्करके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रीर कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थं —पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट - अनुभागवन्य चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे करते हैं। इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और विकियिककाययोगमें बिहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा जुळ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेचा कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु है। इन सब अवस्थाओंमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य सम्भव होनेसे इस श्रपेना उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदिका क्ष्यकश्रेणिमें, तिर्यञ्जायु श्रौर चार जातिका मिथ्यादृष्टि तिर्यक्क श्रीर मनुष्यके तथा उद्योतका सातवें नरकके नारकीके उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव है । यतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः यह प्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। आगे जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन कहा है वहाँ भी उनका एकेन्द्रियादि चारों गतियोंमें वन्ध होता है इसलिए वह प्रमाण कहा है ऐसा सममना चाहिए। स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिथ्यादृष्टि संज्ञी हैं, इसलिए वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अतीत स्पर्शन आठ वटे चौदह राजु कहनेका कारण आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके ही बटे चौदह राजु स्पर्शन कहनेका कारण यह है कि इन प्रकृतियोंका बन्ध उन्हीं जीवोंके होता है जो त्रससम्बन्धी प्रकृतियोंका ही बन्ध करते हैं। अतएव इनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव ऊपर श्रीर नीचे कुछ कम छह छह राजु चेत्रका ही स्पर्शन कर सकते हैं जो कुछ कम बारह बटे चौदह राजु होता है। हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवो के वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणका और अतीत कालीन स्पर्शन कुछ त्राठ वटे चौदह राजुका स्पष्टीकरण पहलेके ही समान है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चारों गतिके संज्ञी जीव करते हुए भी ऐसे मनुष्य श्रौर तिर्येख्न भी करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, इसलिए इनके इत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक भी कहा है। आयुवन्य मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और संज्ञी पख्चे न्द्रिय तिर्येख व मनुष्योंका शेप स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिए नरकाय त्रादिके उत्कृष्ट त्रीर त्रिजुतकृष्ट श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन एक प्रमाण कहा है। इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रमुभाग-वन्यके स्पर्शनका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध वैकियिक-काययोगके समय भी सम्भव है और मारणान्तिक समुद्धातको छोड़कर विहारादिके समय इसका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्परान कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। जो मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातचे भागप्रमाण श्रीर अतीत स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु कहा है। इनका वन्य असंज्ञी आदि ही करते हैं और नरकगतिके योग्य प्रकृतियोंका वन्य होते समय ही होता है, त्रात: इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भी वही स्पर्शन कहा है। मनुष्यगति स्त्रादिका देव स्त्रोर नारकी तथा स्त्रातपका नारिकयोंके सिवा शेष तीन गतिके जीव उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्ध करते हैं। उसमें भी मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्वात करनेवाले देव श्रौर नारिकयोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता । इनके विहारादि शेष पदोंका स्पर्शन इतना ही है। हाँ जो देव विहारादि शेष पदोंसे युक्त हैं और इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहे हैं उनके कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्पर्शन पाया जाता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके **एरक्कप्ट** श्रानुभागके वन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके श्रासंख्यातचे भागप्रमाण श्रीर श्रतीत स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। एकेन्द्रिय जाति श्रीर स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध देव करते हैं श्रीर देवोंका श्रतीत स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राज़ श्रीर कुछ कम नी बटे चौदह राजु है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। वैकियकद्विकका उत्कृष्ट

३४६. णेरइएस साद०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरा०श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थवण्ण०४-श्रगु०३-डज्जो०-पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि० उ० खेतं०। अणु० छचोद०। दोआउ०-मणुसगदिदुग-तित्थ-उचा० उ० अणु० खेत-भंगो। सेसाणं उ० अणु० छचो०। एवं सन्वणेरइगाणं अप्पष्पणो फोसणं णेदन्वं।

३५०. तिरिक्खेसु पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०--मिच्छ०-सी क०-पंच-

श्रमुभागवन्य क्षपकश्रे णिमं होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक नीवोंका वर्त-मान श्रोर श्रतीत स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है श्रोर विकियकदिकका बन्ध करनेवाले मनुष्य श्रोर तियंद्ध अपर व नीचे कुछ कम छह छह राजुका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक नीवोंका स्पर्शन कुछ कम वारह बटे चौदह राजु कहा है। सूदम, श्रपर्याप्त श्रोर साधारणका देव श्रोर नारकी वन्ध नहीं करते। साथ ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले मनुष्य श्रोर तिर्यद्धोंके भी इनका उत्कृष्ट श्रमुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक नीवोंका वर्तमान स्पर्शन नोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण और श्रतीत स्पर्शन सव नोक कहा है। तीर्थद्धर प्रशृतिका उत्कृष्ट श्रमुभागवन्य क्षपक-श्रेणिमें होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक नीवोंका वर्तमान श्रीर श्रतीत स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा देवोंमें भी इसका वन्ध होता है, इसलिए इसके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक नीवोंका वर्तमान स्पर्शन नोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रतीत कानीन स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु कहा है। प्रथमादि नरकोंमें श्रीर मारणान्तिक समुद्धातके समय इसका वन्ध होनेसे उक्त स्पर्शनमें कोई श्रन्तर नहीं पड़ता।

३४६. नारिकयोंमें सातावेदनीय, पछ्छ न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्रारीर, समचतुरहासंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्रवभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुत्तघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके दत्छष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु है। दो श्रायु, यनुष्यगतिद्विक, तीर्थेङ्कर और उच्चगोत्रके उत्छष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन के समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्छष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु है। इसी प्रकार सब नारिकयोंके श्रपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेपार्थ—उद्योतके सिवा प्रथम दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यन्दि नारकी और उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह वटे चौदह राजु है यह स्पष्ट ही है। मनुष्य-गितिद्विक, तीर्थक्कर और उच्चगोत्रके वन्यक जीव मनुष्य लोकमें ही मारणान्तिक समुद्धात कर सकते हैं और दो आयुका मारणान्तिक समुद्धातके समय वन्य नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन के समय भी होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु वन जाता है।

३५०. तिर्थञ्जोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व,

णोक०-पंचि०-तेजा०-क०-समचढु०-हुंढ०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-दोविहा०- ०४-थिरादिञ्चयु०-णिमि०-दोगो०-पंचंत० उ० ञ्चचोद०। अणु० सव्यलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिणिजाउ०-मणुसग०-तिणिजा०- ओरा०-चढुसंठा०-ओरालि० ग्रंगो०- छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाउज्जो० उ० अणु० खेत्तभंगो। हस्स-रिद-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिरिक्खाणु ०-थावरादि०४ उ० लो० असं० सव्वलो०। अणुक० सव्वतो०। मणुसाउ० उ० खेत्तं। ग्रणु० लो० असंखे० सव्वलोगो वा। णिरयगदि०-[-देवगदि०-] दोआणु० उ० अणु० ञ्चो०। वेउव्वि०-वेचव्वि० ग्रंगो० उ० ञ्चो०। अणु० वारस०।

सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, पञ्च न्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, दो विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल, निर्माण, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, तीन त्रायु, मनुष्यगति, तीन जाति, श्रीदारिकशरीर, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्योतके स्टब्ह्य और अनुरकृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके हास्य, रति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तियञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर त्रादि चारके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्वक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका और सव लोकका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागक्ने वन्धक जीवोंने सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्हेंन किया हैं। नरकगति, देवगति श्रीर दो त्रानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वदें चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर श्रोर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रनुस्कृष्ट श्रतुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — प्रथमदण्डकमें कही गई प्रकृतियों मेंसे पाँच ज्ञानावरणादिका संज्ञी ेन्द्रिय मिण्यादृष्टि जीव और सातावेदनीय आदिका संयतासंगत उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करते हैं, इस लिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन छुछ कम छह वटे चौदह राजु कहा है। मात्र मिण्यादृष्टियोंका मारणान्तिक समुद्धात् द्वारा नीचे छह राजु स्वर्शन कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए। इनका वन्य एकेन्द्रिय आदि सव जीव करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्य जीवोंका सव लोक स्पर्शन कहा है। स्त्रीवेद आदि सव प्रकृतियाँ त्रस और मनुष्यों सम्बन्धी हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके र ान प्राप्त होनेसे वह उत्तर्प्रमाण कहा है। हास्य और रित आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका वर्त्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सव लोक कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सव लोक है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक है सहलए इसके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक रेत हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सेव लोक सेव हैं, इसलिए

१. ता॰ प्रतौ तिरिक्ख॰ एइंदि॰ तिरिक्ख॰ तिरिक्खाग्गु॰, न्ना॰ प्रतौ तिरिक्ख॰ तिरिक्खाग्गु॰ इति पाठः।

३५१, पंचिद्यं वितित्वतं व पंचणा व न्यादं सं व न्यादं

इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण और सव लोक कहा है। जो नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके नरकगतिद्विकका और जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके देवगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका कुछ कम छहवटे चौदह राजु स्पर्शन कहा है। वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्य संयतासंयतके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छहवटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाले जीव मारणान्तिक समुद्धातके समय नीचे और उपर कुछ छह राजुका स्पर्शन करते हैं, इसलिए यह कुछ कम वारह राजु कहा है।

३५१. पद्धे न्द्रिय तिर्यद्वित्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रमाता-वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह् कषाय, पाँच नोकषाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक तीर्वोने कुछ कम छहवटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है स्रोर स्रनुत्कृष्ट स्रनु-भागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवाने कुछ कम डेढ़बटे चौदह राजु ज्ञेत्रका स्वर्शन किया है। पुरुपवेदके उत्कृष्ट अनुमागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्री श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने क्क कम छहवटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, तिर्यद्भगति, एकेन्द्रिय-जाति, तिर्येद्धगत्यानुपूर्वी श्रीर स्थावर श्रादि चारके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग के वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मतुष्यगति, तीन ताति, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर -श्रातपके रत्कृष्ट श्रीर श्रवुत्कृष्ट श्रवुभागके वन्यक जीवोंका स्परान चेत्रके समान है। दो गति, समचतुरक्तसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभन, दो स्वर, आदेय और उचगोत्रके प्रतकृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। पश्चे न्द्रियजाति, वैकियिकशारीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशरीरके उत्कृष्ट

१. ग्रा॰ मतौ ग्रगु॰ पज्ञ इति पाठः । २. ग्रा॰ प्रतौ सन्वलो॰ । उज्ञो॰ उ॰ खेत्त॰, ग्रगु॰ छेचो॰ इति पाठः ।

उज्जो ः उ॰ खेत । अणु ॰ छो ॰ असंखे ॰ सत्तचो ॰ । वादर ॰ उ॰ इचो ॰ । अणु ॰ तेरह ॰ । जस ॰ उ॰ ई॰ । अणु ॰ सत्तचो ॰ ।

श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण श्रीर कुछ कम सात वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। वादर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है । यहर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम तरह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है।

· विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरणादिके स्पर्शनका स्पष्टीकरण जिस प्रकार सामान्य तिर्येख्नोंके कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। मात्र इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका सर्व लोक प्रमाण स्पर्शन एकेन्द्रियोंमें समुद्रुघात कराके लाना चाहिए। स्त्रीवेद और प्ररुपवेद तिर्यंख्वादि तीन गति सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका वन्ध करनेवाले जीवोंका मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ राजु और कुछ कम छह राजु स्पर्शन देखा जाता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यद्यपि मारणान्तिक समुद्यातके समय भी इनका उत्कृष्ट श्रमुभागवन्ध होता है पर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय यह नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्पर्शन इस अपेनासे नहीं कहा है। हास्य श्रीर रित श्रादिका उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते समय भी होता है, इसलिए इनका दोनों प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। चार आयुओंका भारणान्तिक समुद्वातके समय यन्धः नहीं होता, श्रीर शेप प्रकृतियाँ मनुष्यों श्रीर त्रस तिर्यक्षों सम्बन्धी हैं। एक श्रातप इसकी अपवाद है सो वह भी वादर पृथिवीकाय सम्बन्धी होकर भी प्रशस्त प्रकृति है, अतः इनका द्वीनों प्रकारका स्पर्शन च्रेत्रके समान कहा है। देवोंमें श्रीर नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्रुचात करने वाले तिर्यंख्रोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु होता है, इसलिए दो गति आदिके उत्क्रप्ट त्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन एक प्रमाण कहा है, क्योंकि यथायोग्य ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका दोनों प्रकारका वन्ध सम्भव है। जो संयतासंयत तिर्येख्न देवों में मारणा-न्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके पञ्चे न्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सम्भव है और जो देवों श्रोर नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके इनका श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम छह चटे चौदह राजु और अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम वारह वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रोदारिकशरीरका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य संज्ञी पञ्चोद्रिय तिर्यञ्च करते हैं श्रीर ये एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इसका अनुतकृष्ट अनुभागवन्य उन जीवोंके भी होता है जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्वात करते हैं, इसलिए इसके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शेन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योतका

३. ता० प्रती छच्चो० श्राणु० जस० उ० खेसं तेरह० जस० उ० छ०, श्रा० प्रती छच्चो० श्राणु० तेरह०। जस० छ० इति पाठः।

३५२, पंचि०तिरि०अप०पंचणा०-णवदंस०-असादा०-भिच्छ०-सोलसक०सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादिं०४-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० हो० असंखे० सव्वहो०। सादा०-ओरा०तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०३-पज्जत्त-पत्ते०-थिर--सुभ--णिमि० उ० खेतं०।
अणु० हो० असं० सव्वहो०। उज्जो०-वादर०-जस० उ० खेतं०। अणु० सत्तचोद०।
सेसाणं उ० अणु० खेत्तभंगो। एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगहिदि०-वादरपुढ०-आउ०तेउ०-वाउ०-वाद्रवणप्फदिपत्ते०पज्ज०। णवरि वाद्रवाउ०पज्जत० जम्हि लोग०
असं० तक्हि होग० संखे० काद्व्या। णवरि आउ० वद्दमाणखेत्तं०।

उत्कृष्ट अनुभागवन्य सर्विवशुद्ध तियंद्धके होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक नीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा प्रकृतिवन्यमें इसके वन्यक नीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजु कहा है वह ही यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक नीवोंके वन नाता है। वादर व यशका उत्कृष्ट अनुभागवन्य संयतासंयतके होता है अतः इन दोनोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यक नीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु कहा है तथा इनके वन्यक नीवोंका स्पर्शन प्रकृतिवन्यमें क्रमशः कुछ कम तेरह राजु व सात राजु कहा है वह ही यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यक नीवोंका स्पर्शन वतलाया है।

३५२. पद्धे न्ट्रिय िर्गद्ध अपर्गाप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकषाय, तिर्यंद्धगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, तिर्यंद्धगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजनशरीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अगुरुलधुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माण्के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रक समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात मागप्रमाण और सव लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर और यश्चकितिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सच अपर्याप्त, सव विकलेन्द्रिय, वादर प्रथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादर अग्निक्कायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिकपर्याप्त और वादर वायुकायिक पर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके जहाँ लोकका असंख्यातयां भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आयु का स्पर्शन वर्तमान चेत्रके समान है।

विशेषार्थ —प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागवन्य मारणान्तिक समु-द्यातके समय भी सम्मव हे, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योत, वादर और यशस्कीर्ति प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका मारणान्तिक समुद्वातके समय उत्कृष्ट अनुभागवन्य नहीं होता। यही कारण है कि इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है।

२. ग्रा॰ प्रती तिरिक्खासु॰ यावसदि४ इति पाठः।

३५३. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-त्रोरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पज्ज०-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-त्रुणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० खेत्त०। अणु० लो० त्रुसं० सन्वलो०। हस्स-रदि-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ उ० अणु० लो० असं० सन्वलो०। उज्जो०-वादर-जस० उ० खेतं०। अणु० सत्त चो०। सेसाणं उ० अणु० खेत्तभं०।

३५४. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०--हुंड०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०-थावर--अथिरादिपंच०-

३५३. मनुष्यित्रक्में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रयाप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रश्रुम, दुर्भग, श्रम्पाद्य, श्रयशाकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रौर स्थावर श्रादि चारके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर श्रौर यशाकीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंक उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेपार्थ — मनुष्यत्रिक उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते, अन्यत्र यह स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेता मनुष्योंका उक्त प्रमाण स्पर्शन उपलब्ध होता है। जो मनुष्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी हास्यादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योत आदि तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। मारणान्तिक समुद्धातके समय इनका ऐसे मनुष्य भी वन्ध करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं पर ये एकेन्द्रिय जीव उत्पर सात राजुके भीतरके होने चाहिए, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजु कहा है। शेष जितनी प्रकृतियाँ वचती हैं वे सब असस्वन्धों हैं, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। शेष जितनी प्रकृतियाँ वचती हैं वे सब असस्वन्धों हैं, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है।

३५४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी,

१. स्ना॰ प्रती खेत॰ श्रग्रु॰ खेत्तमंगो श्रग्रु॰ इति पाटः ।

णीचा०-पंचंत० उ० अणु० लो० असंखे० अह-णव० । सादा०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—उज्जो०-वादर—पंज्जत-पत्ते०-थिर-सुभ--जस०-णिमि० उ० अह० । अणुक्क० अह-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचि०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-अस्संघ०-मणुसाणु०-आदी०-दोविहा०—तस०-सुभग-दोसर-आदे०-तित्थ०-उच्चा० उ० अणु० अहचो० । एवं सन्बदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादन्वं ।

३५५, एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०-हुंड०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलो० । तिरिक्खाउ० श्रोघं । मणुसाउँ० तिरि-

उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावदनीय, औदारिकशरीर, तेजसश्यिर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुन्त्रिक, उद्योत, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अभ, यशःकीर्ति और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। खीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पज्ज द्वियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सव देवोंके अपना अपना स्पर्शन करना चाहिए।

विशेषार्थ — जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसिलए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके
वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण और कुछ कम आठ व नौ वटे चौदह
राजुप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टि देव करते हैं, इसिलए
इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है और
इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम
नौ वटे चौदह राजु कहनेका कारण स्पष्ट ही है, क्योंकि देवोंके इससे अधिक स्पर्शन नहीं उपलब्ध
होता। स्त्रीवेद आदि कुछ त्रससम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं, इनमेंसे कुछका सम्यग्दृष्टि देव वन्ध करते हैं,
आयुका मारणान्तिक समुद्धातके समय वन्ध नहीं होता और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात
करनेवालेके आतपका वन्ध नहीं होता, इसिलए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक
जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इन विशेपताओंके साथ सब
देवोंके अपना अपना स्पर्शन ले आना चाहिए।

२५५. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उपचात, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रातुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चायुका

१. श्रा॰ प्रतो छस्संघ॰ श्रादा॰ इति पाठः। २. तर॰ श्रा॰ प्रत्योः मग्रुसाग्रु॰ ति पाठः।

क्लोघं । मणुस०-मणुसाणु०--उचा० उ० त्राणु० खेत्त० । सेसाणं उ० हो० ंे ज्ज०, अणु० सन्बहो० ।

३५६. वादरपज्जतापज्ज० पंचणाणावरणादिथावरदंडओ एइंदियभंगो। एवं [अ] साददंडओ वि। दोआड०-मणुस०३ ड० अणु० खेत्त०। णवरि तिरिक्खाड० ड० अतीतं लोग० संखे०। उज्जो०-वादर०-जस० ड० खेत्त०, अणु० छो० संखे० सत्तचोद०। सेसाणं तसपगदीणं ड० अणु० लो० संखे०। सादादीणं ड० छो० संखेज्ज०, अणु० सव्वछो०।

भक्न श्रोघके समान है। मनुष्यायुका भक्न सामान्य तिर्यश्चोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यग

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय सब लोकमें हैं, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुका भङ्ग ओधके समान है और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त आदि जीव करते हैं इसलिए इनके स्तुष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परान क्षेत्रके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य यथायोग्य वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव भी करते हैं, अतः उनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोक कहा है।

३५६. वाद्र एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त श्रीर अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि स्थावर दण्डकका मङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। इसी प्रकार असातावेदनीयदण्डकका मङ्ग भी जानना चाहिए। दो आयु श्रीर मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका मङ्ग चत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्थे श्रीयुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका अतीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। उद्योत, वाद्र श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रीर कुछ कम सात वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ - श्रायुकर्मका वन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता श्रौर वादर एकेन्द्रिय तथा उनके भेदोंका चेत्र लोकके संख्यातचें भागप्रमाण है, इसलिए इनके तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका श्रतीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। उद्योत श्रादिका श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है पर ऐसे जीव अपर सात राजुके भीतर ही मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, इसलिए इनके श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रौर श्रतीत स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। श्रेप त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्परान लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है, व्योंकि जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक

३५७. सन्वसुहुमाणं मणुसाउ० उ० अणु^१० छो० असं० सन्वलो०। तिरि क्वाउ० उ० छो० असंखे० सन्वहो०, अणुक्क० सन्वहो०। सेसाणं उ० अणु० सन्वलो०।

३५८. पंचिदि०२ पंचणा०-णवदंस० [असादा०-] मिच्छ०-सोलसक०-पंच-णोक०-तिरि०-हंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाण०-उप०-अथिरादिपंच--णीचा०-पंचंत० उ० ग्रह-तेरह०, अण० अह चो६० सन्वलो०। सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अग्र०३-पज्ज०-पन्ते०-थिर-सुभ-णिमि० उक्क० खेत्त०, अण्० अह चो० सन्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० अण्० ग्रह-वारह०।

समुद्यात करते हैं उनके इन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता। सातावेदनीय आदिका मारणान्तिक समुद्यातके समय भी श्रनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सव लोक कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३५७. सब सूच्म जीवोंमें मनुष्यायुक्ते जल्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। तिर्थं ख्रायुक्ते उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। बोप प्रकृतियों हे उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सूच्म जीवोंका सब लोक आवास है, इसलिए दो आयुओं के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंके स्पर्शनको छोड़कर शेप सब स्पर्शन सर्वलोक है यह स्पष्ट ही है। रहीं दो आयु सो इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है, और ऐसे परिणाम बहुत ही कम जीवों के होते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। तथा मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव थोड़े ही होते हैं, क्यों कि मनुष्यों का प्रमाण भी स्वल्प है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। परन्तु तिर्थे खायुका बन्ध करनेवाले अनन्त जीव होते हैं और ये वर्तमानमें भी सब लोक कहा है। परन्तु तिर्थे खायुका बन्ध करनेवाले अनन्त जीव होते हैं और ये वर्तमानमें भी सब लोक कहा है।

३५८. पद्मे न्द्रियद्विकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यद्धगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके रुक्ष अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजु और कुछ कम तरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैलसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुस्लयुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोक है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, चार संस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त विहायों-

१. ग्रा॰ प्रती मग्रुसाउ॰ श्रागु॰ इति पाठः।

हस्स-रिंद उ० अणु० अह चो० सन्वली० | दोआउ०-तिण्णिजा०-आहारदु० उ० अणु० खेत्त० | दोआउ०-तित्थ० उ० खेत्त०, [अणु०] अह चो० | णिरय० णिर-याणु० उ० अणु० छचो० | मणुस०--मणुमाणु०--आदाव०--उचा० [उ०] अणु० अह० | देवग०--देवाणु० ओघं | एइंदि०--थावर० उ० अह--णव०, अणु० अह० सन्वली० | पंचिदि०-समचदु०-पसत्थवि०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे० उ० खेत्त०, अणु० अह-वारह० | ओरा० उ० अह, अणु० अह० सन्वलो० | वेचन्वि०-वेचन्वि०-अंगो० ओघं | ओरालि० अंगो०-कज्जरि० उ० अह०, अणु० अह--वारह० | उज्जो०-वादर०-जस० उ० खेत०, अणु० अह--तेरह० | सुहुम-अपज्जत्त--साधार० उ० अणु० लो० असंखेज्जदि० सन्वलो० | एवं पंचिदियभंगो तस०--तसपज्जत०--पंचमण०--पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि ति |

गति और दुःस्वरके उत्क्रप्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम् आठ वटे चौदह राजु और सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। दो आयु और तीर्थं द्वरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन नेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके एत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप और उचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्द राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रीयके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थानरके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राज श्रीर कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चे द्विय-जाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर श्रौर त्रादेयके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रीदारिक-शरीरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक-युमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकरारीर और वैक्रियिकत्राङ्गोपाङ्गका भङ्ग स्रोवके समान है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वल्लर्धभनाराचसंहननके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने छुळ कम **श्राठ वटे चौदह राजु**शमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और श्र**तुरुष्ट श्र**नुभागके वस्थक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राज और कुछ कम बारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन नेत्रके समान है श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राट वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम तेरह वटे चौद्ह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूच्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवो ने लोकके असंख्थातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पञ्चे न्द्रिय जीवों के समान त्रसः, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनः

रे. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रादाउनी॰ श्रेग्रु० इति पाठः।

योगी, चलुदर्शनी श्रौर संज्ञी जीवों के जानना चाहिए।

विशेपार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार श्रोधमें स्पष्ट कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। तथा पख्र निद्रयद्विकका वेदनादि की अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिककी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार सातावेदनीय त्रादिके त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । मात्र यहाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन उपपादपदकी अपेक्षा कहना चाहिए । स्त्रीवेद आदिके उत्कृष्ट श्रतुभागके वन्धक जीवोंका श्रोधसे जैसा स्पष्टीकरण किया है उसी प्रकार यहाँ पर उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंकी श्रपेचा कर लेना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते हैं उनके भी हास्यद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ बढे चौदह राजु श्रीर सर्व लोकप्रमाण कहा है। तिर्यञ्जाय, मनुष्याय और तीर्थंङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध देवोंके छुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करते समय भी सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके श्रनुत्हृष्ट अनुभागके वत्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नीचे नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्यात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य सम्भव है, इसलिए इनके दोनों प्रकारके श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चक्त प्रमाण कहा है। देवोंके विहारादिके समय मनुष्यगति छादिका उत्कृष्ट छनुभागवन्य भी सम्भव है इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटें चौहह राजुप्रमाण कहा है। जो देव ऊपर त्रसनालीके भीतर एकेन्द्रियों में मारणान्तिक संमुद्धात करते हैं उनके भी एकेन्द्रियजाति और स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सन्भव हैं, इसलिए इनके च्कुष्ट अनुभागके वन्धक जीवांका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चींदह राजु और कुछ कम नी वटे चौदह राजु कहा है। तथा सत्र एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवों के भी इनका वन्य सम्भव है, अतः इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ यटे चौदह राजु श्रीर सव लोक कहा है। देवोंके विहारादिके समय श्रीर नीचे व ऊपर कुछ कम छह छह राजु प्रमाण चेत्रके भीतर समचतुरस्र श्रादिका वन्य सम्भव है, इसलिए इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। विहारादिके समय देवांके खीदारिक शरीरका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवेंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन कहा है। तथा इसका सब एकेन्द्रियोंमें समुद्धात करनेवाले जीव भी बन्ध करते हैं, ख्रतः इसके श्रवुत्रुष्ट श्रवुभागके बन्धक नीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजु श्रीर सव लोकप्रमाण कहाँ है। विहारादिके समय देवेंकि श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वजर्षभनाराच संहननका उत्कृष्ट श्रतुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके एत्कृष्ट श्रतुभागके वन्यक जीवांका स्पर्शन कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेंका स्पष्टीकरण स्त्रीवेदके समान कर लेना चाहिए। उद्योत आदिका देवेंकि विहारादिके समय और ऊपर सात राजु व नीचे छह राजुके भीतर अनुत्कृष्ट अनुमागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुमाग के बन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु-प्रमाण कहा है। पछ्चे न्द्रियद्विकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मारणान्तिक समुद्यात की अपेना सब लोक प्रमाण स्पर्शन सम्भव है तथा ऐसी अवस्थामें सूनमादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य हो सकता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक लीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सत्र लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है।

३५६. पुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस-ग्रसादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक० तिरि०-एइंदि०-हुंडसंठा०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०-थावरादि०४-अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० लो० असं० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। संसाणं उ० लो० असं०, अणु० सव्वलो०। णवरि मणुसाउ० तिरिक्खांचं।

३६०. वादरपुढ०--आड० पंचणाणात्ररणादीणं थावरपगदीणं पुढिविभंगों । सादा०--ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०२-पज्जत्त-पत्ते०-थिर- सुभ-णियि० ड० खेत्त०, अणु० सन्वलो० । उज्जो०-वादर०-जस० ड खेत्त०, अणु० सत्त चोद० । सेसाणं ड० अणु० खेत्तभंगो ।

श्रागे त्रस श्रादि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें पञ्जे न्द्रियोंकी ही प्रधानता है, अतएव उनकी प्रस्पणा पञ्जे न्द्रियद्विक समान जाननेकी सूचना की है।

३५६. पृथिवीकायिक स्रोर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, स्रमाता-वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकवाय, तिर्यद्भगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्र-रास्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर स्थादि चार, अस्थिर स्थादि पाँच, नीचगोत्र स्रोर पाँच स्थन्तरायके उत्कृष्ट स्रनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके स्रसंख्यातवें भागप्रमाण स्रोर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रमुत्कृष्ट स्रमुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्रमुभागके वन्यक जीवोंने लोकके स्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और स्रमुत्कृष्ट स्रमुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि ममुख्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यद्भोंके समान है।

विशेपार्थ —यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध वादर पर्याप्त जीव करते हैं, किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेना सर्व लोक है। इन दोनों अवस्थाओं पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेनासे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सर्वत्र सम्भव है, क्यों कि पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेप प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागवन्य एक तो मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता, जिनका होता भी है वे द्वीन्द्रियादि तियंक्च और मनुष्य सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सव लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यायु का भन्न सामान्य तिर्यक्चोंके समान कहनेका कारण यह है कि इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका क्यांव्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। सामान्य तिर्यक्चोंके यह इतना ही वतलाया है।

३६०. वादर पृथिवीकायिक और वादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि और स्थावर प्रकृतियों का भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंके सर्वालोकका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर और यशःकीर्ति के उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका

१. ता॰ प्रतौ खाखावरखादीखं पुढविभंगो इति पाठः।

३६१. वादरपुढ०-त्राज्ञ अपज्जनएस पंचणाठ-णवदंसठ-असादाठ--मिच्छठ-सोलसकठ-सत्तणोक०-तिरि०- एइंदि०--हुंड०संटा०--अप्पस०४-तिरिक्खाणुठ-उपठ-थावरादि०४-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सन्वलो०। सादा०-ओरा०-तेजा०-क०--पसत्थव०४--अगु०३--पज्जत्त-पत्ते०-थिर- सुभ--णिमि० उ० खेत्त०, अणु० सन्वलो०। उज्जो०-वादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० सत्त चो०। सेसाणं उ० अणु० खेत्रभंगो। एवं वादरवणप्पदि-पज्जतापज्जत्त-वादरणियोदपज्जतापज्जत्त-वादर-पत्ते०अपज्जत्तगाणं च। तेउ० पुढवि०भंगो। वाऊणं पि तं चेव। णविर जम्हि लोग० असंखे० तम्हि लोग० संखेज्जं कादव्वं। वणप्पदि-णियोद० णाणावरणादीणं थावर-पगदीणं उ० अणु० सन्वलो०। सेसाणं उ० खेत्त०, अणु० सन्वलो०। मणुसाउ० एइंदियभंगो।

स्पर्शन चेत्रके समान तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजु है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुतकृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३६१. वादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त और वादर जलकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यद्वगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशंसत वर्णचतुष्क, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रौदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुंक्क, अगुरुलघुन्निक, पंयाप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणिक उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्परीन किया है । उद्योत, वादर श्रीर यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौद्द राजुश्माण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुसाँगके वन्यक जीवोंका स्परीन चेत्रके समान है। इसी प्रकार वादर वनस्पतिकायिक और उनके पर्याप्त श्रीर अपर्याप्त, वादर निगोद श्रीर उनके पर्याप्त श्रीर अपर्याप्त तथा वादर प्रत्येक वनस्पतिकार्यिक श्रपयप्ति जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक जीवोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। वायुकायिक जीवोंका भी इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जहां पर लोकके अ यातवें भागप्रमाण कहा है वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए। वनस्पतिकायिक श्रीर निगोद जीवोंमें ज्ञानावरणादि स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मात्र मनुष्यायका भङ्ग एकेन्द्रियों के समान है।

विशेपार्थ—पहले एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें स्पर्शनका स्पष्टीकरण किया है। उसे देखकर यहाँ भी उसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन एक मात्र सर्व लोक कहा है सो वर्तमान स्पर्शनकी अविवत्तासे ही ऐसा कहा है, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। तथा इन जीवोंमें उद्योत, वादर और यशस्क्रीर्तिका वन्ध करनेवाले जीव त्रसनालीक भीतर अपर सात राजु तक ही मारणान्तिक

ता॰ प्रती गांगावरणादीगं उ॰ इति पांठः विकास कि कि कि कि कि

३६२. कायजीगि०-कोधादि०४—अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ओघभंगो। ओरालि० खड्गाणं उ० मणुसभंगो। श्रणु० सेसाणं च उ० श्रणु० तिरिक्लोघं। ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-श्रसादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-एइंदि०-हुंढ०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्लाणु०--उप०-थावरादि४-अथिरादिपंच०--णीचा०-पंचंत० छ० हो० श्रसंखे० सन्वहो०, अणु० सन्वहो०। सेसाणं उ० खेत्त०, श्रणु० सन्वहो०। मणुसाउ० तिरिक्लोघं।

३६३, वेडव्वि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-हुंढे०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्लाणु०-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० ७० अणु० अद्द-तेरह०। सादा०--ग्रोरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४- अगु०३-वादर-पज्जत--पत्ते०-थिरादितिण्णि-णिमि० ७० अद्वचा०, अणु० अद्द-तेरह०। इत्थि०-पुरिस०-चदुसंद्यु०

समुद्धात करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटें चौदह राजु प्रमाण कहा है । शेप कथन सुगम है ।

३६२. काययोगी, कोघादि चार कपायवाले, अचलुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें आघके समान भन्न है। औदारिककाययोगी जीवोंमें चायिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका भन्न मनुष्योंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक और शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका भन्न सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सालह कपाय, सात नोकपाय, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यातुपूर्वी, उपयात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सनुष्यायुका भन्न सामान्य तिर्यक्रोंके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्थे श्चीर मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और ये जीव सब लोकमें मारणान्तिक समुद्वात करते हुए पाये जाते हैं, इसलिए यह स्पर्शन सर्व लोक प्रमाण कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३६३. चैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्येद्धगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णंचतुष्क, तिर्येद्धगत्तानुर्वी, उपचात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, पत्येक, स्थिर आदि तीन और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और

१. श्रा॰ प्रतौ लो॰ श्रमंखे॰ म्वलो॰ मेमाणं इति पाठः। २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः तिरि॰ एइंदि० हुंड॰ इति पाठः।

पंचसंघ०--अप्पसत्थ०-दुस्सर० ७० अणु० अह-वारह० | दोश्राउ०--मणुस०३-आदा०-तित्थ० ७० अणु० अह० | एइंदि०-थावर० ७० अणु० अह-णव० | पंचि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे० ७० अह०, अणु० अह-वारह० | उज्जो० ७० खेत्तभंगो, अणु० अह-तेरह० |

३६४. वेडव्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेत्तभंगी । कम्मइय० पंचणा०-

चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके व्ह्यष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंने कुछ आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतित्रिक, आतप और तीर्थङ्करके व्ह्यष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके व्ह्युष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पद्म न्द्रियजाति, समचतुरस्त्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग वर्ज्यभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगिति, त्रम, सुभग, सुस्वर और आदेयके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । व्योतके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । व्योतके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन किया है। व्योतके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन किया है। व्योतके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन क्रिया है। व्योतके व्ह्युप्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीयोंना स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य मारणान्तिक समुद्वातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट श्रतुशागवन्ध मारणान्तिकके समय सम्भव न होनेसे इनके उत्कृष्ट श्रतुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। शेप पूर्ववत जानना चाहिए। स्त्रीवेद आदि एकेन्द्रियजाति सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुसागके वन्धक नीवोंका स्पर्शन कुछ कम अ।ठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजु कहा है। कुछ कम वारह वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन तिर्यञ्चोंमें देवों स्त्रीर नारिकयोंका समुद्धात कराके ले घाना चाहिए। दो घायु घादिके उत्कृष्ट घौर घनुत्कृष्ट घनुभागके वन्धक जीवीका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण है यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं दनका स्पर्शन कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण उपलब्ध होता है श्रीर एकेन्द्रियजाति तथा स्थावरका मारणान्तिक समुद्वातके समय उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चीदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पञ्चोन्द्रियजाति आदिका और सव विचार स्त्रीवद्दण्डकके समान है। मात्र मार्रणान्तिक समुद्द्यातके समय इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य नहीं होता, इसलिए इनके एत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन मात्र कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण कहा है। च्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सातवें नरकके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इसके डत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है और अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है।

३६४. चेिकियकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें

णवदंस०-असादंग०-मिच्छ०-सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्स०-पंचसंठा०-चदु संघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०--अधिरादिपंचै०-णीचा०-पंचंत० उ० वारह०, अणु० सव्वलो० । सादा०-पंचि०--तेजा०--क०-समचदु०--पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-धिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उ० छ०, अणु० सव्वलो० । मणुसगदिपंचग० उ० अणु० तं चेव । देवगदिपंचग० खेत्तभंगो । [एइंदिय०-थावर० उ० दिवहृचोहस०, अणु० सव्वलो० । असंप०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उ० एकारस०, अणु० सव्वलो० ।] तिण्णिजादि-आदाउज्जो०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उ० खेत्तभं०, अणु० सव्वलो० ।

चेत्रके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, चार संहनन, श्रप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट त्रानुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है स्त्रीर स्रनुत्हृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पञ्चे न्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर छादि छह, निर्माण और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट त्रानुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन पूर्वोक्त ही है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग चेत्रके समान है। एकेन्द्रियजाति स्रोर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने डेढ् वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। असम्प्राप्तास्रपादिकासंहनन, अपशास्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तीन जाति, ज्ञातप, उद्योत, सूदम, श्रपर्याप्त श्रीर साधारणके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकिमिश्रकाययोगी, त्राहारककाययोगी त्रौर त्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंका स्पर्शन लोक के असंख्यात में भागप्रमाण है, इसलिए इन मार्गणात्रों में सब स्पर्शन लेक ान कहा है। जो चारों गित के संज्ञी पक्रोन्द्रिय जीव कार्मणकाययोगी होते हैं उनके पाँच ज्ञानावरणादिका उत्हृष्ट अनुभागवन्य सम्भव हैं, इसलिए इनके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम वारह वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है और कार्मणकाययोगका स्पर्शन सब लोक है, इसलिए इनके अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। सम्यग्हृष्टि कार्मणकाययोगी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण होनेसे सातावेदनीय आदिके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनके अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनके अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिपञ्चक का उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिपञ्चक का उत्हृष्ट अनुभागवन्य सम्यग्हृष्ट देव और नारकी करते हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान ही कहा है। देवगतिचतुष्कका सम्यग्हृष्ट तिर्थे अगैर मनुष्य तथा तीर्थे इर का तीन गतिके सम्यग्हृष्ट जीव उत्हृष्ट अनुभागवन्य करते हैं। तथा देवगतिचतुष्कका वन्य असंज्ञी आदि और तीर्थे इर प्रकृतिका तीन गतिके संज्ञी जीव वन्य करते हैं। ऐसे जीवोंका यहि

ता० प्रतो पंचणा० श्रसादा० इति पाठः । २. ता० श्रा० प्रत्योः पंचसंघ० इति पाठः ।
 ता० श्रा० प्रत्योः उप० श्रप्पस्त्य० श्रियरादिपंच० इति पाठः ।

३६५. इत्थिने० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०हुंड०-अप्पसत्य०४-उप०-अधिरादिपंच०--णीचा०-पंचंत० उ० अह-तेरह०, अणु०
अहचो० सव्वलो०। सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पज्ज०-पर्च०-धिर-सुभणिमि० उ० खेतभंगो, अणु० अह० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-चहुसंठा०ओरा०अंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु ०-आदाव० उ० अणु० अह०। हस्स-रिद् उ० अणु०
अह० सव्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारहुग-तित्थय० उक्क० अणु० खेतभंगो। दोआउ०-समचहु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उचा० उ० खेतभंगो, अणु०
अह०। णिरयगदिदुग० उ० अणु० छचो०। तिरि०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-धावर०
उ० अह-णव०, अणु० अह० सव्वलो०। देवगदिदुग० उ० खेत्त०, अणु० छचो०।

स्पर्शनका विचार करते हैं तो वह सब चेत्रके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इन प्रकृतियों के स्ट्रुप्ट और अनुस्ट्रुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। एकेन्द्रियजाित और स्थावरका उत्ह्रुप्ट अनुभागवन्य ऐशान कर्णतकके देव करते हैं इसलिए इनके उत्ह्रुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजु प्रसाण कहा है। तथा इनके अनुत्हुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही हैं। अम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनन आदि तीन प्रकृतियों का उत्ह्रुप्ट अनुभागवन्य नारकी और सहस्तार कर्ण तकके देव करते हैं, इसलिए इनके उत्ह्रुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन नीचे छह और उत्पर पाँच इस प्रकार कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है और इनके अनुत्हुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का प्रविचन सब लोक कहा है। तीन जाित आदिके त्रुप्ट और अनुत्हुप्ट अनुभागके वन्यक जीवों का जो स्पर्शन कहा है वह स्पष्ट ही है।

३६५. खीवेदी नीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम ब्राठ वटे चौदह राजु ब्रौर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने छुद्ध कम श्राठ वटे चौद्ह राजु और सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैनसंशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्वर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। खीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यगति, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर श्रातपके चत्छ्य श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु-प्रसाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रितके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थद्वरके टल्हुए और श्रनुख्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। दो आयु, समचतुरह्मसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चीवह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकके चत्हृष्ट और अनुत्हृष्ट अनुमागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तियंख्वगति, एकेन्द्रियनाति, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी श्रोर स्थावरके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट

१. आ॰ पती मंगुराउ॰ इति पाठः।

पंचिं ० ० ७० खेत्त ०, अणु० अह-वारह० । त्रोरास्ति० ७० अह०, अणु० अहचो० सन्वलो०। वेष्टिव ०-वेष्टिव ० त्रंगों ० ७० खेत्त ०, अणु० वारह० । एज्जो०-जस० ७० खेत्त ०, अणु० अह-णव० । णविर एज्जो० ७० अह० । अप्पस०-दुस्सर० ७० छ०, अणु० अह-वारह० । वादर० ७० खेत्त ०, अणु० अह-तेरह० । सहुम०-अपज्ज०-साधार० ७० अणु० लो० असं० सन्वलो० । एवं पुरिसेस्र । णविर तित्थ० ७० अणु० ओघं ।

श्रनुभागके वन्वक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम नौ वटे चौदह राजुपमाण त्तेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रौर सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु-प्रमाण नेत्रका स्पर्शन किया है। पद्धे न्द्रियजाति और त्रसके उत्कृष्ट अनुभाग के वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रीदारिकशरीरके उत्कृष्ट श्रनुभाग के वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने छुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान हें और श्रनुत्कष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान हैं और ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट अनु-भागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चीदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूच्म, अप-र्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भाग-प्रमाण और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थंद्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन श्रोघके समान है।

विशेपार्थ—देवियां विहारादिकी अपेक्षा छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करती हैं। यद्यपि पख्ने निद्रय तिर्यद्धयोनिनी और मनुष्यिनी मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा सब लोक चेत्रका स्पर्शन करती हैं, परन्तु पाँच ज्ञानावरणादिके चत्र्छप्ट वन्धके समय यदि मारणान्तिक समुद्धात होता है तो वह त्रस नालीके भीतर नीचे छह राजु और अपर सात राजु इस प्रकार छुछ कम तेरह वटे चौदह राजु प्रमाण ही होता है। यही सब देखकर यहाँ इन प्रकृतियों के उत्छ्रप्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। स्पर्शनका उक्त विधिसे निर्देश मूलमें ही किया है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंक समान ही घटित कर लेना चाहिए। जो तिर्यक्षगति आदि तीनमें उत्पन्न होते हैं उन्होंके छीवेद आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध सम्भव है और ऐसे छीवेदो जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण होता है,

इसलिए स्त्रीवेद श्रादिके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो सर्वत्र एकेन्द्रियोंमें भी उत्पन्न होते हैं उनके भी हास्य ऋौर रतिका वन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके दो आयु और समचतुरहा संस्थान आदि प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नारिकयोंमें मारिणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके भी नरकगितद्विकका दोनों प्रकार का श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह राजुप्रमाण कहा है। यद्यपि स्त्रियां छठे नरक तक ही जाती हैं ऐसा आगम वचन है पर यह नियम योनि-कुचवाली स्त्रियोंके लिए ही है जिनके स्त्रीवेदका उदय है ऋौर जो योनि-कुचवाली नहीं हैं। अर्थात् जो स्त्रीवेदके उदयके साथ द्रव्यसे पुरुप हैं उनका गमन सातवें नरक तक सम्भव है यह इस स्पर्शन नियमसे सिद्ध होता है। इतना ही नहीं, इससे द्रव्यवेद और भाववेदका जो वैषम्य माना जाता है उसकी भी सिद्धि होती है। जो त्रसनालीके भीतर ऊपर एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते हैं उनके भी तिर्यञ्चगति त्रादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्ऋष्ट अनुभागके वन्वक जीवोंक स्पर्शनका स्पष्टीकरण पाँच ज्ञानावरण श्रादिके समान कर लेना चाहिए। जो तिर्येख श्रीर मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके भी देवगतिद्विकका श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नीचे छह श्रीर उपर छह इस प्रकार छुछ कम वारह राजुशमाण चेत्रका मारणान्तिक समुद्घातके समय स्पर्शन कर रहे हैं उनके भी पञ्च निद्रयज्ञाति और त्रसप्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनु-भागवन्य होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके श्रोदारिकशारीरका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य नहीं होता, इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्परान कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुनमाण कहा है। परन्तु एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय इसका श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान कहा है। जो देवों श्रौर नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्वात करते हैं उन मनुष्य श्रौर तिर्यक्त्रोंके वैक्रियिकद्विकका त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागवन्य होता है, इसलिए इनके त्रमुत्कृष्ट त्रमुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। जो एकेन्द्रियोंमें त्रसनालीके भीतर समुद्घात करते हैं उनके उद्योत और यशस्कीर्तिका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनक अनु-त्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तत्प्रायोग्य तिर्येक्च आदि तीन गतिके जीव करते हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नारिकयोंमें मारिणान्तिक समुद्यात करते हैं उनके भी अप्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरका उत्कृष्ट श्रातुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रातुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्थक जीवोंका स्पर्शन पछ्छोन्द्रियजातिके समान घटित कर लेना चाहिए। जो नीचे छह श्रीर अपर सात इस प्रकार कुछ कम तेरह राजुका मारणान्तिक समुद्वातके समय स्पर्शन करते हैं उनके भी वाद्र प्रकृतिका का वन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ

३६६. णवुंसग० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोर्व तिरिक्तव०--पंचसंद्या०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्तवाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अ रादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० छच्चो०, अणु० सन्वलो०। सादा०-तिरिक्तवाउग०-मणुर चहुजा०-ओरा०-तेजा०-क०--समचहु०--्योरा० ग्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४--मणुसाणु अगु०३--आदाउ०--पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०--णिमि०--उच्चा० उ० खेत्त०, अपु सन्वलो०।[हस्स-रदि० उ० छच्चो० सन्वलो०,अणु० सन्वलो०।] दोआउ०-वेउन्वि छ०-आहारदुगं ओघं। मणुसाउ० तिरिक्तवोघो। [एइंदिय-थावरादि४ तिरिक्तवोघं तित्थय० इत्थिभंगो।

कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो तिर्यछ क्ष्म सनुष्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्वात करते हैं उनके भी सूद्मादिका उत्कृष्ट और अनुस्त्र अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पार्थ असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। पुरुपवेदी जीवोंमें भी यह स्पार्थ वन जाती है, इसलिए उनमें खीवेदी जीवोंके समान कहा है। मात्र तीर्थं द्वर प्रकृतिका कुछ विशेषता है। वात यह है कि पुरुपवेदी देव भी तीर्थं द्वर प्रकृतिका वन्ध करते हैं इ इनका विहारादिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु होनेसे पुरुपवेदी जीवोंके तीर्थ प्रकृतिकी अपेक्षा यह स्पर्शन भी पाया जाता है। इसलिए यह स्पर्शन ओघके समान कहा शेष कथन सुगम है।

३६६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्या सोलह कषाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतु तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगोत्र श्रोर प्रश्नितरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने छुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्धित किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगित, चार जाति, श्रीदारिकशरीर, ते जसशरीर, कार्मणश्च समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपङ्ग, वर्ञ्चभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुप्रत्यानुपूर्वी, श्रमुक्तघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि ह निर्माण और उद्यगोत्रके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है तथा श्रमुक्त श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य श्रीर रितके उत्श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया हो। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया हो। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया हो। स्थानत्व्यक्षेत्रक छह श्रीर श्राहारकहिकका भङ्ग श्रोधके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग साम तिर्येख्वोंके समान है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावर श्रादि चारका भङ्ग सामान्य तिर्येख्वोंके समान है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावर श्रादि चारका भङ्ग सामान्य तिर्येख्वोंके समान

विशेपार्थ—नपुंसककोंमें तीन गतिके संज्ञी पश्चोन्द्रिय जीव प्रथम दण्डकमें कही प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रानुभागवन्य करते हैं। इनका श्रातीत स्पर्शन उत्कृष्ट या तत्थायोग्य संकि परिणामोंके समय कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्विश्वामाणे वन्यक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा नपुंसकवेदी सव लोकमें पाये उ

तीर्यद्धर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

१. ता० ग्रा० प्रत्योः सोलस्क० पंचणोक० इति पाठः । २. ता० श्रा० प्रत्योः ग्रियगिदे णीचुचा० इति पाठः ।

३६७. मिद्०-सुद० ओघं। णविर देवगिददुगंड० खेत्त०, अणु० पंच चोद०। वेडिव्व०-वेडिव्व०त्रंगो० ड० खेत्तभंगो, अणु० एकारह०। विभगे० पंचिदियभंगो। णविर देवगिदचढुक्क० मिद्द०भंगो।

३६८. ग्राभिणि-सुद्०-ओधि० पंचणा०--छद्सणा०-असादा०-वारसक०-सत्त-णोक०-मणुसमिद्वपंच०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० अणु० अष्ट०। एवं मणुसाउ०। सादा०-पंचिं०--तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-

हैं, इसिलए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अनुत्कृष्टके समान सातावेदनीय आदि, हास्य, रित और एकेन्द्रियजाित आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोक प्रमाण स्पर्शन जान लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रेंचे समान है यह स्पष्ट ही है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रेंचे समान है यह स्पष्ट ही है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक नारिकयोंके तिर्येक्चों और सनुष्योंके एकेन्द्रियोंने मारणान्तिक समुद्धात करनेके समय भी होता है। इसी प्रकार तिर्येक्चों और मनुष्योंके नारिकयोंने मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जानना चाहिए, इसिलए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम छह वटे चौदह राजु और सव लाकप्रमाण स्पर्शन कहा है। एकेन्द्रिय जाति आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संज्ञी पक्चेन्द्रिय तिर्यक्च और मनुष्य तो करते ही हैं, साथ ही ये जब एकेन्द्रियोंने मारणान्तिक समुद्धात करते हैं तब भी होता है, इसिलए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यक्चोंके समान कहा है। शेप कथन सुगम है।

३६७. मत्यज्ञानी त्रोर श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्रोधके समान स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि देवगतिष्टिकके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुपमाण है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियिकशरीर श्रीर वैक्रियकश्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पञ्चे न्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टि तिर्येक्च ख्रौर मनुष्य वारहवें करप तक समुद्घात करते हैं उनके देवनितिद्विकता वन्य होता है। यद्यपि मनुष्य मिथ्यादृष्टि नौवें यैवेयक तक उत्पन्न होते हैं पर उससे इस स्पर्शनमें ख्रन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उनका प्रमाण संख्यात है ख्रौर ऐसे जीवोंका कुल स्पर्शन लोकके ध्यसंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ देवनितिद्विकके ख्रानुत्कृष्ट ख्रानुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुपमाण कहा है। तथा वैक्रियिकिद्विकका नीचे छह राजु ख्रौर ऊपर पाँच,राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके वन्य होता है, इसलिए इनके ख्रानुत्कृष्ट ख्रानुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६८ आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कषाय, सात नोकषाय, मनुष्यगित पञ्चक, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, उपयात, श्रस्थिर, अञ्चभ, अयशःक्षीति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक नीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी अपेक्षासे स्पर्शन जानना चाहिए। सातावेदनीय, पञ्चे न्द्रियजाति, तेजसंशरीर, कार्मण्

पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० खेत्तर्भ०, अणु० घ्रह०। देवाउ०-आहारदुगं त्रोघं। देवगदि०४ उ० खेत्त०, अणु० छ०। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णवरि खइग०-उवसम०-सम्मामिच्छा० देवग०४ खेत्तर्भगो। उवसम० तित्थय० खेत्तर्भगो।

३६६. अवगद०-मणपज्ज०-संज०-सोमाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेत्त-भंगो। संजदासंज० हस्स-रिद० ७० अणु० छ०। देवाउ० तित्थय० ७० अणु० खेत्त०। सेसाणं ७० खेत्त०, अणु० छचो०। असंजद० ओघं।

शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंद्वर और उचगोत्रका भङ्ग चेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने छछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग ओधके समान है। देवगितचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने छछ कम छह वटे चौदह राजु-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यादृष्टि, चायिकसम्यादृष्टि, वेदक-सम्यादृष्टि, उपशाससम्यादृष्टि और सम्यागमध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्यादृष्टि जीवोंमें तीर्थंद्वर प्रकृतिका भङ्ग चेत्रके समान है। तथा उपशाससम्यादृष्टि जीवोंमें तीर्थंद्वर प्रकृतिका भङ्ग चेत्रके समान है।

विशेषार्थं—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख हुए चारों गितिके जीव करते हैं। उसमें भी हास्य और रितका तत्प्रायोग्य संक्लेश पिरणामोंसे स्वस्थानमें और मनुष्यगतिपञ्चकका देव और नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं। इनमेंसे तीन गित के जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और देवोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु-प्रमाण होता है। सव मिलाकर यह स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण हो है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है और इसी कारणसे इनके तथा सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। सम्यग्दृष्टि तिर्थञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणानिक समुद्वातके समय कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसलिए देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है। यहाँ अवधिदशनी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्रकृपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको आभिनिवोधिकज्ञानी आदिके समान कहा है। मात्र चायिकसम्यग्दृष्टि आदि तीन मार्गणाओंमें मारणानिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, इसलिए इनमें देवगित चतुष्कका भङ्ग जेवके समान कहा है। उपशाससम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका स्पर्शन चेत्रके समान कहा के समान कहा है। उपशाससम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। उपशाससम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका स्पर्शन चेत्रके समान

३६६. अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्चिद्धिसंयत और सूद्दमसाम्परायसंयत जीवोंमें चेत्रके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें हास्य
और रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण
चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन
चेत्रके समान है। शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और
अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।
असंयत जीवोंमें अोघके समान भङ्ग है।

३७०. किण्णै०-णील०--काड० पंचणा०--णवदंस०--असादा०-भिच्छ -सोलस-क०--सत्तणोक०--ितिक्ख०--पंचसंदा०--पंचसंदा०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाण०--चप०-अप्पसत्थ०-अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० छच्चो० चत्तारि-वेचोद्द०, अणु० सव्वलो०। सादा०-तिरिक्खाड०-मणुसग०--चढुजा०-ओरा०-तेजा०--क०-समचढु०-ओरा०अंगो०--वज्जरि०-पसत्थ०४--मणुसाण०--आगु० ३---आदाड०--पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०--णिमि०-उचा० उ० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। हस्स-रदि-एइंदि०-थावरादि०४ उ० लो० असंखे० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। णवरि-णील-काडणं हस्स-रदि० असादभंगो। [णिरयाड-] देवाड०-देवगदि० [२-] तित्थ० खेत्तभंगो। मणुसाड० णर्ड-सगभंगो। णिरय०-णिरयाणु० उ० अणु० छ-चत्तारि-वेचो६०। वेडव्वि०-वेडव्वि०-अंगो० उ० खेत्तभंगो। अणु० छ-चत्तारि-वेचो०।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंका मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन होता है। हास्यद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध तथा देवायु और तीर्थंद्धर प्रकृतिके सिवा शेप प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध ऐसी अवस्थामें सम्भव है, अतः हास्यद्विकके दोनों प्रकारके अनुभागके और शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

३७०. कृष्ण, नील श्रीर कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्येद्धगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, व्यप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर श्रादि छह, नीचगीत्र श्रीर पाँच अन्त-रायके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह वटे चौदह राजु, कुछ कम चार वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम दो वटे चौदह राजुप्रमाण चैत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पूर्शन किया है। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु,मनुष्यगति,चार जाति,श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर,कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, वर्श्रर्थभ-नाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रागुरुलघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, इसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण श्रीर उचगोत्रके उत्क्षप्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सव लोक है। हास्य, रति. एकेन्द्रियजाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण श्रीर सव लोक प्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सत्र लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि नील और कापोत लेश्यामें हास्य और रितका भङ्ग श्रसातावेदनीयके समान है। नरकायु, देवायु, देवगतिद्विक श्रीर तीर्थद्धर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। नरकगित स्रोर नरकगत्यानुपूर्वीके चत्कृष्ट स्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह वटे चौदह राजु, इछ कम चार वटे चौदह राजु और कुछ कम दो वटे चौदह राजुप्रमाण संत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशारीर और वैकियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है जोर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु, छुछ कम चार वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम दो वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रमंबद॰ श्रोघं । चक्खु॰ तमभंगो । किण्या॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती इत्सरिट ४ श्रमादभंगो इति पाठः ।

३७१. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-ग्रसादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंद०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्ख०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णीचा०पंचंत० उ० अणु० अह-णव० । सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-ग्रगु०३—वादर-प
पत्ते०-थिर-सुभ-जस०-णिमि० उ० खेत्त०, अणु० श्रह-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०पणुस०२—चदुसंठा ०-ओरा०श्रंगो०-इस्संघ०-आदा०-श्रप्पसत्थ०-दुस्सर् ० उ० श्रणु०

विशेपार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यके स्वामीको देखनेसे विदित होता है कि इन लेश्यात्रोंमें परस्पर तीन गतिके संज्ञी जीवोंमें मारणान्तिक समुद्रवात करनेवाले जीवोंके यथायोग्य उक्त प्रकृष्ट अनुभागनन्थ होता है और इस दृष्टिसे इन लेश्यात्रोंका क्रमसे स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार श्रीर कुछ कम दो चटे चौदह राजुप्रमाण है, अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रियोंके भी तीनों लेश्याएँ होती हैं अतः इनके अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट श्रनुभाग वन्ध सम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है। मात्र तिर्यञ्चायु, श्रातप श्रीर उद्योत इसके श्रपवाद हैं सो इनका मारणान्तिक समुद्यातके समय वन्ध नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। इनके श्रमुत्हृष्ट श्रमुभागके वन्यक जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन झानावरणादिके समान समम लेना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी हास्य आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का वर्तमान स्परीन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सर्वलोक प्रसाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। यहाँ इतनी विशेषता है कि नील और कापोतलेश्यामें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी हास्य और रतिका नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्य करते हैं, इसलिए इन दो प्रकृतियोंकी अपेना असाता-वेदनीयके समान स्पर्शन वन जाता है। वैसे सामान्य नारिकयोंमें इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु वतला आये हैं पर यहां कृष्ण लेश्यामें यह लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण क्यों रहने दिया गया है यह श्रवश्य ही विचारणीय है। जो तिर्युद्ध श्रीर मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागवन्ध सम्भव है इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार घ्रौर कुछ कम दो वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार वैक्रियकद्विकके अनुत्कृष्ट अनुसागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन भी घटित कर लेना चाहिए। शेप कथन सुगम है।

३७१. पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह-कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुरक, तिर्यञ्चगत्या-तुपूर्वी, उपचात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायक उत्कृष्ट और आनु-त्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ घटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुरक, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगितद्विक, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, अप्रशस्त

१. श्रा॰ प्रतो छ-चत्तारि वेडए इति पाठः । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः मग्रुस॰ ४ चदुसंठा॰ इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रप्पसत्य४ दुस्सर॰ इति पाठः ।

अहची० | देवाउ०-ग्राहारदुगं ओघं | देवगदि०४ उ० खेत्त०, अणु० दिवडूचोद० | पंचि०-समचदु०-पसत्य०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे०-तित्थय०-उचा० उ० खेत्तभंगो | अणु० अणुभा० अह० | ओरा०-उज्जो० उ० अह चो०, अणु० अह-णवे० | एवं पम्माए वि | णवरि अह चो० | देवगदि०४ अणु० पंच चो० |

विद्यागिति और दुःस्वरके उत्हृष्ट और अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुगाण जेन्नका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग श्रोघके समान है। देवातिचतुष्कके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेन्नके समान है। तथा अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम डेढ़ वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। पञ्चे निद्रय जाति, समचतुरहासंस्थान, प्रशस्त विद्यायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चेत्वके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेन्नको स्पर्शन किया है। श्रोदारिकशरीर और उच्चेतके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर और उच्चेतके उत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन किया है और अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन किया है है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें कुछ कम आठ वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन कहना चाहिए। तथा देवगतिचतुष्कके अनुत्हृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुनमाण चेन्नका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ-पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट श्रतुभागवन्ध ऐशान कल्पतकके देव करते हैं श्रीर मारणान्तिक समुद्यातके समय भी इनका वन्य होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रवुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्परान कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु कहा है। सातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्य श्रप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, श्रतः इनके उत्कृष्ट अनुमागके वन्यक जीवोंका चेत्रके समान स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार अन्य प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागवन्यके विपयमें जानना चाहिए। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान है यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समु-द्यात करते हैं उनके स्रीवेद आदिका वन्ध नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायु और आहारकद्विक का भङ्ग श्रोचके समान है यह स्पष्ट ही है। जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी देवगतिचतुष्कका अनुस्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागवन्यका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो देव एकेन्द्रियोंमें सारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके पद्धे न्द्रियजाति स्रादिका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनके स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। औदारिकशरीरका सम्यग्दृष्टि देव श्रीर उद्योतका तत्श्रायोग्य विशुद्ध देव उत्कृष्ट अनुभागवन्य करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनु-भागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है और इनका श्रतुत्कृष्ट अनुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्यातके समय भी सन्भव होनेसे इनके श्रनुत्कृष्ट श्रतुमागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम नौ वटे चौदह राजु कहा है। पद्मलेश्यामें मरकर देव एकेन्द्रिय नहीं होता, इसलिए इसमें कुछ कम आठ वटे व नी वटे चीदह राजुके स्थानमें केवल कुछ कम आठ वटे चौदह राजुनमाण स्पर्शन कहा है।

१. ग्रां० प्रती॰ उचा॰ खेतमंगो इति पाठः। २. ता॰ प्रती त्र्प्रहचो॰ श्रह्व-पाव॰ इति पाठः।

३७२. सुकाए पहपदंडओ उ० अणु० छचो०। खिनगणं उक्क० खेत्त०, त्र्रणु० छचो०। देवाउ०-आहारदुग० खेत्त०।

३७३. अब्भवसि० पहमदंडओ मदि०भंगो। सादा०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०ग्रंगो०--वज्जरि०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादि-छ०-णिमि० उ० अद्द-वारह०, अणु० सव्वलो०। मणुस०--मणुसाणु०--आदाउज्जो०

मात्र पद्मलेश्यामें मारणान्तिक समुद्घातद्वारा तिर्येश्व श्रौर मनुष्य कुछ कम पाँच वटे चौद्ह राजुप्रमाण तेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इस लेश्यामें देवगतिचतुष्कके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन एक प्रमाण कहा है। इस लेश्यामें शेप सव प्ररूपणा पीतलेश्याके समान है। मात्र यहाँ श्रपनी प्रकृतियाँ कहनी चाहिए।

३७२. शुक्तलेश्यामें प्रथम दण्डकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने चुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है।

विशेपार्थ—शुक्तलेश्यामें कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन है, क्योंकि आनतादि-देवोंका मेरुके मूलसे नीचे गमन नहीं होता। यहाँ पर प्रथम दण्डकमें ये प्रकृतियाँ ली गई हैं— पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, श्रौदारिकशरीर,पाँच संस्थान,श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन,श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात,श्रप्रशस्त विहायोगति,श्रस्थिर,श्रशुभ, दुर्भग,दुःस्वर, श्रनादेय, श्रयशः-कीर्ति नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तराय । चपक प्रकृतियाँ ये हैं—सातावेदनीय, देवगित, पञ्चोन्द्रिय-जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णाचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंकर और उचगोत्र। यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग-वन्ध देवोंके होता है इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण कहा है। क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य चपकश्रीणमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है श्रीर इनका श्रनुत्कृष्ट श्रमुभागवन्य देव भी करते हैं। मात्र देवगतिचतुष्कका वन्य तिर्यद्ध श्रीर मनुष्य करते हैं, सो देवोंमें मरणान्तिक समुद्यात करनेवाले इनका भी स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चपलव्य होता है। देवोंका तो इतना है ही, इसलिए इन सब क्षपक प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग के वन्यक जीवोंका रक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। देवायु श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है।

३७३. श्रभन्योंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। सातावेदनीय, पद्धे न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तंजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रौदारिकश्चाङ्गाताः, वर्जपभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसम्बतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रौर निर्माणके उत्कृष्ट श्रानुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी,

उचा० उ० अहं ०, अणु० सन्वलो० । देवगदिदुग० उक्क० अणु० पंचचो० । वेउन्वि०-वेउन्वि०अंगो० उ० पंचचो०, अणु० एकारह० । णिरयगदिदुगं ओघं । अथवा सन्वाणं मदिअण्णाणिभंगो कादन्वो ।

२७४. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०--श्रसादा०--सोत्तसक०--अष्टणोक०-तिरिक्ख०-चढुसंठा०-चढुसंघ०--श्रप्पसत्थ०४-तिरिक्खाण०--छप०--अप्पसत्थ०-अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० छ०[अणु०] अष्ट-वारह०। सादा०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०समचढु०-ओरा०श्रंगो०-वज्जिर०-पसत्थ०४-श्रगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०णिमि० छ० अष्ट०, अणु० अष्ट-वारह०। देवाछ० ओधं। दोआछ० छ० खेत्त०, अणु०

श्रातप, उद्योत श्रीर उद्यगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने छुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशरीर श्रीर वैकियिकश्राङ्गोपाङ्ग के उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने छुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रनुतकृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने छुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रथवा सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—को ऊपर छह और नीचे छह इस प्रकार इछ कम बारह बटे चौदह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं ऐसे जीवोंके भी सातावेदनीय आदिका उत्छ्रष्ट अनुभागवन्य होता है। देवोंके विहारादिके समय तो हो ही सकता है, इसलिए इनके उत्छ्रष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन इछ कम आठ वटे चौदह राजु और इछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र मनुष्यगित आदिका उत्छ्रष्ट अनुभागवन्य कई कारणोंसे इछ कम बारह बटे चौदह राजु नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह इछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इन सातावेदनीय आदि और मनुष्यगित आदिके अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सव लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। जो तिर्येक्ष और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते हैं उनके देवगिति-दिकका उत्छ्रष्ट अनुभागवन्य सन्भक है, इसलिए इनके उत्छ्रप्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन इछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार वैक्रियिकदिकके उत्छ्रष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिये। मात्र इसमें नीचेका इछ कम छह राजु स्पर्शन मिलाने पर इछ कम ग्यारहबटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन वैक्रियिकदिकके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका होता है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३७४. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, सोलह कपाय, आठ नोकवाय, तिर्येख्यगित, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येख्यगत्यानुपूर्वी, उपचात, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुसागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पद्धे न्द्रियज्ञाति, औदारिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरलसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुस्लघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके उत्कृष्ट अनुमागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और

१. ता॰ मती स्रादा॰ उचा॰ उ॰ , स्रा॰ मती॰ स्रादाउजो॰ उ॰ । इति पाठः।

अह०। मणुस०-मणुसाणु०-उचा० उ० अणु० अहचो०। देवगदि०४ उ० अणु० पंचचो०। उज्जो० उ० खेत्त०, अणु० अह-वारह०। मिच्छादिही० मदि०भंगो।

३७५. असण्णीसु पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्लाड०-मणुस०-चदुजा०-ओरा०-तेजा०--क०-झस्संठा०-ओरा०झंगो०--झस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०४-आदाडज्जो०--दोविहा०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि०--दोगो०--पंचंत० ड० लो० असंखे०, अणु० सव्वलो० । हस्स--रदि०-

श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग श्रोघके समान है। दो श्रायुश्रोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उच्चोतके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उच्चोतके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्थक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्तका विहार आदिकी श्रापेता कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्वातको श्रापेता कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन है। प्रथम रण्डककी तियोंके दोनों प्रकारके श्राप्त अनुमागके वन्धक जीवोंका यह दोनों प्रकारका स्पर्शन सम्भव है और सातावेदनीय श्रादिके उत्कृष्ट श्राप्ताग्ताग्यक समय कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है, इसलिए इन वातोंको ध्यानमें रखकर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्राप्तकृष्ट श्राप्ताग्ताके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चायु श्रीर मतुष्यायुका श्राप्तकृष्ट श्राप्ताग्राप्तक विहारादिके समय सर्वत्र सम्भव है, इसलिए इनके श्राप्तकृष्ट श्राप्तागति श्रादि तीनके उत्कृष्ट श्रीर श्राप्तकृष्ट श्राप्तागति कादि तीनके उत्कृष्ट श्रीर श्राप्तकृष्ट श्राप्तागति व्यादि तीनके उत्कृष्ट श्राप्तागति व्यादि तीनके विष्तागति विष्तागति

३७५. श्रसंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यद्वाय, मनुष्यगति, चार जाति, श्रौदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, दो गोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके

१. ग्रा॰ प्रतौ मतुसाणु॰ उ॰ इति पाठः । २. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः मदि॰मंगो । सण्णी पंचदिय-भंगो । श्रसण्णीसु इति पाठः ।

तिरिक्ख०--एइंदि०-तिरिक्खाणु०--थावरादि०४-[अथिरादिछ०] ७० लों० असं० सन्वलो०, अणु० सन्वलो०। दोआड०-वेडन्वियछ० ७० अणु० खेत्तभंगो । मणुसाड० तिरिक्खोधं। अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं उकस्सफोसणं समतं।

३७६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक० तिरिक्ख०--अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०--उप०-णीचा०-पंचंत० जहण्णं अणुभागं वंथगेहि केवडियं खेत्तं फोसिद १ लोग० असंखे०, अज० सन्वछो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०--चदुजा०--इस्संठा०--इस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-

श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर श्रादि चार श्रोर श्रस्थिर श्रादि छहके उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रोर सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु श्रोर वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। श्रमाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

चिरोपार्थ — यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गईं प्रकृतियोंका व अन्य सव प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य अपने अपने योग्य परिणामोंके साथ असंज्ञी पद्धे न्द्रिय जीव करते हैं। उसमें भी प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागक्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सव लोक प्रमाण कहा है। इन सबका अनुत्कृष्ट अनुभागकय एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और वैक्रियिकछहका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागकय असंज्ञी पञ्चे न्द्रिय ही करते हैं और ऐसे जीवोंका उनका वन्य करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं होता, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लेकके समान कहा है। मनुष्यायुका भङ्ग स्पष्ट ही है। संसारी जीवोंके अनाहारक अवस्था कार्मणकाययोगके समय होती है, इसलिए अनाहारकोंकी प्रकृपणा कार्मणकाययोगी जीवोंके समान कही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शन समाप्त हुआ।

३७६. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यातुपूर्वी, रुपधात, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है १ लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है १ लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है १ सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन,

यावर०४-थिरादिखयुगै०-उच्चा० ज० ० सन्वलो० | इत्थि-णवुंस० ज० अह-वारह०, अज० सन्वलो० | दोआउ०-आहारदुग० ज० अज० खेत्तभंगो | मणुसाउ० ज० लो० प्रमंखे० सन्वलो०, अज० अह० सन्वलो० | णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० छचो० | देवग०-देवाणु० जह० दिवडुचो६०, अथवा पंचचो०, अज० छचो० | पंचि०-ओरा०- छंगो०- ० जह० अह--वारह०, अज० सन्वलो० | ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थ०४- अगु०३-उज्जो०वादर-पज्जत्त-पर्ने०-णिमि० ज० अह-तेरह०, अज० सन्वलो० | वेउन्वि०-वेउन्वि० झंगो० [ज०] छचो६०, अज० वारहचो० | आदाव० ज० अह०, अज० सन्वलो० | तित्थ० ज० खेतं०, अज० अह० ।

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विद्दायोगति, स्थावरचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और उचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रत्भागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सवलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और आहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रुज्यन्य श्रुनुभागके वन्यक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। मनुष्यायुके जयन्य श्रुनु-भागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाए और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीबोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रीर अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाए चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम डेढ़ घटे चौदह राजु अथवा कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पछ्छेन्द्रियजाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सत्र लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशारीर, तैजसञारीर, कार्मण-शारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशारीर श्रीर वैक्रियिकश्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुसागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुनमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। त्रातपके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थेद्धर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ वैकियिक छह, आहारकद्विक, नरकायु व देवायु और तीर्थं द्वर प्रकृतिका वन्ध एकेन्द्रिय जीव नहीं करते । इनके सिवा सब प्रकृतियोंका वन्ध एकेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए उन सब प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। इसके सिवा

१. त्रा॰ प्रतौ थावर॰ थिरादिछयुग॰ इति पाठः ।

जहाँ जो विशेषता होगी वह उस उस प्रकृतिके निरूपणके समय कहेंगे। अब रहा जघन्य अनुभाग-वन्धका विचार सो प्रथक दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जवन्य अनुभागवन्य जिनके होता है उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय श्रादिका जवन्य श्रतुभागवन्य यथासम्भव चार, तीन या दो गतिके जीव मध्यम परिणामोंसे करते हैं, इनका स्पर्शन सर्व लोक होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागवन्य चारों गतिके संज्ञी पख्चे न्द्रिय जीव करते हैं किन्तु यह वन्य करते समय एकेन्द्रियों मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता यथासम्भव श्रन्यत्र भी नहीं होता, इसलिए इनके जधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चाँदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौद्ह राजुनमाण कहा है। नरकायु, देवायु श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। मतुष्यायुका जघन्य अनुभागवन्य तिर्येख्व श्रीर मतुष्य करते हुए भी एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, इसलिए इसके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। तथा देव भी विहारादिके समय इसका श्रजयन्य श्रतभागवन्य करते हैं, इसलिए इसके श्रजयन्य श्रतुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण श्रलगसे वतलाया है। तिर्यख्न श्रीर मनुष्य मारणान्तिक समुद्यातके समय भी नरकगतिद्विकका जवन्य और अजघन्य अनुभागवन्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह दटे चीदह राजु प्रमाण कहा है। ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्वात करनेवाले तिर्येख्न श्रीर मनुष्यके देवगतिद्विकका जघन्य श्रनुभागवन्ध सम्भव है ऐसा मानने पर इनके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ वटे चौदह राजु प्रमाण प्राप्त होता है श्रीर सहस्त्रार करूप तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी यह जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है ऐसा मानने पर इनके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनका श्रजघन्य श्रनुभागवन्य वारनेवाले जीव सर्वार्थसिद्धि तक मारणान्तिक समुद्धात करते हैं श्रीर इनका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राज़ुसे श्रिधिक नहीं है, इसलिए इनके श्रवचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है जो पख्चे न्द्रियों मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी पख्चे न्द्रियजाति आदिका जधन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो देव वादर एकेन्द्रियोंमें अपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी छौदारिकशारीर छादिका जयन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर छुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो तिर्युख श्रीर मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते हैं उनके भी वैक्रियिकद्विकका जवन्य अनुभागवन्ध होता है। तथा देव श्रीर नारिकयोंमें समुद्घात करते समय इनका श्रजवन्य श्रनुभागवन्य भी होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका छुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण श्रीर श्रजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम वारह वटे चीदह राजुप्रमाण स्पर्धन कहा है। ऐशान तकके देवोंके विहारादिके समय भी आतपका जवन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तीर्थद्धर प्रकृतिका ज्ञचन्य अनुभागवन्य मिध्यात्वके अभिमुख हुए मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टि करते हैं, इसलिए इसके जयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है और तिर्यद्योंके सिवा तीनों गतिके जीवोंके यथायोग्य इसका वन्य सन्भव है, इसलिए इसके अज्ञवन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है।

३७७. णिरएसु पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सो ०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०--णीचा०--पंचंत० ज० खेत्त०, अज० छचो०।
दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस-पंचि०-ओराल्ठि०-तेजा०-क०-छस्संठी०-ओरा०श्रंगो०-छस्संघ०
पसत्थ०४ -अगु०३-[उज्जो०-] दोविहा०-तस०४-थिरादिछयु०-णिर्मि० ज० अज०
छ०। दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ०-उचा० ज० अज० खेत्त०। एवं सत्तमाए
पुढवीए। छस्र उविरमास्र एसेव भंगो। णविर तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सादभंगो। एवं अप्पष्पणो रज्जू भाणिदव्यं। इत्थि०-णवुंस० ज० खेत्त०।

३७८. तिरिक्खेस पंचणा०-छदंस०-अहक०--सत्तणोक०--पंचि०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-[अगुरु०४-]तस०४-णिमि०-पंचंत० ज० छ०, अज० सव्वलो०।

३७७ नारिकयों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञाच्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अज्ञाचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अज्ञाचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पद्ध निद्रयज्ञाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, दो विहायोगिति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य और अज्ञाचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अज्ञाचन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियों में यही स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेवता है कि इनमें तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके सामन है। इसी प्रकार अपनी अपनी रज्जु कहनी चाहिए। तथा इनमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्न चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य नारिकयोंका स्पर्शन छुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए यहाँ कुछ प्रकृतियोंके सिवा शेप सब प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन प्रमाण कहा है और सातावेदनीय आदिका जधन्य अनुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है, इसलिए इनके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भी उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र पाँच ज्ञानावरणादिके जधन्य अनुभागवन्धके स्वामीको तथा दो आयु आदिके जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्धके स्वामीको तथा दो आयु आदिके जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्धके स्वामीको देखते हुए यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण हो प्राप्त होता है, इसलिए यह चेत्रके समान कहा है। प्रथमादि पृथिवियोंमें अपना अपना स्पर्शन समक्त कर सब प्रस्पणा इसी प्रकार कहनी चाहिए। केवल तिर्यञ्चगतित्रिकका जधन्य अनुभागवन्ध इन पृथिवियोंमें मिध्यादृष्टि नारकी परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं अतः यहाँ इनका मङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है।

३७८. तिर्यक्षोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दशंनावरण, आठ कपाय, सात नोकपाय, ेन्द्रिय-जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस-चतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह

१. ता॰ प्रती तेजाक॰ छस्पंठा॰ तेजाक॰ छस्पंठा॰ (१) ग्रा॰ प्रती तेजाक॰ पंचयंठा॰ इति पाठः। २. ता॰ग्रा॰प्रत्योः ग्रप्पसत्य॰४ इति पाठः। ३. ता॰ग्रा॰प्रत्योः यिरादिछ० गिमि॰ इति पाठः।

थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अद्दक्ष०--णवुंस०--ओरा०श्रंगो०--आदार्व० ज० खेत्तभंगो। अज० सन्वलो०। साददंहओ ओघो। इत्थि० ज० दिवहु०, अज० सन्वलो०। दोआए०-वेएन्वियछ० ओघं। मणुसाए० ज० अज० लो० असंखे० सन्वलो०। ओरा० ज० लो० असंखे० सन्वलो०। आरा० ज० लो० असंखे० सन्वलो०, अज० सन्वलो०। तिरिक्लै०-तिरिक्ला ०-णीचा० खेत्तभंगो। ए० ज० सत्त्वोद०, अज० सन्वलो०।

राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अठ कपाय, नपुंसकवेद, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और आतपके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। खीवेदके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वो आधु और वैक्रियक इहका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रोदारिक शरीरके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोक असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। त्रियं अगर नी चगोत्रका भङ्ग चेत्रके समान है। उद्योतके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ—तिर्यञ्जोंका स्पर्शन सव लोक प्रमाण होनेसे यहाँ एकेन्द्रियोंमें वँधनेवाली प्रकृतियोंके अनयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। जहाँ विशेषता होगी रसे अलगसे कहेंगे। नारिकयोंमें और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवोंके भी स्वामित्वके अनुसार पाँच ज्ञानावरणादिका नवन्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके नघन्य श्रतुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि श्रादिका जवन्य श्रनुभागवन्य पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चोंके स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। स्त्रीवेदका जयन्य श्रनुभागवन्ध करनेवाले तिर्युख्वोंके ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्वात करना सम्भव है इसलिए इसके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका जघन्य श्रनुभागवन्ध एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं। किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातर्वे मागप्रमाण ही है और अतीत स्वर्शन सव लोक प्रमाण है। इसके अज्ञघन्य श्रतुभागवन्यकी श्रपेक्षा भी यही स्पर्शन जानना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी श्रीदारिकशरीरका जवन्य श्रनुभागवन्य होता है, इसलिए इसके जवन्य श्रनुभाग के वन्यक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सव लोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्युद्ध-गतिनिकका जवन्य अनुभागवन्य वाद्र अग्निकायिक और वाद्र वायुकायिक जीव कर्ते हैं, इसलिए इनके वयन्य अनुभागके बन्यक जीवोंका स्वर्शन चेत्रके समान लोकके संख्यातवें भामप्रमाण प्राप्त होनेसे वह इक्त प्रमाण कहा है। जो अपर वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी उद्योतका जयन्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इसके जयन्य अनुभागके वन्धक जीवों का कुछ कम सात यटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेप कथन सुगम है।

^{1.} श्रा॰प्रती श्रादाद॰ इति पाठः। २. श्रा॰ प्रती श्रसंखे॰ सन्त्रलो॰ तिरिक्ख॰ इति पाठः।

३७६. पंचिदि०तिरिक्ख०३ पंचणा०-छदंसणा०--ग्रहक०-छण्णोक०-तेजा०-क०--पसत्थापस०४ – अगुँ०४--पज्ज०--पत्ते०-णिमि०--पंचंत० ज० छ०, अज० छो० ग्रसं० सन्वलो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अहक०-णग्रुंस० ज० खेत्त०, श्रज० छो० असं० सन्वलो०। सादासाद०--तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०--हुंड०-तिरिक्खाणु०-थाव-रादि४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग०-अणादे०-अजस०-णीचा० ज० अज० लो० ग्रसं० सन्वलो०। इत्थि० ज० अज० दिवहु०। पुरिस०-णिरय०--णिरयाणु०-अप्प-सत्थ०-हुस्सर० ज० ग्रज० छचो६०। चदुआउ०-मणुस०--तिण्णिजा०--[चदुसंडा०-] ओरा०श्रंगो ०--छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० ज० अज० खेत्त०। देवग०--समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग०--सुस्सर्र-आदे०--उचा० ज० पंच चो०, अज० छचो०। पंचिदि०-वेउन्वि०-वेउन्वि०श्रंगो०-तस० ज० छ०, अज० वारह०। उज्जो०-जसगि० ज० अज० सत्तचो०। वादर० ज० छ०, अज० तेरह०।

३७६. पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, छह नोक-पाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्परान किया है। श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण त्रीर सव लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धितीन, मिथ्यात्व, त्राठ कषाय त्रीर नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रोर सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, स्थावर श्रादि चार, स्थिर, श्रस्थिर, शुभ, श्रशुभ, दुर्भग, श्रनादेय, श्रयशाःकीर्ति श्रीर नीचगोत्रके लवन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम डेढ़ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेद, नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके जयन्य और अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रौर श्रातपके जयन्य और अजयन्य अनुमागके बन्यक जीवोंका स्परान चेत्रके समान है। देवगति, समचतुरस्र-संस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, त्रादेय और उचगोत्रके जवन्य अनु-भागके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवस्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वट चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। ेन्द्रिय-जाति, वैकियिकशरीर, वैकियिकत्राङ्गोपाङ्ग और त्रसके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु और अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु और श्रज्ञघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

१: ता॰त्रा॰प्रत्योः त्रागु०३ इति पाठः । २. ता॰त्रा॰प्रत्योः चहुनादि त्रोरा॰त्रंगो॰ े पाठः । ३. त्रा॰प्रतौ पहत्य॰ सुस्तर॰ इति पाठः।

३८०. पंचि०तिरिक्खअपज्जत्तएसु पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०-सोल ०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४--डप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० छो० ग्रसं० सव्वछो०। सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०--श्रोरा०-तेजा०-क०--हुंड०--पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-श्रगु०३-थावर-सुहुम-पज्जतापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर०-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० छो० असं० सव्वछो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआड०-

विशेषार्थ-प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंके जघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्जोंके घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण है और एकेन्द्रियों में सारणान्तिक समुद्धात करने पर सब लोक प्रमाण है। पाँच ज्ञानावरणादिके श्रजवन्य श्रनुसाग-वन्धके समय उक्त स्पर्शन सम्भव है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। आगे भी जिन प्रकृतियोंका जयन्य या त्र्यजयन्य यह स्पर्शन कहा हो उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिका जघन्य श्रनुभागवन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। ऐशान कल्पतककी देवियोंमें मारणान्तिक समुद्धात-के समय भी स्त्रीवेदका जघन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इसके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम डेढ़ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके पुरुषवेदका श्रीर नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्येख्योंके नरकगति आदिका दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रीर घन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन कहा है। सहस्रारकल्पतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्वात करनेवाले तिर्यञ्जोंके देवगति आदिका जवन्य अनुभागवन्ध और आगे तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले तिर्येख्नोंके देवगति श्रादिका श्रजधन्य अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके वन्धक तिर्यञ्चोंके कमसे कुछ पाँच और कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले ेन्द्रियजाति आदिका जघन्य तथा नारिकयों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके इनका श्रजधन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जधन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम छह वटे चैदह राजु व कुछ कम वारह वटे चौद्ह राजुप्रमाण कहा है। अपरके वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके उद्योत और यशःकीर्तिका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नार-कियोंमें श्रीर नारक व देवोंके साथ ऊपरके वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यख्रोंके कमसे वादर प्रकृतिका जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध सम्भव है, इस्तिए इसके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक ति शिंका स्पर्शन से कुछ कम छह वटे चौदह राजु व तेरह वटे चौदह राजुपमाण कहा है। शेव कथन स्पष्ट ही है।

३८०. ेन्द्रियतिर्येक्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह-क्षाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके वन्यक जीवोंके लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्येख्यगित, एकेन्द्रियजाति, ख्रोदारिकश्ररीर, तैजसश्ररीर, कार्मणश्ररीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क तिद्धर्यगत्यानुपूर्वी, अगुस्लघुत्रिक, स्थावर, सूद्दम, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीति, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य

मणुस०-चरुनी०-पंचसंठा०-स्रोरालि॰ स्रंगो०- इस्संघ०--मणुसा ०-आदाव०-दोविहा०-०- भग--दोसर०--आदे०-- उचा० ज० अज० लो० असं० । उज्जो०-- नादर-जस० जह० अज० सत्तचो० । एवं सञ्बस्रपज्जत्तगाणं सन्वविगलिदियाणं वादरपुढ०-आड०-

तेड०-वाड०-पत्ते०पज्जताणं च । णवरि वादरवाऊणं यम्हि लो० असंखे० तम्हि लो० असंखेज्ज० कादन्वो ।

३८१. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-सत्तणोक०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० लो० असं० सन्वतो०। सादासाददंडओ पंचिदियतिरिक्खभंगो। उज्जो० ज० अर्जै० सत्त

श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। खीवेद, पुरुपवेद, दो श्रायु, मनुष्यगित, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, श्रादेय श्रीर हचागेत्रके जयन्य श्रीर श्रज्ञ्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हचोत, वादर श्रीर यशःकीतिके जयन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राज्यप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब श्रपर्यात, विकलेन्द्रिय, वादर प्रथिवीकायिक पर्यात, वादर जलकायिक पर्यात, बादर श्रीनकायिक पर्यात, वादर वायुकायिक पर्यात श्रीर बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्यात जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है वहाँ वायुकायिक जीवोंके लोकके संख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्य संज्ञी जीव सर्वविशुद्ध या तस्यायोग्य विशुद्ध परिणामों से करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पद्धे न्द्रिय ति अपर्याप्तकों का स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और भारणान्तिक समुद्वातकी अपेना स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण है। पाँच ज्ञानावरणादिका अजघन्य अनुभागवन्य इनके हो सकता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियों के जघन्य या अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ भी ऐसा ही जानना चाहिए। स्त्रीवेद आदि ऐसी प्रकृतियाँ हैं जो अधिकतर त्रसादिसन्वन्धी हैं, आयुका वन्य मारणान्तिक समुद्धातके समय होता नहीं और आतप एकेन्द्रियसन्वन्धी होकर भी उसका उदय यादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवों में होता है, इसलिए इन सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। जो अपर सात राजुके भीतर वादर एकेन्द्रियों मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी उद्योत आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का समुद्धात करते हैं उनके भी उद्योत आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का कुछ कम सात वदे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३५१. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तैनसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रौर पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजधन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर सब लोक-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय श्रौर श्रसातावेदनीयद्ण्डकका भङ्ग पञ्चीद्विय

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः मगुप्प॰ ३ चहुजा॰ इति पाठः । २. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः तस४ सुभग इति पाठः । ३. ता॰ प्रतौ ज॰ ज॰ । इति पाठः ।

चो० । बाद्रजहण्णं खेत्रभंगो । अज० सत्तचो० । संसाणं ज० अज० खेत्रभंगो ।

३८२, देवेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ४—
छपै०-पंचंत० ज० अह०, अज० अह-णव० । सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदिय०-ओरा०तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-अगु०३—उज्जो०-थावर-वादर-पज्जत-पत्ते०थिराथिर-सुभासुभ-दृभग-अणादे०-जस०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० अह-णव०।
इत्थि०-पुरिस०-दोआड०-मणुस०--पंचि०-पंचसंटा०--ओरालि० अंगो०-- इस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०--तस०--सुभग-दोसर०-आदे०--तित्थ०-उचा० ज० अज०
अह०। एवं सव्वदेवाणं अप्यूपणो फोसणं णेद्व्वं।

तियंद्र्विके समान है। उर्चातके जवन्य श्रीर श्रजयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्र-का स्पर्शन किया है। श्रेप प्रकृतियोंके जवन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेपार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जयन्य अनुभागवन्य जो जीव करते हैं उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा उक्त मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण होनेसे उक्त प्रकृतियोंके अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। जो उपर वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके उद्योतके जयन्य और अजयन्य अनुभागका वन्य सम्भव है, इसलिए इसके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। वादरके जयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३५२. देवोंमें पाँच झानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-संस्थान,प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुत्रिक, उद्योत, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अश्रुभ, दुर्भग, अनादेय, यश्कोर्ति, अयशःकीर्ति, तिर्माण और नीचगोत्रके ज्ञयन्य और अज्ञवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चन्त्रिय जाति, पाँच सस्थान, औदारिकश्चाङ्गोपाङ, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्यङ्कर और उच्चगेत्रके ज्ञयन्य और अज्ञवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन कान्ता चाहिये।

्रिवेशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें समुद्धात करते समर्थ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रेतुभाग

Section that the the Bart

१. आ॰ प्रती ऋष्यसस्य॰ उप॰ इति पाठः ।

३८३. एइंदिएस पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-त्रोरा०-श्रंगो ०-श्रप्पसत्थ०४-तिरिक्खाण०-उप०-आदा०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सव्वलो० दोवेदणीय०-तिरिक्खाड०-मणुस०-पंचजा०-श्रोरा०-तेजा०-क०--छस्संठा०---छस्संघ०--पसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०३-दोविहा०-तस०थावरादि-दसयुग०- [णिमि०-] उचा० ज० श्रज० सव्वलो० । मणुसाड० तिरिक्खोघं। उज्जो० ज० सत्त्वोद०, अज० सव्वलो० ।

३८४, वादरपज्जतापज्जतः पंचणाः ०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखे०, अज० सम्बलो० । सादासाद०--एइंदि०--ओरा०--तेजा०--क०--हुंड०--पसत्थ०४-अगु०३--

वन्ध, और स्नीवेद श्रादिका दोनों प्रकारका वन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी श्रपेक्षा कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी पाँच ज्ञानावरणादिका श्रजवन्य अनुभागवन्ध श्रीर सातावेदनीय श्रादिका दोनों प्रकारका श्रनुभागवन्ध सम्भव हे, इसलिए इनकी श्रपेक्षा कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण स्परान कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३=३. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोक-पाय, तिर्यञ्चगति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रास्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रातप, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्राज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, श्रोदारिकशरीर, तेजस-शरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु- त्रिक, दो विहायोगिति, त्रस-स्थावर श्रादि दस युगल, निर्माण श्रोर उचगोत्रके जघन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। उद्योतके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण स्रोतका स्पर्शन किया है। स्वानक प्रमाण स्रोतका स्पर्शन किया है। श्राज्ञवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण स्रोतका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ – एकेन्द्रियोमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्ध वादर एकेन्द्रिय जीव सर्वविशुद्ध परिणामों करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण कहा है। एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अज्ञयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। दो वेदनीय आदिका जघन्य और अज्ञयन्य अनुभागवन्ध सबके होता है, इसलिए इनके जबन्य और अज्ञयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। शेप कथन सुगम है।

३८४. वादर पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपवात, नीच-गोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके ज्ञवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, एकेन्द्रियज्ञाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-

१. श्रा० प्रतौ तिरिक्ल॰ श्रोसिल॰ श्रोस॰ श्रंगो॰ इति पाठः । २. ता०श्रा॰प्रत्योः उज्जो॰ जस॰

थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०णिमि० ज० अज० सव्वले० | इत्थि०--पुरिस०--तिरिक्लाड०--चदुजा०--पंचसंठा०ओरा०अंगो०-इस्संघ०-आदाव०--दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे० ज० अज० लो०
संखे० | मणुसाड०-मणुस०३ ज० अज० लो० असं० | [उज्जो०-वादर-जस० ज०
अज० सत्तचो० |] सव्वसुहुमाणं सव्वपगदीणं ज० अज० सव्वलो० | मणुसाड० ज०
अज० लो असं० सव्वलो० |

३८५. पंचि०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०--तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--जप०--णीचा०--पंचंत० [ज०] खेत्त०, त्रज० अह० सन्वलो० । सादासाद०--एइंदि०-हुंड०-थावर०--थिराथिर--सुभासुभ-दूमग--अणादे०-

संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलवुत्रिक, स्थावर, सूद्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणके नघन्य और अन्वयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, पुरुपवेद, तिर्यक्रायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। चद्योत, वादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने क्रिया है। सव सूद्म एकेन्द्रियोंमें सव प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—इन जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्रोर स्रतीत स्पर्शन सव लोकप्रमाण है। इसलिए इस स्पर्शन स्रोर स्वामित्वको ध्यानमें रखकर यहाँ सब प्रकृतियों के जघन्य स्रोर स्रज्ञचन्य स्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा गया है। विशेषताका स्पष्टीकरण स्रनेक वार कर साथे हैं। इन जीवोंके ज्वगोत्रका वन्ध मनुष्यगति स्रादिके साथ ही सम्भव है, स्रोर मनुष्यायु स्रादिके वन्धक जीवोंका स्पर्शन हर स्रवस्थामें लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। उद्योत स्रादिका वन्ध या तो स्वस्थानमें होता है या स्पर सात राजुके भीतर एकन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय होता है, इसलिए इनक जघन्य स्रोर स्रज्ञचन्य स्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। सूद्म जीव सर्वत्र होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्रोर स्रज्ञचन्य स्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका वन्ध करनेवाले सूद्म जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके स्रसंख्यातवें भागप्रमाण है स्रोर स्रतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है।

३८५. पञ्चे न्द्रिय और पञ्चे न्द्रिय पर्याप्त जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, छह नोकपाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अज्ञयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, वर,

अजस० ज० अज० अहं ० सन्वली० | इत्थि०--पंचिदि०--पंचसंठा०--ओरा०श्रंगो०इस्संघ०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदे० ज० अज० अह-वारह० | पुरिस०
ज० खेत्त०, अज० अह-वारह० | णवुंस० ज० अह-वारह०, अज० अह० सन्वलो० |
तोआड०-तिण्णिजादि-आहारदु० ज० अज० खेत्त० | दोआड०-तित्थ० ज० खेत्त०,
अज० अह० | णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० छ० | मणुसग०-मणुसाणु०-आदाव०चिचा०] ज० अज० अह० | देवग०-देवाणु० ज० पंचचो०, अज० छचो० |
ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अह-तेरह०, अज०
अह० सन्वलो० | [वेडन्वि०-वेडन्वि० ग्रंगो० ओघं |] उज्जो०-वादर०-जस० ज०
अज० अह-तेरह० | सुहुम-अपज्ज०-साधार० जै० अज० लो० असंखे० सन्वलो० |
एवं तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि ति |

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयशाकीतिंके जवन्य और अजघन्य अतु-भागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकशमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पञ्चे न्द्रियजाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग दो स्वर श्रीर श्रादेयके जवन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवो ने कुछ कम श्राठ वटे चौहह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेदके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। अजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु स्त्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसक-वेदके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौद्ह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति श्रौर श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर अजधन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। दो श्रायु और तीर्यङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवो ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरक-गति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्रातप स्रोर उचगोत्रके जयन्य और खजयन्य खनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम खाठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवो ने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवो ने कुछ कम छह वटे चौदह राजुश्माण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघुत्रिक, पर्यात, प्रत्येक और निर्माणके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवाने कुछ श्राठ वटे चौदह राजु श्रोर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य श्रतुभागके वन्धक जीवो ने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशारीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग ओघके समान है। उद्योत, वादर और यशःकीर्तिके लघन्य और अलघन्य अनुभागके वन्यक जीवो ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूद्रम, अपर्याप्त श्रीर साधारणके जवन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागके वन्यक जीवों ने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचन-

योगी, चजुदर्शनी श्रीर संज्ञी जीवो के जानना चाहिए।

१. ता॰ प्रतो ज॰ श्रष्ट इति पाठः । २. ता॰ प्रतो श्रपञ्ज॰ सादा॰ ज॰ इति पाठः ।

३८६, पुढवि ॰ -- ग्राउ० पंचणा ० -- णवदंस० -- मिच्छ० -- सोत्तसक० -- णवणोक० -ग्रोरा० ग्रंगो० - अप्पसत्थ०४ -- उप० - आदाव० - पंचंत० ज० लो० ग्रसं०, अज० सन्वलो०।

विशेपार्थ—जो पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभागवन्ध करते हैं उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह चेत्रके समान कहा है। तथा इनका स्वस्थान विहारादिके समय श्रीर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रीर सव लोकप्रमाण कहा है। श्रागे जहाँ भी कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है वह इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद आदिका स्वस्थान विहारादिके समय तथा नीचे छह व ऊपर छह इस प्रकार मारणान्तिक समुद्यात द्वारा कुछ कम वारह राजुका स्पर्शन करते समय जघन्य व अजघन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य व श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का कुछ कम आठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुनमाण स्पर्शन कहा है। पुरुषवेदका जघन्य अनुभागवन्ध चपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके जघन्य श्रतुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इसके अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवों के स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुका खुलासा पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी व आगे भी जानना चाहिए। तिर्येक्टायु, मनुष्यायु व तीर्थेङ्कर प्रकृतिका अजधन्य श्रनुभागवन्ध स्वस्थान विहारादिके समय सम्भव है, इसलिए इनके अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यद्यपि तीर्थक्कर प्रकृतिका अजघन्य अनुभागवन्ध मारणान्तिक समु-द्घातके समय भी होता है पर इस कारण स्पर्शनमें अन्तर नहीं पड़ता। मनुष्यगति आदिके जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी नरक-गतिद्विकका जघन्य व अज्ञवन्य अनुभागवन्य सन्भव है, इसलिए इनके जघन्य व अज्ञचन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन इन्छ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। जो सहस्रार करपतक देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी देवगतिद्विकका जघन्य श्रनुभागवन्थ होता है श्रीर इनमें व इनसे ऊपरके देवोंमें भी मारणान्तिक समुद्धात करनेवालोंके इनका अजवन्य अनुभागवन्ध होता है, अतः इनके जवन्य व अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम पाँच वटे चौदह राजु श्रोर कुछ कम छह वटे चौदह राजु-प्रमाण कहा है। विहारादिके समय तथा नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु छल कुछ कम तेरह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवोंके औदारिकशरीर आदिका जधन्य श्रमुभागवन्य सम्भव है, इसलिये इनके जघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह वटे राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उद्योत आदिके जवन्य और अजयन्य अतु-भागके वन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। स्वस्थानमें व एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी सूदम आदिका दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध सम्भव है, अतः इनके नघन्य श्रीर श्रनघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण कहा है। श्रेप जो स्पर्शन स्पष्ट नहीं किया है उसे पूर्वापर देखकर व स्वामित्व देखकर समम लेना चाहिए। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह स्पर्शन अविकल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें पछ्छे न्द्रियद्विकके समान कहा है।

३-६. पृथिवीकायिक श्रीर जलकायिक जीवोंमं पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, श्रातप श्रीर पाँच श्रन्तरायके ज्ञान्य श्रतुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन सादासाद०-तिरिक्त्वाड०-दोगदि०-पंचजा०--छस्संठा०-छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० ज० अज० सन्वलो०। मणुसाड० तिरिक्त्वोघं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—श्रगु०३—णिमि० ज० लो० असं० सन्वलो०, अज० सन्वलो०। उज्जो ० ज० सत्तचो०, श्रज० सन्वलो०।

३८७, वादरपुढ०-आड० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४--डप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। सादासाद०--तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-भासुभ-दूभग--श्रणादे०--अजस०--णीचा० ज० श्रज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-

किया है ख्रीर अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। साता-वेदनीय, ख्रसातावेदनीय, तिर्यद्धायु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यद्धोंके समान है। ख्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक और निर्माणके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने छुळ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — उक्त वादर जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यात माग प्रमाण है और ये जीव एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्वात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य करते नहीं, अतः इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यात माग प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका सब पृथिवी और जलकायिक जीव जघन्य अनुभागवन्य करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। औदारिकश्रीर आदिका जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। औदारिकश्रीर आदिका जघन्य अनुभागवन्य वादर करते हुए भी एकेन्द्रियों मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्परान लोकके असंख्यात माग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। लो अपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके उद्योतका जघन्य अनुभागवन्य सम्भव है, अतः इसके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव सव लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनमें पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका मङ्ग स्पष्ट ही है।

३८० वादर पृथिवीकायिक श्रीर वादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात श्रीर पाँच श्रन्त-रायके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूदम, पर्याप्त, श्रपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, अश्रुभ, दुर्भग, श्रनादेय, श्रयशःकीर्ति श्रीर नीचगोत्रके ज्ञयन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवेद, पुरुपवेद,

१. ता॰ प्रती ग्रावं सन्वलो॰ उजो॰ इति पाठः ।

दोआउ०-मणुसग०-चढुजा०--पंचसंठा०-ग्रोरा०ग्रंगो०--छस्संघ०-मणुसाणु०--आदा०-दोविहा०-तस०--सुभग-दोसर०-आदे०-उचा० ज० अज० छो० असं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्य०४--अगु०२--णिमि० ज० छो० असं० सन्वलो०, अज० सन्वछो०। उज्जो०-वादर-जस० ज० ग्रजै० सत्तचो०।

३८८. वादरपुढ०-[आउ०] अपज्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोत्तसक०-सत्तणोक०--अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वछो०। दोवेद०--तिरिक्ख०-एइंदि०--ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०३-

दो आयु, मनुष्यगित, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, श्रातप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, श्रादेय श्रौर उन्नगोत्रके जघन्य श्रौर श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक श्रौर निर्माणके जघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंने लोकके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर श्रौर यशःकीर्तिके जघन्य श्रौर श्रज्ञचन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ-वाद्र पृथिवीकायिक श्रीर वाद्र जलकायिक जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य नहीं करते, मात्र अजघन्य अनु-भागवन्थके होनेमें कोई वाधा नहीं है, अतः इनके जघन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे लोकके श्रसंख्यातवें भागश्रमाण श्रीर सव लोकप्रमाण कहा है। सातावेद-नीय श्रादिका जवन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रतुभागवन्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, श्रतः इनके दोनों प्रकारके श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्परीन सब लोक प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद श्रादि प्रायः त्रस सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं, दो श्रायुका मारणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता श्रौर वादर पृथिवीकायिक जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके ही मारणान्तिक समुद्वातके समय श्रातपका वन्य होता है, इसलिए इन स्त्रीवेद श्रादि प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रतु-भागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। श्रीदारिकशरीर श्रादिका स्वस्थानमें श्रौर मारणान्तिक समुद्धातके समय दोनों श्रवस्थाशोंमें जवन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, श्रतः इनके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन सव लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। उद्योत आदिका स्वस्थान आदिमें और ऊपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेकी अवस्थामें भी दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध सम्भव है, अतः इनके जवन्य और श्रजयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु प्रमाण कहा है।

३८२. वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त और वादर जलकायिक अपर्यात जीवोंमें पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेद, तिर्यंद्धगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यंद्धगत्वानु-

१. ता॰ पतौ चस॰ श्रज॰ इति पाटः।

थावरादि०४-पज्ज०--पत्ते०-थिराथिर-- भासुभ--दूभग०--अणादे०--अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओराल्ठि० ग्रंगो०--छ्रसंघ०-मणुसाणु०-ग्रादा०-दोविहा०-तस०-- भग-दोसर०-आदे०-उचा० ज० अज० लो० असं०। उज्जो०-वादर०-जस० मणुस०ग्रपज्ज०भंगो। एवं तेउ०-वाऊणं पि। णवरि वाऊणं वादर्रएइंदियभंगो कादव्वो।

३८६. वणप्पदि-णियोद० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सन्वलो० । मणुसाउ० तिरिक्खोघं । संसाणं ज० अज० सन्वलो० । वादरणियोद--पज्जत्तापज्जत्त--वादरपत्ते०अपज्जताणं च वादरपुढविअपज्जत्तभंगो । वादरपत्तेय० वादरपुढविभंगो ।

३६०. कायजोगि०-कोथादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति श्रोघभंगो ।

पूर्वी, अगुरुत्तघुत्रिक, स्थावर आदि चार, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, युम, अशुभ, दुर्भग, अन्नादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। खीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उचगोत्रके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातचे भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर और यशःकीर्तिका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वायुकायिक जीवोंके वादर एकेन्द्रियोंके समान स्पर्शन करना चाहिए।

विशेपार्थ—वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंके जिस प्रकार स्पष्टीकरण कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जो विशेपता कही है उसे समम लेना चाहिए।

३८६. वनस्पतिकायिक छौर निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात छौर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने स्व लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्षोंके समान है। शेप प्रकृतियोंके जघन्य छौर अज्ञघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त छौर वादर प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंका भङ्ग वादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान है। तथा वादर प्रत्येकशरीर जीवोंका भङ्ग वादर प्रथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—वनस्पितकायिक श्रौर निगोद जीवोंमं वादर जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जयन्य अनुभागवन्य करते हुए भी सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय नहीं करते, श्रतः इनके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। शेप कथन सुगम है।

३६०. काययोगी, क्रोधादि चार कपायवाले, अचलुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंमें

१. ता॰ प्रतौ मगुस॰ पंचसंठा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ स्वारं वाऊर्सं पि स्वारं (१) बादर, आ॰ प्रतौ सवरि वाऊर्सं पि वादर इति पाठः ।

ओरालियका० तिरिक्लोघं। ओरालियमि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-[ओरा०अंगो०-] अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत०, अज० सव्वलो०। एवं आदा०। दोवेद--तिरिक्लाड०--मणुस०-पंचजा०--छस्संठा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-उचा० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाड०--तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु०-उज्जो०-णीचा० तिरिक्लोघं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। देवगदिपंच० खेत्तभंगो।

३६१. वेडव्वियका० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-अप्प-सत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अट्ठ०, अज० अट्ठ-तेरह० | दोवेद०-स्रोरा०--तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-अगु०--पर०-उस्सा०--उज्जो०-धिराधिर--सुभासुभ--दूभग-अणादे०-

श्रोघके समान भंग है। श्रोदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्जोंके समान भङ्ग है। औदा-रिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकषाय, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार आतप प्रकृतिका भङ्ग जानना चाहिए। दो वेद, तिर्यञ्जाय, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, त्रस-स्थावर श्रादि दस युगल श्रोर उचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु, तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्जोंके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक श्रोर निर्माणके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातं भागप्रमाण श्रोर सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातं भागप्रमाण श्रोर सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्वगतिपञ्जकका भङ्ग चेत्रके समान है।

विशेषार्थ — स्वामित्वको देखते हुए प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के व आत्र प्रकृतिके ज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यात्वें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः इनके अज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सव लोकप्रमाण कहा है। दो वेद आदिका कोई भी मिध्यादृष्टि जीव ज्ञान्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके ज्ञान्य और अज्ञान्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके ज्ञान्य और अज्ञान्य अनुभागवन्ध संज्ञो पञ्च निद्रचोंके स्वस्थान आदि और मारणान्तिक समुद्धातके समय होता है, अतः इनके ज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण कहा है। इनके अज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण कहा है। इनके अज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सव लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। देवगतिपञ्चकका वन्ध सम्यन्दृष्टि करते हैं, अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके असंख्यातके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके असंख्यातके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातके भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह चेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगाम है।

३६१. वैकियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, छह नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात, और पाँच अन्तरायके ज्ञान्य अनुभागके चन्यक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञयन्य अनुभाग के बन्यक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयु, परचात, उच्छ्वास, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, अम, अश्रुभ, दुर्भन,

०-अनस०-णिमि० ज० अज० अह-तेरह० । इत्थि०-पंचि०-पंचसंठा०-ओरा०-श्रंगो०--इस्संघ०-दोविहा०-तस०४-सुभगं-दोसर०-आदे० जै० अज० अह-वारह० । पुरिस० ज० अह०, अज० अह-वारह० । णवुंस० ज० अह-वारह०, अज० श्रह-तेरह० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-श्रादा०-तित्थ०-उचा० ज० अज० श्रह० । तिरि ०२-णीचा० ज० खेत्त०, अज० अह-तेरह० । एइंदि०-थावर० ज० अज० अह-णवै० । वेडिव्व० [मिस्स०-] आहार०-आहारिम० खेत्तभंगो ।

श्रनादेय, यशःकीर्ति, श्रयशःकार्ति श्रौर निर्माणके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पक्चे न्द्रियज्ञाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संह्नन, दो विहायो-गति, त्रसचतुष्क, सुभग, दो स्वर श्रीर श्रादेयके जवन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और छछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, तीर्थह्नर श्रीर उचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यक्रगतिद्विक श्रौर नीचगोत्रके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने इछ कम आठ वटे चौदह राज़ श्रीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ श्रीर कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चेत्रके समान भङ्ग है।

विशेपार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जयन्य अनुभागवन्ध सन्यग्दृष्टि देव श्रीर नारकी करते हैं। इसमें भी स्त्यानगृद्धि तीन, सिण्यात्व श्रीर अनन्तानुवन्धी चारका सम्यक्त्वके श्रिभमुख मिण्यादृष्टि करते हैं। इनका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण होनेसे पाँच ज्ञानावरणादिके ज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन एक प्रमाण कहा है। तथा तिर्थ्ञों, मनुष्यों श्रीर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले नारिकयों श्रीर देवोंके भी इनका अज्ञयन्य अनुभागवन्ध होता है, स्वस्थान आदिके समय तो होता ही है, इसलिए इनके अज्ञयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन हुछ कम आठ व हुछ कम तेरह वटे चौद्ह राजुप्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके ज्ञान्य, अज्ञयन्य या दोनों प्रकारके अनुभागके वन्धक जीवोंका हुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जिनका हुछ कम वारह वटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है वहां नीचे छह श्रीर अपर छह इस प्रकार हुछ कम वारह वटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन लेना चाहिए। जिनका हुछ कम नौ वटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन समुद्धात कराके वह स्पर्शन लाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन विशेषताओंको ध्यानमें रखकर श्रीर

१. ता० ग्रा० प्रत्योः तस० सुमग० इति पाठः। २. ग्रा० प्रतौ दोसर० ज० इति पाठः। ३. श्रा० प्रतौ ज० श्रहणुव० इति पाठः।

३६२. कम्मइ० पंचणा०-छदंस०-शरसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० छ०, अज० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०--अणंताणुवं०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचिं०-श्रोरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० ज० एकारह०, अज० सव्वलो० । साददंडओ ओघो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० श्रोघं । देवगदिपंचगं खेत्तभंगो । सेसं ओरालिय०भंगो । आदा० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० ।

३६३. इत्थिवेदेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सन्वलो० । एवं छण्णोक० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-थिराथिर--सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णीचा० ज० अज्ञ० अह० सन्वलो० । इत्थि०-मणुस०-पंचसंटा०-श्रोरा०श्रंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु०

स्वामित्वका विचारकर स्पर्शन का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। शेप कथन स्पष्ट ही है।

३६२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके ज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। आजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग चेत्रके समान है। शेष भङ्ग औदारिककाययोगी जीवोंके समान है। आतपके ज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थं — कार्मणकाययोगका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है। यहाँ जिन प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवोंका सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है वह इसी दृष्टिसे कहा है। पाँच ज्ञाना- वरणादिका ज्ञान्य अनुभागवन्य सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं, इसलिए इनके ज्ञान्य अनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। कार्मणकाययोगमें नीचे छह और उपर पाँच राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके स्त्यानगृद्धि तीन आदिका ज्ञान्य अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके ज्ञान्य अनुभागके वन्यक जीवोंका कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रेष प्रकृतियोंका स्पर्शन निर्दृष्ट स्थानोंको देखकर घटित कर लेना चाहिए।

३६३. स्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, ध्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात ख्रौर पाँच व्यन्तरायके ज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार छह नोकपायोंका भङ्ग है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यद्धगति, एकेन्द्रिजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यद्धगत्यातुपूर्वी, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशाःकीर्ति छौर नीचगोत्रके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान,

त्रादाव-पसत्थ०- भग-सुस्सर-आदे०-उचा० ज० अज० अह०। पुरिस०-दोआउ० ज० खेत्त०, अज० ब्रह०। णवुंस० ज० अह०, अज० अह० सन्वलो०। णिरय-देवाउ०-तिणिजा०-आहारदुग-तित्थ० खेत्तभंगो। णिरय०--णिरयाणु० ज० अज० ब्रचो०। देवग०-देवाणु० ज० पंचचो०, अज० ब्रचो०। पंचि०-तस० ज० ब्रचो०, अज० ब्रह०-वारह०। ओरा० ज० अह-णव०, अज० अह० सन्वलो०। तेजा०-[क०-] पसत्थ०४—अगु०३—पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अह-तेरह०, अज० अह० सन्वलो०। वेउन्वि०-वेउन्वि० अंगो० ज० ब्र०, अज० रह०। उज्जो०-जस० ज० अज० अह-णव०। अप्पसत्थ०-दुस्सर० ज० अह०, अज० अह-वारह०। वादर० ज० अज०

श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उचगोत्रके जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेद श्रौर दो श्रायुके जघन्य श्रतुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने 'कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुं सकवेदके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम खाठ बटे चौदह राजु ख्रौर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति, त्राहारकद्विक त्रीर तीर्थेङ्कर प्रकृतिका भङ्ग चेत्रके समान है। नरकगति त्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञचन्य श्रतुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चे न्द्रियजाति श्रीर त्रसके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुपमाए चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और

ण चेत्रका स्पर्शन किया है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुि, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिक-शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और अयशःकीर्तिके जवन्य और अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु-

ण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम श्राठ वटे चौदह

१. ता० ज० ० इति पाठः।

अद्द-तेरह० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० ज० अज० लो० असं० सव्वछो० ।

राजु श्रीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, श्रपर्याप्त श्रीर साधारणके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वत्थक जीवो ने लोकके श्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण श्रीर सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके व छह नोकषायोंके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग है, अतः यह चेत्रके समान कहा है। तथा इनका अजयन्य अनुभागवन्थ एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है, अतः इनके श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सव लोकप्रमाण कहा है। स्रोवेदी जीवोंका स्व-स्थानिवहार आदिकी अपेचा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्यातकी अपेना स्पर्शन सव लोकप्रमाण है। इन दोनों अवस्थाओं में सातावेदनीय आदिका दोनों प्रकारका श्रनुभागवन्य सम्भव है, श्रतः यह स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। स्त्रीवेद श्रादिका जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागवन्य एकेन्द्रियों श्रीर नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं हो सकता। मात्र आतप इसका अपवाद है। वह भी मारणान्तिक समुद्घातके तो वादर पृथिवीकायिकोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पुरुपवेदका जघन्य अनुभागवन्य क्षपकश्रेणिमें होता है। तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य श्रवुभागवन्य मारणान्तिक समुद्वातके समय नहीं होता व तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। इनके अजघन्य अनुभाग-वन्यका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण है यह स्त्रष्ट ही है। नारिकयों और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नपुंसकवेदका ज्ञवन्य श्रनुभागवन्य नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा स्वस्थान विहारादिके समय व नपुंसकों में मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इसके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम आठ घटे चौदह राजु व सव लोकप्रमाण कहा है। नरकायु आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवेंका स्पर्शन चेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। जो नारिकयों में मारिणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी नरकगतिद्विकका दोनों प्रकारका श्रनुभागवन्य होता है, श्रतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवो में सहस्रार कल्पतक मारणान्तिक समुद्वात करनेवाले जीवो के देवगतिद्विकका जयन्य अनुभागवन्य श्रौर सब देवो में मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवो के इनका अजधन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका कमसे कुछ कम पाँच और कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यक्चों श्रौर मनुष्यों के देवों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पञ्चे न्द्रियजाति छोर त्रसका जघन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा स्वस्थान विद्दार श्रादिके समय व नीचे श्रीर ऊपर कुछ कम छह छह राजुप्रमाण चेत्रके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्वात करते समय भी इनका अजयन्य अनुभागवन्थ होता है, इसलिये इनके श्रज्ञचन्य श्रतुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम श्राठ व कुछ कम वारह वटे चौदह राजु-प्रमाण कहा है। श्रीदारिकशरीरका लघन्य श्रनुभागवन्य देव करते हैं, इसलिए इसके लघन्य श्रनु-भागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उद्योत व यशः कीर्तिके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवो का यह स्पर्शन

३६४. पुरिसेस पढमदंडओ विदियदंडओ इत्थिभंगो। इत्थि०--मणुस०-पंच-संठा०-ओरा०त्रंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-पसत्थ०-सभग-सुस्सर--आदे०-उचा० ज० त्रज० अहचोद०। पुरिस०--दोआउ०-तित्थ० ज० खेत्त०, त्रज० त्रह०। णवुंस० ज० त्रह०, अजह० अहचोद्दस० सन्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजा०-आहार-दुगं ज० त्रज० खेत्त०। वेउन्वियछ० त्रोघं। पंचि०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० ज०

घटित कर लेना चाहिए । औदारिकशरीरके खजघन्य अनुभागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर सव लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तैजसशरीर श्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध स्वस्थान विहारादिके समय तो होता ही है पर नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु कुल कुछ कम तेरह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रानुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम त्राठ व कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नीचे नारिकयों में मारिणान्तिक समुद्धात करते हैं उन ति अार मनुष्योंके भी वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुशमाण कहा है श्रोर इनका श्रनघन्य श्रनुभागवन्ध देवो व नारिकयों में मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम बारह वटे चौदह राजुर्शमाण कहा है। अप्रशस्त विहायोगति श्रीर दुःस्वरका जवन्य अनुभागवन्ध नारिकयों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होता, इसलिए इनके जयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इनका अजयन्य अनुभागवन्य स्वस्थान विहारादिके समय तो होता ही है पर नीचे व ऊपर कुछ कम वारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके अज घन्य अनुभागके वन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम वारह वटे चौदह राजु-प्रमाण भी कहा है। वादर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य स्वस्थान विहारादिके समय भी होता है और नीचे छ व ऊपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते भी होता है। इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन कुछ कम त्राठ व कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तिर्यद्ध श्रौर मनुष्य स्वस्थानमें व एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्र्यात करते समय सूद्रम आदिका दोनों प्रकारका त्रानुमागवन्य करते हैं, इस-लिए इनके दोनों प्रकारके ऋनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण कहा है।

३६४. पुरुपोंमें प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। स्त्रीवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर ज्वनात्रके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेद, दो श्रायु श्रीर तीर्थङ्करके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु, तीन जाति श्रीर श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। विक्रियकशरीर श्रादि छहका भङ्ग श्रोघके समान है। पश्चेन्द्रियजाति, श्रप्रशस्त विहायोगित, त्रस श्रीर दुःस्त्ररके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य श्रनुभागके

अज॰ ग्रह-वा॰ । तेजा॰-[क॰-] पसत्थ॰४-अगु॰३-पज्ज॰-पत्ते॰-णिमि॰ ज॰ अहतेरह॰, अज॰ ग्रह चोदह॰ सन्वलो॰ । ओरा॰ ज॰ अह--णवचो॰, अज॰ ग्रह॰ सन्वलो॰ । उज्जो॰-जस॰ ज॰ ग्रज॰ ग्रह-पव॰ । वाद्र॰ ज॰ ग्रज॰ अह-तेरह० । ग्रहुम॰-ग्रपज्ज॰-साधार॰ ज॰ अज॰ लो॰ असं सन्वलो॰।

३६५. णवुंसगे पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-ग्रादा०-णीची०-पंचत० ज० खेत्त०, ग्रज० सव्वलो०। दादिदंडओ ओघं। इत्थि०-णवुंस०-पंचि०--ओरा०--तेजा०--क०--ओरा०ग्रंगो०-

वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तैजसरारीर, कार्मणरारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके ज्ञान्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकश्ररीरके ज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशाकीतिके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम नो वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, अपर्याप्त और साधारणके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, अपर्याप्त और सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — पुरुषवेदी जीवोंमें स्पर्शन प्रायः स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। जहाँ थोड़ा वहुत श्रन्तर है भी उसे स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थद्वर प्रकृतिका वन्ध केवल मनुिव्यनियाँ ही करती हैं, इसिलए वहाँ इसकी श्रपेक्षा जघन्य श्रोर श्रज्ञचन्य दोनों प्रकारका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। किन्तु पुरुषोंमें देव भी इसका वन्ध करते हैं, इसिलए यहाँ इसके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहकर भी श्रज्ञघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहकर भी श्रज्ञघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंसे यहाँ पञ्चेन्द्रयज्ञाति श्रोर त्रस प्रकृतिके स्पर्शनमें भी श्रन्तर घटित कर लेना चाहिए।

३६५. नपुंसकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकन्याय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपयात, आतप, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके नघन्य अनुभागके वन्यक नीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अन्वयन्य अनुभागके वन्यक नीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माण

१ ता० त्रा० प्रत्योः श्रादा० उप० ग्रीचा०इति पाठः ।

पसत्थ०४—अगु०३—उज्जो०-तस४—णिमि० ज० छ०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० इत्थिभंगो। मणुसाउ० तिरिक्लोघं।

३६६. अवगद०-मणपज्जव०--संज०--सामाइ०--छेदो०-परिहा०--म्रुहुम० ज० त्रज० खेत्त०। मदि-म्रुद० ओघं। विभंगे पंचिदियभंगो ।

३६७. आभिणि०-सुद्०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-वारसक०-सत्तणोक०-अप्प-सत्थ०४-उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० श्रद्धचो०। दोवेदणी०-मणुसाउ०-मणुसगद्दिपंचग०-पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थ०४-श्रगु०३-पसत्थ०-तस०४-

के नघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैक्रियिक छह, श्राहारकशरीरद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग स्नीवेदी जीवोंके समान है। मनुष्यायु-का भङ्ग सामान्य तिर्यख्रोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ आतपके सिवा पाँच ज्ञानावरणादिके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व आघके समान है और आतपके जवन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। यतः ओघसे पाँच ज्ञानावरणादि और सामान्य तिर्यक्रों के आतपके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान वतला आये हैं, अतः यहाँ भी यह चेत्रके समान कहा है। तथा नपुंसक सव लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनके अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन लोक प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान, नरकायु, देवायु और विक्रियिक छह आदिका भङ्ग चेत्रके समान और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्रों के ।न है यह स्पष्ट ही है। अब रहा क्विवेददण्डक सो स्पर्शनकी दृष्टिसे संज्ञी पक्के नित्रय नपुंसकों में नारिकयों की मुख्यता है, इसलिए इनके ज्ञवन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राज्यमाण कहा है। तथा इनके अजवन्य अनुभागक वन्ध एकेन्द्रियादि जीवों के सम्भव है, अतः इनके अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन सह है।

३६६. श्रपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परि-हारिवशुद्धिसंयत श्रोर सूच्मसाम्परायसंयत जीवो में जघन्य श्रोर अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मत्यज्ञानी श्रोर श्रुताज्ञानी जीवो में ओघके समान है। तथा विभङ्गज्ञानियों में पछ्छोन्द्रियों के समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदी आदि जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है, इसलिए इन मार्गणाओं में अपनी अपनी प्रकृतियों के जयन्य और अजयन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में स्वामित्व सम्बन्धी विशेषताके होने पर भी स्पर्शन ओघके समान वन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। तथा चारों गतिके पक्रोन्द्रिय जीव विभक्षज्ञानी हो सकते हैं, इसलिए विभक्षज्ञानी जीवों में स्पर्शन पक्रोन्द्रियों के समान वन जानेसे वह पक्रोन्द्रियों के समान वन जानेसे वह पक्रोन्द्रियों के समान कहा है।

३६७. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवो में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थक्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवो ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण े । स्पर्शन किया है। दो वेद-नीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति क, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, थिराथिर-सुभासुभ-सुभग--सुस्सर-आदे०-जस०-त्रजस०-णिमि०-उचा० ज० अज० अह० | देवाड०--त्राहारदुगं ज० अज० खेत्त० | देवगदि०४ ज० खेत्त०, अज० छचो० | एवं ग्रोधिदंस०-सम्मादि०--खइग०--वेदग०--उवसम०-सम्मामि० | णवरि खइग०-उवसम० किंचि० विसेसो णादन्वो |

३६८. संजदासंजि० सादासाद० अरिद-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस० त्रजस० जि० त्रजि० छचो० । सेसाणं जि० खेत्त०, त्रजि० छचो० । देवाउ०-तित्थ० जि० अज० खेत्त० । असंजदेसु ओघं ।

प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, ग्रुम, अग्रुम, सुमग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति श्रयशःकीर्ति, निर्माण श्रोर उचगोत्रके जयन्य श्रोर श्रज्ञघन्य श्रमागके वन्धक जीवो ने छुछ कम श्राट बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकके जयन्य श्रोर अजयन्य श्रमागके वन्धक जीवो का स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रज्ञघन्य श्रमागके वन्धक जीवो के समान है। श्रज्ञघन्य श्रमागके वन्धक जीवो के समान है। श्रज्ञघन्य श्रमागके वन्धक जीवो ने छुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपश्मसम्यग्दृष्टि श्रोर सम्यग्तिश्चादृष्टि जीवो के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि श्रोर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवो में छुछ विशेषता जाननी चाहिए।

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्य ओघके समान है और ओघसे इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान घटित करके वतला आये हैं, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है। तथा आभिनियोधिकज्ञानी आदिका स्पर्शन कुछ कम आठ घटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए इनके अजघन्य व दूसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ घटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आहारकद्विकका दोनों प्रकारका अनुभागवन्य अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं। यतः इन जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातचे भागप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियों के दोनों प्रकारके अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागवन्य मिण्यात्वके अभिमुख तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इन जीवों के मारणान्तिक समुद्धातके समय भी इनका बन्य होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इन जीवों के मारणान्तिक समुद्धातके समय भी इनका वन्य होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेप कथन सुगम है।

३६८. संयतासंयत जीवोंमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरित, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियों के जघन्य अनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। असंयतों में अोघके समान भक्त है।

विशेषार्थं -संयतासंयतो में सातावेदनीय आदिका जघन्य आनुभागवन्य मारणान्तिक समु-

३६६. किण ए पंचणा०-णवदंस०--भिच्छ०-सो क०-सत्तणोक०-तिरिक्खगिदितिग-अप्पसत्य०४-उप०-आदा०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो०। सादादिदंढ्यो ओघो। इत्थि०-णवुंस०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०-पसत्य०४अगु०३-उज्जो०-- ०४-णिमि० ज० छ०, अज० सव्वलो०। दोआउ०--देवगिददुग०-तित्थ० ज० अज० खेत्त०। मणुसाउ० णवुंसगभंगो। णिरयगिददुग-वेजव्व०वेजव्व०अंगो० ज० अज० छचो०। एवं णील-काऊणं। णविर अप्पप्पणो रज्जू
भाणिद्वा। तिरिक्ख०३ एइंदियभंगो।

द्घातके समय भी सम्भव है। इनका तथा देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष प्रकृतियों का अजघन्य अनुभागवन्ध तो मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव है ही। इसलिए यह सब स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण कहा है तथा सातावेदनीयदण्डकके सिवा शेष प्रकृतियों का जघन्य और देवायु व तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका अजघन्य अनुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, पर उससे स्पर्शनमें कोई विशेषता नहीं आती। शेष कथन सुगम है।

३६६. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगतित्रिक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, आतप और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चोत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग छोघ के समान है। स्त्रीवेद, नपुंसक्वेद, निद्रयज्ञाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलचुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणके ज्ञान्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु, देवगतिद्विक श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिके ज्ञान्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंक स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। नरकगतिद्विक, वैक्रियिकशरीर श्रोर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके ज्ञान्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार नील श्रोर कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपनी श्रपनी राजु कहनी चाहिए। तथा तिर्थेक्चगतित्रिकका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के स्वामियों का स्पर्शन लोक के असंख्यात मागप्रमाण होने से यहाँ इन प्रकृतियों के ज्ञवन्य अनुभाग के वन्यक जीवों का स्पर्शन से प्रकृतियों के ज्ञवन्य अनुभाग के वन्यक जीवों का स्पर्शन सव लोक होने से यहाँ इनके अज्ञवन्य अनुभाग के वन्यक जीवों का स्पर्शन सव लोक कहा है। आगे भी सव लोक प्रमाण स्पर्शनका इसी प्रकार स्पष्टीकरण करना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक से स्पर्शनका स्पष्टीकरण आवके समान कर लेना चाहिए। नीचे छह राजु प्रमाण यथायोग्य स्पर्शन करनेवाले जीवों के भी खीवेदका ज्ञयन्य अनुभागवन्य सम्भव है, अतः इनके ज्ञवन्य अनुभागके वन्यक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नरकाय, देवायु और देवगतिद्विकका ज्ञयन्य अनुभागवन्य तिर्यं आरे मनुष्य तथा तीर्यं क्र प्रकृतिका ज्ञयन्य अनुभागवन्य मनुष्य करते हैं, अतः इन प्रकृतियों के ज्ञयन्य और अज्ञवन्य अनुभाग वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नपुंसकों में मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य अनुभाग वन्यक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नपुंसकों मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य

४००. तेऊए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-श्रणसत्थ०४उप०- पंचंत० ज० खेत्त०, अज० अह-णव० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०तेजा०-[क०-] हुंड०--पसत्थव०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-उज्जो०-थावर०-वादरपज्जत०-पत्ते०-थिरादितिण्णियु०-दूभग--श्रणादे०-णिमि०-णीचा० ज० अज० अहणव० । इत्थि०-दोआड०-मणुस०-पंचि०-पंचसंठा०-श्रोरा०श्रंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०आदा०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०--आदे०--तित्थ०-उच्चा० ज० अज० अहचो० ।
पुरिस० ज० खेत्त०, अज० अह० । णवुंसगे सोधम्मभंगो । देवाड०-आहारदुगं
खेत्त० । देवगदि०४ ज० श्रज० दिवडुचोह० । एवं पम्माए वि । णविर सञ्चाणं
रज्ज्० अहचो० । देवगदि०४ पंचचो० ।

तिर्यञ्चोंके समान कहा है। वह स्पर्शन यहाँ भी प्राप्त होता है, इसलिए मनुष्यायुका भन्न नपुंसकोंके समान कहा है। जो तिर्यञ्च श्रौर मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी नरकगितिष्ठिक और वैक्रियिकद्विका जघन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नील श्रौर कापोत लेश्यामें तिर्यञ्चगितित्रकका स्वामी वदल जानेसे स्पर्शन वदल जाता है। शेष सव स्पर्शन छुष्णलेश्याके ही समान है। मात्र नील लेश्या पाँचवें नरक तक श्रौर कापोत लेश्या तीसरे नरक तक होती है, इसलिए जहाँ कुछ कम छह राजु स्पर्शन कहा है वहाँ कुछ कम चार श्रौर कुछ कम दो राजु स्पर्शन कहा न वहाँ कुछ कम चार श्रौर कुछ कम दो राजु स्पर्शन कहना चाहिए।

४००. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, छह नोक-षाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके नघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम नी राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, त्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुत्तघुत्रिक, उद्योत, स्थावर, वादर पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर श्रादि तीन युगल, दुर्मग, श्रनादेय, निर्माण और नीचगोत्रके जयन्य और श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चोदह राजु और कुछ कम नौ बटे चोदह राजुममाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्च न्द्रियजाति, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेदके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनु-भागके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसक-वेदका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। देवायु श्रौर श्राहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है। देवगति-चतुप्कके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेट बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सबके छुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहने चाहिए। तथा देवगतिचतुष्कके छुछ कम पाँच बटे चौदह राज़ कहने चाहिए।

विशेपार्थ यहाँ जिन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय जघन्य,

४०१. सुकाए खिनाणं जि खेत्त०, अजि छ०। साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-मणुसाउ०-म स०-पंचिंदियादि याव णीचुचा० देवगदि०४—तित्थ० जि० अजि० छची०। देवाउ०-आहारदुगं खेतं०।

४०२. अव्भवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचि०-ओरा०ग्रंगो०-अप्पसत्थ०४-उप०--पंचत० ज० ग्रह-वारह०, अज० सव्वलो० ।

अजघन्य या दोनों अनुभागवन्य सम्भव है उनके वन्धक जीवोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। जिनका जघन्य या अजघन्य अनुभाग- बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और स्वस्थान विहारादिके य सम्भव है उनके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। प्रथम रण्डक की प्रकृतियों, पुरुषवेद, देवायु और आहारकद्विकके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका तथा देवायु और आहारकद्विकके अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है यह स्पष्ट ही है। देवोंमें नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागवन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव करता है। यही स्वामित्व यहाँ पीतलेश्यामें भी कहा है, इसिलए यहाँ नपुंसकवेदका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान कहा है। विर्यक्ष और मनुष्य अपर डेढ़ राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी देवगितचतुष्कका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध करते हैं, इसिलए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पद्मलेश्यामें देवगितचतुष्कका यह स्पर्शन कुछ कम पाँच राजु है, क्योंकि पद्मलेश्याके साथ तिर्थक्क और मनुष्योंका स्पर्शन वारह्यें कल्प तक देखा जाता है। शेष सव कथन पीतलेश्याके समान है। मात्र पद्मलेश्यामें कुछ कम नौ वटे चौदह राजु नहीं कहने चाहिए, क्योंकि इस लेश्यावाले एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते।

४०१ शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्परांत क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यायु, मनुष्याति व पञ्चे न्द्रिय जातिसे लेकर नीच व उच्चगोत्र तक तथा देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्करके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छहवटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकदिकका भङ्ग चेत्रके समान है।

विशेषार्थ —यहाँ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। तथा यहाँ शुक्ल लेश्यांका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ पञ्च निद्रयज्ञातिसे नीचगोत्रके मध्यकी प्रकृतियाँ, अर्थात च्रापकप्रकृतियाँ, आहारकद्विक, देवगतिचतुष्क व तीर्थेद्धर मक्तिके सिवा नामकर्मकी शुक्ललेश्यामें वधनेवाली सब प्रकृतियाँ लो गई हैं। इनका यथा सम्भव जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्ध देवोंमें व देवों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय होता है, अतः इनके जधन्य और अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्क और तीर्थद्धर प्रकृतिकी अपेना भी स्पर्शन जान लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

४०२. श्रभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकपाय ेन्द्रियजाति, श्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रोर पाँच अन्तरायके ज्ञघन्य श्रमुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रोर कुछ कम वारह वटे चौदह राजु-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजघन्य श्रमुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका ओरा०--तेजा०--क०--पसत्थ०४-अगु०३-जिज्जो०--वादर-पज्ज०--पत्ते०--णिमि० ज० अद्द-तेरह०, अज० सन्वलो० । सेसाणं मदि०भंगो ।

४०३. सासणे सन्विवसुद्धाणं ज० अह०, अज० अह-वारह०। दोआउ०-मणुसगिददुगं ज० अज० अहचो०। देवाउ० खेत्त०। देवगिद०४ ज० अज० पंचचो०। तिरिक्खगिदितिगं ज० खेत्त०, अज० अह-वारह०। सेसाणं ज० अज० अह-वारह०। मिच्छादिहि० मिद०भंगो।

स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशदीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरूलघुत्रिक, उद्योत, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजाधन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रेप प्रकृतियोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—श्रभन्यों में चारों गतिके संज्ञी जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभागवन्य करते हैं। यह वन्ध नीचे छह व ऊपर छह राजुके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सन्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रोर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। श्रोदारिकशरीर श्रादिका नीचे छह श्रोर ऊपर सात राजुके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जघन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रोर कुछ कम तरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४०३. सासादनसम्यग्दृष्टि नीवोंमें सर्व विशुद्ध प्रकृतियोंके नघन्य श्रनुभागके वन्धक नीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौद्द राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनघन्य श्रनुभागके वन्धक नीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौद्द राजु श्रौर कुछ वारह वटे चौद्द राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्राय श्रौर मनुष्यगतिद्विकके जघन्य श्रौर श्रन्नघन्य श्रनुभागके वन्धक नीवोंने कुछ

श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भंग चेत्रके समान है। देव-गतिचतुष्कके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रानुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजु-

ण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्जगितित्रकके जघन्य श्रानुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। श्राजघन्य श्रानुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्राजघन्य श्रानुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सर्व विशुद्ध परिणामोंसे जयन्य वँधनेवाली प्रकृतियाँ ज्ञानावरणादि हैं। यहाँ चारों गितके संज्ञी जीव इनका जधन्य अनुभागवन्य करते हैं। मारणान्तिक समुद्धातके विना इनका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए इनके जधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनके अजधन्य तथा जिन प्रकृतियोंका यहाँ नामोचारके साथ स्पर्शन नहीं कहा गया है उनके जधन्य और अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि उनका यह दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध नीचे पाँच और अपर सात इस प्रकार कुल वारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करनेवालोंके भी होता है। आयुकर्मका वन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और मनुष्यगितिद्विकका वन्ध मारणान्तिक समुद्धातमें होकर भी मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवालोंके ही सम्भव है,

४०४. असण्णीसु पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०-सो ०-णवणोक०-पंचि०-तेजा०- [क०-] स्रोरा०स्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-आदाव-तस४-णिमि०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्वलो० | दोआड०-वेडव्वियद्यक्कं ज० अज० खेत्त० | साददंडओ ओघो | मणुसाड० किण्णभंगो | तिरिक्खगदितिग-ओरा०-उज्जो० तिरि-क्लोघं | अणाहार० कम्मइगभंगो |

एवं फोसणं समत्तं।

२१ कालपरूवणा

४०५. ं दुविधं--जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० त्र्यादे० । ओघे०

श्रतः स्वस्थान विहारादिककी अपेक्षा इनके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन प्रधान होनेसे यह कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवोंमें सहस्रार करूप तक मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले सासादन जीवोंके भी देवगतिचतुष्कका जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रमुभागवन्य होता है, इसलिए इनके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य श्रमुभागवन्य तिर्यद्ध श्रौर मनुष्य करते हैं, इसलिए इसके जघन्य श्रमुभागवन्य सातवें नरकके नारकी करते हैं, श्रतः इनके जघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन के जघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। तथा इनका श्रजघन्य श्रमुभागवन्य नीचे पाँच व ऊपर सात कुल वारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीव भी करते हैं, इसलिए इनके श्रजघन्य श्रमुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

४०४. श्रमंज्ञियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकपाय, पञ्चे निद्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क,
श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रौर पाँच श्रन्तरायके ज्ञचन्य
श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रज्ञचन्य श्रनुभागके वन्यक जीवोंने सब
लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु श्रौर वैक्रियिक छहके ज्ञचन्य श्रौर श्रज्ञचन्य
श्रनुभागके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान
है। मनुष्यायुक्ता भङ्ग छुष्णलेश्याके समान है। तिर्यञ्चगितित्रक, श्रौदारिकशरीर श्रौर उद्योतका
भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। श्रनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जवन्य अनुभागवन्य ेन्द्रिय असंज्ञी करते हैं, इसलिए इनके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। एकेन्द्रिय सव लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

२१ कालमरूपणा

४०५. काल दो प्रकारका है-जवन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका

पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिण्णिगं०-चदुजा०-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा०श्रंगो०-छस्संघ०-ञ्रप्पसत्थ०४-तिण्णिआणु०-उप०-आदा०--उज्जो०-श्रप्पसत्थ०-थावर४-अधिरादिछ०--णीचा०-पंचंत० उक्कस्सअणुभागवंधगा केविचरं कालादो होंति ? जहणोणं एगसमयं । उक्कस्सेण श्रावित्याए असंखेजिदिभागो । श्रणुक्क० श्रणुभाग० सन्बद्धा । सादा०-तिरिक्खाड०--देवगदि०--पंचि०-चदुसरीर-समचदु०--दोश्रंगो०--पसत्थ०४-देवाणु०--अगु०३--पसत्थवि०--तस०४-थिरादिछ०--णिमि०-तित्थ०-उचा० उ० ज० एग०, उ० संखे ० । श्रणुक्क० सन्बद्धां । णिरयाड० उ० ज० ए०, उ० आवित् श्रसंखे० । श्रणु० ज० ए०, उ० पिति० श्रसंखे० । एवं ओघभंगो पंचिदिय-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि-श्रोरो०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद्०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-सिण्ण०-आहारए ति । णविर चटुण्णं आउगाणं श्रणुक्क० वंधगा असंखेज्ज'-रासीणं अप्यप्यणो पगदिकालो काद्व्वो ।

है—स्रोघ स्रोर स्रादेश। स्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोल्ह कषाय, नौ नोकपाय, तीन गृति, चार जाति, स्रोदारिकशरीर, पाँच संस्थान, स्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छंह संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन श्रानुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका कितना काल है ? जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका काल सर्वदा है। सातावेदनीय, तिर्युखायु, देवगति, पञ्चे न्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो छाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त-वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसंचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थद्वर और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवींका जयन्य काल एक समय हैं श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका काल सर्वदा है । नर-कायुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके श्रसंख्यातचे भागप्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। दो श्रायुत्रोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक नीवोंका नघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार श्रोघके समान पञ्च द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, स्त्रोवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसक्वेदी, क्रोधादि चार क्षायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, असंयत, चल्लुदर्शनी, श्रचलुदर्शनी, भन्य, मिध्याद्वष्टि, संज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार आयुओंके अनु भागके वन्धक जीवोंका अपनी अपनी प्रकृतियोंका जो वन्यकाल हो वह कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ नाना नीवोंकी अपेद्मा प्रत्येक प्रकृतिका वन्ध काल कितना है इसका विचार

१. ता॰ प्रतो पंचणा॰ असादा॰ मिच्छु॰ सोलसक॰ तिण्णिग॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतो होति हीति (१) जहण्णेण इति पाठः। ३. ता॰ प्रतो स्वा स्वा (दा) इति पाठः। ४. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः वंघगा लो॰ श्रसंखेज्ज॰ इति पाठः।

४०६. एइंदिएस तिरिक्ताड०-उज्जो० ड० ज० ए०, ड० त्रावलि० असंखे०। अणु० सन्वद्धा । मणुसाड० ओघो । सेसाणं दोपदा सन्वद्धा । एवं वादरतिगाणं ।

किया गया है। उसमें भी खोवसे प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट चन्यकाल कितना है इसका सर्वप्रथम निर्देश किया गया है। कुल वन्ध प्रकृतियाँ १२० हैं। उनमेंसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका एक जीवकी श्रपेक्षा जवन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल किसीका एक समय श्रीर किसीका दो समय वतलाया है। श्रव यदि नाना जीव निरन्तर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करं तो कितने काल तक करेंगे, इसीप शनका यहाँ उत्तर दिया गया है। जैसा कि वन्धस्वामित्वके देखनेसे विदित होता है कि इन प्रकृतियों के उत्क्रष्ट अनुभागके वन्यक जीव संज्ञी पञ्चे न्द्रिय मिध्यादृष्टि होते हैं श्रीर वे असंख्यात हैं, अतः यह भी सम्भव है कि नाना जीव एक समय तक इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करें और यह भी सम्भव है कि लगातार एकके वाद दूसरा निरन्तर उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते रहें। निरन्तर यदि वन्ध करें भी तो वह सब काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे श्रिविक नहीं हो सकता। यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धकोंका एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके अनु-त्कृष्ट श्रनुभागके वन्वकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं है जब इन प्रकृतियोंके वन्धक जीव न हों अर्थात् वे सर्वदा पाये जाते हैं। दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृ-तियोंके उत्सृष्ट अनुभागके वन्यक जीव संख्यात हैं, अतः उनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय ऋौर उत्कृष्ट काल संख्यात समय ऋौर अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। नरकायुके उत्कृष्ट अनुभागका जवन्य और उत्कृष्ट वन्यकाल तो ज्ञानावरणके समान ही है। इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धकके कालमें अन्तर है। वात यह है कि एक आयुका बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है उसमें भी अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्धकाल कमसे कम एक समय है। यह साभव है कि नाना जीव एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनु-भागवन्ध करने लगें और उस दूसरे समयमें एक भी जीव श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध न करे, इसलिए तो नरकायुके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय कहा है और निरन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रन्तमु हूर्तके कमसे यदि नाना जीव नरक।युका वन्ध करते रहें तो इस सव कालका योग परयके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा, इसीलिए नरकायुके अनुतकृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका एत्कृष्ट काल परुयके असंख्यातर्वे भागप्रमाण कहा है। अब रहीं मनुष्याय और देवायु सो इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातचे भागप्रमाण कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा वन जाती है, इसलिए उनके कथनको स्रोवके समान कहा है। मात्र असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यकोंके कालके ओयसे अन्तर है। श्रतः उसे प्रकृतिवन्धके समान जानने की सूचना की है। सो प्रकृतिवन्धके श्रनुसार उसे समभ लेना चाहिए।

४०६. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु श्रीर उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धकोंका जघन्य काल एक य है श्रीर उत्कृष्ट काल त्राविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्ध-कोंका काल सर्वदा है। मनुष्यायुका भङ्ग श्रोघके समान है। शेष प्रकृतियोंके दोनों पदोंके वन्धक

र. ता॰ प्रतौ सन्बद्धा॰ (दा) इति पाठः । ता॰ प्रतौऽग्रेडप्येवमेव बहुलतया पाठो निबद्धः ।

सव्वसुहुमाणं दोआउ० एइंदियभंगो । सेसाणं दोपदा सव्वद्धा ।

४०७. अवगद०-सुहुमसं० सन्वपग० उ० ज० ए०, उ० संखेज्ज० अणु० ज० ए०, उ० अंतो ०। सेसाणं णिरयगदीणं याव सण्णि ति एसं परिमाणेण संखेज्ज० तेसिं उ० ज० ए०, उ० संखेज्जस०। एसिं परिमाणेण असंखेज्जा तेसिं० उक्क० ज० ए०, उ० आविलगा० असंखे०। णविर वादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवणप्फिद्पत्तेयअपज्जता० आउगवज्जाणं सन्वासिं पगदीणं दोपदा सन्वद्धा ति । तिरिक्लाउ० उक्क० णिरयाउभंगो। अणुक्क० सन्वद्धा। मणुसाउ० ओघो। एसिं परिमाणे अणंता तेसिं सन्वद्धा। अणुक्क० अणुभागवंधो सन्वेसिं अप्पप्पणो पगदि-कालो एदेण वीजेण याव अणाहारए ति णेदन्वं।

एवं उकस्सकालो समत्तो।

४०८. जह० पगदं। दुवि० ऋषे०—ऋष्यदे०। ऋषे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोल्रसक०--सत्तणोक०-आहारदुग०--अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ० पंचंत० ज० ज० ए०,

जीव सर्वदा हैं। इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। सब सूद्दम जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके न है। तथा शेप प्रकृतियोंके दो पदोंके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु श्रीर उद्योतके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीव • ख्यात होनेसे उनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इसी प्रकार सब काल घटित कर लेना चाहिए।

४०७. अपगतवेदी और सूत्तमसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त है। नरकगितसे लेकर संझी-मार्गणा तक शेप जितनी मार्गणाएँ हैं उनमेंसे जिनका परिमाण संख्यात है उनमें उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। जिनका परिमाण असंख्यात है उनमें उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविक असंख्यात मार्गप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पति-कायिक प्रत्येक्शरीर अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके दो पदोंके वन्यक जीव सर्वदा हैं। मात्र तिर्यख्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका काल नरकायुके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्यक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा मनुष्यायुका भङ्ग ओयके समान है। तथा जिनका परिमाण अनन्त है उनमें सर्वदा काल है। सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल अपने अपने प्रकृतियांके कालके समान है इस प्रकार इस वीवके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल अपने अपने प्रकृतियांके कालके समान है इस प्रकार इस वीवके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका काल जानना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुन्त्रा।

४०८. तथन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकपाय, श्राहारकद्विक, श्रप्रशस्त

१ ता॰ प्रती त्राणु॰ उ॰ ज॰ ए॰ संवेज्ज॰ त्राणु॰ ज॰ ए॰ उ॰ [एतचिन्हान्तर्गतः पाठोऽ चिकः प्रतीयते] त्रंतो॰, त्रा॰ प्रती त्राणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ संवेज्ज॰, त्राणु॰ ज॰ ए॰, उ॰ संतो॰ इति :। उ० संखेजा० । ० सन्तद्धा । सादासाद०-तिरिक्खाउ०-भणुस०-चदुजा०-छस्संठा०छस्संघ०-म साणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग०-उचा० ज० अजह० सन्वद्धा।
इत्थि०-णवुंस०--तिण्णिगदि-पंचि०--चदुसरीर-दोअंगो०--पसत्थ०४-तिण्णिआ ०अगु०३--आदाउज्जो०--तस०४-णिमि०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० आवत्ति० असं०।
अजह० सन्वद्धा । तिण्णिआउ० ज० ज० ए०, उ० आवत्ति० असं०। अजह० ज०
ए०, उ० पत्तिदो० असंखे०। एवं ओघभंगो कायजोगि-त्रोराहि०-णवुंस०-कोधादि०४मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारए ति ।

४०६. णिरयादि याव अणाहारए ति एसिं संखेजजीविगा तेसि ज० ज० ए०, उ० संखेजज। अज० सन्बद्धा। एसि असंखेजजीविगा तेसि ज० ज० ए०, उ० आविता० असंखे०। अज० सन्बद्धा। एसि अणंतरासी० तेसि ज० सन्बद्धा। सन्वाणं अजहण्णं० अणुभागवंधकाले अप्पप्पणो पगदिकालो कादन्यो। एदेण वीजेण णेदन्वं जहण्णुक्क० काले० पुढवि०-आड०-तेड०-वाड०-वादरवणप्फदिपत्तेयाणं च किंचि

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर अविद, नपुंसकवेद, तीन गति, पञ्चे न्द्रियज्ञाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक य है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उसी प्रकार ओधके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचजुदर्शनी, भव्य मिध्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४०६. नरकगितसे लेकर अनाहारक मार्गणा तक जिनके संख्यात संख्यावाले स्वामी हैं उनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके असंख्यात जीव स्वामी हैं उनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके अनन्त जीव स्वामी हैं उनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका काल अपने प्रकृतिवन्धके कालके समान करना चाहिए। इस वीजपदके अनुसार जयन्य और उत्कृष्ट काल जान लेना चाहिए। किन्तु पृथिवी-कायिक, जलकायिक, अगिनकायिक, वायुकायिक और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें

र. ता॰ प्रती एसं (सिं) इति पाठः।

विसेसो साधेदव्वं । वादरअपज्जत्तएस ज० अज० सव्वद्धा । एवं कालो समत्तो ।

२२ अंतरपरूवणा

४१०. ग्रंतरं दुविधं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०- ओघे० आदे०। ओघे० सादा०-जस०-उच्चा० उ० अणुभागवंधंतरं जै० ए०, उ० झम्पासं०। अणु० णित्य ग्रंतरं। सेसाणं सन्वेसि उ० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा। अणुक्क० णित्य ग्रंतरं। णविर तिण्णं आउगाणं अणुक्क० ज० ए०, उ० चदुवीसं मुहुत्तं।

४११. एइंदिएसु सन्वपगदीणं उ० अणु० णित्य अंतरं। दोआउ०-उज्जो० ओघं। एवं वादरपज्जतापज्जत्त०। सन्वसुहुम--सन्ववणप्फदि--णियोद०-वादरपुढ०-

कुछ विशेष साथ लेना चाहिए। वादर अपर्याप्तकोंमें जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रतुभागके बन्धक जीवों का काल सर्वदा है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

२२ ं रत्ररूपणा

४१०. अन्तर दो प्रकारका है—जवन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—अग्रेय और आदेश । ओयसे सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका अन्तर काल नहीं है । इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुनार विशेषता है कि तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौवीस सुहूर्त है ।

विशेपार्थ — सातावेदनीय आदिका उत्हृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रीणमें होता है, अतः इनके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्हृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। यद्यपि देवगित आदि अन्य श्रृहितयोंका भी उत्हृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है पर सातावेदनीय आदिके समान सब जीवोंके उनका उत्हृष्ट अनुभागवन्ध हो ही ऐसा कोई नियम नहीं है, इसलिए उनके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका उत्हृष्ट अनुभागवन्धके योग्य उत्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। अनुभागवन्धके योग्य उत्तर परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जिनमेंसे उत्हृष्ट अनुभागवन्धके योग्य परिणाम एक समय के अन्तरसे भी हो सकते हैं और क्रमसे सब परिणामोंका अन्तर देकर भी हो सकते हैं, इसलिए यहाँ शेप प्रकृतियोंके उत्हृष्ट अनुभागवन्धका जयन्य अन्तर एक समय और उत्हृष्ट अनुभागवन्धका लाक्य अन्तर एक समय और उत्हृष्ट अनुभागवन्ध अन्तर अन्तर अन्तर अनुत्हृष्ट अनुभागवन्ध अन्तर हो होता। उस उस गतिमें उत्पन्न होनेका जो अन्तर है वही यहाँ इन आयुओंके अनुत्हृष्ट अनुभागवन्धका जयन्तर है। यही देखकर यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्हृष्ट अनुभागवन्धका जयन्तर एक समय और उत्हृष्ट अन्तर चौवीस सुहूर्त कहा है।

४११. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। दो श्रायु श्रीर ब्दोतका भङ्ग श्रोवके समान है। इसी प्रकार बादर, बादर पर्याप्त श्रीर बादर श्रप-

१. ता॰ प्रती श्रग्रुमागं तं न॰ इति पाठः ।

आड०-तेड०-वाड०-वादरपत्ते०अपज्जतगाणं च दोआड० ओघं । सेसाणं णित्य श्रंतरं । पुढिवयादिचढुण्णं तेसिं वादर०--वादरपत्तेय० दोआड० ओघं । सेसाणं दोपदा ओघं आभिणि०भंगो । एवमेदेसिं वादरपज्जत्तगाणं च । णविर तिरिक्खाड० अणुक० पगिदश्रंतरं । एवं ओघभंगो णेरइग-तिरिक्ख-मणुस--देव--विगिलिदि०-पंचि०-०२--पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि-श्रोरालि०-ओरालियमि०-वेडिव०-वेड०मि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइ०--इत्थि०-पुरिस०--णवुंस०-अवगद०--कोधादि०४--मदि०-सुद०-विभंग०-श्राभिणि०-सुद०--ओधि०-मणपज्ज०--संजद-सामाइ०छेदो०--परिहार०-सुदुमसं०-संजदासंजद०-असंज०-चक्खुं०--अचक्खु०-श्रोधिदं०-छल्लेस्सि०-भवसि०-

श्रन्भवसि०-सम्मादि०- खर्ग०-वेदग०- उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छा-सण्णि-श्रसिए -श्राहार०-अणाहारए ति। णवरि सन्वाणं अणुक्क०अणुभागवंधंतरं अणुक्क -द्विदिवंधंतरं अणुक्कस्सिद्धिदंधभंगो। णवरि श्रवगद०-सुहुमसं०-[सादा०-] ०-उच्चा० उ० अणु० अणुभाग० ज० ए०,उ० झम्मासं०।सेसाणंड० ज० ए०,उ० सपुथतं। अणु०

जि॰ ए॰, उ॰ इम्मासं॰ । उनसम॰ सादा॰-जस॰-उचा॰ उ॰ ज॰ ए॰,उ॰ नासपुधत्तं । एनमुक्तस्समंतरं समत्तं ।

याप्त जीवोंके जानना चाहिए। सब सूद्म, सब वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जातकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तथा शेष तथाकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। पृथिवी आदि चार, उनके बादर और वादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके दो पदोंका भङ्ग ओघसे कहे गये आभिनिवोधिकज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार इनके वादर पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें ति अपेक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल प्रकृतिवन्धके अन्तरकालके समान है। इस प्रकार ओघके समान नारकी, तिर्यक्च, मनुष्य, देव, विकलेन्द्रिय, पद्धे न्द्रियद्विक, दिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, ओदारिककाययोगी, बोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, निक्रियककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेश, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभक्षज्ञानी, आभिनिचोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-

ी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, सूदमसाम्परायसंयत, संयता , असंयत, चजुदर्शनी, अचजुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छह लेश्यावाले, भन्य,
अभन्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपश्रमसम्यग्दृष्टि, सासादनसन्यग्दृष्टि, सम्यगिभ्थादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारकः और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी
विशेषता है कि सबके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका भङ्ग अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धके अन्तरके
समान है। इतनी और विशेषता है कि अपगतवेदी, और सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य अन्तर एक
समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जवन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका

रे. ता॰ प्रती संबदासंबद॰ चक्खु॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती ॰ उ॰ वासपुष्रचं इति :

४१२. जह॰ पगटं। दुवि०-ग्रोघे० ग्राहे०। योघे॰ पंचणा०-चदुदंसणा०-चदु-संज०-पुरिस०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० इस्मासं०। अज० णित्य ग्रंतरं। पंचदंस०-मिच्छ०-वारसक०-अहणोक०-तिण्णियाउ०-तिण्णिगदि-पंचि०-पंचसरीर-तिण्णिग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—तिण्णिआणु०-अगु०४—आदाउज्जोव-तस०४—णिमि०-तित्थ०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० असंखेज्जा लोगा। अज० णित्थ ग्रंतरं। णवरि तिण्णिआऊणं ग्रज० ग्रणु०भंगो। सादासाद०-तिरिक्ताउ०-मणुसग०-चदुजा०-इस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि०४—थिरादिद्ययुग०-उचा० ज० अज० णित्थ श्रंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-णवंस०-कोधादि०४—अचक्खु०--भवसि०--

४१३, मणुस०३-पंचि०-तस०४-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महोना है। उपरामसम्यग्दृष्टि जीवॉम साता-वेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुन्त्रा।

४१२. तघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, चार संञ्चलन, पुरुपवेद श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। पाँच दर्शनावरण, मिध्यात्य, वारह कपाय, श्राठ नोकपाय, तीन आयु, तीन गति, पञ्चे न्द्रियजाति, पाँच शरीर, तीन श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन शानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, असचतुष्क, निर्माण, तीर्यङ्कर श्रीर नीचगोत्रके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंके अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायगोति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और ज्ञागोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार श्रोघके समान काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, नपुंसक्तेदी, काथादि चार कषायवाले, अचजुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिए।

विशेपार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य चपकश्रेणिमें होता है, अतः जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। चार दर्शनावरण आदिके जघन्य अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय, जघन्य अनुभागवन्य एक समयके अन्तरसे सम्भव है, इसलिए कहा है और परिणामों की दृष्टिसे उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तीन आयुओं के अजघन्य अनुभागवन्यकी विशेषता अनुत्कृष्टके समान है। कारण कि नरकगित आदिमें उत्पत्तिका जो अन्तर है वही इन आयुओं के अजघन्य अनुभागवन्यका अन्तर जानना चाहिए। तथा सातावेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्य किसी न किसी के निरन्तर होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्यके अन्तर कालका निपेध किया है। शेष कथन सुनम है। आगे भी इसी प्रकार अन्तर घटित कर लेना चाहिए।

४१३. मतुष्यत्रिक, पञ्चे द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी,

सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद- माइ०-छेदोव०-चक्तु०-ओधिदं०-सुक्ते०-सम्मादि०-खइय०-उवसम०-सण्णीसु पंचणा०-चढुदंस०-चढुसंज०-पुरिसं०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । अज० णित्थ अंतरं । सेसाणं पगदीणं उक्तस्सभंगो । अवगद०-सुहुमसं० पंचणा०--चढुदंस०--चढुसंज०-पुरिसवेद--पंचंते० ज० अज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । [णवरि सुहुमसं० चढुसंज०-पुरिसवे० वज्ज० ।] सादा०-जस०-उचा० ज० ज० ए०, उ० वासपुध० । अज० ज० ए०, उ० छम्मासं० ।

४१४. एईदिएसु मणुसाउ०-तिरिक्ख०३ ओवं। सेसाणं ज० अज० णित्थ अंतरं। वादरएइंदिय-पज्जतापज्जत्त-सन्बसुहुमाणं मणुसाउ० ओवं। सेसाणं ज० अज० णित्थ अंतरं। एवं पंचण्णं कायाणं अप्पज्जत्तगाणं वणप्किदि-णियोदाणं च। अवसेसाणं णिरय-तिरिक्खादीणं जासिं दोण्हं पदा सन्बद्धा तासिं णित्थ अंतरं। एसिं ण सन्बद्धा तेसिं एकस्सभंगो। एदेण वीजेण णेदन्वं याव अणाहारए ति। णविर ओधिणा०-इत्थि०-णवुंस०-ओधिदं०-उवसम० वासपुधत्तं।

एवं रं समत्तं ।

पुरुपवेदी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, खेदोपस्थापनासंयत, चजुदर्शनी, अवधिदर्शनी, श्रुक्ललेरयावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुपवेद श्रीर पाँच अन्तरायके ज्ञयन्य अनुभागवन्धका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अज्ञवन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टि समान है। अपगतवेदी और सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्ञ्यलन, पुरुपवेद और पाँच अन्तरायके ज्ञयन्य और अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इतनी विशेषता है कि सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें चार संज्ञ्यलन और पुरुपवेदको छोड़कर कहना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीति और उद्गणित्रके ज्ञयन्य अनुभागवन्धका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रयक्त प्रमाण है। अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रयक्त प्रमाण है। अज्ञवन्य अनुभागवन्धका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

४१४. एकेन्द्रियों मं मनुष्यायु और ति गितित्रिकका भङ्ग श्रोघके समान है। शेष प्रकृतियों के ज्ञुवन्य और श्रज्ञचन्य श्रमुभागवन्यका श्रन्तरकाल नहीं है। वादर एकेन्द्रियं और उनके पर्याप्त व श्रप्याप्त और सब सूच्म जीवों में मनुष्यायुका भङ्ग श्रोघके समान है। शेष प्रकृतियों के ज्ञुवन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवन्यका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पाँच स्थावरकाय, उनके श्रप्पर्याप्त, वनस्पतिकायिक श्रोर निगोद जीवों के जानना चाहिए। श्रवशेष नरक श्रोर तियश्चित्रति श्रादिमें जिनके दोनों पदोंका काल सर्वदा है उनका श्रन्तर काल नहीं है श्रोर जिनका सर्वदा काल नहीं है उनका उत्कृष्टिके समान भङ्ग है। इस प्रकार इस वीजपदके श्रनुसार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रवधिज्ञानी, खीवेदी, नपुंसकवेदी, श्रवधिदर्शनी

१. श्रा॰ प्रती चदुरंस॰ पुरिस॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रती चदुरंस॰ पुरिसनेद० चदुसनेद० [!] चदुरंज॰ पंचंत॰, श्रा॰ प्रती चदुरंस॰ पुरिसनेद॰ चदुसनेद॰ चदुसंज॰ पंचंत॰ इति पाठः। ३. ता॰ प्रती एवं श्रतरं समत्ते इति पाठी नास्ति।

२३ भावपरूवणा

४१५. भावं दुवि०—जि० उ०। उक्क० पगदं। दुवि०—श्रोघे०आदे०। श्रोघे० सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्सत्रणुभागवंधए ति को भावो ? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारए ति।

४१६, जह० दुवि०—श्रोघे० आदे०। श्रोघे० सव्वपगदीणं ज० अज० अणु-भागवंघए त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारए त्ति।

एवं भावं समत्तं ।

२४ अप्पावहुअपरूवणा

४१७. अप्पावहुगं दुवि०—सत्थाणअप्पावहुगं चेव परत्थाणअप्पावहुगं चेव। सत्थाणअप्पावहुगं दुविधं—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०-स्रोधे० आदे०। ओधे० सव्वतिव्वाणुभागं केवलणाणावरणीयं। आभिणि० अणंतगुणहीणं। सुद० अणंतगु०। ओधि० अणंतगु०। मणपज्जव० अणंतगुणहीणं।

श्रौर उपरामसम्यग्दृष्टि जीवोंमें वर्षपृथक्तवप्रमाण श्रन्तर है।

इस प्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

२३ भावमरूपणा

४१५. भाव दो प्रकारका है—जघन्य श्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसे सत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्यक जीवोंका कीन भाव है । इसी प्रकार श्रमाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

४१६. जयन्य दो प्रकारका है—श्रोध श्रोर श्रादेश। श्रोधसे सब प्रकृतियोंके जयन्य श्रीर श्राज्यन्य श्रात्रमागके वन्धकोंका कौन भाव है ? श्रोदियक भाव है। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेपार्थ—जीवके श्रौपशमिक श्रादि अनेक भाव हैं। उनमें बन्धका प्रयोजक एक श्रौदियक भाव है, श्रन्य सब नहीं, यही इससे सिद्ध होता है।

इस प्रकार भाव समाप्त हुन्त्रा।

२४ अल्पवहुत्वप्ररूपणा

४१७. अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पवहुत्व और परस्थान अल्पवहुत्व।स्वथान अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश। ओघसे केवलज्ञानावरण सबसे तीत्र अनुभागवाला है। इससे आभिनि-वोधिक ज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अत्ज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अवधिज्ञानावरणका अनुभाग अन्तगुणा हीन है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

१. ता॰ प्रतौ एवं भावं 'इति पाठो नास्ति। २. ता॰ प्रतौ -बहुगे (गं) चेति परस्थायां-इति ।

४१८. सव्वतिव्वाणुभागं केवलदंस० | चक्खु० अणंतगु० | अचक्खु० अणंतगु० | अचक्खु० अणंतगु० | ओधिदं० अणंतगुण० | थीणै० ऋणंतगु० | णिद्दाणिद्दा० ऋणंतगु० | पचला० अणंतगु० |

३१६. सव्वतिव्वाणुभागं साद०। त्रसाद० श्रणंतगु०।

४२०. सव्वतिव्वाणु० मिच्छ०। अणंताणुवंधिलो० अणंतगु०। माया० विसेसा०। कोधे विसे०। माणो विसे०। संजलणाए लोभो अणंतगु०। माया० विसे०। कोधे विसे०। माणो विसे०। एवं पच्चक्लाण०४-अपचक्लाण०४। णवुंस० अणंतगु०। अरिद० अणंतगु०। सोग० अणंतगु०। भय० ंतगु०। दुगुंच्छ० अणंतगु०। इत्थि० अणंतगु०। पुरिस० अणंतगु०। रिद० अणंतगु०। हस्स० अणं ु०।

४२१, सव्वतिव्वाणुभागं देवाड० । णिरयाड० अणंतग्र० । मणुसाड० ंतग्र० । तिरिक्त्वाड० अणंतग्र० ।

४२२. सच्वतिच्वाणुभागं देवगदि० । मणुस० अणंतगु० । णिरय० अणंतगु० ।

४१८. केवलदर्शनावरण सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे चल्लदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अचलुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अवधि-दर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन । इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

अ१६. सातावेदनीय सवसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे श्रसातावेदनीयका श्रनुभाग त्र नन्तगुणा हीन है।

४२०. मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग न्तगुणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन सायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन कोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अरुपवहुत्व कहना चाहिए। इससे नपुंसक-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

४२१. देवायु सवसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे नरकायुका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग अनन्तगुणा हीन है। अससे तिर्वश्चायुका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। अससे प्रमुख्यायुका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है।

२. ता० श्रा० प्रत्योः श्रयंतगु० गीचा० श्रचक्खु० इति पाठः । २ ता० प्रतौ थि (यी) ग्र० े पाठः ।

तिरिक्तव अणंतगु० | सन्वितन्वाणुभागं पंचिदिय० | एईदि० अणंतगुणही० | वेइंदि० अणंतगु० | तेइंदि० अणंतगु० | चहुरिंदि० अणंतगु० | सन्वितन्वाणुभागं कम्मइ० | तेजा० अणंतगु० | आहार० अणंतगु० | वेडिन्व० अणंतगु० | ओरालि० अणंतगु० | सन्वितन्वाणुभागं समचदु० | हुंड० अणंतगु० | णग्गोद० अणंतगु० | सादि० अणंतगु० | खुळ्ळ० अणंतगु० | वामण० अणंतगु० | सन्वितन्वाणुभागं आहार- अंगो० | वेडिन्व० अणंतगु० | ओरालि० अंगो० अणंतगु० | संघडणं संठाणभंगो | सन्वितन्वाणुभागं पसत्थवण्ण०४ | अप्पसत्थ०४ अणंतगुणही० | यथा गदी तथा आणुपु० | [सन्वितन्वाणु० अगुरू० | उस्सास० अणंतगुणही० | परघाद० अणंतगुणही० | उप० अणंतगुणही० | एतो सन्वयुगलाणं सन्वितन्वाणि पसत्थाणि | अप्पसत्थाणि पडिपक्ताणि अणंतगुणही० |

४२३. सन्त्रतिन्त्राणुभागं विरियंत० । हेट्टा दाणंतरी० अणंतगु० ।

४२४. णिरएस यत्तियाओं पगदीओ अत्थि तत्तियाओं मूलोघो । एवं सत्तस्र

हीन है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा होन है। इससे तिर्यद्यगतिका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है। पख्रे न्द्रियजातिका अनुभाग सबसे तीव है। इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे द्वीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे त्रीन्द्रिय वातिका अनुभाग श्रमन्तगुणा हीन है। इससे चतुरिन्द्रियजातिका अनुभाग श्रमन्तगुणा हीन है। कार्मणशरीर सबसे तीव अनुभागवाला है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे आहारकशरीरकः अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियकशरीरका अनुमाग अनन्त-गुणा हीन है । इससे श्रौदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । समचतुस्रसंस्थान सबसे तीत्र श्रनुभागवाला है। इससे हुण्डकसँस्थानका श्रनुभाग श्रनन्त्गुणा हीन है। इससे न्यप्रोध-परिमण्डल संस्थानका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे स्वातिसंस्थानका श्रनुभाग श्रनन्त-गुणा हीन है । इससे कुञ्जकसंस्थानका श्रानुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे वामन-संस्थानका श्रनुमाग श्रनन्तगुणा हीन है। श्राहारकआङ्गोपाङ्ग सबसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे विकियिकरारीर आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे आँदारिक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। छह संहननोंका अल्पयहुत्व छह संस्थानोंके समान है। प्रशस्त वर्णचतुष्क सवसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे श्रप्रशस्त वर्णचतुष्कका श्रनुभाग श्रनन्त-गुणा हीन है। चार त्रानुपूर्वियोंके अनुभागका अल्पवहुत्व चार गतियोंके समान है। अगुरुलघु सवसे तीत्र अनुभागवाला है । इससे उच्छ्यासका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे उपघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । यहां सव युगलोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका श्रनुभाग सबसे तीव है। इससे श्रप्रशस्त प्रतिपन्न प्रकृतियोंका श्रनुभाग ु श्रनन्तगुरा हीन है।

४२३. वीर्यान्तराय सबसे तीत्र अनुभागवाला है। इससे पूर्व दानान्तरायतक कमसे प्रत्येकका श्रमुमाग श्रमन्तगुणा हीन श्रमन्तगुणा हीन है।

४२५. नारिकयों में निवनी प्रकृतियाँ हैं उनका अल्पबहुत्व मूलोचके समान है। इसी प्रकार

रे. ता॰ मती॰ पगदि इति पाठः । ः २ः ता॰ मती हेहाहु दंडागां (दागां) तरा, आ॰ प्रती हेहा हुंदं दागांवरा इति पाठः । ३. आ॰ प्रती एतियाओ इति पाठः ।

पुढवीसु । तिरिक्लेसु सन्वतिन्वाणुभागं णिरयाड० । देवाड० अणंतगु० । मणुसाड० अणंतगु० | तिरिक्खाड० त्र्रणंतगु० | सन्वतिन्वाणुभागं देवग० | णिरयग० अणं-तगुर्व तिरिक्तगर अर्णतगुर्व मणुसगर अर्णतगुर्व सेसं सूलोघं । एवं सन्वतिरिक्ताणं । पंचि० तिरि०अपज्ज० णेरइगभंगो । एवं सन्वअपज्जत-गाणं सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं चै । मणुस०३ गदीत्रो तिरिक्तभंगो । सेसं मूलोघं । देवाणं मूलोघं । पंचिं ०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजो०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-मुद०-विभंग०-असंज०-चक्खु०-त्रचक्तु०-तिण्णिले०-भवसि०-अव्भवसि०-मिच्छा०-सिएए।०-आहारए ति मूलोघं। णवरि मदि०--सुद्०विभंग०--असंज०-किएएएले ०--अव्भवसि०--मिच्छा०-सएएपीस तिरिक्लभंगो । ओरालि० मर्णुसि-भंगो । ओरालियमि० तिरिक्लोघं । वेडिव्व०-वेउव्तिविभागे । आहारव-आहारमिव सन्वडवर्भगो । कम्मइव श्रोरालिय-मिस्स०भंगो। एवं अणाहार०। अवगद० ओघं। एवं सुहुमसंप०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०--सं जद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं १०--सुकलो०--सम्मादि०-खइग०-उव--सम् सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। तियञ्चोंमें नरकायु सबसे तीव्र श्रनुभागवाली है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यक्रायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। देवगति सबसे तीव्र अनुभागवाली है। इससे नरक-गतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यगतिका श्रनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेप भङ्ग मूलोयके समान है। इसी प्रकार सब तिर्युद्धोंमें जानना चाहिए। पद्धे न्द्रियति अपर्याप्तकोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार स्व श्रपर्याप्त,सव एकेन्द्रिय,सव विकलेन्द्रिय श्रोर सव पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें चार गतियोंका भङ्ग तिर्यख्नोंके समान है। शेप भङ्ग मूलोवके समान है। देवोंमें म्लोघके समान भङ्ग है। पद्ध न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोत्रोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी. श्रसंयत, चजुदर्शनी, श्रचजुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, ध्रभन्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी श्रीर श्राहा-रक जीवोंसे मूलोपके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, श्रसंयत, कृष्णलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि श्रीर संज्ञी जीवोंमें तिर्यक्रोंके समान श्ररुपवहुत्व है। श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भक्त है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यद्वोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भङ्ग है। श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थ-सिद्धिके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । अपगतवेदी जीवोंमें अभिवके समान भक्त है। इसी प्रकार सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। श्रामिनिवोधिक-ज्ञानी, ज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना त, त्र्यविधदर्शनी, शुक्ललेश्यायाले, सम्यग्द्रष्टि, क्षायि वसम्यग्द्रष्टि श्रीर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमं

२. भ्रा० प्रती सन्वएइंदि० विगलिदिय-पंचकायाणं च इति पाठः। २. श्रा● प्रती सेर्स मृलोधं पंचि० इति पाठः। ३. ता० श्रा० प्रत्योः तिण्णिले० इति पाठः। ४. ता० श्रा० प्रत्योः श्रमण्णीस इति पाठः। प्र. ता० श्रा० प्रत्योः छोदो० परिहार० श्रोधिदं इति पाठः। ६. ता० श्रा० प्रत्योः खहग० देदग० उपस्म० इति पाठः।

ओघं। णवरि अप्पष्पणो पगदीओ णाद्व्याओ।

४२५. परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वद्दभंगो। णील-काऊणं सव्वतिव्वाणु-भागं देवग०। मणुसग० अणंतगु०। तिरिक्ति० अणंतगु०। णिरय० अणंतगु०। एवं आणु०। सेसाणं किएण०भंगो। तेड० देवभंगो। एवं पम्माए वि। सासणे णिरयभंगो। सम्मामि० वेदग०भंगो। असएणी० तिरिक्तभंगो।

एवं उक्कस्ससत्थाणअप्पावहुगं समत्तं ।

४२६. जह० पग० । दुवि०-ओंघे० आदे० । ओघे सन्वमंदाणुभागं मणपज्ज० । ओघिणा० ऋणंतगुणन्भिह्यं । सुद० अणंतगुणन्भ० । आभिणि० अणंत०न्भिहि० । केवल० अणंतगु० ।

४२७. सन्वमंदाणुभागं श्रोधिदं० | अचक्खु० अणंतग्र० | चक्खु० अणं ु० | केवल्रदं० अणंतग्र० | पचला० अणंतग्र० | णिद्दा० अणंतग्र० | पचलापचला० अणंतग्र० | णिद्दाणिद्दा० अणंतग्र० | थीणगिद्धि० श्रणंतग्र० |

४२⊏. सव्वमंदाणुभागं असादा० । सादा० अणंतगुणव्भहि० ।

श्रोयके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि अपनी श्रपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

४२५. परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भक्त हैं। नील और कापोत लेश्यामें देवगतिका अनुभाग सबसे तीन हैं। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तर्यक्रगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तर्यक्रगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तर्यक्रगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार चार आनुपूर्वियोंका अल्पवहुत्व जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। पीतलेश्यामें देवगतिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। सासादनमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। सम्यग्निध्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें तिर्यक्रोंके समान मङ्ग है। इस प्रकार चत्रुष्ट स्वस्थान अल्पवहुत्व समान हुआ।

४२६. जघन्य अरुपवहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश। श्रोघसे मनःपर्ययद्वानावरण सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे अवधिद्वानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रुतज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्राभिनि-वोधिकज्ञानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रुनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रुनन्तगुणा अधिक है।

४२७. अविवदर्शनावरण सवसे मन्द अनुभागवाला है। इससे अचनुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे चनुदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४२८ श्रसातावेदनीय सबसे मन्द श्रनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका श्रनुभाग श्रमन्तगुण। श्रधिक है।

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रर्णतगुणनमदियं इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ सुद० श्रर्णतगुणनम० दुर्गुं श्रर्णतगुणन्म० श्रामिणि॰ इति पाठः।

४२६. सव्वयंदाणुभागं लो ंजछ०। मायासंज० ंतगु०। माणसंज०
अणंतगु०। कोधसंज० अणंतगु०। पुरिस० अणंतगु०। हस्स० अणंतगु०। रिद०
अणंतगु०। दुगुं० अणंतगु०। भय० अणंतगु०। सोग० अणंतगु०। अरिद० अणंतगु०।
इत्थि० अणंतगु०। णवुंस० अणंतगु०। पचक्लाणमाण० अणंतगु०। कोधे विसे०।
माया विसे०। छोभो विसे०। एवं अपचक्लाणचदुक्क-अणंता '०४। मिच्छ०
अणंतगु०।

४३०. सव्वमंदाणुभागं तिरिक्तवाड० । मणुसाड० अणंतगु० । णिरयाड० भणंतगु० । देवाड० अणंतगु० ।

४३१. सन्वमंदाणुभागं तिरिक्ख०। णिरय० अणंतगु०। मणुस० अणंतगु०। देव० अणंतगु०। सन्वमंदाणुभागं चढुरि०। तीइंदि० अणंतगु०। वेइंदि० अणंतगु०। एइंदि० अणंतगु०। पंचि० अणंतगु०। सन्वमंदाणुभागं ओराल्वि०। वेडन्वि० अणंतगु०। तेज० अणंतगुण०। कम्मइ० अणंतगु०। आहार० अणंतगु०। सन्वमंदाणुभागं

४२६. लोभ संज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोध-संज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रस्पवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रस्पवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रयक्त अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अग्रतका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अग्रतका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अग्रतका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान लोभके अनुभागसे मिण्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३०. तिर्यञ्चायुका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है।

४३१. तिर्यक्रगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे नरकगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे त्रीन्द्रियजाितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे त्रीन्द्रियजाितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे द्रीन्द्रियजाितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रेनेन्द्रियजाितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे एकेन्द्रियजाितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पर्अन्द्रियजाितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैक्रियकशारिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशारिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आहारकशारिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आहारकशारिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। न्यमोध-

रै॰ श्रा॰ मतौ श्रपमक्खाणचढुक्कं श्रर्णतगु॰ इति पाटः।

णगोदः । सादिः अगंतगुः । खुज्जः अणंतगुणः । वामणः अणंतगुः । हुंदः अणंतगुः । सम्बदः अणंतगुः । सन्वमंदाणुभागं ओराः अगेतः । वेखन्वि अणंतगुः । सन्वमंदाणुभागं ओराः अगेतः । वेखन्वि अणंतगुः । सम्बदः अणंतगुः । संघडणं संठाणभंगो । सन्वमंदाणुभागं अप्प-सत्थ० । पसत्थवण्णः अणंतगुः । यथा गदी तथा आणुषः । सन्वमंदाणुः जपः । परः [अणंतगुः ।] उस्सासः अणंतगुः । अगुरः अणंतगुः । सन्वमंदाणुः अप्पसत्थविः । पसत्थविः अणंतगुः । तसादिदसयुगः सादासादभंगो ।

४३२. सन्वमंदाणु० णीचा० । उचा० त्रणंतगु० । सन्वमंदाणु० दाणंतरा० । एवं परिवाडीए उवरिमाणं अणंतगुणव्भहियं ।

४३३. णिरएसु सन्वमंदाणु०पचला०। णिद्दा० अणंतगु०। ओधिदं अणंतगु०। अचक्खु० [अणंतगु०]। चक्खु० अणंतगु०। केवलदंस० [अणंतगु०।] पचलापचला० अणंतगु०। णिद्दाणिद्दा अणंतगु०। थीणिग० अणंतगु०। सन्वमंदाणु० हस्स०। रिद० अणंतगु०। गु०।दुगुं० अणंतगु०। भय० अणंतगु०। पुरिस० अणंतगु०। संजलणकोध० अणंतगु०। णो विसे०। माया० विसे०। लोभो विसे०। सोगो अणंतगु०। अरिद० अणंतगु०।

परिमण्डल संस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे स्वातिसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कुट्जक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वामनसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हुण्डक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे समचतुरस्रसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे समचतुरस्रसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैकियिक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। संस्थानों के समान है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे मन्द अनुभागवाला है। इ े प्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे मन्द अनुभागवाला है। इ े प्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे मन्द अनुभागवाला है। इ े प्रशस्त वर्णचतुष्क आनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। चार गतियों के समान वार आनुपूर्वी जाननी चाहिए। उपघात सबसे मन्द अनुभागवाला है। इ े परधातका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे उर्ज्ञामा अनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे अगुरुलघुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगितका अनुभाग स्वनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका स्वनुभाग स्वनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका स्वनुभाग स्वनन्तगुणा स्विक स्वनन्तगुणा अधिक है। अप्रशस्त विहायोगितका स्वनुभाग स्वनन्तगुणा अधिक है।

४३२. नीचगोत्र सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे उचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। दानान्तराय सबसे मन्द अनुभागवाला है। इस प्रकार क्रमसे आगेकी प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३३. नारिकयोंमें प्रचला सबसे सन्द अनुभागवाला है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अचित्रहर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अचित्रहर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अचित्रहर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवल्दर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुपवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे संव्यलनकोधका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुपवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंव्यलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंव्यलनका अनुभाग

इत्थि० अर्णंतगु०।णवुंस० अर्णंतगु०! अपचक्खाण०४-पचक्खाण०४-अर्णंताणुवं०४ संजल्लाए भंगो। मिच्छ० अर्णंतगु०। सन्वमंदा ० तिरिक्खाड०। मणुसाड० अर्णंतगु०। सन्वमंदाणु० तिरिक्खग०।मणुसग० अर्णंतगु०। सेसा ंपगदी ं मूलोघं। एवं सत्तसु पुढवीसु०।

४३४. सन्वतिरिक्ता णेरइयभंगो । णवरि मोहस्स पच ाण०४ पुट्यं काद्व्यं । सन्वअपज्जत्तयाणं देवाणं सन्वएईदिय-सन्वविगलिदिय-पंचकायाणं च णेरइग-भंगो । किंचि विसेसो धेद्व्यो ।

४३५. मणुस०३-पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० ओघं । अवगर्दं०-कोघादि०४-आभिणि०-सुद०-ओघि०-मण-पज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-सुहुमसं०-चक्खु०-अचक्खु०-ओघिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारए ति मूछोघं । ओरालियमि०--कम्मइ०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-तिण्णिले०--अवभवसि०--मिच्छा०-अणाहारएसु दंसणा-वरणीयंमोहणीयं णेरइगभंगो।सेसाएां मूलोघं।वेउव्व०-वेउव्वियमि० देवभंगो।आहार०-आहारमि०-परिहार०-संजदासंज०-सम्मामिच्छादि० सव्वद्टभंगो । तेउले०-पम्मले०

विशेष श्रधिक है। इससे लोभसंज्वलनका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे शोकका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रादिका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रादिका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे नपुंसकवेदका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। श्रप्रत्या-ख्यानावरण चार, प्रत्यास्थानावरण चार श्रोर श्रमन्तानुवन्धी चारका भङ्ग संज्वलनके समान है। श्रमन्तानुवन्धी लोभके श्रनुभागसे मिध्यात्वका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्थश्रायुका श्रनुभाग स्वसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्थश्रायुका श्रनुभाग स्वसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्थश्रायिका श्रनुभाग स्वसे मन्द है। इस मनुष्यातिका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

४३४. सब तिर्यञ्चोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीयमें प्रत्याख्यानावरण चारको पहले करना चाहिए। सव अपर्याप्त, देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय श्रोर पाँच स्थावरकायिक जीवोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। कुछ विशेषता साध लेनी चाहिए।

४३५. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काय-योगी, श्रौदारिककाययोगी, स्नीवेदी, पुरुषवेदी श्रोर नपुं सक्रवेदी जीयोंमें श्रोषके ान भङ्ग है। श्रपगतवेदी, कोधादि चार कपायवाले, श्राभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनः-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, सूद्रमसाम्परायसंयत, चल्रदशनी, श्रचलु-दशैनी, अवधिदर्शनी, श्रुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि, सज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंमें मूलोधके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि श्रोर श्रना-हारकोंमें दशनावरणीय और मोहनीयका भङ्ग नारिकयोंके ान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोधके समान है। वैक्रियिककाययोगी श्रोर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवोंके ान भङ्ग है। श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमिश्रकाययोगी, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत श्रोर सम्यग्निथ्यादृष्टि

१. ता॰ प्रती पुरिस॰ गावं स॰। अवगद॰, आ॰ प्रती पुरिस॰ श्रोघं। अवगद॰ इति पाठः ।

ं ०-मोह० तिरिक्ख०भंगो । सेसं देवभंगो ! वेदग० दंसणा०-मोह० तिरिक्ख-गदिभंगो । सेसार्णं सव्वद्वभंगो । सासणे णिरयभंगो । असण्णीसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं तिरिक्खभंगो ।

एवं जहण्णसत्थाणऋष्पावहुगं समत्तं ।

४३६. एतो परत्थाणअप्पावहुगं पगदं । दुवियं—ज० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० उक्कस्सओ चदुस्सिट्टिपिट्ददंडओ काद्वा भवदि । तं जहा—सव्वित्वाणुभागं सादा० । जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंतगुणहीणा । देव-गदि० अणंतगु० । कम्मइ० अणंतगुण०। तेज० अणंतगु०। [आहार० अणंतगुणही० ।] वेउव्वि० अणंतगु०। मणुस० अणंत०। ओरालि० अणंत०। मिच्छ० अणंत०। केवलणा०-केवलदं०-असाद०-विरियंतरा० चत्तारि वि तुल्ला० अणंतगु० । अणंताणु०लोभ० अणंतगु०। माया विसे०। कोघो विसे०। माणो विसे०। संजलणाए लोभ० अणंतगु०। माया विसे०। कोघो विसे०। माणो विसे०। एवं पचक्वाण०४-[अपचक्वाण०४-]। आभिण०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु०। चक्खु० अणंतगु०। सुद०-अचक्खु०-

जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भङ्ग है। पीतलेश्या श्रौर पद्मलेश्यामें दर्शनावरण श्रौर मोहनीयका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। शेष भङ्ग देवोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दर्शनावरण श्रौर मोहनीयका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। शेष कर्मीका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके समान है। सासादनमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। श्रसिद्धियोंमें सात कि भङ्ग नारिकयोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य स्वस्थान अल्पवहुत्व समाप्त हुआ।

४३६. इससे श्रागे परस्थान श्ररुपवहुत्वका प्रकरण है। वह दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है--श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रीघसे उत्कृष्ट चौंसठ-पद्वाला दण्डक करना चाहिए। यथा—सातवेदनीयका श्रनुभाग सवसे तीव्र है। इससे यशाकीर्ति श्रीर उचगोत्रके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं । इनसे देवगतिका श्रवुभाग श्रनन्तागुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका श्रवुभाग श्रनन्तगुणा हीन है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे आहारकशरीरका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्य-गतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शना-वरण, श्रसातावेदनीय श्रोर वीर्यान्तरायके अनुसाग चारों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष होन है। इससे अनन्तानुवन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इ े अनन्ता-नुवन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण और श्रगत्याख्यानावरण चारका अल्पवहुत्व है। अप्रत्याख्यानावरण सानके अनुभागसे आभिनिवोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों हो। तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे

भोगंतरा ० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु० । श्रोधिणा०-श्रोधिदं०-लाभंतरा० तिण्णि वि ० अणंतगु० । मणपज्ज०-धीणगिद्धि०-दाग्यंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अंतगु० । णवुंस० अग्यंत० । अरदि० अग्यंत० । सोग० अग्यंत० । भय० [अ ंत०] । दुगु० अग्यंत० । णिद्दाणिद्दा० श्रग्यंत० । पचलापचला० अग्यंत० । णिद्दाण श्रग्यंत० । पयला० श्रग्यंत० । णिद्दाण अग्यंत० । तिरिक्ख० अग्यंत० । श्रत्या० अग्यंत० । पुरिस० अग्यंत० । एदि० अग्यंत० । हस्स० श्रग्यंत० । देवाउ० अग्यंत० । प्रित्याउ० अग्यंत० । देवाउ० अग्यंत० । णिर्या० अग्यंत० । मणुसाउ० अग्यंत० । तिरिक्खाउ० अग्यंत० । प्रं श्रोधभंगो पंचि०--तस०२-पंचमण०--पंचवचि०--काययोगि०--इत्थि०--पुरिस०-गवुंस०--अवगद०-कोधादि०४--मदि०--सुद०--विभंग०--श्रसंज०--चक्खु०--अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अवभवसि०-मिच्छा०-सण्णि-श्राहारण् ति ।

४३७. णिरयगदीए सन्वतिन्वाणुभागं सादा०। जस०-उचा० अणंतगु०। मणुस० अणंत०। कम्म० झणंत०। तेज० अणंत०। ओरालि० अणंत०। मिच्छ० अणंत०। केवलणा०-केवलदं०-आसादा०-विरियंत० चत्तारि वि ० अणंतगु०।

च उदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ े श्रुतज्ञानावरण, अच जुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुसाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण श्रोर लाभान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे :पर्ययज्ञानायरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्त-गुणे हीन । इनसे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुमाग अनन्तगुणा हीन है। इ ेभयका अनुमाग श्रनन्तगुणा हीन है। इ े जुगुप्साका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे निद्रानिद्राका श्रनुभाग अनन्तगुर्णा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका श्रानुभाग श्रानन्तगुर्णा हीन है। इससे निद्राका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे अचलाका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे श्रयश:-कीर्ति और नीचगोत्रका अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ े तिर्यञ्जगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा होन है। इससे रतिका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे नरकायुका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इस प्रकार ेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी. पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोघादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चल्लदशनी, अचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिण्यादृष्टि, संज्ञी और आहा-रक जीवोंके जानना चाहिए।

४३७. नरकगितमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, असाता-

अत्थि।

१४१, वेउन्वि णेरइगभंगो । एवं वेउन्वियमि । आहार ०-आहारमि० सन्वतिन्वाणु० साद० । जस०-उच्चा० अणंत० । देव० अणंत० । कम्म० अणंत० । तेज०
अणंत० । वेउन्वि अणंत० । केवलणा०-केवलदंस०-असाद०-विरियंत० चत्तारि वि
अणंतगु० । संजलणलोभो अणंत० । माया विसे० । कोधो विसे० । माणो विसे० ।
आभिणि०--परिभोग० दो वि तु० अणंत० । चक्खु० अणंत० । सुद०--अचक्खु०भोगंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । अधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु०
अणंत० । मणप ०--दाणंत० दो वि तु० अणंत० । पुरिस० अणंत० । अरदि०
अणंत० । सोग० अणंत० । भय० अणंत० । दुगुं० अणंत० । णिहा० अणंत० ।
पचला० अणंत० । अजस० अणंत० । रिद० अणंत० । हस्स० अणंत० । देवाड०
ध्रणंत०। एवं मणपज्ज०-संज०-सामाइय-च्छेदो०-परिहार०। एदेसु आहारसरीरं अतिथ ।
संजदासंजद० परिहारभंगो । णवरि पचक्वाण०४ अत्थि ।

शरीरका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। शेप भङ्ग पञ्चे न्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है। इस मार्गणामें इतना ही श्रन्पवहुत्व है।

४४१. वैक्रियककाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भड़ है। इसी प्रकार वैक्रियकिमश्र-काययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें साता-वेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुरा हीन है। इससे कार्मएशरीरका अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इससे तैजसरारीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकरारीरका अनु-भाग अनन्तगुणा हीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, असातावेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुसाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभका अनुसाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संब्वलन मानका ऋनुमाग विशेष हीन है। इससे श्राभिनिवोधिक ज्ञानावरण और परि-भोगान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुरो हीन हैं। इससे चज्रदर्शनावरणका श्रन-भाग अनन्तगुणा हीनहै । इससे श्रुतज्ञानावरण,अचज्जदर्शनावरण श्रीर भोगान्तरायके अनभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके श्रमुभाग तीनों ही तुल्य होकर त्रमन्तगुऐ। हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरए। श्रीर दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। े अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्रांका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अयशः-कीर्तिका अनुभाग अनन्तगुरण हीन है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुरण हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार मनः पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत श्रीर परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रत्याख्यानावरण चार है।

४४२. इ० ओघं। णविर चढुआउ० णिरयगिददुगं आहारसरीरं सेसं कादव्वं। एवं अणाहार०। आभिणि०-सुद्०-ऋोधि०-सम्मादि०-खइ्ग०-वेद्ग०- उवसम०-सासण०--सम्मामिच्छादिद्वि ति ओघं। णविर अप्पप्पणो पगिदिविसेसो णादव्वो। तेउ० ओघं। णविर णिरयगिददुगं वज्ज। एवं पम्माए। सुकाए ओघं। णविर दोआउ० णिरयगिददुगं तिरिक्खगिदितिगं च वज्ज। असण्णीस सव्वतिव्वाणु-भागं मिच्छ०। साद० अणंत०। जस०-उच्चा० अणंत०। देव० अणंत०। कम्म० अएंत०। तेज० अणंत०। वेउव्वि० ऋणंत०। उविर तिरिक्खोधं।

एवं उक्तस्सपरत्थाणअप्पावहुगं समत्तं।

४४३. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सन्वमंदाणु० लोभ-संज०। [मायासंजल०] अणंतगुणन्भिह्यं। माणसंज० अणंतगु०। कोधसंज० अणंतगु०। मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंतगु०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० अणंतगु०। सुदणा०-अचक्खु०-भोगंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगु०। चक्खु० अणंत०। आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु०। विरियंत० अणंत०।

४४२. कामंण्काययोगी जीयोंका मङ्ग श्रोयके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें चार श्रायु, नरकगितिद्विक श्रोर श्राहारकद्विकको छोड़कर शेषका अल्पवहुत्व करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीयोंके जानना चाहिए। श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, खायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि श्रोर सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीयोमें श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतिविशेष जान लेना चाहिए।पीतलेश्यामें श्रोघके समान मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नरकगितिद्विकको छोड़कर कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। श्रुक्ललेश्यामें श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि दो आयु, नरकगितिद्विक श्रोर तिर्थेश्चगितित्रकको छोड़कर कहना चाहिए। असंज्ञी जीयो में मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे यशःकीर्ति श्रोर उचगोत्रका अनुभाग दोनो ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन है। इनसे देवगितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणश्रीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैकियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैकियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैकियकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान ग्रहपवहुत्व समाप्त हुन्ना।

४४२. जयन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे लोभ-संज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे मानसंज्वलनका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिवक है। इससे कोधसंज्वलनका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण श्रौर दानान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रमन्तगुणे श्रधिक हैं। इनसे श्रवधिज्ञानावरण, श्रवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे श्रधिक हैं। इनसे श्रतज्ञानावरण, श्रचजुदर्शनावरण, श्रौर भोगान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रमन्तगुणे श्रधिक हैं। इनसे चजुदर्शनावरणका श्रनुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण श्रौर परिभोगान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रमन्तगुणा श्रिक हो। इनसे चीर्यान्तरायका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा अणंताणु लोभो अणंतगु । माया विसे । कोघो विसे । णो विसे । संजलण-लोभो अणंतगु । माया विसे । कोघो विसे । माणो विसे । एवं पचक्वाण । अपचक्वाण ०४ । आभिणि ० - पिर्भोग ० दो वि तुल्ला ० अणंतगु ० । चक्खु ० अणंतगु ० । मुद् ० - अचक्खु ० - भोग ० तिण्णि वि तुल्ला ० अणंत ० । ओधिणा ० - चिल्ला ० अणंत ० । सोग ० अणंत ० । भय० अणंत ० । णाचा ० अणंत ० । सोग ० अणंत ० । भय० अणंत ० । पचला ० अणंतग् ० । णाचा ० - अणंत ० । पचला ० अणंतग् ० । णाचा ० - अजस० वो वि तु ० अणंतग् ० । पिर्विक्व ० अणंतग् ० । इत्थि ० अणंत ० । पुरिस ० अणंत ० । रिद् ० अणंत ० । इस्स ० अणंत ० । मणुसाउ ० अणंत ० । तिरिक्वाउ ० अणंतग् ० । एवं सत्तगु पुढवीसु । णविरिक्व । मणुसाउ ० णाचि ० ।

४३८. तिरिक्लेसु सन्वतिन्वाणु० सादा० । जस०-उचा० अणंतगु० । देव-

वेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानु-वन्धी लोभका अनुसाग अनन्तगुरणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुसाग विशेष हीन है। इससे श्रनन्तानुबन्धी क्रोधका श्रनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका श्रनुभाग ,विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन सायाका श्रनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका श्रनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका श्रानुभाग विशेप हीन है। इसी प्रकार क्रमसे प्रत्याख्यानावरण चार श्रीर अप्रत्या-ख्यानावरण चारका अल्पबहुत्व है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागसे आभिनिवोधिक ज्ञाना वरण श्रीर परिभोगान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे चज्जदर्श-नावरणका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे श्रुतज्ञानावरण, अचलुदर्शनावरण श्रीर भोगान्त-रायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे अविधिज्ञानावरण, अविधिदर्शना वरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्यय-ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि श्रीर दानान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निदानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे निद्राका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे नीचगोत्र और अयशाकीर्तिके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इ े तिर्यक्षगितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्री-वेदकाश्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुषवेदका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे रितका अनुभाग श्रनन्तगुणा होन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तियञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्यायु नहीं है।

४३८. तिर्येद्योंमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुसागवाला है। इ े यशःकीर्ति और उच्चाीत्र

१. श्रा॰ प्रती खिद्दाखिद्दा॰ श्रयांत० पचला॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती सत्तमेषु (सत्तमु) इति पाठः । ३. श्रा॰ प्रती मसुसाउ० इतिपाठः ।

गदि० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तेज० अणंत० । वेडिव्व० अ ं० । मिच्छ० अणंत० । सेसं ओघं याव णिरयग० अणंतगु० । मणुसग० अणंतगु० । ओरालि० अणंतगु० । तिरिक्तव० अणंतगु० । सेसं ओघं याव हस्स० अणंतगु० । णिरयाड० अणंतगु० । देवाड० अणंतगु० । मणुसाड० अणंतगु० । तिरिक्तवाड० अणंतगु० । एवं पंचिंदियतिरिक्तव०३-मणुस०३ !

४३६. पंचि०तिरि०अपज्जतगेसु सन्वतिन्वाणुभागं मिच्छ०। सादा० अणंतगु०! जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंतगु०। मणुसग० अणंत०। कम्मइ अणंत०।
तेज० अणंत०। ओरा० अणंत०। केवलणा०-केवलदं०-असादा०-विरयंत० चत्तारि वि
तु० अणंतगु०। उवरि ओद्यं याव मणुसाउ० अणंतगु०। तिरिक्ताउ० अणंत०। एवं
सन्वअपज्जत्तगाणं सन्वएइंदि०-सन्वविगलिंदि०-पंचकायाणं च।

४४०, देवाणं णिरयभगो । ओराह्मि० मणुसभंगो । ओरा०मि० सन्वतिन्वाणु-भा० साद० । जस०-उच्चा० दो वि० छणंत० । देवग० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तेज० अणंत० । वेउन्वि० अणंत० । मिच्छ० अणंत० । सेसं पंचिदि०तिरि०भंगो ।

के अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ े कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैकसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे विक्रियकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिध्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेप भन्न नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदा-रिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदा-रिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेप भन्न, हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तियंख्यातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेप भन्न, हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तियंख्यायुका अनुभाग अन्तगुणा हीन है। इससे तियंख्यायुका कि स्थायुका कि स्थाय

४३६. पख्ने न्द्रियतिर्यद्धअपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व सबसे तीव अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा होन है। इससे कार्मण्यारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अौदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ तेजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इ केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, असातावेदनीय और वीर्यान्तरायके अनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। आगे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है इस स्थानके प्राप्त होनेतक ओवके समान भङ्ग है। इससे तिर्यक्षायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

४४०. देवोंमें नारिकयोंके समान भन्न है। श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भन्न है। श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीय सबसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे यशः-कीर्ति और द्वागोत्रका श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे तैजस-

पुरिस० अणंत० । इस्स० अणंत० । रिद् अणंत० । दुगुं० अणंत० । भय० अणंत० । सोग० अणंत० । अरिद० अणंत० । इत्थि० अणंत० । णवुंस० अणंत० । केवलणा०-केवलदं० दो वि द्यु० अणंत० । पयला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । पचन्वलाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । एवं अपचन्वलाण०४ । पचलापचला अणंतगु० । णिद्दाणिद्दा अणंतगु० । थीणिग० अणंत० । अणंताण०माणो अणंतगु० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । मिच्छ० अणंत० । ओरा० अणंत० । केघिविक० अणंत० । तिरिक्ताड० अणंत० । मणुसाड० अणंत० । तेजा० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तिरिक्ताड० अणंत० । णिरय० अणंत० । मणुसाद० अणंत० । देवग० अणंत० । णीचा० अणंत० । अजस० अणंत० । असाद० अणंत० । जस०-उचा० दो वि तु० अणंत० । साद० अणंत० । णिरयाड० अणंत० । देव० अणंत० । आहार० अणंत० ।

श्रिघक है। इससे पुरुपवेदका अनुभाग श्रनन्तगुणा श्रिधक है। इससे हास्यका श्रनुभाग श्रनन्त-गुणा अधिक है। इससे रितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे इससे अरितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे इससे इसीनेदका श्रानित्या श्राप्त है। इससे नपुंसक्वेदका श्रामा श्रानित्या श्राप्त श्रीय है। इससे केवलज्ञानावरण श्रीर केवलदर्शनावरणके श्रामा दोनों ही तुल्य होकर श्रान्तगुणे श्रीयक हैं। इससे प्रचलाका श्रामाग श्रानित्याणा श्रीयक है। इससे निद्राका श्रामाग श्रानित्याणा श्रीयक है। इससे निद्राका श्रामाग श्रानित्याणा श्रीयक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मानका श्रमुमाग श्रमन्तगुणा श्रधिक हैं। इससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका श्रतुभाग विशेप श्रधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका श्रतुभाग विशेष श्रधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार श्रप्रत्याख्यानावरण चारके श्रतुभागका श्रत्पवहुत्व है। श्रागे प्रचलाप्रचलाका श्रतुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे निद्रानिद्राका श्रतुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका श्रतुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका श्राची अपन्या अपना अपना अपना अपना अपना आपना है। इससे श्राची अपना विशेष अधिक है। इससे श्राचनतानुवन्धी मायाका अनुभाग विशेष अपनतानुवन्धी लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मिध्यात्वका अनुभाग श्राचनतानुणा अधिक है। इससे वैक्रियिकशारीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वैक्रियिकशारीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैनसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यख्रगतिका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे नुरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यग्तिका अनु-भाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नीचगोत्र का अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अग्रशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रसातावेदनीयका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे यशःकीर्ति श्रीर उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो अधिक हैं। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्त-गुणा श्रधिक है। इससे नरकायुका श्रतुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे देवायुका श्रतुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्राहारकशरीरका श्रतुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। ४४४. णिरएसु सन्त्रमंदाणु० हस्स० । रदि० अणंत० । दुगुं० अणंत० । भयं० अणंत० । पुरिस० अणंत० । माणसंज० अणंत० । कोधसंज० विसे० । मायासंज० विसे० । लोभसंज० विसे० । सोग० अणंत० । अरदि० अणंत० । इत्थि० अणंत० । णवंस० अणंत० । पचला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । मणपज्जन०-दाणंत० दो वि० तु० अणंत० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । द०-अचन्तवु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । चन्तवु० अणंत० । आभिणि०-परिभोग० दो वि तु० अणंत० । अपचन्तवाणमाणो अएांत० । कोधो विसे० । माया विसे०। लोभो विसे० । एवं पचन्तवाणा०४ । विरियंत० अणंत० । केवलणा०-केवलदंस० दो वि तु० अणंत० । पचला अणंत० । णिद्दाणिद्दा० अर्णंत० । थीणगि० अर्णंत० । अणंताणु० णो अर्णंत० । कोधो विसे०। माया विसे०। माया विसे०। माया विसे०। माया विसे०। माया विसे०। माया विसे०। मण्या विरे०। मण्या विसे०। मण्या

४४४. नारिकयोंमें हास्य सबसे मन्द श्रनुभागवाला है। इससे रितका श्रनुभाग श्रनन्त-गुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे पुरुपवेदका अनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे मानसंज्वलनका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे क्रोधसंज्वलनका श्रनुभाग विशेष अधिक है। इससे माया संज्ञातका अनुमाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्ञातका अनुमाग विशेष अधिक है। इससे शोकका अनुमाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुमाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे श्रिषिक हैं। इनसे श्रवधिज्ञानावरण, श्रवधिदर्शनावरण श्रीर लाभान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रवन्तगुणे श्रिषिक हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, श्रवज्ञदर्शनावरण श्रीर भोगान्तरायके व्यनुभाग तीनों ही तुल्य होकर व्यनन्तगुणे व्यधिक हैं । इनसे चन्नुदर्शनावरणका व्यनुभाग व्यनन्त-गुणा अधिक है। इससे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर जनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण कोधका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण मायाका श्रमुमाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण लोभका श्रमुमाग विशेष श्रधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अरुपवहुत्व है। प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागसे वीर्यान्तरायका श्रानुभाग श्रानन्तगुणा श्राधिक है। इससे केवलज्ञानावरण श्रीर केवलदर्शनावरणके श्रानुभाग दोनों ्ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे श्रधिक हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। इससे निद्रानिद्राका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा श्रधिक है। श्रिधिक है। इससे श्रनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग श्रनन्तगुणा श्रिधिक है। इससे श्रनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मिध्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे औदारिकशरीरका अनुमाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हि गितिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा णीचा० अएांत० । अजस० अएांत० । असाद० अएांत० । जस०-उचा० दो वि तु० अणंत० । साद० अएांत० । तिरिक्ताड० अएांत० । मणुसाड० अणंत० । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि इसु उवरिमासु णीचा अजस० एकदो भाणिदव्वं ।

४४५. तिरिक्तेस पढमपुढिवभंगो याव आभिणि०-परिभोगंतरा० दो वि तु० अणंत० । पचक्ताणमाणो अणंत० । । कोघो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । विरियंत० अणंत० । केवलणा०-केवलदं० दो वि तु० अणंत० । अपचक्ताण०माणो अणंत० । कोघो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । उविर ओघं । एवं पंचि०- तिरि०३ । णविर एदेस णीचा० अजस० एकदो भाणिद्वा ।

४४६. पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्जत-विगत्तिदि०-पंचिदि०-तस०त्रपज्ज० तिण्हं कायाणं च पढमपुढविभंगो। णवरि दोआउ० द्योघं। एवं एइंदियाणं पि। णवरि तिरिक्लोघं णीचा० अणंत०। अजस० अणंत०। एवं तेउ-वाउणं पि। णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्ज। देवाणं णेरइगभंगो। मणुस०३-पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-

अधिक हैं। इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य हो कर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इसने प्रकार सातों प्रथिवियों जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पहलेकी छह पृथिवियों में नीचगोत्र और अयशःकीर्ति को एकसाथ कहना चाहिए।

४४५. तिर्यंद्वों में श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तराय के अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे श्रधिक है इस स्थानके प्राप्त होने तक पहली पृथिवीके समान भंग है। इससे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग श्रान्तगुणा श्रधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण कोधका श्रनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे वीर्यान्तरायका श्रनुभाग श्रान्तगुणा श्रधिक है। इससे वीर्यान्तरायका श्रनुभाग श्रान्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण श्रीर केवलदर्शनावरणके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रान्तगुणे श्रधिक हैं। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण मानका श्रनुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण नावरण कोधका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण लोभका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रागे श्रोवके समान भंग है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चित्रकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें नीचगोत्र श्रीर श्रयशाकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए।

४४६. पद्धे न्द्रियतिर्यद्धश्रपर्यात, मनुष्यश्रपर्यात, विकलेन्द्रिय, पद्धे न्द्रियश्रपर्यात, त्रसअपर्यात और तीन स्थावर कायिक जीवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है
कि इनमें दो श्रायुत्रोंका भङ्ग श्रोवके समान है। इसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें भी जानना चाहिए।
इतनी विशेषता है कि इनमें सामान्य तिर्यद्धोंके ान नीचगोत्रका श्रनुभाग श्राननतगुणा श्रधिक
है। इससे श्रयशःकीर्तिका श्रनुभाग श्राननतगुणा श्रधिक है। इसी प्रकार श्रानिकायिक श्रीर
वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर
कहना चाहिए। देवोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। मनुष्यत्रिक, निद्रयद्विक, त्रसद्विक, पाँचों

[्]रा. र. ता. श्रा. प्रत्योः चटुण्हं इति पाठः ।

पंचवचि०-कायजोगि-ओराहि० ओघं। णवरि मणुसेसु णीचा०--अजस० एकदो

४४७, त्रोरालियमि० णेरइगभंगो याव ओरा० त्रागंत०। तिरिक्लाउ० अणंत०। मणुसोउ० अणंत०। तेजा० अणंत०। कम्म० अणंत०। तिरिक्ल० अणंत०। मणुस० अणंत०। णीचा० द्राणंत०। अजस० अणंत०। असाद० अणंत०। जस०- उचा० दो वि तु० अणंत०। द० त्राणंत०। वेउव्वि० अणंत०। देव० अणंत०।

४४८. वेडिव्व०-वेडिव्यिम० णिरयोघं | आहार०-आहारिम० सव्वद्वभंगो | णविर अहक० णित्य | कम्मइ० ओरालियिमससभंगो | इत्थि०-पुरिस० सव्वमंदाणु० कोधसंज० | माणसंज० [विसे०] | मायासंज० विसे० | छोभसंज० विसे० | मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० | उविर ओघं | णवुंसगे ओघं | णविर संजलणाए इत्थि०भंगो | अवगद० ओघं | साद० अणंत० |

४४६. कोध० [सन्व०-] मंदाणु० कोधसंज०। णो विसे०। माया

मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी श्रीर औदारिककाययोगी जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें नीचगोत्र श्रीर श्रयशःकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए।

४४७. खोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रौदारिकशरीरका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है इस स्थानके प्राप्त होने तक नारिकयोंके समान भङ्ग है । इससे तिर्यञ्चायुका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे तिर्यञ्चगितका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे तिर्यञ्चगितका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे मनुष्यगितका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे नीचगोत्रका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे श्रमाग श्रमन्तगुणा श्रिष्ठिक है । इससे श्रमाग श्रमन्तगुणा श्रमिक है । इससे श्रमाग श्रमन्तगुणा श्रमिक है । इससे श्रमाग श्रमन्तगुणा श्रमिक है । इससे देवगितका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रमिक है ।

४४८. वैकियिककाययोगी और वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य नारिकयोंके समान भद्ग है। श्राहारककाययोगी और श्राहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भद्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्राठ कपाय नहीं हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रोदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भद्ग है। स्वीवेदी और पुरुषवेदी जीवों क्रोधसंज्वलन सबसे मन्द श्रनुभागवाला है। इससे मान्यसंज्वलनका श्रनुभाग विशेष श्रिक है। इससे मान्यसंज्वलनका श्रनुभाग विशेष श्रिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण श्रोर दानान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे श्रिक हैं। श्रागे श्रोवके समान भद्ग है। नपुंसकवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भद्ग है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनोंका भद्ग स्त्रीवेदीके समान है। श्रपगतवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भद्ग है। सात्र सात्रवेदनीयका अनुभाग श्रनन्त-गुणा श्रिक है यहाँ तक कहना चाहिए।

४४६. क्रोध यमें क्रोधसंज्वलन सबसे मन्द्र अनुभागवाला है। इससे मानसंज्वल

विसे० | लोभो विसे० | मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० | उविर ओघं | माण सन्वमंदाणु० माणसंज० | मायासंज० विसे० | लोभसं० विसे० | कोधसं० अणंत-गुण० | मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० | उविर ओघं | मायाए सन्वमंदाणु० मायासंज० | लोभसंज० वि० | माणसंज० अणंत० | कोधसंज० अणंत० | मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० अणंत० | उविर ओघं | लोभे ओघं | मिद०-सुद० णेरइयभंगो याव मिच्छतं | उविर ओघं | एवं विभंग०-असंज०-किण्ण-णील-काउ०-अवभविर०-मिच्छा०-असिएए। ति | आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-उवसम० ओघभंगो | णविर सम्मत्तपाओगाओ संजम-पाओगाओ च पगदीओ णादव्वाओ | परिहार० आहार०भंगो | णविर आहारसरीर० सव्यविर अणंत० | सहुमसंप० अवगद०भंगो | संजदासंज० णेरइगभंगो याव आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंत० | पचक्खाणमाणो अणंत० | उविर ओघं | चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भविस०-सिएए।०-आहारए ति ओघं |

४५०. तेड० देवभंगो याव आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंत०। पच-

अनुभाग विशेष अधिक हे । इससे मायासंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है । इससे लोभसंज्व-लनका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण श्रीर दानान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे श्रधिक हैं। श्रागे श्रोयके समान है। मानकषायमें मानसंज्यलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासञ्चलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्वलन-का अनुसाग विशेष अधिक है। इससे कोधसंज्वलनका अनुसाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण त्र्यौर दानान्तरायके त्र्यनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो त्रधिक हैं। श्रागे श्रोघके समान भक्त है। मायाकपायमें मायासंब्वलन सबसे मन्द श्रनुभागवाला है। इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक हैं। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। आगे ओघके समान है। लोभकपायमें खोचके समान है। मत्यज्ञानी ख्रौर श्रुताज्ञानी जीवोंसे मिथ्यात्वके स्थानके प्राप्त होने तक नारिकयोंके समान भक्त हैं। आगे छोघके समान है। इसी प्रकार विभक्तज्ञानी, असंयत, कृष्ण-लेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, अभन्य, मिथ्यादृष्टि श्रौर असंज्ञी नीवोंमें नानना चाहिए। त्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आविके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वप्रायोग्य ख्रीर संयमप्रायोग्य प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें त्राहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें श्राहारकशरीरके श्रनुभागको सबके ऊपर श्रनन्तगुणा श्रधिक कहना चाहिए। सूदमसान्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें आभिनि-योधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक नारिकयों के समान भन्न है। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानका श्रानुभाग श्रनन्तग्णा श्रधिक है। श्रागे श्रोवके समान भन्न हैं। चलुदर्शनी, श्रचलुदर्शनी, शुक्तलेश्या-वाले, भव्य, संज्ञी श्रीर आहारक जीवोंमें श्रोचके समान भन्न है।

४५०, पीतलेश्यामें आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही

ाणमाणो अणंत०। कोधो विसे०। माया० विसे०। छोभो विसे०। विरियंत० अणंत०। केवलणा०-केवलदं ० दो वि तु० अणंत०। अपचक्खाणमाणो अणंत०। कोधो विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। पचला अणंत०। णिहा अणंत०। उविरि ओघं। एवं पम्माए। वेदग० तेउ०भंगो। एवं सम्मामि०। साराणे णेरइगभंगो। असण्णीसु तिरिक्लोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं अप्पावहुगं समत्तं।

एवं चदुवीसमणियोगदारं समत्तं।

भुजगारवंधो

४५१. एतो अजगारवंधे ति तत्थ इमं अहपदं — जाणि एण्हि अणुभागफद्धगाणि वंधदि अ तरोसकाविद्विदिनकंते समए अप्पद्रादो वहुदरं वंधदि ति एसो अजगारवंधो णाम०। अप्पद्रवंधे ति तत्थ इमं अहपदं — जाणि एण्हि अणुभागफद्धगाणि वंधदि अणंतर उस्सकाविद्विद्विकंते समए वहुद्रादो अप्पद्रं वंधदि ति एस अप्पद्रवंधो

तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक देवोंके समान भङ्ग है। इनसे प्रत्या-ख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण कोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे वीर्यान्तरायका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण कोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। आगे ओवके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। वेदकसम्यक्त्वमें पीतलेश्याके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सम्यग्मिण्यात्वमें जानना चाहिए। सासादनसम्यक्त्वमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यक्रोंके समान भङ्ग है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

> इस प्रकार श्राल्पवहुत्व समाप्त हुआ। इस प्रकार चौवीस श्रानुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारवन्ध

४५१. इससे आगे भुजगारवन्धका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो इनके अनुभागरपर्धकोंको वांधता है वह जय अनन्तर व्यतिकान्त समयमें व्यवनेवाले अरुपतरसे इस समयमें वहुतरको वाँधता है तव वह भुजगारवन्ध कहलाता है। अरुपतरवन्धके विषयमें यह अर्थपद है—इनके जो अनुभागरपर्धक वाँधता है वह जय अनन्तर पिछले समयमें वँधनेवाले बहुतरसे

रे. ता॰ प्रती अर्यातः । केवलदं • इति पाठः l...

णामः । अविद्वदंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—जाणि एप्टि अणुभागफद्धगाणि वंधिद अणंतरओसकाविद-उस्सकाविद्विदिक्कंते समए तित्तयाणि चेव वंधिद ति एसो अविद्वदंधो णामः । अवत्तव्ववंधे ति तत्थ इमं अद्वपदं—अवंधादो वंधिद ति एसो अवत्तव्ववंधो णामः । एदेण अद्वपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णाद्व्वाणि भवंति । तं जहाः—समुक्तित्णा याव अप्पावहुगे ति ।

समुक्कित्तणाणुगमो

४५२, समुक्तिणाए दुविधो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण सन्वपगदीणं अत्थि भ्रजगारवंधो अप्पद० अविद्वि अवत्तव्ववंधो य । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि०-ओरा०-आभिण०-सुद०-ग्रोधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्ले०-भवसि०-सम्मा०-खइग०-उवसम०-सिएए-आहारए ति ।

४५३. णेरेइएसु धुविगाणं अत्थि भ्रज० अप्पद० अविह०। सेसाणं ओघ-भंगो। ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु धुवियाणं देवगदि०४-तित्थ० अवत्तव्व० णित्य। वेडिव्व०-वेडिव्वियमि० तित्थर्यं० अवत्तव्वया णित्थि धुवियाणं च। इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० अवत्तव्वगा वज्ज० तिणिपदा,

इस समयमें श्रन्पतरको वाँघता है तब श्रन्पतरबन्ध कहलाता है। श्रवस्थितवन्धके विषयमें यह श्रर्थपद है—इनके जो श्रनुभाग स्पर्धक वाँधता है वह जब श्रनन्तर पिछले और श्रगले समयमें उतने ही वाँघता है तब वह श्रवस्थितवन्ध कहलाता है। श्रवक्तव्यवन्धके विषयमें यह श्रर्थपद है— जो श्रवन्धसे वन्ध करता है वह अवक्तव्यवन्ध कहलाता है। इस श्रर्थपदके श्रनुसार यहाँ ये तेरह श्रनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—समुत्कीर्तनासे लेकर श्रन्पबहुत्व तक।

समुत्कीर्तनानुगम

४५२. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। श्रोचसे सब प्रकृतियोंका मुजगारवन्ध है, अल्पतरवन्ध है, अवस्थितवन्ध है और अवक्तव्यवन्ध है। इसी प्रकार श्रोचके समान मनुष्यित्रक, पञ्चोन्द्रयिहक, त्रसिहक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनः-पर्ययज्ञानी, संयत, चज्जुदर्शनी, अचज्जुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भन्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपश्रामसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४५३. नारिकयों में धुव प्रकृतियोंका मुजगारवन्य, अल्पतरवन्य और अवस्थितवन्य है। तथा रोप प्रकृतियोंका भक्क ओषके समान है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रीर अनाहारक जीवोंमें धुववन्यवाली देवगतिचतुष्क और तीर्यद्वर प्रकृतियोंका अवक्तव्यवन्य नहीं है। विक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तीर्यद्वर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्यक जीव नहीं हैं। तथा धुवप्रकृतियोंके भी अवक्तव्यवन्यक जीव नहीं हैं। स्थीवेदी, पुरुषवेदी और

[्] १. ता० प्रती वेडिव्यियमि० वेडिव्यियमि० (१) तित्यय० इति पाढः। 🕬 🗆 🤔

सेसाणं चतारिपदा । अवगद० सन्वाणं अत्थि भुज०-अप्पद०-अवत्तन्ववंधगा य । कोधे इत्थि०भंगो । माणे पंचणा०-चढुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० अत्थि तिण्णि पदा । एवं मायाण् । णवरि दोसंज० । सेसं ओघं । होभे पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० अत्थि तिण्णिपदा । सेसं ओघं । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चढुदंस०-लोभसंज०-उचा०-पंचत० अत्थि तिण्णिपदा । सेसं ओघं । सहुमसं० सन्वाणं अत्थि भुज०-अप्पद० । सेसाणं णिरयभंगो । किंचि विसेसो णादन्वो ।

एवं समुक्तित्तणा समती ।

सामित्ताणुगमो

४५४, सामिताणुगमेण दुवि०-ओघे० त्रादे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदु-संज०-भय-दु०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०--णिमि०--पंचंत० भुज०-अप्पद०-अविद्या कस्स० १ अण्ण० । अवत्तव्ववंधो कस्स १ अण्ण० उवसामणादो पिड-पदमाणस्स मणुस्सस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-त्रणंताणु०४-तिरिण्णपदा णाणोवरणभंगो । अवत्तव्व० कस्स १ अण्ण० असंजमसम्म-

नपुंसकवेदी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यवन्थको छोड़कर तीन पद हैं तथा शेप प्रकृतियों के चार पद हैं। अपगतवेदी जीवों सब प्रकृतियों के सुजगारवन्थक, अल्पतरवन्थक और अवक्तव्यवन्थक जीव हैं। क्रोधकपायमें खीवेदी जीवों के समान भझ है। मानकपायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पद हैं। इसी प्रकार मायाकपायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेपता है कि यहाँ दो संज्वलन कहने चाहिए। शेप भझ ओचके समान है। लोभकपायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके तीन पद हैं। शेप भझ ओघके समान है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तोन पद हैं। शेप भझ ओघके समान है। सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपद हैं। शेप मार्ग श्रोषको समान है। किख्वित् विशेपता है वह जान लेनी चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्वानुगम

४५४. स्त्रामित्त्रातुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञलन, भय, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त हो। श्रवक्तव्य सुजगार, अस्पतर श्रीर श्रवस्थितवन्थका स्त्रामी कीन हे । श्रवक्तव्य बन्धका स्त्रामी कीन हे । रिप्यामश्रीणसे गिरनेवाला श्रन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी या प्रथम समयवर्ती देव स्त्रामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व श्रोर श्रनन्तानुवन्धी चारके तीन पद्रोंका भङ्ग झाना-वरणके समान है। इनके श्रवक्तव्यवन्थका स्त्रामी कीन है ? जो श्रन्यतर जीव श्रसंयतसम्यक्त्वसे,

रे. ता॰ प्रती एवं समुक्तिया समत्ता इति पाठो नास्ति ।

तादो संजमादो संजमासंजमादो सम्मामिच्छतादो वा परिवदमाणयस्स पहमसमयमिच्छादिहिस्स वा सासणसम्मा० वा । णवरि मिच्छा॰ असंजमादो संजमासंजमादो संजमादो वा सासण० सम्मामि० वा परिवदमा० पहमसमयमिच्छादि० । सादासाद०सत्तणोक०--चदुगदि--पंचजादि--दोसरीर--छस्संटा०--दोद्रंगो०--छस्संघ०--चदुआणु०दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० तिण्णिपदा णाणावरणभंगो। अवत्तन्व० कस्स०?
अण्ण० परियत्तमाणयस्स पहमसमयवंधमाणयस्स । अपचक्वाण०४ तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० ? छण्ण० संजमादो वा संजामासंज० परिवद० पहमसम०
मिच्छादि० सासण० सम्मामि० असंजदसम्मा०। पचक्वाण०४ तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० संजमादो परिवद० पहमस० मिच्छा० सासण०
सम्मामि० असंजद० संजदासंजदस्स वा । चदुआड०-आहारदुग-पर०-छस्ता०-छज्ञो०तित्थय० तिणिणपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० पहमसमयवधगस्स ।
एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-छोरालि०लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सिण्ण-आहारण ति। णवरि मणुस०-मण०-विच०-

संयमसे, संयमासंयमसे श्रौर सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि सासादृन-ंसम्यग्दप्रि जीव है वह उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्थका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके अवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? असंयमसे, संयमासंयमसे, संयमसे, सासादनसे श्रीर सन्यागिभध्यात्वसे गिरकर जो प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि है वह मिध्यात्वके श्रवक्तव्यवन्वका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रके तीन पदोंका भङ्ग झानावरण समान है। अवक्तव्यवन्युका स्वामी कौन है ? जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला प्रथम समयमें इनका वन्य करता है वह इनके श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भक्त ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? संयम या संयमासंयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिण्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्निध्यादृष्टि श्रीर श्रासंयतसम्यग्दृष्टि श्रान्यतर जीव इनके श्रवक्तव्य-वन्यका स्त्रामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यवन्यका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत अन्यतर जीव इनके अवक्तव्य-वन्यका स्वामी है। चार आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन परोंका भक्त ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तत्र्यवन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें वन्ध करनेवाला अन्यतर जीव इनके अवक्तव्यवन्धका स्वामी है। इसीप्रकार श्रोधके समान मनुष्यत्रिक, पद्धे न्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिक-काययोगी लोमकपायी, चलुदराँनी, अचलुदर्शनी, भन्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चिह्ये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य, मनोयोगी, वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें

रै. ता॰ श्रा॰ पत्योः सम्मा॰ वा मिच्छा॰ एवरि श्रसंनमादो इति पाठः । २. ता॰ प्रती श्रसंन-मादो संनमादो इति पाठः ।

ओराहि० पढमदंड० अवत्त० कस्स० १ अएए। जनसमणादो परिवद० पढमस० मणुसस्स ना मणुसणीए ।

४५५. णेरइएसु धुविगाणां भुज०-अप्पद०-अविह० कस्स० १ अण्ण०। थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अग्गांताणु०४ तिण्णिपदा द्योघं। अवत्त० कस्स० १ अण्ण० सम्मत्त०
सम्मामि० परिवद० पढमसम० मिच्छा० सासण०। णवरि मिच्छा० अवत्त० कस्स०१
अण्ण० सम्म० सासण० सम्मामि० वा परिवद० पढमस० मिच्छा०। सेसा० द्योघं।
एवं सन्वणेरइगाणं। णवरि सत्तमाए तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०--णीचा० थीणगि०भंगो। मणुस०-मणुसाणु०--उचा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० कस्स० १
अण्ण० पढम० द्रसंज० सम्मामि०।

४५६. तिरिक्लेस धुविगाणं णेरइगभंगो । सेसं ऋोघं । णवरि संजमो णित्थ । सेसाणं सन्वाणं अणाहारए ति ऋोघं । कायाणं साधेदन्वं । णवरि तेज्लेस्साए इत्थि०-पुरिस० भुज०-ऋप०--ऋविह०-ऋवत्त० कस्स० १ ऋण्णद० तिगदियस्स० । णवुंस० तिण्णिपदा ऋवत्त० कस्स० १ अण्ण० देवस्स । तिरिक्लगदि-मणुसगदि० तासि ऋणु० तिण्णिपदा देवस्स० । ऋवत्त० क० १ ऋण्ण० देवस्स परियत्तमाणयस्स । ओरालि०

म दण्डकके अवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती अन्यतर मनुष्य और मनुष्यिनी प्रथम दण्डकके अवक्तव्यवन्धका स्वामी है।

४५५ नारिकयों में ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के भुजगार, श्रास्तर श्रीर श्रवस्थित वन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर नारिकी स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर श्रन्नतानुनधी चारिक तीन पदोंका भंग श्रोधके समान है । श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्निध्यात्वसे गिरनेवाला श्रन्यतर प्रथम समयवर्ती मिध्यात्वके श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है ? सम्यक्त, सासादनसम्यक्तव श्रीर सम्यग्निध्यात्वसे गिरनेवाला श्रन्यतर प्रथमसमयवर्ती कौन है ? सम्यक्त, सासादनसम्यक्तव श्रीर सम्यग्निध्यात्वसे गिरनेवाला श्रन्यतर प्रथमसमयवर्ती मिध्यात्वि नारिकी मिध्यात्वके श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओधके समान है । इसी प्रकार सव नारिकयोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सातवीं प्रथिवीमें तिर्यञ्चगिति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर चचगोत्रके जीन पदोंका भङ्ग सत्यानगृद्धिके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर चचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग झानावरणके समान है । इनके श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन हे ? श्रन्यतर प्रथम समयवर्ती श्रसंयतसम्यग्दिष्ट श्रीर सम्यग्निध्यादिष्ट नारिकी इनके श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी है ।

४५६. तिर्यक्रोंमें घुववन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। शेष भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके संयम नहीं है। श्रनाहारक मार्गणा तक शेष सवका भङ्ग श्रोधके समान है। पाँच स्थावरकायवालोंका साथ लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पीत-लेश्यामें स्त्रीवेद श्रीर पुरुषवेदके भुनगार, श्रन्पतर, श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है। श्रन्यतर तीन गतिका जीव स्वामी है। नपुंसकवेदके तीन पदोंका श्रीर श्रवक्तव्यवस्थका स्वामी कौन है? श्रन्यतर देव स्वामी है। तिर्यक्रगित, मनुष्यगित और उनकी श्रानुपूर्वियोंके तीन पदोंका स्वामी देव है। श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है १ परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला

वेउन्वियद्य भुजि - अप्प - अविद्व जि ए०, अवित्त जि ग्रंती ०, उ चितु पि अणंतकालं । तिरिक्ताउ भुजि - अप्प - जि ए०, अवित्त जि ग्रंती ०, उ सागरी वमसदपुथ । अविद्व जाणा । तिरिक्त ० -- तिरिक्त णु भुजि - अप्प जि अविद्व जाणा । तिरिक्त जि ग्रंती । अविद्व जाणा । मणुस जि स्वाणं असंते जा लोगा । चतु जा जि अविद्व जाणा । अविद्व जाणा जि अविद्व जाणा । अविद्व

के समान है। अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। तीन आयु और वैक्रियिक छहके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-वन्यका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तन्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त है और चारों ही पर्दोका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और तीनों ही पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर सौ सागरप्रथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितवन्यका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चगति श्रीर तिर्यद्धनत्यातुपूर्विके मुजनार श्रीर श्रत्यत्यन्यका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण है। श्रवस्थितवन्यका मङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रवक्तव्य-वन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रौर उचगोत्रके मुजगार, श्रन्पतर श्रौर श्रवस्थितवन्यका जवन्य श्रन्तर एक समय है, अवक्तन्यवन्यका जयन्य अन्तर् अन्तर् हूर्त है और सब पदोंका उत्हुए अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति, त्रातप श्रीर स्थावर त्रादि चारके मुजगार त्रीर ऋल्पतरवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तन्यका जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सव पर्नेका उत्तर्ष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। अवस्थितवन्यका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्च न्द्रियजाति, पर्वात, ज्च्छ्वास और त्रसच्तुष्कके सुजगार और अल्पतरवन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्हर अन्तर अन्तम् हूर्त है। अवस्थितवन्यका भङ्गज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यवन्यका जवन्य अन्तर अन्तर्स हूर्त हैं और उत्कृष्ट अन्तर एकसी पनासी सागर है। औदारिकशरीरके मुद्भगार श्रीर श्रन्पतरवन्यका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्ह्य श्रन्तर साधिक तीन पत्य हैं। अवस्थितवन्यका भन्न ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है श्रीर चल्हप्र अन्तर अनन्त काल है। आहारकद्विकके मुजगार, अल्पतर श्रीर अवस्थितवन्यका जबन्य अन्तर एक समय है. अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और सब पर्नेका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्घपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। समचतुरलसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, मुभग, सुस्वर और श्रादेयके तीन पर्नोका मङ्ग पञ्चोन्द्रियज्ञातिके समान है। श्रवक्तव्यवन्यका

१. ता॰ प्रदौ स्रवत्तः स्रतोः इति पाठः 📳 🐇 🕾

पंचिंदियजादिभंगो । अवत्त० ज० ंतो०, उ० वेद्याविः ० सादि० तिण्णि पिल० देस् ० । ओरालि० ंगे०-वज्जरि० भुज०-अप्प०-अविद्वि० ओरालि०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं सा० दि०। उज्जो० तिण्णि पदा तिरिक्लगिदभंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेविद्वि०सदं । तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविद्वि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं सा० सादि० दो पुन्वकोडीश्रो दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादिरेयं। णीचा० भुज०--अप्प०--अविद्वि० णवुंसग-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० असंखेज्जा लोगा।

जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छ्या सागर-प्रमाण है। श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग और वर्ञ्रपंभनाराचसंहननंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-वन्धका भङ्ग औदारिकशारीरके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। उद्योतके तीन पदोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसो े ठ सागर है। तीर्यङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर दोनों पदोंका दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। नीच-गोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितवन्धका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ— स्रोघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार स्रोर स्रत्पतरवन्धका जघन्य काल एक समय स्रोर उत्कृष्ट काल स्रान्तमुं हुते कह स्राये हैं, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके भुजगार स्रोर अल्पतरवन्धकां जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके इन पदोंका यह अन्तर कहा है वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यतः भुजगार श्रीर श्रल्पतरवन्धका जधन्य काल श्रीर जधन्य श्रन्तर एक समय कहा है श्रतः श्रवस्थितवन्धका जवन्य अन्तर एक समय वन जाता है तथा अनुभागवन्धके योग्य कुल परिएाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, अतः अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है, क्योंकि सव परिणामों के होनेके बाद अवस्थितवन्धके योग्य परिणाम अवश्य प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है। श्रागे जिन प्रकृतियोंके इस पदका यह श्रन्तर कहा है वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जो दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर दो बार इन प्रकृतियोंका अवन्यक होकर पुनः वन्ध करता है उसके इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्यका अन्तर प्राप्त होता है। किन्त उपशमश्रेणि पर आरोहण श्रन्तमुंहर्तके श्रन्तरसे भी सम्भव है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके श्रन्तरसे भी सम्भव है, अतः इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन ऑदिका प्रकृतिवन्धसम्बन्धी उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके भुजगार और श्रन्पतरवन्यका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि इतने काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे भुजगार छादि पद कैसे सम्भव हो सकते हैं। तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यवन्यका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो यहाँ अवक्तव्यवन्धका अन्तर अन्तर हुर्त और कुछ कम अर्धपुट्रगल परिवर्तनके श्रन्तरसे दो बार सम्यक्त्वपूर्वक मिथ्यात्वमें ले जाकर लाना चाहिए। सातावेदनीय आदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं श्रीर इनके प्रकृतिवन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुत है, फिर भी यहाँ इनके अवक्तव्यवन्यका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

तिरिरापदा अएएदर०। अवत्त० कस्स० १ अएए। पढमस० देवस्स । एवं पम्माए वि । सुक्तेस्साए तिरिरापेवदाणं अवत्त० कस्स० १ अण्ण० देवस्स ।

्पवं सामित्तं समत्तं।

कालाणुगमो

४५७. कालाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सन्वपगदीणं भुज०-अप्प०-वंधगा केविचरं कालादो होदि १ जह एगसम०, उ० अंतो०। अविद्वि० केव० १ ज० ए०, उ० सत्तद्व सम०। णविर चढुआंड० अविद्वि० ज० ए०, उ० सत्त सम०। अवत्त० सन्वपगदीणं एग०, एवं अणाहारए ति णेदन्त्रं। एवं णिरयादिसु अविद्वि-कालो अद्दसमया भवंति। कम्मइ०-अणाहारएसु तिएिए समया भवंति।

एवं कालं समतं ।

छन्यतर देव अवक्तव्यवन्यका स्वामी है। औदारिकशारीरके तीन पदोंका श्रन्यतर देव स्वामी है। श्रवक्तव्यवन्यका स्वामी कौन है? अन्यतर प्रथम समयवर्ती देव स्वामी है। इसी र पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें तीन वेदोंके श्रवक्तव्यवन्यका स्वामी कौन है? श्रुन्यतर देव स्वामी है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

४५७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध और श्रादेश। श्रोधसे सय प्रकृतियों के सुजगार और श्रन्पतर पदके वन्धक जीवका कितना काल है ? जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सु हूत है। अवस्थित पदके वन्धक जीवका कितना काल है ? जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात व श्राठ समय है। इतनी विशेषता है कि चार श्रायुके अवस्थित पदके वन्धक जीवका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। सब प्रकृतियों के श्रवक्तव्यपदके वन्धक जीवका जधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इसी प्रकार नरकादिमें श्रवस्थितवन्धका काल श्राठ समय होता है। मात्र कार्मणकाययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवों तीन समय होता है।

विशेषार्थ — अनुभागवन्यमें यृद्धि और हानिके छह छह स्थान हैं। उनमेंसे यद्यपि पाँच यृद्धियों और पाँच हानियोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पर अनन्तगुण्यृद्धि और अनन्तगुण्यृहानिका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। इसीसे यहाँ सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर अनुभागवन्थका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त कहा है। अवस्थित अनुभागवन्थके कारणभूत परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिकसे अधिक सात आठ समय तक होते हैं, इसलिए अवस्थित अनुभागवन्थका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात आठ समय कहा है। पर आयु कर्मके अवस्थित अनुभागवन्थका उत्कृष्ट काल सात समय ही है, क्योंकि आयु-कर्मके अवस्थित अनुभागवन्थक योग्य परिणाम इतने कालसे अधिक समय तक नहीं होते। सब

र्वे १ ता॰ प्रती एवं कीलें समेत्रे इति पाठो नास्ति। विशेष विषय प्रति पाठो स्वास्ति।

अंतरा मो

४५८. अंतराणु० दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-छप०-णिमि०-पंचंत० ग्रुज०-अप्प० वंधंतरं केव०
होदि १ ज० ए०, छ० अंतो० । अविह० ज० ए०, छ० असंखेळा लोगा । अवत्त०
ज० अंतो०, छ० अद्भूपो० । थीणगि०--मिच्छ०--अणंतोणु०४ ग्रुज०-अप्प० ज० ए०,
छ० वेद्याविह० देस्० । अविह०-अवत्त० णाणा०भंगो । सादासाद०-हस्स-रिद-अरिदसोग-थिराथिर-मुभाम्रभ-जस०-अजस० तिरिण्णपदा णाणा०भंगो । अवत्त० ज० छ०
अंतो० । अहक० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, छ० पुव्वकोडी दे० । अविह०-अवत्त०
णाणा०भंगो । इत्थि० अवत्त० ज० अंतो०, ७० वेद्याविह० दे० । सेसाणं पदाणं थीणगिद्धिभंगो । णवुंस०-पंचसंद्या०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर-अणादे० ग्रुज०-अप्प०
ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, ७० तिएहं पि वेद्याविहसाग० सादि० तिरिण्ण पिछ०
देस्० । अविह० णाणा०भंगो । पुरिस० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, छ० अंतो०।
अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, ७० वेद्याविह० सादि०। तिरिण्णआउ ०-

प्रकृतियों के अवक्तव्य अनुभागवन्थका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। रोष कथन स्पष्ट ही है।

अन्तरानुगम

४५८. अन्तरानुगम दो प्रकारका है--श्रोघ श्रोर आदेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, डपघात, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरवन्धका श्रन्तरकाल कितना है ? जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यवन्थका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रीर अनन्तानुबन्धी चारके मुजगार श्रीर श्रन्पतरवन्धका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्क्रष्ट अन्तर छुळ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित श्रीर अवक्तव्यवन्थका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अशुस, यशःकीर्ति और श्रयशःकीर्तिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। इनके श्रवक्तव्यवन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। आठ कपायोंके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके अवक्तव्यवन्धका जवन्य अन्तर् अन्तर्मु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम दो छथासठ सागरप्रमाण है। शेष पदोंका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जवन्य अन्तर अन्त-मुंहूर्त है और तीनों ही का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पर्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण हैं। अवस्थितवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके भुजगार श्रीर श्ररूपतरवन्यका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थितवन्धका भङ्ग ज्ञानावरण

ता० श्रा० प्रत्योः सादि० तिण्णिश्राउ० इति ।

श्रन्तमु हूर्त कहनेका कारण यह प्रतीत होता है कि इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका दो वार श्रयन्थ-पूर्वक वन्ध अन्तमु हूर्तके अन्तरसे ही होता है। आठ कपायोंके प्रकृतिवन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिशमाण है, इसलिए यहाँ इनके भूजगार श्रीर अल्पत्रवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। इनके श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यवन्यका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो अवक्तव्यवन्यका अन्तर लाते समय वह अन्तर्मुहूर्त श्रीर अर्धपुद्गल परावर्तन कालके अन्तरसे दो वार संयमासंयम श्रौर संयमपृर्वक श्रसंयममें ले जाकर लाना चाहिए। स्त्रीवेदके अवक्तव्यवन्यके जवन्य अन्तरका खुलासा सातावेदनीयके समान कर लेना चाहिए तथा किसी जीवने स्त्रीवेदका त्रवक्तव्यवन्य करके कुछ कम दो छियासठ सागर काल तक उसका वन्ध नहीं किया। पुनः मिध्यात्वमें अ।कर उसका अवक्तव्यवन्ध किया यह सम्भव हैं, इसलिए इसके अवक्तव्य-वन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर प्रमाण कहा है। नपुंसकवेद श्रादिका वन्ध कुछ कम तीन पर्य अधिक दो छ्यासठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार, अरुपतर श्रीर अवक्तन्यवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। पुरुषवेदका यदि निरन्तर वन्ध हो तो साधिक दो छय सागर काल तक होता है। इसके वाद ऐसे जीवके मिध्यादृष्टि होने पर अन्य वेदोंका भी बन्ध सम्भव है, श्रतः इसके श्रवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें त्र्यौर त्र्यन्तमें अवक्तव्यवन्ध कराकर यह अन्तर लाना चाहिए । जो निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है उसके अनन्तकाल तक तीन आयु और वैकियिकपट्कका वन्ध नहीं होता, अतः इनके चारों पर्नोका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल प्रमाण कहा है । तिर्यद्वायुका वन्ध अधिकसे अधिक सी सागर पृथक्त्व काल तक नहीं होता, श्रतः इसके भुजगार, श्रहपतर श्रीर श्रवक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट ज्ञान्तर सौ सागर पृथक्त्व काल तक कहा है। तिर्यद्भगतिद्विकका वन्ध १६३ सागर तक नहीं होता, इसलिए इनके मुजगार त्रीर श्ररूपतरवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सौ त्रेसठ सागर प्रमाण कहा है। तथा श्रग्निकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके निरन्तर इन दो प्रकृतियोंका ही वन्ध होता है श्रौर इनकी कायस्थिति असंस्थात लोक प्रमाण है, अतः इनके अवक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिद्विक और उचगोत्रका वन्ध श्रग्निकायिक श्रौर वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार जाति आदिका वन्य अधिकसे अधिक एक सौ पचासी सागर तक नहीं होता, अतः इनके मुजगार, अल्पतर और श्रवक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सौ पचासी सागर प्रमाण कहा है। पञ्च निद्रयज्ञाति श्रादिका निरन्तर वन्य एक सौ पचासी सागर तक होता रहता है, श्रतः इनके श्रवक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सो पचासी सागर प्रमाण कहा है। श्रोदारिकशरीरका साधिक तीन पल्यतक वन्ध नहीं होता, श्रतः इसके भुजगार श्रीर श्ररपतरवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है श्रीर एकेन्द्रियोंमें श्रमन्त काल तक निरन्तर इसीका वन्ध होता है, श्रतः इसके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन-न्तकाल कहा है। आहारकदिकका अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक वन्ध न हो यह सम्भव है अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। समचतुरससंस्थान श्रादिका निरन्तरबन्ध कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छियासठ सागर काल तक होता रहता है, अतः इनके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। श्रीदारिकआङ्गोपाङ्ग श्रादिका निरन्तर वन्ध साधिक तेतीस सागर काल तक होता रहता है, अतः इसके अवक्तव्यवन्थका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। उद्योतका वन्ध एक सौ त्रेसठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इसके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। एक पर्यायमें अन्तमु हूर्तके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेगीपर श्रारोहण करनेवालेके तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त प्राप्त होनेसे चक्तप्रमाण कहा है और साधिक वेतीस सागरके अन्तरसे दो बार चपशमश्रेणिपर आरोहण करने वालेके श्रवक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे उक्तप्रमाण कहा है। इसके

४५६. णिरएसु धुविगाणं भुज०-श्रप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविदृ० ज० ए०, उ० तेतीसं० दे०। धीणिग०३-मिच्छ०--अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचसंदा०-पंचसंदा०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पस०-दूभग-दुस्सर-श्रणादे०--दोगो० भुज०-श्रप्प०-अविदृ० ज० ए०, अवर्त्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० दे०। दोवेदणी०-चदु-णोक०-धिरादितिण्णियु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविदृ० ज० ए०, उ० तेतीसं० देस्०। श्रवत्त० जहण्णु० श्रंतो०। पुरिस०-समच०-वज्जरि०-प ०-सुभग-सुस्सर-आदे० भुज०-अप्प०-अविदृ० साद०भंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० देस्०। दोआयु० तिष्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० हम्मासं दे०। तित्थ० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविदृ० ज० ए०, उ० तिण्णि-साग० सादि०। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। एवं सत्त ए। इस उविरमा मणुस०-मणु-साणु०-उच्चा० पुरिस०भंगो।

अवस्थितवन्यका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट वन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेष कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो उस मार्गणाके काल आदिको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। यन्यविस्तार और पुनरुक्त होनेके भयसे हम उस पर अलग अलग विचार नहीं करेंगे।

४५६. नार्राकर्योमें भ्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पत्तरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्त है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतास सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसक्तवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायो-गति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय श्रीर दो गोत्रके भुजगार, श्रहपतर श्रीर अवस्थितवन्धका जघन्य श्चन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यवन्धका जवन्य श्चन्तर श्चन्तमु हूर्त है श्रीर सवका उत्कृष्ट श्चन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो वेदनीय, चार नोकपाय श्रीर स्थिर श्रादि तीन युगलके भुजगार श्रीर श्रल्पतरवन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रवस्थित वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्य-वन्धका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूतें है । पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और श्रादेयके भुजगार, श्रत्पतर श्रीर श्रवस्थित-वन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूते और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुओं के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यवन्धका जवन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर टत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम छह महीना है। तीर्थङ्करके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-मु हूर्त है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अवक्तव्यवन्धका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवोमें जानना चाहिए। प्रारम्भ-की छह पृथिवियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रका भङ्ग पुरुषवेदके समान है।

विशेषार्थ—जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर नारिकयोंमें उत्पन्न होता है उसके इसका अवक्तव्यवन्ध तो होता है, पर दूसरी वार अवक्तव्यवन्ध सम्भव न

रे. आ॰ प्रवी अविष्ठि॰ ज॰ ए॰ उ॰ अवत्त॰ इति पाठः।

४६०. तिरिक्षेस धुविगाणं भुज०-अप्प०-अविद्व ओवं। थीणगिद्धि०३
मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज॰ ए०, उ० तिरियापिछ० दे०। अविद्व०अवत्त० ओवं। साददंड्यो ओवं। य्रप्पचन्ताण०४-वेउ०छ०-मणुस०-मणुसाणु०उचा० ओवं। इत्थि० अवत्त० ज० य्रंतो०, उ० तिरियापित्तदो० दे०। सेसपदा
मिच्छत्तभंगो। णवुंस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओराछि० य्रंगो०-छस्संघ०-आदाउ०-अप्पसत्य०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० पुव्वकोही
देस्०। अविद्व० त्रोघं। अवत्त० ज० त्रंतो०, उ० पुव्वकोही दे०। पुरिस० तिरियापदा सादभंगो। अवत्त० ज० य्रंतो०, उ० तिरियाप० दे०। तिरियाआउ० तिरियाप०
ज० ए०, अवत्त० ज० ं०, उ० पुव्वकोहितिभागा देस्०। तिरिक्ताउ० भुज०अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० किंग्रंतो०. उ० पुव्वकोही सादि०। अविद्व० तिरिक्तगदितिगं णवुंसगभंगो। अवत्तं ओवं। पंचि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-

न होनेसे इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मनुष्यगितित्रक का वन्धावन्ध पुरुपवेदके समान है, अतः यहाँ इनके सब पदोंका अन्तर पुरुपवेदके न कहा है। अवस्थित वन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट वन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेप कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो उस मार्गणाके काल आदिको जान कर वह घटित कर लेना चाहिए। अन्य विस्तार और पुन-रुक्त होनेके भयसे हम उस पर अलग,अलग विचार नहीं करेंगे।

४६०. तिर्यञ्चोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितवन्धका मङ्ग श्रोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रौर श्रनन्तानुवन्धी चारके भुजगार श्रौर श्रन्पतर-वन्धका जघन्य श्रन्तर एक य है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है। श्रवस्थित श्रौर श्रवक्तव्यवन्धका श्रन्तर श्रोघके । न है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोघके न है। श्रप्रत्याख्यानावरण चार, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका भङ्ग श्रोघके समान है। स्त्रीवेदके श्रवक्तव्यवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। शेष पदोंका भङ्ग मिध्यात्वके समान है। नपुंसकवेद, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, दुर्भग, दुःस्वर और श्रनादेयके भुजगार और श्रल्पतरबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रसाण है। श्रवस्थितवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। तथा अवक्तव्यवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। पुरुपवेदके तीन पदोंका भक्त सातावेदनीयके समान है। तथा अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुवप्रमाण है। तीन आयुओं के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त है और उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। तिर्यक्षायुके भुजगार और अल्पतरपदका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जधन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है श्रीर एक पदोंका रत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है। तथा इसके श्रवस्थितवन्धका श्रीर तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकके श्रवक्तव्यवन्यका भङ्ग श्रोवके समान है। ेन्द्रियज्ञाति, समदतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ वास

[े]र. श्रवत्त॰ । ० (१) श्रोषं इति पाठः।

सुभग-सुस्सर-आदे॰ तिरिरापदा० सादभंगो । अ ० ज० तो०, उ० पुव्वकोडी दे०। ओरालि० तिरि ।प० णबुंसगभंगो । अवत्त० त्रोघं।

४६१. पंचि॰ तिरिक्त०३ धुविगाणं भुज०-अपण० त्रोघं। अविद्वि० ज० ए०, उ० तिण्णिपत्ति० पुन्वकोहिपु०। थीणिगिद्धिदंडओ तिरिक्तिघं। अविद्वि० णाणा०-भंगो। एवं अवत्त०। [णविर ज॰ अंतो०]। सादा दै०-चहुणोक०-थिरादि-तिण्णियु० सन्वपदा ओघं। अविद्व० णाणा०भंगो। अपचक्ताण०४ दोपदा ओघं। अविद्व० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्वकोहिपुथत्तं०। इत्थि० मिच्छ०भंगो। णविर अवत्त० तिरिक्तोघं। [पुरिस० अवत्त० तिरिक्तिघं।] सेसपदा सादभंगो। णवुंस० तिण्णिग०-चहुजा०-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाउज्जो०-अप्पत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर- दि०-णीचागो० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्वकोही० दे०। अविद्व० ज० ए०, उ० पुन्वकोहिपुथ०। चतारि आऊणि तिरिक्तोघं। णविर तिरिक्ताउ० अविद० ज० ए०,

प्रशस्त बिहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्त्रर श्रोर आदेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके ।न है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रोर उत्क्रष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोदि- प्रमाण है। श्रोदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग नपुंसकवेदके ।न है। तथा श्रवक्तव्यपदका भङ्ग श्रोघके समान है।

४६१. न्द्रियतिर्यक्चित्रिकमें ध्रुवन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरवन्धका भङ्ग ओपके समान है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका मङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। इतना विशेष है कि अवस्थितवन्धका भङ्ग हानावरणके समान है। इसी प्रकार अवक्त्र्यवन्धका अन्तर काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जघन्य अन्तर अन्तर्भू हूत है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय और स्थिर आदि तीन युगलके सव पदांका मङ्ग ओघके समान है। मात्र अवस्थितवन्धका भङ्ग हानावरणके समान है। अवस्थाव्यानावरण चारके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितवन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्त्य्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्तवप्रमाण है। विवेदका भङ्ग मिण्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यवन्धका भंग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। पुरुपवेदके अवक्तव्यवन्धका भंग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। पुरुपवेदके अवक्तव्यवन्धका भंग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। नपुं दे, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वा, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि वार, हुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरबन्धका जवन्य अन्तर एक है, अवक्तव्यवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर अन्तर है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ

एक पूर्वकोटिप्रमाण है। तथा श्रवस्थितवन्यका जयन्य श्रन्तर एक यह और उत्हृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्वप्रमाण है। चारों श्रायुश्रोंका भङ्ग सामान्य ति विके ान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्षायुके श्रविस्थित प्रस्थका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर

स्ति पाठः । ३ ता० आ० प्रत्योः तिण्यिपदा सादासादभंगो० इति पाठः । २० ता० आ० प्रत्योः इति पाठः । ३ ता० आ० प्रत्योः एवं ि० सादासोद० इति पाठः ।

उ० पुन्वकोहिपु० | देवग०-पंचिदि०-वेउन्वि०-समचदु०-वेउन्वि० अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अविह० साद०-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्वकोही दे० ।

४६२. पंचि॰तिरिक्ख०अप० सन्वाणं तिरिणपदा ज० ए०, उ० अंतो०। णवरि परियत्तमाणिगाणं अवत्त० ज० अंतो०, उ० अंतो०। एवं सन्वअपज्जत्तगाणं सन्वसुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं च।

४६३. मणुस०३ पंचिदि०तिरिक्खभंगो । णविर आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० ो०, उ० पुन्वकोडिपु० । तित्थ० दोपदा ख्रोघं । ख्रविटि० ज० ए०, अवत्त० ज० ख्रंतो०, उ० पुन्वकोडी दे०। णविर ध्रुविगाणं अवत्त० ज० ख्रंतो०, उ० पुन्वकोडिपुध० ।

४६४. देवेसु धुविगाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविह० ज०

पूर्वकोटिपृथक्तवप्रमाण है। देवगति, ेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर,समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय श्रीर उचगोत्रके भुजगार, श्ररपतर श्रीर श्रवस्थितवन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। श्रवक्तव्यवन्धका जधन्य श्रन्तर श्रन्तर श्रन्तर है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है।

विशेपार्थ—यहाँ स्त्यानगृद्धि श्रादिके श्रवस्थित वन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है, श्रादः स्त्यानगृद्धि श्रादिके श्रवस्थितवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए यह इस क्यनका तारपर्य है। श्रोर इनके श्रवक्तव्यवन्धका ज्ञान्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रवस्थितके उत्कृष्ट श्रन्तर समान होता है श्रतः इसको यहाँ श्रवस्थितके समान कहकर ज्ञान्य की श्रपेक्षा विशेषता खोल दी है। इसी प्रकार यहाँ सातावेदनीय श्रादिके सब पद श्रोधके समान कहके श्रवस्थित पदको ज्ञानावरणके समान कहा है सो इसका यह तारपर्य है कि सातावेदनीय श्रादिके शेष पदोंका जो श्रन्तर श्रोधमें कहा है वह यहाँ जानना चाहिए। मात्र इनके श्रवस्थित पदका श्रन्तर जैसा यहाँ ज्ञानावरणके श्रवस्थित पदका कहा है उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रन्तर घटित कर लेना चाहिए।

४६२. पख्ने न्द्रियतिर्येख्नअपर्याप्तकों से सब प्रकृतियों के तीन पर्हों का जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। इतनी विशेषता है कि परिवर्तमान प्रकृतियों के अवक्तव्य-वन्यका जयन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त तथा सब सूद्म और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के जानना चाहिए।

४६३. मनुष्यत्रिकमें पञ्चे न्त्रियतिर्यञ्चोंके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि श्राहारक दिक्के तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है श्रीर सबका उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिपृयक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका श्रन्तर श्रोचके समान है। श्रवस्थित पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है श्रीर दोनों पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि भ्रवन्यवाली प्रकृतियोंके श्रवक्तव्यवस्थका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटिप्रयक्त्वप्रमाण है।

४६४. देवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार श्रीर श्रन्पतरवन्धका जघन्य श्रन्तर समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रवस्थितबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर ए०, उ० तेतीसं० दे०। थीणगि०३-मिच्छ०-त्रणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंच-संठा०-पंचसंघ०-त्रप्पसत्थ०-दूभग--दुस्सर-अणादे०--णीचा० तििए प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० एकत्तीसं० दे०। साददंड्यो णिरयभंगो। पुरिस०-सम-चहु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० तिरिणापदा सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० एकत्तीसं० देस्०। दोआउ० णिरयभंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाण०-उज्जो० तिरिणाप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अहारस साग० सादि०। मणुस०-मणुसाणु० तिरिणाप० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० अहारह० सादि०। एइंदि०-आदाव-थावर० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० विराण सादि०। पंचि०-ओरा०अंगो०-तस० तिण्णिप० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० विराण सादि०। तित्थ० तिण्णिप० णाणा०भंगो। एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो- अंतरं णेद्व्यं।

४६५. एइंदिएसु सन्वाणं पगदीणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० त्रंतो०। त्रविद्धि ओघं। वादरे त्रंगुलस्स असं०, वादरपज्जते संखेज्जाणि वाससहस्साणि, सुहुमाणं असंखेज्जा लोगा। सन्वाणं त्रवत्त० ज० उ० त्रंतो०। तिरिक्खाउ० अविद्धि० णाणा०भंगो। सेसपदा पगदित्रंतरं। मणुसाउँ० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त बिहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर,अनादेय श्रीर नीच-गोन्नके तीन पर्नोका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जधन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सवका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर हैं। सातावेद नीयदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। पुरुपवेद,समचतुरस्रसंस्थान, वर्ज्रर्धमनाराचसंहनन,सुभग, प्रशस्त विहायोगित, सुस्वर, आदेय और डचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो श्रायुत्रोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतके तीन पर्दोका जवन्य श्रन्तर एक समय है, अवक्तव्य-वन्यका जयन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त है श्रीर सवका उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रठारह सागर है। मनुष्य-गति श्रौर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंका श्रन्तर सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्यका नवन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। एकेन्द्रियजाति. आतप श्रीर स्थावरके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है श्रौर सबका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। पछ्छे न्द्रियजाति, श्रौदारिक श्राङ्गो-पाङ्ग और त्रसके तीन पदोंका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवस्थका जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार सव देवोंके अपना अपना अन्तर जानना चाहिए।

४६५. एकेन्द्रियोंमें स्व प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञघन्य अन्तर एक य है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थितपदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर वादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, वादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूद्रमोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा सव (परिवर्तमान) प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। तिर्युख्यायुके अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान

[.] १. श्रा॰ प्रतौ मग्रुवाग्रु० इति पाठः ।

श्रंतो०, उ॰ सत्तवाससह० सादि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाण०-णीचा० भुज०-अप्प०-श्रविट० णाणा०भंगो। अवत्त० ओधं। वादरे कम्मिट्टदी०, पज्जत्ते संखेज्जाणि -सहस्साणि, सुहुमाणं असंखेज्जा लोगा। मणुसगिद-मणुसाणु०-उच्चा० चत्तारिपदा-ओधभंगो। एवं सुहुमाणं पि। णवरि वादरे कम्मिट्टदी०। णवरि अविट० ज० ए०, उ० श्रंगुल० असं०। वादरपज्जते संखेज्जाणि वाससह०।

४६६. वेइं०-तेइं०-चदुरिं० सन्वपगदीणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविहि० ज० ए०, उ० संखेजाणि वास०। णविर तिरिक्खाउ० भुज० अप्प० ज० ए०, अवच० ज० अंतो०, उ० भविहदी० दि०। अविह० णाणा०भंगो। मणुसाउ० भुज०-अप्प०-अविह०-अवच० हिदिभुजगारभंगो। पंचण्णं कायाणं सन्वपगदीणं हिदि-भुजगारभंगो कादन्वो।

४६७. पंचिदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-जप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-ग्रप्प० ओघं । ग्रविट० ज० ए०, अवत्त० ज० ग्रंतो०, उ० सगिहदी० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ग्रोघं । अविट०-अवत्त० ज० ए० ग्रंतो०, उ० णाणा०भंगो । साददंडग्रो ओघ । अविट०

हैं। शेप पदोंका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान हैं। मनुष्यायुके तीन पदोंका जवन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तर अन्तर हैं और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष हैं। तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके सुजगार, अल्पतर और अवस्थितवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यवन्धका अन्तर ओषके समान है। वादरोंमें कर्मस्थिति प्रमाण है, पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूद्रमोंमें असंख्यात लोक-प्रमाण है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके चारों पदोंका भङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार सूद्रम जीवोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वादरोंमें 'स्थितिप्रमाण है। इतनी और विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अक्नुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा वादर पर्याप्तक जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है।

४६६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय छीर चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अरुपतर-पदका जमन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अवस्थित पदका जमन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके भुजगार और अरुपतरपदका जमन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जमन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक भवस्थितिप्रमाण है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यायुके भुजगार, अरुपतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तर स्थितवन्यके भुजगारके समान है। पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग स्थितवन्यके भुजगारके समान करना चाहिए।

४६७. पञ्चेन्द्रियद्विक श्रोर त्रसद्विक जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संव्यतन, भय, जुगुन्सा, तैजसरारीर, कार्मण्रारीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरूत्वयु, उपघात, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तरायके भुजगार श्रोर श्रन्तरपद्का भङ्ग श्रोयके समान है। श्रवस्थितपद्का ज्ञचन्य श्रन्तर एक समय है श्रवक्तव्यपद्का ज्ञचन्य श्रन्तर श्रन्तम् हूर्त है श्रोर दोनोंका उत्हृष्ट श्रन्तर श्रपनी श्रपनी कायस्थितियमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रोर श्रन्तनानुवन्धी चारके भुजगार श्रोर श्रन्तरपद्का भङ्ग श्रोयके समान है। स्थित श्रोर श्रवक्तव्यपद्का ज्ञचन्य श्रन्तर क्रमसे समय श्रोर श्रन्तर्भ हुर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट श्रन्तर ज्ञानावरणके ।न है।

०भंगो। ० ०-ऋष्० ओघं। साणं णाणा०भंगो। इत्थि० भुज०-अष्० अवत ० ओघं। अविद्वि० णाणा०भंगो। पुरिस० भुज०-अष्० अवत ० ओघं। अविद्वि० णाणा०भंगो। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंव०--अष्पत्थ०--दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा०, भुज०-अष्प०-अवत्त० ओघं। अविद्वि० णाणा०भंगो। तिणि-आउ० भुज०-अष्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उक्क० गरो०सदपुध०। अविद्वि० स्वयादाणं सगिद्वि। णिरयगदि-चदुजा०-णिरयाणु०-आदाव०--थावरादि०४ भुज०--अष्प०-अवत्त० ज० ए० श्रंतो०, उक्क० पंचासीदिसाग०सद०। अविद्व० णाणा०भंगो। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०--उज्जो० भुज०-अष्प०--अवत्त० ज० ए० श्रंतो०, उ० तेविद्वसा०सद०। अविद्व० णाणा०भंगो। मणुसम०--देवग०--वेउव्वि०--वेउव्व० श्रंतो०--दोआणु० भुज०--अष्प० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि० दोहि मुहुतेहि सादिरेयं। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसंसागरो० सादिरे० पुक्कोडि समद्रणसादिरेयं। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसंसागरो० सादिरे० पुक्कोडि समद्रणसादिरेयं। अवत्त० ज० गं०, उ० पंचासीदिग०-अज०-अष्प०-अविद्व० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० गं०, उ० पंचासीदिग०-सदं०। ओरा०--श्रोरा०-श्रोरा०श्रंगो०--वज्ज० भुज०-अष्प० ज० ए०, उ० तिण्णि-

सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्राघके समान है। तथा श्रवस्थितपदका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। आठ क्यायोंके मुजगार और अल्पतरपदका अन्तर श्रोघके समान है। शेव पदोंका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर ओवके समान है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। पुरुपवेदके भुजगार, अरुपतर श्रीर अवक्तव्य पदका अन्तर ओवके ।न है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावर एके समान है। नपुं सकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुः स्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुतनार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर ओवके समान है। अवस्थित पदका अन्तर झानावरणके समान है। तीन आयुर्ज्ञोंके भुजगार श्रीर अल्पतर पदका जधन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जधन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर तीनों पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर सौ सागर पृथक्त्वश्रमाण है। तथा अवस्थित पदका अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यायुके सव पदोंका श्रान्तर श्रापनी कायस्थितिप्रमाण है । नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, श्रातप श्रीर स्थावर छादि चारके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और श्रन्तमु हूर्त है। तथा उत्कृष्ट श्रन्तर एकसौ पचासी सागर है। श्रवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरएके समान है। तिर्येख्रगति, तिर्येख्रगत्यानुपूर्वी श्रीर रद्योतके सुजगार, श्राल्पतर श्रीर श्रावक्तव्यपद्का जयन्य अन्तर एक समय और अन्तमु हूत है। तथा उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-आङ्गोपाङ और दो आनुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट दो मुहूर्त श्रधिक वेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवस्थित पदका अन्तर ह्यानावरणके समान है। पञ्चे न्द्रियजाति, परघात, उच्छवास, और त्रसचतुष्कके भुजगार, श्रन्पतर श्रोर श्रवस्थितपदका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रवक्तज्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एकसी पचासी सागर है। श्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर

१. त्रा॰ पती ० ज० इति :

पिछ० सादि०। अविष्ठ० णाणा०भंगो। अवत० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुन्वकोडीं सादि०। आहारतुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० चढुण्णं पि कायिहदी०। समचदु०-पसत्थ०-सभग-सस्सर-श्रादे०-उच्चा० भ्रज०-अपप०-अविष्ठ० पंचिदियजादिभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० वेद्याविष्ठ० सादि० दोपुन्वकोडिवास-पुघत्ताणि याओ सादिरेयं तिण्णिपिलदो० देस्० श्रंतोम्रहुतूणाणि। तित्थ० भ्रज०-अपप० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० दोण्हं पि तेत्तीसं० सादि० दोपुन्वकोडीओ दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादि०।

४६८. पंचमण०-पंचवचि० सन्वपगदीणं भुज०-अप्प०-अविह० ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० णित्थ अंतरं । कायजोगीसु पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप० ज० ए०, उ० अंतो० । अविह० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अवत्त० णित्य अंतरं । सादासाद०-सत्तणोक०-पंचजा०-इस्संठा०-ओरा०अंगो०-इस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदा- एजो०-दोविहा०-तसथावरादिदसयु० भुज०-अप० ज० ए०, उ० अंतो० । अविह०

वजर्षभनाराचसंहननके मुजगार श्रोर श्रह्मतरपद्का जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर चत्हृष्ट श्रन्तर साधिक तीन पत्य है। श्रवस्थितपद्का श्रन्तर ज्ञानावरण्के समान है। श्रवक्तव्यपद्का ज्ञवन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त हैं श्रोर चत्हृष्ट श्रन्तर पूर्वकोटि श्रिधक तेतीस सागर है। श्राहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर श्रन्तमु हूर्त है
तथा चारों पदोंका चत्हृष्ट श्रन्तर कायस्थितिश्रमाण है। समचतुरस्तरंस्थान, प्रशस्त विहायोगित,
सुभग, सुस्वर, शादेय श्रोर चच्चगोत्रके मुजगार, श्रत्यतर श्रोर श्रवस्थितपद्का भङ्ग ेन्द्रियज्ञातिके समान है। श्रवक्तव्यपद्का जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रोर चत्हृष्ट श्रन्तर छन्न कम
तीन पत्य श्रिधक, दो वर्षपृथक्तव कम दो पूर्वकोटि श्रिधक तथा श्रन्तमु हूर्त कम दो छ्यासठ
सागरप्रमाण है। तीर्श्रह्मरुक्तिके मुजगार श्रोर श्रन्यतरपद्का जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर
चत्हृष्ट अन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रवस्थित पद्का जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपद्का जघन्य
श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है तथा दनों ही पदोंका चत्हृष्ट श्रन्तर दो वर्षपृथक्तव न्यून दो पूर्वकोटि श्रिधक
तेतीस सागर है।

४६८. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके मुजगार, अल्पतर और अवस्थित पर्वका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवक्तव्य-पदका अन्तर काल नहीं है। काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्याय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपचात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परवात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित और अस-स्थावर आदि इस युगलके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर आतप, उद्योत, दो विहायोगित और अस-स्थावर आदि इस युगलके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुर्त है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरण

१. ता॰ प्रती तेचीर्च॰ सेसादि (सादि॰) पुळ्वकोडि इति पाठः।

णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० ंगि० । दोश्राउ०-वेडिव्वयद्य०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । तिरिक्लाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० ंतो०, उ० वावीसं वाससह० सादि० । अविह० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । मणु उ०-मणुसगदि--मणुसाणु०--जन्ना० सव्वपदाणं ओघं । तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु०--णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अविह०-अवत्त० ओघं ।

४६६. त्रोरालि॰ णाणावरणादिदंडओ कायजोगिभंगो। णवरि अविह॰ ज॰ ए॰, उ॰ वावीसं वाससह॰ देस् ॰। सादासाद॰-सत्तणोक॰-दोगदि-पंचजादि-इस्संद्वाण-त्रोरालि॰ त्रंगो०--इस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउ०-दोविहा०-तसथावरादि दसयुग०-दोगो० भुज०-अप० ज॰ ए०, उ० त्रंतो०। अविह० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० उ० त्रंतो०। दोआउ०-वेडिव्यव्ह०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो। दोआउ० भुज०-अप०-अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० सव्वपदाणं सत्तवास-सह० सादि०।

४७०. ओरालियमि० धुवियाणं देवगदिपंचगस्स च तिण्णिप० ज० ए०, ७० श्रंतो०। सेसाग्रां तिण्णिप० ज० ए०, ७० श्रंतो०। अवत्त० ज० ७० श्रंतो०।

के समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकिहक और तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्थक्कायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक वाईस हजार वर्ष है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। ति गित, तिर्थक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थित और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओवके ।न है।

४६६. श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें ज्ञानवरणादिदण्डकका भङ्ग काययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ वाईस हजार वर्ष है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, सात नोकषाय, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, श्रौदारिक श्रांगोपांग, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस-स्थावरादि दस युगल श्रौर दो गोत्रके भुजगार श्रौर श्रवप्तरपदका जयन्य श्रम्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रम्तमुँ हुर्त है। श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तमुँ हुर्त है। दो श्रायु, वैक्रियिक छह, श्राहारक दिक श्रौर तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो श्रायुश्रोंके भुजगार, श्रव्पतर श्रौर श्रवस्थितपदका जयन्य श्रम्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जयन्य श्रम्तर श्रम्तमुँ है श्रौर पदोंका उत्कृष्ट श्रम्तर साधिक सात हजार वर्ष है।

४७०. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों श्रीर देवगतिपञ्चकके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक यहें और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। शेप प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। तथा श्रवक्तन्यपदका

१. ता० ग्रा॰ अत्योः देस्॰ इति स्थाने सादि॰ इति पाठः ।

णवरि मिच्छ० अवत्त० णित्थ ऋंतरं । एवं वेउन्वियमि०-आहारमि० ।

४७१. वेडिव्वि०-आहार० धुवियाणं तिण्णिप॰ ज० ए०, उ० ग्रंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो। कम्मइ० सव्वपगदीयां सव्वप० णित्य श्रंतरं। णवरि अविडि० ज० उ० ए०।

४७२. इत्यिवे० पंचणा०-चढुदंस०-चढुसंज०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० प्रांतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० पिल्लिसद्पु०। थीण०३-मिच्छ०-अग्रांताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पणवण्णं पिछ० दे०। अविष्ठ०-अवत्त० णाणा०भंगो। णविरं अवत्त० ज० श्रंतो०। णिद्दा-पयछा-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। सादादिदंडओ अष्टकसा०-दंडओ सन्त्रपदा ओघं। णविर कायिद्दी भाणिदन्ता। इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंद्या०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-श्रादाउ ो०-अप्पसत्थ०-थावर०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पणवण्णं पित्ति० दे०। अविष्ठ० णाणा०भंगो। पुरिस०-पंचि०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-

जधन्य श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्रोर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

४०१. वैकियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

४७२. स्त्रीवेदी लीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन स्त्रीर पाँच स्नन्तरायके मुजगार स्त्रीर स्नल्पत पदका जघन्य स्तर एक समय है स्त्रीर उत्कृष्ट स्नन्तर स्निन्द्र है। स्रवस्थित पदका जघन्य स्नन्तर एक समय है स्त्रीर उत्कृष्ट स्नन्तर स्निपन्य स्थान स्त्रीर स्त्रान्य स्त्रीर स्त्रान्य स्त्र स्त्रान्य स्त्र स्त्रान्य स्त्रान्य स्त्रान्य स्त्रान्य स्त्र स्त्रान्य स्त्रान्य स्त्र स्त्र

१. ता॰ मती भवतः यायाव॰ श्रविट॰ (१) भंगो यवरि इति पाठः।

सुस्सर-आदे०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पिल्ठ० देसू० । णिरयाउ० सञ्चपदा मणुसभंगो । दोआउ० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० कायिहदी० । देवाउ० भुज० अप्प०-[अविह] ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० अहावण्णं पिल्ठ० पुञ्चकोिहपुप्रत्ते० । अविह० कायिहदी० । वेउन्वियछ०-तिण्णिजा०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० भुज०-अप्प०-[अविह०] ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पिल्ठ० सादि० । अविह० कायिहदी० । मणुस०-ओरा०-अोरा०-अंगो०-वज्जरि०--मणुसाणु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिपिल् दे० । अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पिल्ठ० दे० । णविर ओरािल् अवत्त० [उ०] पणवण्णं पिल्ठ० सादि०। आहारदुगं सन्वपदा ज० ए०,अवत्त० ज० अंतो०, उ० कायिह० । पर०-उस्सा०-वादर-पज्जत्त-पर्ते० तिण्णिपदा० णाणो०-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पिल्ठ० सादि०। तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अविह० ज० ए०, उ० पुञ्चकोही दे० । अवत्त० णिल्थ अंतरं । ४७३, पुरिसेसु पढमदंडओ पंचणाणावरणादी विदियदंडओ थीणगिद्धिआदी

मुस्वर, आदेय और उचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और ब्ल्ह्य अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। नरकायुके सव पदोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। दो आयुत्रोंके तीन पदोंका जवन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । देवायुके भुजगार अल्पतर और अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उक्त तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव अधिक अद्वावन पर्व है। तथा अवस्थितपदका अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूचम, अपर्याप्त श्रौर साधारणके भुजगार अल्प-तर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है श्रीर तीनका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक पचवन पत्य है तथा श्रवस्थितपदका उत्कृष्ट श्रन्तर काय-स्थितिप्रमाण है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, श्रीदारिकश्रागोपांग, वज्रर्धभनाराचसंहनन श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार श्रीर श्रल्पतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछकम तीन पर्वय है। अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अप्तर्मु हूर्त हे और उत्कृष्ट अप्तर कुछ कम पचवन पत्य है। इतनी विशेषता है कि औदारिक-शरीरके अवक्तन्यपदका उत्हष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य है। आहारकद्विकके सब पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। परवात, उच्छ्वास, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन परोंका भंग ज्ञानावरणके न है। अवकव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमु हुते है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पर्व है। तीर्थद्धर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक अन्तमु हुर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट नन्तर कुळ एक

४७३. पुरुपनेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि श्रादि द्वितीय

पूर्वकोटिप्रमाण है। श्रवक्तव्यपदका अन्तर काल नहीं है।

१. ता॰ ऋा॰ प्रस्योः तिण्यिपलि॰

० इति ।

तिद्यदंड श्रो णिहादी चछत्थदंड ओ सादादी पंचमदंड ओ अहकसा० एदे इत्यिवेद भंगो । णवित्र सन्वाणं पुरिसवेद हिदी णादन्य। तिद्य दंड ए णिहादीणं अवत्त० ज० श्रंता०, छ० सागरो० सदपुथ०। थीणगिद्धिदंड ए अज०-अप्प० ओघं। इत्थि० अज०-अप्प० ज० ए०, उ० वेद्याविह० दे० । स्रविह० णाणा० भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० हिदिशुजगारभंगो । णवुंस०-पंचसंद्य०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० अज०-अप्प० ज० ए०, स्रवत्त० ज० श्रंतो०, उ० वेद्याविह० सादि० तिण्णिपिष्ठ० देसू० श्रंतो सुहुत्तूणाणि । पुरिस० तिण्णिपप० णाणा० भंगो । अवत्त० ज० ंगो०, उ० वेद्याविह० दे० श्रंतो सुहुत्तू०। तिण्णिश्राउ० इत्थि० भंगो । देवाउ० अज०-श्रप्प० ज० ए०, श्रवत्त० ज० श्रंतो छुत्तू०। तिण्णिश्राउ० इत्थि० भंगो । देवाउ० अज०-श्रप्प० ज० ए०, श्रवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि० पुन्यको हितिभागेण पुन्वको हिए सादिरेयाणि। श्रविह० णाणा० भंगो । णिरयगदिदंड श्रो तिरिक्खगदिदंड ओ दोपदा ज० ए०, श्रवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेविहसा० सदं । अविह० णाणाभंगो । मणुसगदिपंचग० अज०--अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिपित्व० सादि० पुन्यको हितिभागेण०। अविह० णाणा० भंगो । अवत्त० ज० ंगो०, उ० तेती सं० सादि० पुन्यको हितभागेण०। अविह० णाणा० भंगो । अवत्त० ज० ंगो०, उ० तेती सं० सादि० श्रंतो०।

दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक, सातावेदनीय छादि चतुर्थ दण्डक और आठ कषायरूप पाँचवें दण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सबके पुरुषवेदकी स्थिति जाननी चाहिए। निद्रादिकका जो तीसरा दण्डक है उसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भ हूर्त है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर सौ सागरपृथक्त्व है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भुजगार श्रोर श्ररुपतरपदका भंग श्रोयके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणक समान हैं। अवक्तन्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर स्थितिवन्धके भुजगारके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्त्रर, अनादेय श्रीर नीचगोत्रके भुजगार श्रीर अन्पतर पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जवन्य अन्तर अन्तमु हूते है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम तीन पर्य अधिक दो छ्यासठ सागर है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त कम दो छथासठ सागर है। तीन आयुओंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। देवायुके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय हैं, अवक्तन्यपदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिभाग और पूर्वकोटि श्रधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपद्का भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। नरकगति-दण्डक श्रौर तिर्यद्वगतिदण्डकके दो पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञाना-वरणके ान है। मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है अगैर उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिमाग अधिक तीन पल्य है। अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरण के समान है। अवक्तञ्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके मुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः तदिए दंडओ खिद्दाखं इति पाठः । २. आ॰ प्रतौ ज॰ ए॰ उ॰ इति पाठः । ३. आ॰ प्रतौ खिरयगदिदंडओ दोपदा इति पाठः ।

अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि० पुन्वकोडिसमऊणं सादिगं भविद । पंचिदियदंडओ हिदिभुजगारभंगो । आहारदुगं पंचिदियभंगो । सम-चदु०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सरं--आदे०--उच्चा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० वेद्याव० सोदि० तिण्णिपत्ति० देस्० । [तित्थ०] भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविह० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि पुन्वकोडीहि दोहि वासपुथत्तेहि ऊणिगाहि सादिरे० । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडि० दे० वास-पुथत्तेणुणाणि ।

४७४. णबुंसगे पंचणाणावरणादिपहमदंडत्रो विदियदंडओ थीणागिद्धिआदी तिद्यदंडत्रो णिद्दादी चउत्थदंडत्रो सादादी इत्थि०भंगो। एवरि सञ्चाणं दंडगाणं अविहि०न्त्र्यवत्त्र ओघं। थीणगिद्धिदंडए भुज०-[अप्प०] ज॰ ए०, उ० तेत्तीसं० दे०। श्रद्धक०-तिण्णिआउ०-वेडिव्यिद्ध०-मणुसगिदितिगं आहारदुगं ओघं। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-एजो०-त्रप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-आणादे० भुज०-त्रप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० देस्०। श्रविह० ओघं। पुरिस०-समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे० तिण्णिपदा सादभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० दे०। देवाउ०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवस्थितवन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यवन्यका ज्ञवन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक य कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। पञ्चोन्द्रयज्ञातिदण्डकका भङ्गा स्थितिवन्धके भुजगार के नहें। आहारकद्विकका भङ्गा पञ्चोन्द्रयोंके समान हे। समचतुरक्षसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यवस्था ज्ञान्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त हे और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो ख्यासठ सागर प्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर क्ष्मित है। अवक्तिवय पदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका ज्ञान्य अन्तर अन्तर अन्तर मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका ज्ञान्य अन्तर अन्तर मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है।

४७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि आदि द्वितीय दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक और सातावेदनीय आदि चतुर्थ दण्डकका भङ्ग स्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इन सब दण्डकोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तर श्रोषके समान है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भुजगार और अस्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर हुछ कम तेतीस सागर है। आठ कषाय, तीन आयु, वैक्रियिक छह, मनुय्यगतित्रिक और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। स्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके मुजगार और अस्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर हुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर आघके समान है। पुरुपवेद, समचतुरस्तसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग साता-वेदनीयके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर हुई और उत्कृष्ट अन्तर हुछ

१. त्रा॰ प्रती ० सुस्तर इति पाठः।

मणुसि०भंगो । ओरा० दोपदा० ज० ए०, उ० पुन्नकोडी दे०। अविह०-अवत्त० ओघं । अोरालि०अंगो०-वज्जरि० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० पुन्नकोडी दे० ! अविह० ओघं । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेतीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण सादि० । णवरि० वज्जरि० अवत्त० तेतीसं० दे० । तित्थ० दोपदा० ओघं । अविह० ज० एग०, उ० तिण्णिसा० सादि० । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्नकोडितिभागं देस्० ।

४७५. अवगद् सन्वाणं भुज०--अप्पद्०--श्रवत्त० णित्थ श्रंतरं । कोधादि०४ धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंतो० । सेसाणं पगदीणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवत्त० णित्थि० श्रंतरं । णवरि सादादीणं मणजोगिभंगो अवत्त०-वंथगस्स ।

४७६. मदि०-सुद्० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय- ०-तेजा०-क०

वेतीस सागर है। देवायुका भङ्ग मनुज्यिनियों के समान है। श्रौदारिकशरीर के दा पदों का जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रवस्थित श्रौर अवक्तव्य-पदका भङ्ग श्रोचके समान है। श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर वर्ज्ञप्यमनाराच संहत्तनके भुजगार श्रौर श्रवस्थत पदका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रवक्तियत पदका भङ्ग श्रोघके ।न है। श्रवक्तव्यपदका जयन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त श्रिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि वर्ज्यभनाराचसंहननके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। श्रवस्थितपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ विभागप्रमाण है।

विशेपार्थ —यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य वन्धका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है वह इस प्रकार घटित करना चाहिए। नरकायुके वन्धक एक नपुंसकवेदी मनुष्यने अन्तमु हूर्त आयु शेप रहने पर तीर्थङ्कर प्रकृतिके वन्धका प्रारम्भ किया और लघु अन्तमु हूर्त काल तक वन्ध करके मिथ्यादृष्टि हुआ और सर कर नारकी हो गया। पुनः पर्याप्त होकर सम्यद्शान पूर्वक उ वन्ध करने लगा। इस प्रकार तो तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य वन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त प्राप्त हो जाता है। और एक पूर्वकोटिके नपुंसकवेदी मनुष्यने त्रिभागमें आयु वन्ध किया। पुनः सम्यन्दृष्टि होकर तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध करने लगा। और अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर नरकमें गया और अन्तमु हूर्त वाद पुनः उसका वन्ध करने लगा। इस प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुळ कम त्रिभाग प्रमाण श्राप्त होता है।

४०५. श्रपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, श्रन्पतर श्रीर अवक्तव्यपदका श्रन्तर काल नहीं है। क्रोधादि चार कपायोंमें श्रु बबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर ट्टूब्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। श्रेव प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर ट्टूब्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है। श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय श्रादिके श्रवक्तव्यपदका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

४७६. मत्यज्ञानी श्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व,

्र १. ऋा॰ मतौ ज॰ उ॰ इति पाठः ।

०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अपप० ज० ए०, उ० ंतो०। अविष्ठि० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा। सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रदि-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० भुज०-अपपदं०--अविष्ठ णाणा०भंगो। अवत० ज० उ० अंतो०। णवुंस० पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०-- इस्संघ०-अप्पत्थ०-- दूभग--दुस्सर--अणादे० भुज०--अप्पद० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० तिण्णिप्लि० दे०। अविष्ठ० ओघं। [णविर ओरालि० अंगो० अवत० उ० तेतीसं सादि०।] चदुआउ०-वेडिव्ययद्य०-मणुसगदितिगं ओघं। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० भुज० अप्प० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० सादि०। अविष्ठ०-अवत्त० अोघं। चदुजादि-अदाव-थावर०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि०। अविष्ठ० ओघं। पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ तिण्णिप० णाणाभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि०। ओरालि० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे०। अविष्ठ०-अवत्त० ओघं०। समचदु०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सर-आदे० तिण्णिप० सादभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णिप० तिण्णप० सादभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णिप० दे०। उज्जो० भुज०--अप्प० ज० ए०,

सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णवतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण स्रोर पाँच श्रन्तरायके सुजगार श्रोर श्रन्पतरपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, श्ररति, शोक, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, श्रशुम, यशःकीर्ति श्रीर श्रयशःकीर्तिके मुजगार, श्रत्पतर श्रीर श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। श्रवक्तव्यपदका जयन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर श्रोर श्रनादेयके भुजगार श्रीर श्रल्पतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर अन्तर्मु हूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। अवस्थितपदका अन्तर काल श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। चार आयु, वैक्रियिक छह श्रौर मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग श्रोचके समान है। तिर्यख्रगति और तिर्यख्रगत्यानुपूर्वीके भुजगार और श्रारुपतरपदका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक इकतीस सागर है। श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल श्रोचके समान है। चार जाति, श्रातप श्रीर स्थावर श्रादि चारके भुजगार श्रीर श्रन्पतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जवन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। तथा इनका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रवस्थितवन्धका श्रन्तर श्रोघके समान है। पञ्चीन्द्रयजाति, परधात, उच्छ्वास श्रोर त्रसचतुष्कके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रीदारिकशरीरके मुजगार श्रीर श्रल्पतरपदका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पल्य है। श्रवस्थित और अवक्तव्यपद्का अन्तरकाल भोघके समान है। समचतुरहासंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीय समान है। श्रवक्तव्यपद का जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्क्रष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। उद्योतके भुजगार

१. आ॰ प्रतो ॰ श्रप्पद॰ इति पाठः।

अवत्त ० ज श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० सादि०। अवद्वि० ओघं। णीचा० तिण्णि-पदा० णवंसगभंगो। अवत्त० ओघं।

४७७. विभंगे पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४--अगु०-डप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविह० ज० ए०, उ० तेत्तीसं ० दे०। सादासाद०--सत्तणोक०-तिरिक्ख०-पंचि०-इस्संडा०-ओरा०श्रंगो०--इस्संघ०--तिरिक्खाणु०--उज्जो०--दोवि०--तसं०--थिरादिइयु०--णीचा० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत० ज० उ० श्रंतो०। [श्रोरा०] परं०-उस्सास-वादर-पज्ज०-पत्ते० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। श्रवत्त० णत्थि श्रंतरं। दोआउ०-वेडिव०छ०-तिण्णिजादि-मुहुम०-अप०-साथा० मण०भंगो। दोआउ० णिरयभंगो। मणुस०-मणु-साणु०-उचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविह० ज० ए०, उ० एक्त्तीसं० दे०। अवत्त० सादभंगो। एइंदि०-आदाव-थावर० भुज०-अप्प०-अवत्त० सादभंगो०। अविह० ज० ए० , उ० वेसाग० दि०।

स्रोर श्रन्पतरपद्का जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपद्का जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है स्रोर तीनोंका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक इकतीस सागर है। श्रवस्थित पद्का श्रन्तर श्रोघके ान है। नीचगोत्रके तीन पदोंका श्रन्तर नपुंसकवेदके समान है। श्रवक्तव्य पदका श्रन्तर श्रोघके समान है।

४०० विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्याख, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुंहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुंहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, तिर्यञ्जाति, ेन्द्रियजाति, छह संस्थान, औरारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, स्थिर आदि छह युगल और नीचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तन्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। औदारिकशरीर, परघात, उच्छ्वास, वादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तन्यपदका अन्तरकाल नहीं है। दो आयु, वैकियिक छह, तीन जाति, सृद्म, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चायेत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर सावावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियज्ञाति, आत्तप और स्थायरके भुजगार, अल्पतर और अवक्तन्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका ज्ञातर सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियज्ञाति, आत्तप और स्थायरके भुजगार, अल्पतर और अवक्तन्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका ज्ञातर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका ज्ञातर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका ज्ञातर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीयके समान है। सागर है।

१. वा॰ ग्रा॰ प्रत्योः ग्रंतो॰ ग्रविं न॰ ए॰ ग्रंतो॰ ग्रविं न॰ ए॰ उ॰ तेचीसं इति पाठः।
२. ग्रा॰ प्रती दो वि पदा तस॰ इति पाठः। ३. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः ग्रंतो॰ मिन्छ॰ पर॰ इति पाठः।
४. ग्रा॰ प्रती ग्रवस् ।

४७=. आभिणि०- ०--म्रोघि० पंचणा०- ०--चदुसंज०-पुरिस०-भय०--पंचि०--तेजा०--क०--समचदु०--वराण ०४--अगु०४- वि०- ०४-सुमगसुस्सर-म्रादे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्पद्० ज० ए०, उ० म्रंतो०। अवहि०
ज० ए०, उ० झावि० सादि०। अवत्त० ज० म्रंतो०, उ० झावि० सादि०!
सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिरिण्युग० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० ज०
उत्रंतो०। अहक० भुज०-म्रप्प० ओमं। अवहि० ज० ए०,उ० झावि० सादि०।
अवत्त० ज० म्रंतो०,उ० तेत्तीसं० सादि०। दोआउ० भुज०-म्रप्प० ज० ए०,उ० तेत्तीसं०
सादि०। स्रवि० ज० ए०, उ० झावि० सादि०। अवत्त० ज० म्रंतो०, उ०
ोसिं० सादि०। णवरि देवाउ० अवि० ज० ए०, उ० झावि० दे०। मणुसगदिपंचग० भुज०-म्रप्प० ज० ए०,उ० पुन्तकोढी० दि० म्रंतोमुहुत्तेणव्यहि०। अवत्त०
ज० पत्तिदो० सादि० वासपुन्तेण दि०, उ० तेत्तीसं० सादि०। अवहि०
णाणा०भंगो। देवगदि०४-म्राहार०२ भुज०-म्रप्प० ज० ए०, अक्त० ज० ते०,
उ० तेत्तीसं० सादि०। अवहि० णाणा०भंगो। तित्य० ओमं। एवं ओधिदं०-सम्मा०।

४७८. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, ेन्द्रियजाति, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरहासंस्थान, वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, धसचतुष्क, सुभग, सुस्त्रर आदेय, निर्माण, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अन्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। अवक्तव्यवद्का जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नोकपाय श्रौर स्थिर श्रादि तीन युगलके तीन पदोका भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। श्रवक्तव्यपदका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुते है। ब्राठ कपायोंके मुनगार और अरुपतरपदका भङ्ग श्रोघके समान है। ब्रवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छथासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। दो आयुओं के भूजगार श्रीर श्रारंपतर पदका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि देवायुके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तम् हूर्ते श्रधिक एक पूर्वकोटि है। श्रवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर वर्षपृथक्तव अधिक साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर वरणके समान है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तमुँ हूर्त है और सवका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरएके समान है। तीर्थंद्वर प्रकृतिका भङ्ग श्रोवके

है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

१. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः म्राहार॰ भुन् इति :।

४७६. मणपज्ज० पंचणा०-छदंस०-चढुसंज०-पुरिस०-भय-ढु०-देवग०-पंचि०-वेडव्वि०-तेजा०-क०-समचढु०-वेडव्वि०ञ्जंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-

०४-सुभग-सुस्सर--आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोण्हं पि पुन्वकोही दे०। सादासाद०-चढुणोक०-थिरादितिण्णियु० भुज०-अप्प०-अविष्ठि० णाणाभंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०। एवं आहारदुगं। देवाउ० मणुसभंगो। एवं संजदा०।

४८०. सामाइ०-छेदो॰ पंचणा०-चढुदंसणा०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० भुज०अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी दे०। णिहा-पचला०तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय०-दु०--देवग०--पंचि०-चेडिन्व०--तेजा०क०-समचदु०-चेड०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु ०-अगु०४-पसत्थवि०- ०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०तित्थ० भुज०-अप्प०-अविष्ठ० णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ अंतरं। सादादिदंडओ वेवाड० मणपज्जवभंगो।

४८१. परिहार० धुवियाणं भुज०-अप्प०-अविद्वि० साददंडओ देवाउ०--तित्थ०

४०६. मनःपर्ययग्रज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्चे न्द्रियज्ञाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्ष-संस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुरक, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, ग्रुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थेङ्कर, उच्चगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके भुजगार श्रोर श्रन्तर पदका ज्ञचन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रवस्थित-पदका ज्ञचन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका ज्ञचन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रोर दोनों पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नोकषाय श्रोर स्थिर श्रादि तीन युगलके भुजगार श्रन्तर श्रोर अवस्थितपदका मङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा श्रवक्तव्यपदका ज्ञचन्य श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। इसी प्रकार श्राहारकदिकका ज्ञानना चाहिए। देवायुका मङ्ग मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके ज्ञानना चाहिए।

४-०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण, लोभसंच्यलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। निद्रा, प्रचला, तीन संज्यलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पख्चेन्द्रियज्ञाति, वैक्रियिकशारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, विक्रियकज्ञाङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विह्योगिति, त्रस-चतुष्क, सुभन, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थद्धर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय आदि दण्डक और देवायुका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है।

१. श्रा॰ प्रती भुन॰ श्रविष्ठ॰ इति पाठः । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः वण्ण॰ देनासु॰ इति पाठः ।

ज्जव भंगो । आहारदुगं भुज ०-अप्पद ० ज ० ए०, उ० ो० । अविह ० ज० ए०, उ० पुन्वकोडी देस् ० । अवत्त ० ज० उ० अंतो० । णविर तित्थ० णित्थ अंतरं । सुहुमसंप० सन्वपगदीणं भुज ०--अप्प० णित्थ अंतरं । संजदासंजद ० सन्वपगदीणं परिहार०भंगो ।

४८२. असंजदे घुवियाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविह० ज० ए०, उ० असंखेळा लोगा। थीणगिद्धिदंडओ सादादिदंडओ णवुंसगभंगो। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंद्य०-पंचसंद्य०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग--दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, अवर्ते० [ज०] अंतो०, उ० तेत्तीसं० दे०। अविह० ओष्यं। पुरिस०- -चदु०-वज्जरि०-पसत्थ०--भुभग--भुस्सर-आदे० तिरिण्णप० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० देस्०। चदुआउ०-वेउ०ञ्च०-मणुसगै०-मणुसाणु०-उच्चा० अं। चदुजादिदंडओ पंचिदियदंडओ णवुंसगभंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णवुं-सगभंगो। ओरालि० भुज०-अप्प०-अविह०-अवत्त० आधं। ओरालि० अंगो-वज्जरि० तिरि पदा० ओष्यं। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० दि० अंतोमुहुत्तेण। णविर

जीवोंके समान है। आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर क्रिन्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रुब्ज कम एक पूर्वकोटि है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर क्रुव्ज है। इतनी विशेषता है कि तीर्थद्वर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका अन्तर नहीं है। सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भंग परिहारविश्वद्विसंयत जीवोंके समान है।

४२२. असंयतोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार श्रौर अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर हि । अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक य है श्रौर उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डक श्रौर सातावेदनीय श्रादि दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संह्वनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर श्रौर अनादेयके भुजगार श्रौर अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जवन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है श्रौर सबका उत्कृष्ट

कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग छोघके समान है। पुरुषवेद, समचतुरस्र संस्थान, वर्ञ्रपेभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्तर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका ज्ञचन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। चार आयु, वैक्षियिक छह, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्च-गोत्रका भङ्ग खोघके समान है। चार जातिदण्डक और पछ्च न्द्रियज्ञाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। चार जातिदण्डक और पछ्च न्द्रियज्ञाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। औदारिक शारीरके भुजगार, अल्पतर अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग खोघके समान है। अवक्तव्य पदका अवस्थ अन्तर अन्तर क्रवंदा है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर हिं अधिक तेतीस सागर है। इतनी

रे. आ० प्रती ए० उ० अवत्त० इति पाठः । २. तार्व प्रती वेडवर्णमणुसगठ इति पाठाने 🗸 🖙

वज्जरि० अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० दे०। तित्य० तिशिएप० ओघं। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडितिभागं दे०। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं।

४८३. किएए।ए पंचणा०-छदंस०-वारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वएए।०४—
आगु०-छप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-[अप्प०] ज० ए०, छ० अंतो०। अविह० ज०
ए०, छ० तेत्तीसं० सादि०। थीणगि०३—मिच्छ०--अणंताणु०४---णवुंस०-हुंड०अप्पस०-दूभग--दुस्सर-अणादे०--णीचा० दोपदा ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो ०, ७०
तेत्तीसं० दे०। अविह० ज० ए०, ७० तेत्तीसं० सादि० दो० अंतोभुहुत्तं सादि० पवेसणिक्त्वमणे। द०-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जस० भुज०-अप्प० णाणा०भंगो। अविह०
ज० ए०, ७० तेत्तीसं० सादि० मुहुत्तं सादि० णीतस्स०। अवत्त० ज० ७० अंतो०।
असाद-अरिद-सोग-अथिर-असुभ-अजस० सादभंगो। णविर अविह० तेत्तीसं सादि०
दोहि मुहुत्तेहि सादिरेयं पवेस-णिक्त्वमणे। इत्थि०-दोग०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०उचा० भुज०-अप्प०-अवत्त० णवुंसगभंगो। अविह० ज० ए०, ७० तेत्तीसं० सादि०
महिलेण णीतस्स। पुरिस०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० भुज०-

विशेषता है कि वज्रपंभनारावसंहननक अवक्तव्य परका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्क्रष्ट अन्तर कुछ तेतीस सागर है। तीर्थेद्धर प्रकृतिके तीन परोंका भङ्ग ओघके समान है। अव-क्तव्य परका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्क्रष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। च च दर्शनी जीवोंमें पर्याप्तकोंके भङ्ग है और अच च दर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

४८३. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक वेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्म, अन्तानुवन्धी चार, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्मग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर फ्रांस समय है और सवका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अोर निष्कमणके दो अन्तर्म हुर्त अधिक वेतीस सागर है। सातावेदनीय, हास्य, रित, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निर्गमकी अपेक्षा एक अन्तर्म हुर्त अधिक वेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर स्थान के समान है। असातावेदनीय, अरित, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका मङ्ग सातावेदनीयके समान है किन्तु अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर प्रवेश और निष्कमणकी अपेक्षा दो अन्तर्म हुर्त अधिक वेतीस सागर है। स्त्रीवेद, दो गित, चार संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी अपेर उच्चगोत्रके भुजगार, अस्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग नपुंसकोंके स है। अवस्थित पदका ज्ञान व्यवस्थान एक अन्तर्म हुर्त अधिक वेतीस सागर है। स्त्रीवेद, दो गित, चार संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके भुजगार, अस्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग नपुंसकोंके स है। अवस्थित पदका ज्ञान व्यवस्था पदका ज्ञान व्यवस्था पदका ज्ञान विद्यान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान पदका ज्ञान विद्यान विद्यान

१. ता० श्रा० पत्योः व० व० श्रंतो० इति पाठः । २. श्रा० प्रतौ गागामंगो । अविह० व० ए०, ७० तेत्रीसं सादि० दोहि मुहुत्तेहि इति पाठः ।

अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविह० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० एकमुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णवुंसगभंगो । दोश्राउ०-दोगिद-चढुजािद-दोश्राणु०-आदाव०-धावरािद ४ तिण्णिपदा ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवत्त० णित्थ श्रंतरं । दोश्राउ० तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० सन्वेसि झम्मासं दे० । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ दोपदा णाणा०भंगो । अविह० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्तेहि णिक्तमण-पवेसणेहि । अवत्त० णित्थ श्रंतरं । ओरा०-ओरा०श्रंगो० मुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविह० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० एक्तेण मुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णित्थ श्रंतरं । वेडिन्व०-वेडिन्व०श्रंगो० तिण्णिप० ज० ए०, उ० वावीसं० सादि० श्रंतोमुहुत्तेण पवेसंतस्स । श्रवत्त० ज० सत्तारस साग०

दि०, ७० वावीसं सा० सादि०। एवं णील-काऊणं। णवरि मणुसगदितिगं पुरिस-भंगो। अप्पप्पणो दिदीओ भाणिदव्वाओ। णीलाए वेड०-वेड० अंगो० अवत्त० ज० सत्तसा० सादि०, ७क० सत्तारस साग० सादि०। काऊए अवत्त० ज० दसवस्स-सहस्साणि सादि०, ७० सत्तसाग० सादि०। किण्ण-णीलाणं तित्य० भुज०-अप्प०-अवदि० ज० ए०, उ० अंतो०। काउए तित्य० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०।

सागर है। पुरुपवेद, समचतुरस्त्रसंस्थान, वज्रवंभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, खोर श्रादेयके भुजगार खोर श्राट्यत पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तमुँ हूर्त हैं। अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलने के एक अन्तमु हूर्त सहित तेतीस सागर है। अवक्तव्य पदका भङ्ग नपुंसकों के समान है। दो आयु, दो गित, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके तीन पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। दो आयुओं के तीन पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। पंचेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके दो पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक य है और उत्कृष्ट अन्तर निष्क्रमण और प्रवेशके दो अन्तमु हूर्त सहित तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। श्रीदारिकशारीर और औदारिकआङ्गोपाङक भुजगार और अवल्तरपदका जयन्य अन्तर

है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है। अवस्थितपद्का जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेके एक अन्तर्भु हूर्त सहित तेतीस सागर है। अवक्तव्यपद्का अन्तरकाल नहीं है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीन पदोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रवेशके एक अन्तर्भु हूर्त सहित वाईस सागर है। अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर साधिक सत्रह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक वाईस सागर है। इसी प्रकार नील और कापीत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग पुरुषवेदके समान है। तथा अपनी अपनी स्थित कहनी चाहिए। नील लेश्यामें वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर साधिक सात सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सत्रह सागर है। कापीत लेश्यामें अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर साधिक सत्रह सागर है। कापीत लेश्यामें अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर साधिक एक स्वत्रह प्रकृतिके मुजगार, अल्पतर खार स्थार है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात सागर है। कापीत लेश्यामें अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर साधिक एक स्वत्रह प्रकृतिके मुजगार, अल्पतर खार स्थार है और उत्कृष्ट र अन्तर्भु हूर्त है। कापीत

अवद्विः ज॰ ए॰, उ॰ तिण्णिसागः सादिः । अवत्तः णर्तिः श्रंतरं । 🕬 🕬

४८४. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०-भय-दु०--तेजा०-क०--वण्ण०४अगु०४-वाद्र-पज्ज०-पर्ने०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० ।
अविहि० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० । थीणिग०३--मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०णवुंस०-तिरिक्त०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्ताणु०-आदाउज्जो०-अप्पत्य०यावर-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ०
वेसाग० सादि० । सादासाद०--चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० दोपदा णाणा०भंगो ।
अविह० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० । अवत्त० ज० उ० अंतो० । अहक०-ओराजि०तित्य० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अविह० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० ।
अवत्त० णित्य अंतरं । पुरिस०-मणुस०--पंचि०--समचदु०--ओरा०अंगो०-वज्जरि०मणुस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० ।
अविह० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० । अवत्त० ज० अंतो०, उ० वेसाग० सादि० ।
दोआउ० सोधम्मभंगो । देवाउ०--आहारदुगं तिरिख्णप० ज० ए०, उ० अंतो० ।

लश्यामें तीर्यद्वर प्रकृतिके भुजगार श्रोर अरुपतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमु हूर्त है। श्रवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। श्रवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

- ४८४. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तरायके भुजगार और श्रन्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-मुं हूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन,मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार,स्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियनाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर श्रादि तीन युगलके दो पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपदका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। आठ कपाय, औदारिकशरीर श्रीर तीर्यद्वर प्रकृतिके भुजगार श्रीर श्रन्पतरपदका जघन्य श्रन्तर एक य है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तन्यपदका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, ेन्द्रियजाति, समचतुरस्तरंस्थान, श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, वन्नपेभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रीर उचगोत्रके सुनगार श्रीर श्रस्पतर पदका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर ज्कुष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर है। दो श्रायुत्रोंका भङ्ग सीधर्मकल्पके समान है। देवायु श्रोर श्राहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुत

रे. ता० श्रा० प्रत्येः श्रेतो० । श्रवत्त० व० ए० इति पाठः ।

अवत्त० णित्थ ंतरं । देवग०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० । अवत्त० णित्य ंतरं । एवं पम्पाए । णविर सहस्सारभंगो । अहक०-ओरा०--श्रोरा०श्रंगो०- तित्थ० दोपदा ज० ए०, उ० अंतो० । श्रविट ज० ए०, उ० अहारससाग० सादि० । अवत्त० णित्थ अंतरं । दे ०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० अहारससा० सादि० । अवत्त० णित्थ अंतरं । एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज । पंचिदि०-तस० धुवभंगो ।

४८५. सुक्काए पंचणा०-छदंस०-चढुक०-भय-दु०-पंचि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४- ०४-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि०। अवत्त० णित्थ अंतरं। थीणिग०३- मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंठ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर--अणादे०-णीचा० भुज०-अप्प०-अविष्ठ० ज० ए०, अवत्त० ज० ो०, उ० एकत्तीसं० दे०। णविरे थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ अविष्ठ० ज०ए०, उ० एकत्तीसं० ० सादि० अंतोग्रहुत्तेण। सादासाद०-चढुणोक०-थिरादितिण्णियु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि०। अवत्त० ज० उ० अंतो०। अवक्तसाईस्र तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ अंतरं। पुरिस०-समचदु०-

हैं। अवक्तव्यपद्का अन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें सहस्रारकल्पके समान भङ्ग है। आठ कपाय, औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगति- चारके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर अन्तरकाल कहना चाहिए। तथा निद्रयजाति और असप्रकृतियोंका भङ्ग ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके समान है।

४८५. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार कषाय, भय, जुगुत्सा, पंचेन्द्रियजाति, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्ण्चतुष्क, अगुरुलधुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच
अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म है है
। अवस्थितपदका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।
अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी चार, खोवेद,
नापुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और
नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका ज्ञयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका
ज्ञयन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इतनी
विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके अवस्थितपदका ज्ञयन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त अधिक इक्तीस सागर है। सातावेदनीय,
असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार और अल्पतरपदका ज्ञयन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। अवस्थितपदका ज्ञयन्य अन्तर एक समय
है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका ज्ञयन्य और उत्कृष्ट अन्तर
मुहूर्त है। आठ कपायोंके तीन पदोंका भक्त ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तर

पसत्य०-[-सुभग-] सुस्सर-आदे०-उचा० तिष्णिप० साद्भंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० दे०। यणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणजोगिभंगो। मणुसग०--ओरा०-ओरा०-ग्रंगो०-मणुसाणु० युज०-अप० ज० ए०, उ० अंतो०। अविह० ज० ए०, उ० तेतीसं० दे०। अवत्त० णित्य श्रंतरं। देवगदि०४ तिष्णिप० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि०। अवत्त० ज० अद्वारस० सादि०, उ० तेतीसं० सादि०। आद्वार-दुगं भुज०-अप्प०-[अविह०] ज० ए०, उ० श्रंतो०। अवत्त० ज० उ० श्रंतो०। वज्तर० ज० उ० तेतीसं० दे०। वज्तर० ज० श्रंतो०। अवति० ज० ए०, उ० तेतीसं० दे०। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० दे०। तित्थ० तिष्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। [भवसि० श्रोघं।] अवभवसि० मदि०भंगो।

४८६. खइग० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचि०--तेजा०-क०-समचदु०--वण्ण०४-अगु०४-प्रसत्थ०-तस४-सुभग--सुस्तर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उचा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवद्वि० ज० ए०, अवर्त्तै० ज०

काल नहीं है। पुरुपनेद, समचतुरसांस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्त-मु हूर्त है और उत्हृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भक्त मनोयोगी जीवोंके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकश्राङ्गोपाङ्ग श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके मुजगार श्रीर श्रन्पतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुर्त हैं। अवस्थितपद्का जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और च्लूष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके सुजगार, श्राल्पतर श्रीर अवस्थितपदका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तम् हुत हैं। श्रवक्तव्य पदका जवन्य श्रीर उत्हृष्ट श्रन्तर श्रन्तसु हूर्त है। वल्रर्धभनाराचसंहननके भुजगार श्रीर श्रहपत्तरपद्का जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है। श्रवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका लघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। तीर्थंद्वर प्रकृतिके तीन पर्दोका भङ्ग ज्ञानावर एके समान है। तथा अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। भव्योंमें श्रोपके समान भङ्ग हैं। श्रभव्यों में मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

४-६. क्षायिकसम्यक्तमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चे न्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुते हैं। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य

१. श्रा॰ प्रतौ न॰ ए॰ उ॰ श्रंतो॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ पस्य॰ सुमग इति पाठः । ३. श्रा॰ प्रतौ ए० उ॰ श्रवच॰ इति :।

े०, उ० तेत्तीसं० सादि०। एवं साददंडओ च। णवरि अवत० ज० उ० तो०। अद्यक्त० दोपदा० ओघं। अविद्यान्य णाण०भंगो। मणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणुसि०भंगो। मणुसगदिपंच० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविद्ये० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे०। अवत० णिथि० अंतरं। देवगदि०४—आहारदुगं तिण्णिप० ज० ए०, अवत० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०।

४८७. वेदगस० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०--पुरिस०भय- ०-पंचि०-तेजा०क०- चदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-छचा०पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० छाविष्ठ० देस्।
साददंडओ णाणा०भंगो। णविर अवत्त० ज० उ० ोो ०। अष्ठक० भुज०-अप्प० ज०
ए०, उ० पुन्वकोढी दे०। अविष्ठ० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं०
दि०। दोत्राउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवर्त्त० ज० ोो०, उ० तेत्तीसं० सादि०।
अविष्ठ० णाणा०भंगो। मणुसगदिपंच० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पुन्वकोढी दि०
अंतोमुहुतं। अविष्ठ० ज० ए०, उ० छाविष्ठ० देस्०। अवत्त० ज० पिछदो० सादि०,

अन्तर अन्तम् हूर्त है और दोनों पदोंका चत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जयन्य और

अन्तर अन्तमु हूर्त है। आठ कषायों के दो पदों का भड़ा ओव के समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भड़ा हानावरण के समान है। मनुष्यायुका भड़ा देवों के समान है। देवायुका भड़ा मनुष्यिनियों के समान है। मनुष्यातिपञ्चक के भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगति-चतुष्क और आहारकद्विक तीन पदों का जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और सवका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

४८७. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञतन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्ता,पश्चे न्द्रियज्ञाति, तैजसशरीर,कार्मणशरीर, समचतुरक्तसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुत्वचुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्त्रर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार और अरुप्तरपद्का जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। साता-स्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है। इतनी विशेषता है कि अवक्तत्र्य पदका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुते है। आठ कषायोंके भुजगार और अरुप्तरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। दो आगुआंके भुजगार और अरुप्तरपदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका नयन्य अन्तर अन्तर्म कुत्तर साधिक तेतीस सागर है। स्वस्थितपदका भङ्ग आनावरणके समान है। मनुष्यगितपञ्चकके भुजगार और अरुप्तरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है। अवस्थितपदका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है। अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है अतर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः ग्विरि श्रष्टकः च॰ उ॰ श्रेतो॰, इति पाठः। २. श्रा॰ प्रवै ए॰ उ॰ श्रवत्तः इति पाठः।

उ० तेतीसं । सादि०। देवगदि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेतीसं० सादि०। अविष्ठि० णाणा०मंगो। अवत्त० ज० पितदो० सादि०, उ० तेतीसं० सादि०। आहारदुगं भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि०। अविष्ठि० णाणो०भंगो। तित्थ० ओघं। णविर अवत्त० णित्थ श्रंतरं।

४८८. उवसमै० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-देवग०-पंचि०-चदुसरीर-समचदु०-दोश्रंगो०-वक्जरि०-वण्ण०४-दोश्रणु०--अगु०४-पसत्य०-तस-४-मुभग-मुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अविदे० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० णित्थ अंतरं। सादासाद०-अहक०-चदुणोक०-आहारदुग-थिरादितिण्णियु० तिण्णिपदा धुवियाणं भंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०।

४८६. सणे धुवियाणं तिण्णिपदा जि० ए०, उ० श्रंती० । सेसाणं पि एसेव भंगो । णवरि अवत्त० णित्य श्रंतरं । सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंती० । एवं सादादीएां पि । णवरि अवत्त० ज० उ० श्रंती० । मिच्छादि० मदि०भंगो ।

४६०. सण्णी० पंचिदियपज्जत्तभंगो । असण्णीम् धुवियाणं भुज०-अप्प० ज०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्रियतपदका भङ्ग झानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्म है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग झानावरणके समान है। तीर्थक्करपृक्तिका भङ्ग आघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

४८८. उपशमसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संव्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगित, देवगित, पञ्चे न्द्रियज्ञाति, चार शरीर, समचतुरस्वसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रपैमनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्यङ्कर, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अवक्वव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, आठ कषाय, चार नोकषाय, आहारकि छौर स्थिर आदि तीन युगलके तीन पदोंका भङ्ग धुववन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। अवक्वव्यपदका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

४८६. सासादनसम्यक्त्वमें भ्रु ववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भी यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सम्यग्मिध्यादृष्टिमें श्रु ववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुत है। इसी प्रकार सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म हुते है। मिध्यादृष्टियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

१८०, संद्री जीवोंमें ेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भक्त है। श्रसंद्री जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली

१. ता॰ मती सादि॰ उ॰ उ॰ (१) वेचीयं इति पाठः । २. बात्य ं ॰ । देवसम॰ इति पाठः ।

ए०, इ० ं० | अविष्टि० ओघं० | दोवेदणी०--सत्तणोक०--पंच ०--इस्संटी०-ओरालि० ग्रंगो०---इस्संघ०--पर०-- ७ ०--आदाउज्जो०--दोविहा०---तसादिदसयु० तिण्णिप० णाणो०भंगो । अवत्त० ज० ७० ग्रंतो० | चढुआउ०-वेउन्वियञ्च०-मणुस०३ तिरिक्खोघं । तिरिक्ख०३ तिण्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० ओघं । ओरालि० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ओघं ।

४६१. आहारगेस्च पंचणाणावरणादिदंडओ ओघं। णवरि अविहि० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, दोण्हं पि [उ०] श्रंगुल० असंखे०। थीणागिद्धिदंडओ अविह०- श्रवत्त० णाणा०भंगो। संसं ओघं। सादादिदंडओ ओघं। णवरि अविह० णाणा०भंगो। इत्थि० मिच्छ०भंगो०। णवरि तिण्णिपदा श्रोघं। पुरिस० ओघं। अविह० णाणा०भंगो। णवुंसगदंडओ ओघं। अविह० णाणा०भंगो। तिण्णि उ०-वेज- व्विच्यळ०-मणु दितिग--श्राहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० श्रंगुल० श्रसंखे०। तिरि । उ० श्रोघं। अविह० णाणा०भंगो। तिरिक्खगदितिगं अविह०-अवत्त० णाणा०भंगो। दोपदा ओघं। एइंदियादिदंडओ ओघं। अविह० णाणा०भंगो। पंचिदियदंडओ अविह० णाणा०भंगो। सेसाणं ओघं। ओरालि०

प्रकृतियों के भुजगार श्रीर श्रन्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तसु हूर्त है। श्रवस्थितपदका भङ्ग श्रोघके समान है। दो वेदनीय, सात नोकपाय, पाँच जाति, छह
संस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उचोत, दो विहायोगित
श्रीर त्रसादि दस युगलके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके । त है। श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रीर
उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है। चार श्रायु, वेकियिक छह श्रीर मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यश्रों
के समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके । न है। श्रवक्तव्यपदका भङ्ग
श्रोघके समान है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग सात्रावेदनीयके समान है। श्रवक्तव्यपदका
भङ्ग ओघके समान है।

४६१. आहारकोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्दकका भङ्ग श्रोघके न है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर हूर्त है श्रोर दोनोंका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गलके असंख्यातवें भाग ए है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके श्रवस्थित श्रोर श्रवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके ान है। श्रेष भङ्ग श्रोघके समान है। सातावेदनीय श्राद दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि तीन पद श्रोघके समान है। पुरुषवेदका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। नपुंसकवेददण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तीन श्रायु, वैकियिक छह, मनुष्यगितित्रिक श्रोर श्राहारकिष्ठके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रङ्गलके श्रमंच्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चशायुका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवक्तथान्य भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चशायुका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा दो पदोंका भंग श्रोघके समान है। एकेन्द्रियज्ञाति श्रादि दण्डकका भंग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियज्ञाति दण्डकके

१. श्रा॰ मती पंचवा॰ छस्तंडा॰ इति पाठः।

अवहि०-अवत्त ० णाणा ० भंगो । सेसं ओघं । समचदु ० दंहओ ओघं । अवहि० णाणा ० भंगो । सेसं ओघं । अवहि० णाणा ० भंगो । अणाहार ० कम्मइगभंगो ।

एवं अंतरं समतं।

णा जिवेहि भंगविचयाणुगमो

४६२. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्पद०-अविद्वंधगा णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तगे
य । सिया एदे य अवत्तगा य । सादासाद०-सत्तणोक०--तिरिक्ताउ-दुगदि-पंचजादिछस्तंदा०-ओरालि०अंगो०-छस्तंघ०--दोआणु०--पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-दोविद्दा०तसादिदसयु०--दोगोद० भुज० अप्प० अविद्वि० अवत्तव्ववंधगा य णियमा अत्थि ।
तिण्णिआउ० सव्वपदा भयणिज्जा । वेडव्वियछ०-आहारदुग--तित्थ० भुज०--अप्प०
णियमा अत्थि । अविद्वि०-अवत्त० भयणिज्जा । एवं ओघभंगो कायजोगि०--ओरालि०अचक्खु०-भविस०-आहारग ति ।

४६३. णिरएसु धुविगाणं भुज०-ऋष्प० णिय० अत्थि । सिया एदे य अविद्वरो

अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेव पदोंका भङ्ग श्रोवके समान है। श्रोदारिकशरीरके अवस्थित श्रोर अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेव पदोंका भङ्ग श्रोघके समान है। समचतुरससंस्थानदण्डकका भङ्ग श्रोवके समान है। मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। सेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। श्रावकि समान है। सात्र अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। श्रावकि समान है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

नाना जीवोंकी अपेता भन्नविचयानुगम

४६२. नाना जीवांकी अपेना भंगविषय दो प्रकारका है-योव और आदेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, निध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपयात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजतार, अल्पतर और अवस्थितपदके वन्यक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और एक अवक्तव्यपदके वन्यक जीव हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, तिर्यक्षायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, श्रोदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, असादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्यक जीव नियमसे हैं। तान आयुओंक सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थक्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदके वन्यक जीव नियमसे हैं। इस प्रकार श्रोयके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अच्छुदर्शनी, भव्य और आहारक लीवोमें जानना चाहिए।

४६३. नारिकयोंमें धुक्वन्यवाली प्रकृतियोंके भुजनार और अल्पतरपद्के वन्यक जीव

य। सिया एदे य अविहद्गा य । सेसाणं सन्वपगदीणं ध्रुविगभंगो । णविर अविह०-त्रवत्त० भयणिजा । दोएइं आऊणं सन्वपदा भयणिजा । एवं सन्वणिरय-सन्वपंचिद्यितिरि०-देव-विगलिदि०--पंचि०-तस०अपज्ज०--वाद्रपुढ०-आड०--तेड०-वाड०--वाद्रवण०पत्ते०पज्जत्त--वेड०--इत्यि०--पुरिस०-विभंग०--सामाइ०-छेदो०-परि- हार०-संजदासंज०-तेड०-पम्म०-वेदगसम्मादिहि ति ।

४६४. तिरिक्खेस धुविनाणं भुज०-अप्प०-अवद्दि णिय० अत्थि । सेसाणं ओघं । एवं ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद्०असंज०-तिरिएलि०-अब्भव०-मिच्छा०-असरिएल-अणाहारगत्ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार० देवगदिपंचग० सन्वपदा भयणिज्ञा ।

४६५. मणुसेसु सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०णिय० अत्थि। सेसपदा भयणिज्ञा। चदुआर० सव्वपदा भयणिज्ञा। एवं सव्वमणुसाणं पंचिं ०-तस०२-पंचमण-पंचवचि०-आभिण०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-चक्खु०-ओधिदं०-सुक्ते०-सम्मा०-खइग०-सिएए ति।

४६६. मणुसअपज्ज०सन्वपगदीणं सन्वपदा भयणिज्जा । एवं वेउन्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०-उवसस०-सासण०-सम्मामि० ।

नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और एक अवस्थितपदका वन्धक जीव है। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और अनेक अवस्थितपदके वन्धक जीव हैं। रोप सब प्रकृतियोंका भंग ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं। दोनों आयुओंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पक्चे न्द्रियतिर्यक्च, देव, विक्लेन्द्रिय,

न्द्रिय श्रपर्याप्त, त्रसंत्रपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर श्रिमकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशारीर पर्याप्त, वैकियिककाय-योगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विभंगज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पदालेश्यावाले श्रोर वेदकसम्यग्टिष्ट जीवोंके जानना चाहिए।

४६४. तिर्यक्वोंमें ध्रुववन्यवाली प्रकृतियोंके मुजगार, अरुपतर और अवस्थितपद्के वन्धक जीव नियमसे हैं। शेप प्रकृतियोंका भंग ओवके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिण्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके सव पद भजनीय हैं।

४६५. मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार श्रौर श्रन्पतरपद्के वन्यक जीव नियमसे हैं। शेप पद भजनीय हैं। चारों आयुआंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य, पद्धे निद्रय, पद्धे निद्रयपर्याप्त, त्रसिंहक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चज्जदरोनी, श्रविवदर्शनी, श्रुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, स्नायिकसम्यग्दृष्टि श्रौर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

४६६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, आहारककाययोगी, आहारविभिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूद्रमसाम्परायसंयत, उपश्रम-

१. ता॰ प्रती पज्जताने (न) इति पाठः । २. आ॰ प्रती सन्वमग्रुसार्गं पंचि पंचि इति पाठः ।

४९७. सन्वएइंदि० पुढ०--बादर०--वादर०अप० मणुसाउ० ओघं। सेसाणं सन्वपदा णिय० अत्थि। एवं आउ०--तेउ०--वाउ०--वादर--वादरअप० तेसि चेव सन्वसुहुम०-सन्ववण०-णिगोद०-वादरपत्ते०अपज्ज०।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समतं।

भागाभागाणुगमो

४६८, भागाभागाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०पिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-न्याणा०४-अगु०-उप०-णिमि०पंचंत० ग्रुजगारवंधगा सन्वजीवाणं केविडयो भागो १ दुभागो सादिरेगो। अप्प०
दुभागो देस् ०। अविड० सन्वजीवाणं असंखेजिदिभागो। अवत्त० सन्वजी० अणंतभा०।
सादासाद०-सत्तणोक०-चदुआड०-चदुगिद्-पंचजादि-ओरा०-वेचिव०-छस्संडा०ओरा०-वेच० अंगो०-छस्संघ०-चदुआणु०-पर०-उस्सा०-आदा ००-दोविहा०- दिदसयु०-तित्थ०-दोगो० भ्रुज० सन्वजी० दुभा० सादि०। अप्प० दुभा० देसू०।
अविड०-अवत्त० असंखे०भा०। एवं आहारदुगं। णविर अविड०-अवत्त० संखेजिदिभा०। एवं ओघभंगो तिरिक्खोधं कायजोगि०-ओरा०-ओरा०-मोरा०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-

सम्यग्दृष्टि, सासाद्नसम्यग्दृष्टि श्रौर सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४६७, सब एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक तथा इनके वादर और वादर अपर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायुका भंग ओवके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी र जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके वादर और वादर अपर्याप्त तथा सब सूदम, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इस प्रकार नाना जीवोंको अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

४६८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ श्रीर श्रादेश । श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच श्रन्तरायके भुजगारपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। श्रवस्थतपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं। श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके श्रतंख्यातवें भागप्रमाण हैं। श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके श्रतंख्यातवें भागप्रमाण हैं। श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके श्रतंत्वाति, श्रोदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, श्रोदारिक श्रागोपांग, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, श्रोदारिक श्रागोपांग, वैक्रियिक श्रागोपांग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत, दो विहायोगिति, त्रसादि दस युगल, तीर्थद्धर श्रोर दो गोत्रके भुजगार पद्के वन्यक जीव सव जीवोंके साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। श्रवपतरपद्के वन्यक जीव सव जीवोंके साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। श्रवपतरपद्के वन्यक जीव श्रवस्थत और श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव श्रवस्थत और श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार श्रादारकशरीरद्विकका भंग है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थित और श्रवक्तव्यपद्के वन्यक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार श्रोद्वके समान सामान्य तिर्यक्र, काययोगी, श्रोदारिक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार श्रोद्वके समान सामान्य तिर्यक्र, काययोगी, श्रोदारिक

[ं] र. तार्व प्रती कायनोगिव स्रोयलिव मिव इति पाठः ।

कोधादि०४ -मदि०--सुद०--असंज०-अचक्खु०--तिरिणले०--भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असिरिण् -आहार०-अणाहारग ति । एदेसि किचि० विसेसो णादव्वो । ख्रोरालि० तित्थ० ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंच० आहारस०भंगो ! अवत्त० णित्य। सेसाणं णेरइगादीणं याव सिरिण ति याओ असंखेज्ज-अर्णतजीविगाओ पगदीओ ताओ ओधं सादभंगो । याव संखेज्जजीविगाओ पगदीओ ताओ ओधं आहार-सरीरभंगो ।

एवं भागाभागं समत्तं।

परिमाणाणुगमो

४६६. परिमाणाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अद्दत्त०-भय-दु०-तेजा०-क०-वएए।०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अविद्वि०वंधगा केत्तिया १ अएांता। अवत्त० के० १संखेजा। थीणगि०३-मिच्छ०-अद्दक०-ओरालि० भुज०-अप्प०-अविद्वि० के० १ अएांता। अवत्त० के० १ असंखे०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-तिरिक्ताड०-दोगिद्--पंचजा०-छस्संठा०-ओराछि०अंगो०--छस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-दोविद्दा०-तसादिद्सयुग०-दोगो० भुज०-अप्प०-अविद्व०-अवत्त० के०१ अएांता। तिएएएआउ०-वेड०छ० भुज०-अप्प०-अविद्व०-अवत्त०केति० १ असं-

काययोगी, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कामँणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, श्रभन्य, मिध्यादृष्टि, श्रसंज्ञी श्राहारक श्रौर अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इन मार्गणाश्रोंमें जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थद्धर प्रकृतिका, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कामंणकाययोगी श्रौर अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका मंग श्राहारकशारीरके समान है। तथा श्रवक्तन्यपद नहीं है। शेष नरक श्रादिसे लेकर संज्ञी तक जो असंख्यात और श्रनन्त जीवोंके वैंघनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनका भन्न श्रोवसे सातावेदनीयके समान है। तथा जो संख्यात जीवोंके वैंघनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनका भंग श्रोवसे श्राहारकशरीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाणानुगम

४६६. परिमाणानुगमकी अपेना निर्देश दो प्रकारका है—ओय और आदेश। ओयसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-पदके वन्यक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके वन्यक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धि तीन, मिण्यात्व, आठ कपाय और औदारिकशरीरके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके वन्यक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके वन्यक जीव कितने हें ? असंख्यात हैं। दो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यक्षायु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोनपाझ, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगिति, असादि इस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्यक जीव अनन्त हैं। तीन आयु और वैक्रियिक छहके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्यक जीव

खेजा। आहारदुगं गुज०-[अप०-]-अविह०-अवतः के०? संखेजा। तित्थ० भुज०-अप०-अविह० के०? असंखेजा। अवत्त० के०? संखेजा। एवं ओघभंगो काय-जोगि-ओरालि०-[णवुंस०-कोधादि०४-] अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति । णविर ओरालि० तित्थ० संखेजा।

५००. णिरएसु मणुमाउ०सन्वपदा० तित्थय० अवना० के०? संखेजा । सेसाणं सन्वपदा के० ? अशंखे० । एवं सन्वणिरय--सन्वदेवा याव अपराजिदा नि वेउ०-वेउ०मि०--इत्थि०--पुरिस०--विभंग०-सासणसम्मादिष्टि नि । णवरि इत्थि० तित्थ० संखे० ।

५०१. तिरिक्खेस धुविगाणं तिण्णिपदा के॰ ? अणंता । सेसाणं त्रोघं । एवं तिरिक्खोघभंगो मदि०-सुद्०-असंज०-तिरिणाले०-अञ्भवसि०-मिच्छा०-असएणीस । पंचिदियतिरिक्ख०३ धुविगाणं तिरिणापदा के० ? असंखे० । सेसाणं परियत्तमाणि-याणं चत्तारिपदा के० ? असंखे० । एवं सञ्बद्धपज्ज०-सञ्बविगलिदि०-पुढ०-आड० तेड०-वाड०-वादरपत्तेग ति ।

४०२. मणुसेसु पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०--ओरालि०-तेजा०-क०-वएएा०४--अगु०-डप०--णिमि०--पंचंत० तिण्णिप० असंखे०। अवत्त०

कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तत्यपदके चन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तीर्थद्धर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके चन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवक्तत्यपदके चन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अवक्तत्यपदके चन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार ओधके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चारों कवायवाले, अच्छु-दर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थद्धर प्रकृतिके सब पदोंके चन्धक जीव संख्यात हैं ।

५००. नारिकयों में मनुष्यायुके सत्र पदोंके श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिके श्रवक्तव्यपदके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेव प्रकृतियों के सन पदों के वन्धक जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं । इसी प्रकार सत्र नारकी, देव, अपराजित विमान तकके सत्र देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, खीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी श्रीर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि खीवेदी जीवों में तीर्थङ्कर प्रकृतिके सत्र पदों के वन्धक जीव संख्यात हैं ।

५०१. तियञ्जोंके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। शेप प्रकृतियोंका भंग ओवके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्जोंके समान मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।
पञ्जोन्द्रिय तिर्यञ्जित्रमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। शेप परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब अपर्यात, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और चादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

५०२. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुष्सा, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पट्रोंके वन्धक जीव असंख्यात हैं। श्रयक्तव्यपद्के वन्धक जीव ं यात हैं। दों, संखेजा । दोआउ०--वेडिव्व०छ० -आहार०२-तित्य० चत्तारिपदा के० १ संखेजा । सेसाणं चतारिपदा के० १ असंखे० । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीम्र सव्वपगदीणं सव्वपदा केतिया १ संखे० । मणुसिभंगो सव्वष्ट०--आहार०-आहारिण--अवगद०--मणपज्ज०- संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-मुहुम० ।

५०३, एइंदिएसु सन्वपगदीणं सन्वपदा के०१ त्रणंता। णवरि मणुसाउ० ओघं। एवं वणप्फदि-णियोद०।

५०४. पंचिंदिएसु पंचणा०-छदंस०-अद्वक०-भय--दु०--तेजा०-क०-वएए।०४— अगु०-जप०-णिमि०--ति य०--पंचंत० तिण्णिप० के० १ ंखे०। अवत्त० के० १ संखे०। आहारदुगं सन्वप० के० १ संखे०। सेसाणं चत्तारिपदा के० १ असंखे०। एवं पंचिंदियपज्ज०--तस-तसपज्ज०--पंच ०--पंचवचि०--चक्खु०-सण्णि ति। ओरा०मि० कम्मइ०-[अणाहार०] तिरिक्खोघं। णवरि देवगदिपंचग० सन्वपदा संखेज्जा।

५०५, आभिणि०--सुद०--ओधि० पंचणा०-छदंस--अद्दक०-पुरिस०-भय-दु०-देवग०-पंचि०-वेउ०-तेजा०-क०--समचदु०-वेउ०श्रंगो०--वएए।०४--देवाणु०-अगु०-पस-त्यवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-श्रादे०--णिमि-तित्थ०--उच्चा०-पंचंत० तिएिएएप० के० १

आयु, वैक्रियिक छह, त्राहारकिहक और तीर्थद्वर प्रकृतिके चारों पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेप प्रकृतियोंके चारों पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यितयोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सर्वार्थ-सिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकिमश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत और सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भंग है।

५०३. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके पदोंके बन्धक जीव कितने हैं १ अनन्त हैं । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग आधके समान है । इसी प्रकार बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें जानना चाहिए ।

५०४. पद्चे न्द्रियोमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्यद्धर और पाँच अन्तरायके
तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके वन्धक जीव कितने हें ? संख्यात
हैं। आहारकद्विकके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके चारों पदोंके
वन्धक जीव कितने हें ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार पद्धे न्द्रिय पर्याप्त, अस, असपर्याप्त, पाँचों
मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चज्जदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सामान्य तिर्यक्कोंके समान भंग है। इतनी
विशेषता है कि देवगतिपद्धकके सब पदोंके वन्धक जीव संख्यात हैं।

प्रामिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दरोना-वरण, श्राठ कषाय, पुरुपवेद, भय, जुगुष्सा, देवगति, पख्चे न्द्रियज्ञाति, वैक्रियिकशरीर, तेजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, वैक्रियिकश्रांगोपांग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रागुरुत्तघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उचगोत्र और पाँच श्रान्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं १ श्रसंख्यात हैं। श्रवक्कर्यपदके बन्धक जीव असंखे । अवत्त केति १ संखे । सादासाद ०--अपचवर्खाण ०४ --चंदुणोक ०--देवाड ०--मणुसगदिपंच ०--थिरादितिषिण यु० चत्तारिप ० के ० १ असंखे । मणुसाड ०-आहारदुगं सन्वप ० के ० १ संखे ०। एवं ओधिदं ०-सम्मादि ०-वेद ग०-सम्मामिच्छादिहि ति । णवरि वेद ग०-सम्मामि । धुविगाणं अवत्त ० णित्थ ।

४०६, संजदासंजि० धुविगाणं तिण्णिपदा परियत्तमाणियाणं चत्तारिपदा के॰ ? असंखे० । तित्थ० सन्वप० के० ? संखे० ।

५०७. किएए।--णीलाणं तित्थ० तिएए। के० १ संखे० । तेड--पम्मासु धुविगाणं तिरिए। वे० १ असंखे० । पचक्खा०४ -- देवगदि०४ -- तित्थ० अवत्त०
संखेजा । सेसपदा० असंखे० । सेसाणं सञ्चप० असंखे० । मणुसाड०-आहार०२
सञ्चप० के० १ संखे० । सुकाए पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-दोगदि-पंचजादिचदुसरीर-दोग्रंगो०-वण्ण०४-दोग्राणु०-अगु०४-पसत्यवि०-तस०४--णिमि०-तित्य०पंचंत० तिरिएए। के० १ असं०। अवत्त० के० १ संखे० । दोआड०-आहार०२ सञ्चपदा के० १ संखे० । सेसाणं सञ्चप० के० १ श्रसंखे० ।

५०८. खइग० पंचणा०-छदंस०--वारसक०--पुरिस०--भय-दु०-दोगदि-पंचि०-

कितने हैं ? संख्यात हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चार, चार नोकपाय, देवायु, मनुष्यगतिपञ्चक और स्थिर आदि तीन युगलके चार पदोंके वन्थक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है ।

५०६. संयतासंयत जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके और परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

५००. कृष्ण श्रीर नील लेश्यामें तीर्थंङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके वन्यक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। पीत श्रीर पद्मलेश्यामें ध्रु ववन्यवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्यक जीव कितने हें ? असंख्यात हें। प्रत्याख्यानावरण चार, देवगतिचतुष्क और तीर्थंङ्कर प्रकृतिके श्रयक्तव्य पदके वन्यक जीव संख्यात हैं। प्रत्याख्यानावरण चार, देवगतिचतुष्क और तीर्थंङ्कर प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्यक जीव असंख्यात हैं। श्रेप प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्यक जीव श्रयंख्यात हैं। श्रुक्तलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कपाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, पाँच जाति, चार शरीर, दो श्रङ्कोपाङ्क, वर्णचतुष्क, दो श्रानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थंङ्कर श्रीर पाँच श्रन्तरायके तीन पदोंके वन्यक जीव कितने हें ? श्रसंख्यात हैं। श्रयक्तव्यपदके वन्यक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। वो श्रायु श्रीर श्राहारकद्विकके सब पदोंके वन्यक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेप सब प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्यक जीव कितने हें ? श्रसंख्यात हैं। श्रयंख्यात हैं।

५०८. श्राचिकसम्बन्दवमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय,

चदुसरीर-समचदु०-दोश्रंगो०--वज्जरि०-वर्णा०४--दोआणु०-अगु०४--पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० के०१ असंखे०। अवत्त०
के०१ संखे०। दोवेदणी०--चदुणोक०--धिरादितिण्णियु० सन्वपदा के०१ असंखे०।
दोआड०-आहारदुगं सन्वप० के०१ संखे०।

५०६, उवसम० पंचणा०-छदंस०-अद्वक०-पुरिस०-भय-दु०--दुगदि-पंचि०-चदु-सरीर-समचदु०--दोश्रंगो०--वज्जरि०--वण्ण०४--दोआणु०-अगु०४--पसत्थ०- ०४--स्रभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० के० १ असंखे० । अवत्त० के०१ संखे० । आहारदुगं तित्थ० सन्वप० के० १ संखेज्जा । सेसाणं सन्वपदा के० १ असंखेजा ।

एवं परिमाणं तं।

वेत्ताणुगमो

५१०. खेताणुगमेण दुवि०—ओघे० त्रादे० । ओघे० पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०-सोल ०-भय-दु०--ओरालि०--तेजा०-क०--वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-त्रविद्विथमा केविड खेते १ सव्वलोगे । अवत्त० के० १ लोगस्स त्रसंखेज्जदिभागे । सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०--दोगदि०-पंचजा०-ञ्जस्संठा०-

जुगुप्सा, दो गित, पञ्चे न्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपांग, वर्जर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीयङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं १ असंख्यात हैं। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव कितने हैं १ संख्यात हैं। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हैं १ असंख्यात हैं। दो आयु और आहारकदिकके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हैं १ संख्यात हैं।

५०६ उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुन्सा, दो गित, पश्चे न्द्रियज्ञात, चार शरीर, समचतुरस्तसंस्थान, दो श्रांगोपांग, वर्ज्रधभ-नाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो श्रानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रान्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हें ? श्रसंख्यात हैं। श्रवक्तव्यपदके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्राहारकिहक श्रीर तीर्थद्वरके सब पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रेष सब पहाँके वन्धक जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं।

इस प्रकार परिमाण ाप्त हुआ।

[ः]क्षेत्रानुगम

५१०. चेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोध और आदेश। श्रीधसे पाँच होनावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशारीर, तैनस शारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलधु, उपधात, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर श्रीर अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? सव लोक चेत्र है। अवक्तत्र्य पदके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है श्री सातावेदनीय,

बोरा श्रंगो ० - ह्यसंघड ० - दो आणु ० - पर ० - इस्सा ० - आदा छो ० - दो विहा ० - तसादि-दसयु ० - दोगो ० चत्तारिप ० के ० १ सन्वलो गे । तिण्णि आ च ० - वे च विद्या छ ० - आहार ० २ - तित्य ० सन्वप ० के ० १ लो ० असंखे ० । एवं ओघभं गो काय जो गि - ओरा छि ० - ओरा ० मि ० - कम्म ० - ण वुंस ० - को धादि ० ४ - मदि ० - सुद ० - - असंज ० - - अच क्लु ० - ति ए ण ले ० - भवसि ० - अवभवसि ० - मिच्छा ० - अस ए ए । असार ० - अणाहार ए चि ।

४११, एइंदि०-सन्वस्रहुमएइंदि० धुविगाणं तिरियापदा सन्वलो०। मणुसाउ० ओघं। सेसाणं सन्वपादीणं सन्वपदा के० १ सन्वलो०। एवं पुढ०--आउ०--तेउ०-वाउ०--वणफिद०--णिगोद० तेसि सन्वस्रहुमाणं च। वादरएइंदि०पज्ज०--अपज्ज० धुवियाणं तिरियाप० के० १ सन्वलो०। सादासाद०--चढुणोक०--थिरादिदोरियायु० सन्वप० के० १ सन्वलो०। इत्थि०-पुरि०-तिरिक्खाउ०-चढुजा०-पंचसंठा०-ओरालि० द्रांगो०--इस्संघ०-आदा०--उज्जो०--दोविही०--तस०-वादर०- भग०-दोसर०-न्त्रादे०-जस० चत्तारिप० के० १ लो० संखे०। णवुंस०-एइंदि०-हुंड०-पर०-उस्सा०-थावर०-सहुम-पज्जतापज्ज०-पत्ते०-साधा०-दूभग-अणादे०-अजस०तिरियाप० के० १ सन्वलो०। अवत० के० १ लो० संखेज०। मणुसाउ०-मणुसग०३ चत्तारिप० के० १ लो०

श्रमातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यद्वायु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक श्राङ्गो-पाङ्ग, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? सब लोक चेत्र है । तीन श्रायु, वैक्रियिक छह, श्राहारकद्विक श्रोर तीर्यद्वरके सब पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकके श्रसंख्यातचें भागप्रमाण चेत्र हैं । इसी प्रकार श्रोधके समान काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुता-हानी, श्रसंयत, श्रचनुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, श्रभन्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंही, श्राहारक श्रोर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

५११. एकेन्द्रिय और सूदम एकेन्द्रिय जीवोंमें ध्रुववत्थवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके वन्धक जीवोंका चेत्र सव लोक है। मनुष्यायुका भङ्ग त्रोवके समान है। शेष सव प्रकृतियोंके परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है १ सव लोक चेत्र है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, ख्रानिकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और इन सवके सव सूद्म जीवोंमें जानना चाहिए। वादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है १ सव लोक चेत्र है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय और स्थिर आदि हो युगलोंके सव परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है १ सव लोक चेत्र है। खीवेद, पुरुपवेद, विर्यक्षायु, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रोद।रिक आङ्गापाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, वादर, सुभग, दोस्वर, आदेय और यशःकीर्तिके चार परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र हे १ लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है । नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, पर्यात, उच्छ्वास, स्थावर, सुद्म, पर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, और अयशाः कीर्तिके तीन परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र हे १ सव लोक चेत्र है । अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र हे १ लोकके संख्यातवें माण चेत्र है । मनुष्यायु और मनुष्यातिन

रे. ता॰ प्रतौ छुस्तंब॰ दोन्नापु॰ दोविहा॰ दक्कि पाठः। २. ग्रा॰ प्रतौ सादा॰ इति पाठः।

ंखे । तिरिक्ख २३ तिए प० केनिड १ ो०। अवत्त लो० असं ०।

५१२. बादरपुढ० तस्सेव ० पंचणा०- दंस०--मिच्छ०-सो ०भय०-दुगुं०-ओरा०-तेजा०-क०-वएए०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप के० ?
सन्वलो०। सादासाद०-चदुणांक०-थिराथिर-सुभा भ०चतारिप० सन्वलो०। इत्थि०पुरिस०-दोआड०-मणुसग०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरा० ो०-छस्संघ०-मणुसाणु०आदाड०-दोविहा०-तस-वादर-सुभग-दोसर-आदे०-[जस०]-उच्चागो० चत्तारिप० लो०

ं। णवुंस०-तिरिक्त०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्ताणु०-पर०--उस्सा०-थावर०- हुम-पज्जतापज्ज०-पत्ते०-साधार०--दूभग०-अणा०-अजस०--णीचा० तिण्णिप० सन्वतो०। ग्रवत्ता० लो० असंखे०। एवं वादरआउ०--तेउ०--वाउ० तेसि चेव अपज्ज० वादर०-पत्ते० तस्सेव अपज्ज०। णवरि वादरवाउ० जिम्ह ेग० असंखे० तिम्ह लो० संखे०। सेसाणं ऐरइगादीणं याव सिण्ण ति संखे --असंखेज्जजीविगाणं सन्वपदा के० १ लो० असंखेज्जदिभागे।

एवं खेतं समतं।

त्रिकके चार पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भाग । ए चेत्र है । दि तित्रिकके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? लोक चेत्र है । अवक्तव्य पदके वन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाए चेत्र है ।

५१२. बादर पृथिवीकायिक श्रीर उसके श्रपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघु, उपवात, निर्माण श्रीर पाँच श्रन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना देत्र है ?

लोक चेत्र है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार नो य,स्थिर,श्रस्थिर, श्रुभ श्रोर श्रशुभके चार पदोंके वन्धक जीवोंका सव लोक चेत्र है। स्नीवेद, पुरुपवेद, दो श्रायु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रोदारिक श्रांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, क्षातप, उद्योत, दो विहायोगिति, , वादर, हुभग, दो स्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति श्रोर उच्चगोत्रके चार पदोंके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूद्म, पर्याप्त, श्रपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, हुभग, श्रनादेय, श्रयशाःकीर्ति श्रोर नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवोंका सव लोक चेत्र है। श्रवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। इसी प्रकार वादर जलकायिक, वादर श्रानिकायिक, वादर वायुकायिक श्रोर उनके श्रपर्याप्त तथा वादर प्रत्येकशरीर श्रोर उनके श्रपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है वहाँ पर वादर वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यात संख्याक जीवोंमें सव पदोंके वन्धक जीवोंमें लिकते श्रसंख्यात संख्याक जीवोंमें सव पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है शिनके श्रसंख्यात संख्याक जीवोंमें सव पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है शिनके श्रसंख्यात संख्याक जीवोंमें सव पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है शिनके श्रसंख्यात संख्याक जीवोंमें सव पदोंके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र है शिनके श्रसंख्यात संख्याक चेत्र है।

ीं पोसणाणुगंमी वर्ष है है वर्ष है ।

भू १३. फोसणाणु० दुवि० — श्रोघे० श्रादे० । अघे० पंचणा०-छदंस०-अहक०भय-दु०-तेजा०-क०-वर्गा०४-अगु०-डप०-णिमि०-पंचंत० ग्रुज०-अप्प०-अविद्विधमेहि
केविडयं खेनां पासिदं ? सन्वलो०। अवन्त० लो० असंखे०। थीणगिद्धि०३ — अणताणु०४
तिरिगाप० सन्वलो०। अवन्त० अहचो०। सादासाद०-सन्तणोक०-तिरिक्खाड०-दोगदि-पंचजादि-छस्संटा०-ओरा०श्रंगो०-छस्संघ०-दोश्राणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०दोविहा०--तसादिदसयु०--दोगो० ग्रुज०-अप्प०-अविह०-श्रवन्त० के० ? सव्वलो०।
पिच्छ० तिरिगाप० सव्वलो०। अवन्त० अह-वारह०। अपचन्दाण०४ तिरिगाप०
सव्वलो०। अवन्त० छचो०। णिरय-देवाउ०-श्राहार०२ चतारिप० के० ? लो०
असं०। मणुसाउ० चत्तारिप० अहचो० सव्वलो०। णिरय-देवग०-दोआणु० तिरिगाप०
छचो०। अवन्त० खेन०। ओरालि० तिरिगाप० सव्वलो०। अवन्त० वारहचो०।
वेडव्वि०-वेडव्वि०-श्रंगो० तिरिगाप० वारह०। श्रवन्त० खेन्त०। तित्थयरं तिरिगाप०
अह०। अवन्त० खेन०।

क्षा कर्म कर्मा करा करा के स्वा<mark>स्थानासुगम</mark>

🔗 े ५१ई. स्पर्शानुगम दी प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, त्राठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघु, उपचात, निर्माण और पाँच अन्तरायके मुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्परान किया है १ सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्परान किया है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंके बन्यक जीवोंने सव लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यछायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, श्रीदारिक श्रांगाप,ग, छह तहनन, दो श्रानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, च्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल श्रीर दो गोत्रके भुजगार, श्रहपतर, श्रवस्थित श्रीर अवक्तव्यपद्के वन्यक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकका स्पर्शन किया है। मिध्यात्वके तीन पर्नेके बन्यक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्रव्यपदके बन्यक नीवोंने कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम वारह वटे चौदह राजुशमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्वक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकके चार पदोंके बन्वक जीवोंने कितने जेत्रका स्पर्शन किया है। लोकके ऋसंख्यातचे भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वट चीदह राजु और सब लोकका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्परान किया है। अवक्तव्यपद्के वन्यक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने सव लोकका स्पर्शन किया है या अवक्तत्र्यपदके वन्यक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशारीर और वैक्रियिक आंगोपांगके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य-

े ५१४. णिरएसु धुविगाणं तिरिराप० छची । थीणगि०३—अणंताणु०४—तिष्णि-

पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तीर्थंद्वर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरण चादिके भुजगार, अरुपतर चौर अवस्थितपद एकेन्द्रियादि जीवोंके होते हैं, इसलिए इनका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा उनका अवक्तव्य पद उप-शमश्रीणिसे गिरनेवाले मनुष्य और मनुष्यिनाके तथा ऐसे जीवके मरकर देव होने पर प्रथम समय में होता है, इमलिए इसका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन और धनन्तानुबन्धी चारके भुजगार आदि तीन पदोंका स्वामित्व पाँच ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सव लाक कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद उत्परके गुणस्थानोंसे गिरकर इनके बन्धके प्रथम समयमें होता है। ऐसे जावांका स्वशन देवोंका मुख्यतासे कुछ ब्राठ बटे चीदह राजु प्रमाण है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि कुछ परावत-मान प्रकृतियाँ हैं और कुछ अधुववन्धिनी हैं। इनके भुजगार खादि पदोंका वन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव है, अतः इनके सब पदोंके बन्धकोंका स्परीन सबलोक प्रमाण कहा है। पदोंका स्पर्शन स्त्यानगृद्धित्रिकके समान घटित कर लेना चाहिए। मात्र नीचे कुछ पाँच राजु श्रीर ऊपर कुछ सात राजु प्रमाण चेत्रमें मारणान्तिक समुद्र्यातके समय भी श्रवक्तव्यवन्ध सम्भव है, इसलिये इस पदकी अपेत्रा इसका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजु प्रमाण भी कहा है। श्रप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पद एकेन्द्रिय श्रादि सव जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अवक्तव्य पद ऊपर कुछ कम छह राजु । ए। चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु और देवायुका वन्ध श्रसंज्ञी श्रादि मारणान्तिक समुद्धात श्रीर उपपाद पदके विना करते हैं और छाहारकद्विकका संयत जीव करते हैं, छतः इनके चारों पदोंकी अपेद्मा स्पर्शन लोकके ख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। मनुष्यायुके चारों पद देवोंके विहारादिके समय श्रीर एकेन्द्रियोंके सम्भव हैं, श्रतः इसके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और सव लोक प्रमाण कहा है। जो तिर्यक्र और मनुष्य नारिकयों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके क्रमसे नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकके भूजगार आदि तीन पद सम्भव हैं, अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। परन्तु मारणान्तिक समुद्धातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी श्रपेक्षा स्पर्शन चेत्रके न कहा है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदा की श्रपेक्षा स्पर्शन ज्ञानावरणके ान घटित कर लेना चाहिए। तथा नारकी ख्रीर देव उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें श्रीदारिक शारीरका अवक्तव्यवन्य करते हैं, इसलिए इस पदकी अपेका कुछ कम बारह वहे चौदह राज़ स्पर्शन कहा है। तिर्युख्नों ख्रीर मनुष्योंके नार्राकयों ख्रीर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय वैक्रियिक शरीरद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम वारह वटे चौदह राज़ प्रमाण स्पर्शन कहा है पर ऐसे मनुष्यो और तिर्यख्नोंके इनका श्रवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इसकी अपेदा स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। विहारादिके देवों के तीर्थंद्वर प्रकृतिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेना स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा तीर्थद्धर प्रकृतिका अवक्तव्यपद एक तो मनुष्यों के होता है श्रीर तीर्थद्धर प्रकृतिका वन्य करनेवाले जो मनुष्य दूसरे श्रीर तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं उनके होता है। इन समके स्पर्शनका यदि विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए यह चेत्रके समान कहा है।

५१४ नारकियोंमें वन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पर्वोके व

वेद-तिरिक्ख०-छस्संठा०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविद्दा०-तिरिणामिकसञ्जयुग०-णीचा० तिरिणाप० छचो०। अवना० खेत्त०। सादासाद०-चदुणोक०-उज्जो०-थिरादितिएणयु० सञ्चप० छचो०। दोआउ०-मणुसगदितिय-तित्थ० सञ्चपदा खेतं। मिच्छ० तिण्णि-पदा छचो०। अवत्त० पंचचो०। एवं सञ्चणेरङ्गाणं अप्पष्पणो फोसणो णेदञ्जो।

५१५. तिरिक्षेसु पंचणा०--छदंस०-अहक०--भय-दु०-तेजा०-क०-वराण०४-अग्र०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० सन्वलो० । थीणगिद्धि०३--अहक०-ओरा० तिण्णिप० सन्वलो० । स्रवच० खेच० । साददंढओ ओघो । दोआउ०-वेउन्वियछ०

षौदह राजुप्रमाण त्तेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, श्रनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन वेद, तिर्यक्कगति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, मध्यके तीन युगल छौर नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने छुछ कम छ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तेव्रके समान है। सातावदनीय, श्रसातावदनीय, चार नोकपाय, उद्योत, श्रोर स्थिर खादि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने छुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण त्तेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु, मनुष्यगतित्रिक श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवों का स्पर्शन तेत्रके समान है। मिध्यादक तीन पदों के बन्धक जीवों ने छुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण त्तेत्रका स्पर्शन किया है। प्रधार श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीवों ने छुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण त्तेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारिकयों में श्रमना श्रपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थं — नारिकयों में भू ववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पद ही होते हैं। अन्यत्र भी जहाँ जो भू व प्रकृतियों हैं उनके यथा सम्भव तीन पद ही होते हैं। और नारिकयों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण है, इसिलए भू ववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों की अपेक्षा यह प्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के तीन पदों की अपेक्षा और विदनीय आदिक तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के सब पदों की अपेक्षा भी यही स्पर्शन प्राप्त होता है, क्यों कि इन प्रकृतियों के यथायोग्य पद नारिकयों के मारिणान्तिक समुद्धातके समय और उपपाद पदके समय भी सम्भव हैं। मात्र दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान हैं, क्यों कि मारिणान्तिक समुद्धातके समय या उपपादपदके समय इनमें से जो जहाँ वैंघती हैं उनका वहाँ अवक्तव्यवन्ध नहीं होता। मनुष्यगितित्रक और तीर्थं कुर प्रकृतिका मारिणान्तिक समुद्धातके समय भी वन्ध होकर मनुष्यों मारिणान्तिक समुद्धात करते समय ही होता है, इसिलिए इन प्रकृतियों के सब पदों की अपेक्षा स्पर्शन लोक के असंख्यात मारिप्रमाण प्राप्त होने वह केत्रके समान कहा है। मिध्यात्वका अवक्तव्यपद छटे नरक तकके नारिकयों के मारिणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, अतः इस अपेक्षा कुछ पाँच वटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। सब नारिकयों अपने अपने स्पर्शनका विचारकर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

पश्प. तिर्येख्वों में पाँच विराण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कपाय, और औदारिकशरीरके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवों का स्पर्शन केत्रके हैं। सातावेदनीय द ण्डकका भङ्ग ओषके समान है। द ओघं। मिच्छ० तिष्णिप० ओघं। अवत्त० सत्तचो०। मणुसाउ० चत्तारिप० लो० असंखे० सव्वलो०।

५१६. पंचिंदियतिरिक्ख ३ धुवियाणं तिण्णिपदा लो० असंखे० सन्वलो०। थीणगिद्धि०३-अहुक०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर ०- उस्सा०-थावर०-सुहुम-पञ्जतापञ्ज०-पत्ते०-साधार०-दूभ०-अणादे०-णीचा०तिण्णिप० लो० असंखे० सन्वलो०। अवत्त० खेत्त०। सादासाद०-चढुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० लो० असं० सन्वलो०। मिच्छ०-अजस० तिण्णिप० लो० असं० सन्वलो०। अवत्त० सत्तचो०। इत्थि० तिण्णिप०दिक्डुचो०। अवत्त० खेत्त०। पुरिस०-दोगदि-सम-

आयु और वैक्रियिक छहका भङ्ग ओघके समान है। मिथ्यात्व के तीन पर्दोका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

चिशेपार्थ—तिर्यक्चों में पाँच ज्ञानावरणादि श्रुवविन्धनी प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्यानगृद्धि आदिके तीन पद एकेन्द्रियादि सबके सम्भव हैं, इसिलए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा भी सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र इनका अवक्तव्य पद जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यक्च इनके अवन्धक होकर पुनः नीचे आकर इनका वन्ध करते हैं उनके होता है। ऐसे तिर्यक्चोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह क्षेत्र के समान कहा है। यहाँ सातावेदनीय दण्डक, दो आयु और वैक्रियक छहका भन्न ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। मिथ्यात्वके तीन पद एकेन्द्रियादि तिर्यक्चोंके सम्भव हैं, इसिलए इनकी अपेक्षा स्पर्शन भी ओघके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्य पद सब तिर्यक्चोंके सम्भव नहीं है, किन्तु जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यक्च मिथ्यात्व में आते हैं उनके ही सम्भव है और सासादन से मारणान्तिक समुद्घात करते समय मिथ्यादृष्टि होकर ऊपर वादर एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते समय होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजु प्रमाण उपलब्ध होता है, इसिलए इस अपेक्षा से यह उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यके चारों पदोंका वन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके सम्भव है, इसिलए इसके चारों पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सव लोकप्रमाण कहा है।

५१६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकका स्पर्शन किया है। स्यानगृद्धित्रिक, आठ कपाय, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, ओदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अयशःकीतिके तीन वदनीय, चार नोकपाय, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ और अश्चभके चार पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अयशःकीतिके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने लुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्थिवेदके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्थिवेदके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

. 1

१. आ॰पतो हुंड॰ पर॰ इति पाठः।

चढु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदे०-उच्चा०तिण्णिप० छचो०। अवत्त० खेत्त०। चत्तारिआउ०-मणुसगदि-तिण्णिजा०-चढुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० चत्तारिप० खेत्त०। पंचिं०-वेउ०-वेउ०अंगो०-तस० तिण्णिप० वारहचो०। अवत्त० खेत्त०। उज्जो०-जस० सन्वप० सत्तचो०। वादर० तिण्णिप० तेरह०। अवत्त० खेत्त०।

है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। पुरुपवेद, दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंके
वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चोदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके
वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। चार आयु, मनुष्यगित, तीन जाति, चार संस्थान,
औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके चार पदोंके वन्धक जीवोंका
स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चिन्द्रयजाति, वैकियिकशारीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके
तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चोदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।
अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उचोत और यशःकीर्तिके सव पदोंके
वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके तीन
पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सव लोकप्रमाण होनेसे इनमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ ध्रुववन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण अन्तकी आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुछघु, डपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय । स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रकारसे ही घटित कर लेना चाहिए। तथा यहाँ स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्रातके समय और उपपाद पदके समय सम्भव न होनेसे इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भाग-प्रसाण और सव लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार मिथ्यात्व आदि दो प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। तथा इन दो प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके मिथ्यात्व पदकी अपेक्षा वतला आये हैं उस अवस्थामें ही सम्भव है, इसिछए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुम कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी स्त्रीवेदका बन्ध होता है, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम डेढ् वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य-पद नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे रपर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें और नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी पुरुषवेद आदिका यथायोग्य वन्ध होता है, अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है पर ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, इसलिए इस पटकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। चार आयु आदिके सव पदांकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एक तो चार आयुओंके सव पद और शेप प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होते। और शेष प्रकृतियांके तीन पद मारणान्तिक समुद्धातके समय होकर भी स्पर्धन छोकके असंख्या-

१. ता० आ० प्रत्योः तस०४ तिण्णिप० इति पाठः ।

५१७. पंचि वितिस्वित्व अपज्ञ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचत० तिण्णिप०लो०असं० सर्व्वलो०।
सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० लो० असंखे० सन्वलो०। इत्थि०पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०आदाव०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे०-उचा० सन्वप० लो० असं०। णवंस०तिरिक्ख०-एइंदि०-हंड०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-थावर०-सुहुभ०-पज्जतापज्ञ०-पत्ते०साधा०-दूभ०-अणा०-णीचा० तिण्णिप० लो० असं० सन्वलो०। अवत्त० खेत्त०।
उज्जो०-जस० चत्तारिप० सत्तचो०। वादर० तिण्णिप० सत्तचो०। एवं सन्वअपज्ञ०-सन्व-

तवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। देवोंमें और नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी पञ्चिन्द्रियजाित आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसिलिए इन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्शन कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनका अवक्तव्य पद नहीं होता, इसिलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर वादर एकेन्द्रियोंमें सारणान्तिक समुद्धातके समय भी उद्योत और यशःकीर्तिके सब पद सम्भव हैं, इसिलिए इनके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। ऊपर सात और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। उपर सात और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुका स्पर्शन करते समय वादर प्रकृतिके तीन पद सम्भव होनेसे इसका तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य पद सम्भव नहीं है, इसिलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१७. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, ओदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव छोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम और अग्रुमके चार पदोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायो-गति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उचगोत्रके सव पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेद, तिर्युद्धगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशकीर्तिके चार पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चोदह राजुप्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन किया है। वादरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चोदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्ति के तीन पदोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक

१. ता॰ प्रती सव्वलो॰ । एवं इति पाठः ।

विगलिंदि०-बादरपुढ०-आड०-तेउ०-बाउ०पज्ञत्ता०बादरपत्ते०पञ्जत्तगाणं च । णवरि तेउ-वाऊणं मणुसगदिचदुकं वज्ञ । वाऊणं जम्हि लोग० असंखेज० तम्हि लोग० संखेज० ।

५१८. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-सोलसक् '-णवुंस०-भय-दु०-तिरिक्ख०-एई-दि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-यण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर०-ग्रुहुम०-पञ्ज०-अपज्ञ०-पत्ते०-साधार०-द्भ०-अणादे०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिप० लो० असं०

पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त और वादर प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर यह स्पर्शन कहना चाहिए। तथा जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ वायुकायिक जीवोंमें छोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण वतलाया है । इस सब स्पर्शनके समय इनके ज्ञानावरणादिके तीन पद और साता-वेदनीय आदिके चार पद सम्भव होनेसे यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पछोन्द्रियतिर्यख-अपर्याप्त पञ्जेन्द्रिय तिर्यञ्जोंमें और मनुष्योंमें जब मारणान्तिक समुद्धात करते हैं तब भी स्त्रीवेद आदिका यथायोग्य वन्ध होता है पर ऐसे जीवोंका स्पर्शन भी छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनके स्त्रीवेद आदिके सब पर्नेंकी अपेक्षा स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ सव एकेन्द्रियोंमें यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धात करते समय नपुंसकवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसिंहए यहाँ इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव लोकप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनके इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इस-लिए इसकी अपेक्षा रपर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मरणान्तिक समुद्धात करते समय इनके उद्योत और यशःकीर्तिके चार पद सम्भव हैं, इसिछए इन दो प्रकृतियोंके चार पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह 'राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार वादरके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण घटित कर छेना चाहिए। पर इसका अवक्तव्य पद मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, अतः इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। जो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त सव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके भी अयश की तिंके तीन पद सम्भव हैं, अतः इस प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। यहाँ सब अपर्याप्त आदि अन्य जितनी मार्गणाएं कही हैं उनमें यह स्पर्शन वन जाता है, इसिंछए उनमें यह स्पर्शन पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सृचना को है। मात्र अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवोंके मनुष्यगति आदि चारका वन्ध नहीं होता, इसिएए इनमें इनका स्पर्शन नहीं कहना चाहिए। तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनमें छोकके असंख्यातवें भागके स्थानमें उक्त स्पर्शन कहना चाहिए।

५१८. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोल्ह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान,

१. ता॰प्रतौ पंचणा॰ णवदंस॰ मिच्छ॰ सोलसक॰, आ॰प्रतौ पंचणा॰ छदंस॰ मिच्छ॰ सोलसक॰ इति पाठः।

सन्वलो० । अवत्त० खेत्त० । सादादिदंडओ मिच्छत्तदंडओ पंचिं०तिरि०भंगो । इत्थि०पुरि०-चदुआउ०-तिगदि-चदुजा०-वेउ०-आहार०-पंचसंठा०-तिण्णिअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाव०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे०-तित्थ०-उच्चा० चत्तारिप०
खेत्तभंगो । उज्जो०-जस० चत्तारिप० वादर० तिण्णिप० सत्तचो० । अवत्त० खेत्तभंगो ।

५१९. देवेसु धुविगाणं तिण्णिप० अद्द-णव०। थीणिगिद्धि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग०-अणादे०-णीचा० तिण्णि-प० अद्द-णव०। अवत्त० अद्दचो०। सादासाद०-मिच्छ०-चढुणोकसाय-उज्जो०-थिरादि-तिण्णियु० सव्वप० अद्द-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुसग०-पंचिं०-पंचसंठा०-

वर्णचतुष्क, तिर्यद्धगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सृक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें आगप्रमाण और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तत्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पद्धोन्द्रिय तिर्यद्धोंके समान है। कीवेद, पुरुषवेद, चार आयु, तीन गति, चार जाति, वैकि- यिकशरीर, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्यङ्कर और उचगोत्रके चार पदोंके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उचोत और यशःकीर्तिके चार पदोंके तथा वादरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेपार्थ—सनुष्यत्रिकमें छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सव छोकप्रमाण स्पर्शन है। इनके पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन वन जानेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। पर यहाँ इनका अवक्तव्य पद सव छोकप्रमाण स्पर्शनके समय सम्भव नहीं है, इसिछए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। कारणका विचार कर कथन कर छेना चाहिए। सातावेदनीयदण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है। यहाँ सातादण्डकसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, र्रात, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका तथा मिथ्यात्वदण्डकसे मिथ्यात्व और अयशःकीर्तिका ग्रहण होता है। इनमें स्त्रीवेद आदिके चारों पद यथायोग्य छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनके समय ही होते हैं, इसिछए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उपर वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी इनके उद्योत और यशःकीर्तिके चार एद और वादरके तीन पद सम्भव हैं, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात वटे चोदह राजुप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें वादर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नहीं होता, अतः इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१९. हिवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुवन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यद्धगित, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यद्धगित्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असाता-

ओरा०अंगो०-छस्संघ०-सणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदे०-उचा० सन्वप० अङ्घो०। तित्थय० तिण्णिप० अङ्घो०। एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो पोसणं घोदन्वं।

५२०. एइंदि०-पुढ०-आउ० १-तेउ०-नाउ० तेसिं चेव वादर-वादरपत्ते० तेसिं चेव अपज्ज० सन्ववणष्किदि-णियोद० सन्वसुहुमाणं च खेत्तभंगो । णवरि मणुसाउ० सन्वाणं तिरिक्खोदं । उज्जो०-जस० सन्वप० सत्तचो० । एवं वादर० । णवरि अवत्त० खेत्त० । अजस० तिण्णिपदा सन्वलो० । अवत्त० सत्तचो० ।

वेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सव पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्लीवेद, पुरुपवेद, दो आयु, मनुष्यगित, पश्लीन्द्रयजाित, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सव पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सव देवोंमें अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंका स्पर्शन कुस कम आठ वटे चौदह राजु व कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण है। प्रुववन्धवाली और स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा तथा सातावेदनीय आदि के चार पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन वन जाता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्य पद एकेद्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव न होनेसे इसकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यहाँ प्रुववन्धिनी प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तराय। छविद आदि के चारों पदोंकी अपेक्षा और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ जो अन्य विशेपता है वह अलगसे जान लेनी चाहिए। सब देवोंका जो अलग-अलग स्पर्शन है उसे समझ कर तदनुसार उनमें भी यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

५२०. एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके वादर, वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और इन सबके अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और सब सूद्रम जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इन सबमें मनुष्यायुका भङ्ग समान्य तिर्यञ्चोंके समान है। उद्योत और यशकीर्तिके सब पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार वादर प्रकृतिका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्य पदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशः कीर्तिके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेपार्थ—यहाँ एकेन्द्रिय और पृथिवीकाय आदिके जितने प्रकार वतलाये हैं उनमें सव प्रकृतियों के सन्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन और क्षेत्रमें अन्तर नहीं होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। मात्र मनुष्यायुके सव पदोंके वन्धक जीव थोड़े होते हैं। इसलिए यहाँ इसके सव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सामान्य तिर्यक्रोंके समान कहा है। उद्योत और यशकीर्तिके सव पद तथा वादर

१. ता० आ॰पत्योः एइंदि॰ हुंड॰ आउ॰ इति पाठः।

५२१. पंचिदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वणा०४-अगु०४-पज्ञ०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० अह० सन्वलो०। अवत्त० खेत्त०। श्रीणगि०२-अणंताणु०४-णवंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग०-अणादे०-णीचा० तिण्णिप० लो० असं० अह० सन्वलो०। अवत्त० अह०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० अह० सन्वलो०। मिन्छत्त० तिण्णिपदा० अहचो० सन्वलो०। अवत्त० अह-वारह०। अपच-क्खाण०४ तिण्णिप० अह० सन्वलो०। अवत्त० छचो०। इत्थि०-पुरिस०-पंचि-पंच-संठा ने औरा०अंगो०-चदुस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे० तिण्णिप० अह-वारह०। अपच-वारह०। अवत्त० अहचो०। णिरय-देवाउ० -तिण्णिजा०-आहार०२ सन्वपदा खेतं।

के तीन पद ऊपर वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव होनेसे यह स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। िकन्तु वादरका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। अयशःकीर्तिके तीन पद उक्त जीवोंके सब अवस्थाओंमें सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। पर इसके अवक्तव्यपदका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। हाँ ये जीव जब ऊपर वादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं तब भी इसका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका भी स्पर्शन कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है।

५२१. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुवन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यद्भगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, तिर्येक्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवों-ने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका रपर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अञ्चभके चार पढ़ोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु-प्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वृन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पछ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, आदारिक आङ्गो-पाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पटोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके

१. आ॰ प्रतौ पुरिस॰ पंच॰ पंचसंठा॰ इति पाठः । २. आ॰ प्रतौ अवत्त ॰ णिरयदेवाउ इति पाठः ।

दोआछ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-उच्चा० सन्वपदा अहचो० । णिरय-देवगदि-दोआणु० तिण्णिप० छचो० । अवत्त० खेत्त० । ओरालि० तिण्णिप० अह० सन्वलो० । अवत्त० वारह० । वेडन्वि०-वेडन्वि०अंगो० तिण्णिप० वारहचो० । अवत्त० खेत्त० । उज्जो०-जस सन्वप० अह-तेरह० । वादर० तिण्णिप० अह-तेरह० । अवत्त० खेत्त० । सुहुम०-अपज्ञ० -साधा० तिण्णिप० लो० असं० सन्वलो० । अवत्त० खेत्त० । अजस० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० । अवत्त० अह-तेरह० । तित्थ०तिण्णिप० अहचो० । अवत्त० खेत्तं । एवं पंचिदियसंगो पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि ति । कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ओघभंगो ।

समान है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिक शरीरके तीन परोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सच छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तीन पर्दोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु ओर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सूद्म, अपर्याप्त ओर साघारणके तीन पट्टोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब छोकप्रमाण चोत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चोत्रके समान है। अयशःकीर्ति के तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन परोंके वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियोंके समान पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचेक्षु-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रयद्विक और त्रसद्विक जीवोंका विहारदिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चीदह राजु और मारणान्तिकपदकी अपेक्षा स्पर्शन सव लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। मात्र इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद इन मार्गणाओंमें ओवके समान होनेसे अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इन मार्गणाओंमें स्त्यानगृद्धि तीन आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है।

१. आ॰ पतौ आदाव उजी॰ सव्यपदा इति पाठः । २. आ॰ प्रतौ अहतेरह॰ अवत्त॰ अहतेरह॰ अपज॰ इति पाटः ।

यहाँ इनका अवक्तव्यपद विहारादिके समय भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्य-पदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पद विहारादिके समय और भारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव होनेसे इनके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण कहा है। अप्रत्याख्या-नावरण चतुष्कके तीन पदोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सव लोकप्रमाण स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान घटित कर छेना चाहिये। तथा जो संयतासंयत आदि मर कर देवोंमें उत्पन्न होते हैं उनके प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्यपद्का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवोंमें विद्वारादिके समय और देवों व नारिकयों के मनुष्यों व तियेचों में मारणान्तिक समुद्धातके समय स्त्रीवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसिछए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। किन्तु मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नरकायु आदिके सव पदींकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। शेप दो आयु और मनुष्यगति आदिके वन्य देवोंमें विहारादिके समय भी सम्भव होनेसे यह कुछ आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। ति बेर मनुष्योंके नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नरकगतिद्विकके और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय देवगतिद्विकके तीन पद सम्भव हैं, लिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा **है।** मात्र ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद् नहीं होता, इसिलए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और सव एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। मात्र मुख्यतासे जो तिर्यंच और मनुष्य मर कर नारिकयों और देवोंमें उत्पन्न होते हैं उनके प्रथम समयमें इसका अवक्तव्यपद होता है, इसिछए इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्येचोंके नारिकयों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी वैक्रियिकद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसिछए इनके तीन परोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पर ऐसे में इनका अवक्तव्यपद सम्भव न होनेसे इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उद्योत और यशःकीतिके सब पदोंका बन्ध विहारादिके समय और नीचे कुछ कम छह राजु व ऊपर कुछ कम सात राजुप्रमाण स्पर्शनके समय भी सम्भव होनेसे इनके सव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार बादर प्रकृतिके तीन पर्नेकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर छेना चाहिए। मात्र ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सूक्ष्मादिके तीन पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह ही है। विहारादिके समय और सव एकेन्द्रियोंमें अयशःकीर्तिके तीन पद सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। तथा इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु यशकीर्तिके समान जान लेना चाहिए। तीर्थं द्वर प्रकृतिके तीन पद विहारादिके समय सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुमाण कहा है। तथा ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद् सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ

५२२. ओरालि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-औरा०-तेजा०-क०- वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० खेत्त०। णवरि मिच्छत्तस्स अवत्त० सत्तचोद्द०। सादादिदंडओ ओधं। सेसं तिरिक्छोधं। ओरा-लियमि० धुविगाणं तिण्णिप० सव्वलो०। सादादिदंडओ ओधं। मणुसाउ० तिरिक्छोधं। देवगदिपंचगस्स सव्वपदा खेत्तभंगो। मिच्छ० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० खेत्त०।

५२३. वेडिव्यका० धुविगाणं तिण्णिप० अद्द-तेरह०। थीणगि०३-अणंताणु० ४-णवुंस०-तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-दूभ०-अणादे०-णीचा० तिण्णिप० अद्द-तेरह०। अवत्त० अद्दचो०। सादासाद०-चढुणोक०-उज्जो०-थिरादितिण्णियु० सव्यप० अद्द-तेरह०। मिच्छ० तिण्णिप० अद्द-तेरह०। अवत्त० अद्द-वारह०। इत्थि०-पुरिस०-

पाँच मनोयोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें यह स्पर्शन अविकल वन जाता है, इसलिए उनमें पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्शन जाननेको सूचना की है। तथा काययोगी आदि मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की
है। इसी प्रकार आगे भी मार्गणाओंमें अपने अपने स्वामित्वको जानकर स्पर्शन घटित कर
लेना चाहिए। जहाँ विशेषता होगी उसका निर्देश करेंगे।

प्राय, भय, जुगुप्सा, ओदारिकशयीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णवतुष्क, अगुरुलघु, डपयात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदांके बन्धक जीवांने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन
किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन
किया है। आवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन
किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। होष सङ्ग सामान्य तियचोंके
समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक
जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके
समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तियचोंके समान है। देवगितपंचकके सब पदोंके बन्धक
जीवोंका स्पर्धन क्षेत्रके समान है। सिध्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्धन झानावरणके

५२३. वैक्रियककाययोगी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुक्का नपुंसकवेद, तियञ्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्थचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोक्षाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चौदह राजुप्रमाण

रें. ताः पतौ अहतेरहरू । अवत्तर अहतेरहरू। अवत्तर इति पाठः क्षा सामान है।

पंचिं०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदे० तिण्णिप० अह-चारह० । अवत्त० अहचो० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदा०-उचा० सव्यप० अहचो० । एइंदि०-थावर० तिण्णिप० अह-णव० । अवत्त० अहचो०। तित्थ० ओघं । वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेत्तभंगो ।

५२४. कम्मइ० धुविगाणं तिण्णिप० सन्त्रलो० । सेसं ओरालियमि०भंगो । णवरि मिच्छ० अवत्त० एकारह० ।

५२५. इत्थिवे० पंचणा०-चढुदंसणा०-चढुसंज०-पंचंत० तिण्णिप० लो० असं० अहचो० सञ्चलो० । थीणगिद्धि०२-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंद०-तिरिक्खाणु०-थावर-द्भग-अणादे०-णीचा० तिण्णिप० अहचो० सञ्चलो० । अवत्त० अहचो० । णिहा-पयला-अहक० १-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-पज्जत-पत्ते०-णिमि० तिण्णिप० अहचो० सञ्चलो० । अवत्त० खेत्त० । [सादासाद०-चढुणोक०-थिरा-

पुरुपवेद, पंचेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, ओदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम आठ वटे चौदह राजु आप खेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्मानुपूर्वी, सातप और उच्चगीत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु अरे कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। विधिद्धर प्रकृतिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओधके समान है। विकिथिकमिश्रकाययोगी, आहारककाय-योगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

५२४. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेप भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-नीचे पाँच राजु और अपर छह राजु इस प्रकार मिथ्यात्वके अवक्तव्यपद्की अपेक्षा कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजु स्पर्शन जानना चाहिए।

पर्पं. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्यानगृद्धित्रक, अनन्तानुवन्धी चतुक्क, नपुंसकवेद, तिर्यचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुभँग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचल, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचलुक्क, अगुरुल्युचलुक्क, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने बुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, स्थिर, अस्थिर,

१. ता॰ मतौ णिहा पयला य॰ (१) अटक॰, आ॰मतौ णिहा पयला य अहकः इति पाटः।

धिर-सुमासुभ० चत्तारिपदा० अहचो० सन्वलो० | भिच्छ० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० | अवत्त० अह-णव० | दोआउ०-इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-छरसंघ०-मणुसाणु-आदाव-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० सन्वपदा अह-चो० | दोआउ०-तिण्णिजा०-आहार०२-तित्थ० सन्वप० खेत्त० | दोगदि-दोआणु० तिण्णिप० छचो० | अवत्त० खेत्त० | पंचि०-अप्पसत्थ०-तस-दूसर० तिण्णिप० अह-चारह० | अवत्त० अहचोद० | ओरालि० तिण्णिप० अह० सन्वलो० | अवत्त० दिवहुचो० | विजिन्व०-वेउन्वि०अंगो० तिण्णिप० वारहचो० | अवत्त० खेत्त० | उज्जो०-जस० सन्वप० अह-णव० | वादर० तिण्णिप० अह-तेरह० | अवत्त० खेत्त० | सहम-अपज्ञ०-साधार० तिण्णिप० लो० असंखे० सन्वलो० | अवत्त० खेत्त० | स्वलस० तिण्णिप० अहचो० । अवत्त० खेत्त० | आत्रस० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० | अवत्त० खेत्त० | आत्रस० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० | अवत्त० खेत्त० | जित्रस० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० | अवत्त० खेत्त० | जित्रस० तिण्णिप० अहचो० सन्वलो० | अवत्त० अह-णवचो० | प्रितिस्थ० ओर्घ ।

शुभ और अञ्चयके चारों पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे. चौदह राजुप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजु और सव छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राज़ और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थह्नरके सव पदांके वन्धक जीवोंका स्परीन क्षेत्रके समान है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवांका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पंचेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगित, त्रस और दुःस्वरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजु और कुछ कम वारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्हापदके वन्धक जीवाने कुछ कम आठ वट चौदह राजुप्रमाणक्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका सर्जून किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ वटें चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशरीर और वैकियिक आङ्गोपाङ्गके तीन परोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राज् सीर कुछ कम नौ वट चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सूद्म, अपयोगिऔर साधार रणके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदें के बन्धक जीवाने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ यटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुपवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान सङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवॉने छोड़के असंख्यातवें भागप्रमाण और इस कम सह यह चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन

५२६. णवंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज० - पंचंत० तिण्णिप० सन्वलो०। पंचदंस०-वारसक०-भय-दु०-तेजा०-क-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० तिण्णिप० सन्वलो०। अवत्त० खेत०। सादादिदंडओ ओवं। मिच्छ० तिण्णिप० सन्वलो०। अवत्त० वारह०। दोआउ०-आहार०२-तित्थ० खेत्तभंगो० मणुसाउ०-वेउन्वियछ० तिरिक्खोवं। ओरालि० तिण्णिप० सन्वलो०। अवत्त० छच्चो०। अवगद० सन्वपग० अज०-अप०-अवत्त० खेत्तभंगो।

किया है। तथा तीर्थद्वर प्रकृतिके वन्धक जीवोंका सङ्ग ओधके समान है।

५२६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पाँच दर्शनावरण, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्घु, उपघात और निर्माणके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओधके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुळ कम वारह वट चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, आहारकिद्दक और तीर्थङ्करके सव पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायु और वैक्रियिक छह्के सव पदोंके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायु और वैक्रियक छह्के सव पदोंके वन्धक जीवों का स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकरारीरके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वट चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके सुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके सुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमें सव प्रकृतियोंके सुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—नीचे छटे नरक तक के नारकी मनुष्य व तिर्यञ्जों में मारणान्तिक समुद्धातके समय तथा तिर्वश्च और मनुष्य अपर वादर एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्धातके समय यदि मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्धं करें तो सब मिलाकर कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन प्राप्त होता है यह देखकर यहाँ मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवो का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पहले औदारिककाययोगमें और वैक्रियिककाययोगमें कुछ कम सात वटे चौदह राजुप्रमाण यह स्पर्शन कह आये हैं सो वहाँ भी ऊपर वादर एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समु-द्वात करा कर ले आना चाहिए। पहले कार्मणकाययोगमें यह स्पर्शन कुछ कम ग्यारह वटे चोवह राजुप्रमाण कह आये हैं। उपर सात राजु तो स्पष्ट हैं। नीचे जो पाँच राजु कहे हैं सो उसका अभिप्राय है कि जो सातवें नरकका नारकी सम्यक्त्व या सासादनसे मिथ्यात्वमें आता है वह मरकर उसी समय कार्मणकाययोगी नहीं हो सकता। यह पात्रता छटे नरक तक हो सम्भव है। आराय यह है कि कार्मणकाययोगके प्राप्त होनेके पूर्व सम्यमें सम्यग्दृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि हो और कामणकाययोगमें मिथ्यादृष्टि हो यह पात्रता छटे नरक तक से मरनेवाले नारकीके ही हो सकती है। यही कारण है कि नीचे यह स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यह तो स्पष्ट है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मर कर नरकके सिवा तीन गतिमें उत्पन्न होता है और इन गतियों में उत्पन्न होने पर क्रमसे दो में औदारिकमिश्रकाययोग और देवों में वैकि-यिकसिश्रकाययोग होता है। तथा इन योगों के रहते हुए ही सिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होने पर प्रथम समयमें मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध भी होता है। यही कारण है कि इन दोनों योगों में

१. ता॰ प्रती चंदुर्स (दंस॰) चंदुर्सज् इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः तिण्णिपं अहतेरहं । अवस॰ इति पाठः ।

५२७. मदि०-सुद० धुविगाणं भुज०-अप्प०-अविह० सव्वलो०। सेसं ओघं। णविर देवगदि—देवाणु० तिण्णिप० पंचचो०। अवत्त० खेत्त०। ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० एकारह०। वेउ०-वेउ०अंगो० तिण्णिप० एकारह०। अवत्त० खेत्त०। विभंगे धुविगाणं तिण्णिप० अह० सव्वलो०। सेसं पंचिदियभंगो। णविर वेउ०छ० मदि०संगो। ओरालि० अवत्त० खेत्त०।

५२८. आभिणि०-सुद्०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-अहक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-

सिय्यात्वके अवक्तव्यपद्का स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आवश्यक समझकर यहाँ यह प्रासंगिक स्पष्टीकरण किया है।

५२% मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में श्रुववन्धवाली प्रकृतियों के सुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद्के वन्धक जीवों ने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेप मङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके तीन पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवों का स्पर्शन किया है। ओवारिकश्रिक तीन पदों के वन्धक जीवों ने सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवों ने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीन पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवों में श्रुववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग पञ्चित्रयों के समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियक छहका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों के समान है। तथा वौद्यिकशरीरके अवक्तव्यका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ — जो तिर्वे ज्य समुख्य देवों में मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके देवगितिहिकता मुजगार, अल्पतर और अवस्थितवन्ध सम्भव है। किन्तु यह सहसार करण तक मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके ही होता है, आगेंके देवों में यह समुद्धात करनेवालेके नहीं, क्यों कि आगेंके देवों में ऐसे मनुष्य और तिर्वे ज्य ही मारणान्तिक समुद्धात करते हैं जो विश्व परिणामवाले होते हैं, अतः इनके इन पदों का स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चौदह राजु-प्रमाण कहा है। तथा देवों में मारणान्तिक समुद्धातके समय देवगितिहिकका नियमसे वन्ध होता है, अतः इनके अवक्तव्य पदके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सभी एकेन्द्रिय जीव ओदारिकशरीरका नियमसे वन्ध करते हैं, अतः इसके तीन पदों के वन्धक जीवों का स्पर्शन सर्वे हैं। जो तिर्वे इं और मनुष्य सासादनमें आकर मरते हैं और विमहगतिमें ओदारिकशरीरका अवक्तव्यवन्ध करते हैं उनके अवक्तव्य वन्धका स्पर्शन कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण उपलब्ध होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। देवगितिहिकके समान चिक्तियकशरीरिहिकका सब पदों की अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसमें नारिकशरीरिहिकका सब पदों की अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसमें नारिकशरीरिहिकका सब पदों की अपेक्षा स्पर्शन चित्रका की अपेक्षा कुछ कम छह राजु स्पर्शन चार सिला लेना चाहिए। इसी कारणासे यहाँ इनके तीन पदों की अपेक्षा सर्वान कुछ कम ग्यारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेप कथन स्पष्ट हो है।

५२८. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवो में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, औदारिक-रारीर, तेजसरारीर, कार्मणरारीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वस्रपंभनाराच वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तंस० ४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उचा०-पंचंत० मुज०-अप्प०-अविद्वि अहचो० । अवत्त० खेत्त०। णवरि मणुसगिद्वपंचग० अवत्त० छचो० । सादासाद०-चदुणोक०-मणुसाउ०-थिरादि-तिण्णियु० चत्तारिपदा० अहचो० । अपचक्खाण०४ तिण्णिप० अहचो० । अवत्त० छचो६० । देवाउ०-आहार०२ ओवं । देवगिद०४ तिण्णिप० छचो० । अवत्त० खेत्त० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग० । मणपज्ञ०-संजद० याव सुहुमसं० खेत्त-भंगो ।

५२९. संजदासंज ध्विगाणं सन्वप छचो । देवाउ ० - तित्थ । सन्वप

संहतन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुंस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थद्वर, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके सुजगार, अत्पतर और अवस्थितपदके वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगित-पद्धकके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलके चारों पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके वन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवों के अहारकद्विकका मङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदों के वन्धक जीवों के हुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यन्दिष्ठ और वेदकसम्यन्दिष्ठ जीवों के जानना चाहिए। मनःपर्ययद्वानी और संयत जीवों से लेकर सूक्ष्म सामरायसंयत तकके जीवों का सङ्ग क्षेत्रके समान है।

निरोपार्थ संयत मनुष्यों के तथा संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यव्य और मनुष्यों के मर कर देवों में उत्पन्न होने पर मनुष्यगतिपञ्चकका अवक्तव्यवन्ध होता है। यतः इनका स्पर्शन कुछ कम छह वट चौद्ह राजुप्रमाण उपलब्ध होता है, अतः यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवों का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर प्रथम नरकमें भी जाते हैं और ऐसे जीवों के भी प्रथम समयमें उक्त प्रकृतियों का अवक्तव्य वन्ध होता है पर इससे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं आता, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। संयत और संयतासंयत जीवों के मर कर देव होने पर अपत्याख्यानावरण चतुष्कका अवक्तव्यवन्ध होता है और इनका स्पर्शन भी कुछ कम छह वट चौद्ह राजुप्रमाण है, अतः इनके अवक्तव्यवन्धका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यद्यपि संयत मनुष्यों के ओर संयतासंयत तिर्यव्य व मनुष्यों के असंयत सम्यग्दृष्टि होने पर भी अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्य वन्ध होता है पर यह स्पर्शन पूर्वोक्त स्पर्शनमें सिम्मिलित है, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२९. संयतासंयत जीवों में ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के सब पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थद्वरके सब

१. ता॰ प्रतो चर्चारिस (पदा)॰ अहचो॰, आ॰ प्रतो चर्चारिस॰ अहचो॰ इति पाठः ।

खेत्तर्थगो । सेसाणं चत्तारिप ० छचो ० । असंजदेसु धुवियाणं तिण्णिप ० सञ्चलो ० । सेसं ओघं ।

५३०. किण्ण-णील-क्राऊणं धुवियाणं तिण्णिप० सन्यलोव । [मिच्छत्त० तिण्णि-पदा० सन्यलोव ।] अवत्तव पं०-चत्तारि-येचोव । दोआउ०-देवगदिदुगं सन्वपदा खेत्तव । सणुसाउ० तिरिक्खोधं । थीणगिव३-अणंताणु०४ तिण्णिप० सन्यलोव । अवत्तव खेत्तव । सादादिदंडओ ओधं । णिरय०-वेउन्विव०- वेउन्विव्अंगोव-णिरयाणु० तिण्णिप० छचत्तारि-वेचोव । अवत्तव खेत्तव । ओरालिव तिण्णिप० सन्यलोव । अवत्तव छचत्तारि-वेचोव । तित्थव तिण्णिप० खेत्तव । काऊए तित्थव णिरयभंगो ।

पदों के वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियों के चार पदों के वन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंयतों में ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग ओधके समान है।

५२०. कृष्ण, नील और कापीत लेक्यामें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदों के बन्धक जीवों ने लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवों ने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजु, कुछ कम चार वटे चौदह राजु और कुछ कम दो वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और देवगतिद्विकके सव पदों का भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तियव्योंके समान है। स्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धीचनुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवों ने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। नरकगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कम दो बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु, चार बटे चौदह राजु और कम दो बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु, चार बटे चौदह राजु और कम दो बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। कापोतलेदियामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—सातवें नरकका नारकी नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है। वहाँ से मरकर अन्य गतिमें उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं वन सकता। यही कारण है कि यहाँ कृष्णलेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कम चार वटे चौदह राजु और कुछ कम दो वटे चौदह राजु क्रमसे पाँचवें और तीसरे नरकसे मर कर और तिर्यख्रों व मनुष्योंमें उत्पन्न होने पर मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध करनेवालोंकी अपेक्षा कहा है। इन लेश्याओंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका इससे अधिक स्पर्शन अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। इसी प्रकार औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका स्पर्शन उक्त लेश्याओंमें ले आना चाहिये। मात्र यह स्पर्शन तिर्यख्रों और मनुष्योंके नरकमें उत्पन्न करा कर प्रथम समयमें प्राप्त

१. आ॰ प्रती ओवं। वेउन्ति॰ इति पाटः। २. आ॰ प्रती अवत्ति॰ खेत्ति॰ ओरालि॰ तिण्णिप॰ सन्तरो॰। अवत्ति॰ उच्चारिवेचोद्दे॰। अवति॰ खेति। ओरालि॰ इति पाटः।

५३१. तेउ० ध्रुवियाणं तिण्णिप० अट्ट-णन०। थीणि।०३-अणंताणु०४णवंस०-तिरिक्स०-एइंदि०-हंड०-तिरिक्साणु०-थावर-द्भग-अणादे०-णीना०
तिण्णिप० अट्ट-णन०। अवत्त० अट्टचो०। सादासाद०-मिच्छ०-चढुणोक०-उज्जो०थिरादितिण्णियु० चत्तारिप० अट्ट-णन०। अपन्तक्साण्०४-ओरालि० तिण्णिप०
अट्ट-णन०। अन्त० दिन्हुचो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचि०-पंच०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०- मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसरआदे०-उन्ना० चत्तारिप० अट्टचो०। देनाउ०-आहार०२-तित्थ० ओर्घ। देनगदि०
४ तिण्णिप० दिन्डुचो०। अन्त० खेत्त०। एवं पम्माए नि। णगरि अपन्यस्वाण०
४-ओरा०-ओरा०अंगो० अन्त० पंचचो०। देनगदि०४ तिण्णिप० पंचचो०।

करना चाहिये। तथा जो तिर्येश्व या मनुष्य मर कर सातवें नरकमें गमन करता है उसके भी यह रण्डान सम्भव है, अतः कृष्ण लेड्यामें यह कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यद्यपि सामान्य नारिकयोंमें तीर्थेङ्कर प्रकृतिके सव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है किर भी यहाँ कृष्ण और नील लेड्यामें क्षेत्रके समान और कापोत लेड्यामें नारिकयोंके समान कहने का कारण यह है कि कृष्ण और नीललेड्यामें नारिकयोंके तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इन लेड्याओंमें केवल मनुष्योंके ही तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए इन लेड्याओंमें तीर्थेङ्कर प्रकृतिके सव पदोंका जो क्षेत्र कहा है उसी प्रकार यहाँ स्पर्शन कहा है। तथा कापोत लेड्यामें नारिकयोंके भी तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए यह नारिकयोंके समान कहा है। होष कथन सुगम है।

५३१. पीतलेश्यामें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने छुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकपाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चार और ओदारिकशरीरके तीन पदाके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवाने कुछ कम डेढ़ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्निवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चिन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहतन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उचगोत्रके चार पदोंके वन्धक जीवांने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु, आहारकद्विक और तीर्थद्वर प्रकृतिका भक्त ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदाँके बन्धक जीवांने डेढ् वटे चोदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार पदालेश्यासे भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरण चार, औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण श्रेत्रका न किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह

अवत्त० खेत्त०। सेसाणं सन्वप० अहचो०।

५३२. सुकाए पंचणा०-छदंस०-अद्दक०-भय-दु०—देवग०—पंचि०-तिण्णि-सरीर-वेड ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४—तस० ४-णिमि०—तित्थ०-पंचंत०

राजुप्रमाण क्षेत्रका रपर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका रपर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—जो पीतलेश्यावाले जीव ऊपर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके उस समय स्त्यानगृद्धि तीन आदिका अवक्तव्यवन्य नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौद्द राजुप्रमाण कहा है। मात्र सातावेदनीय, असातावेदनीय और मिथ्यात्व आदिका अवक्तव्यवन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यहाँ एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्धात करते समय अनन्तानुबन्धीका अवक्तव्यवन्ध नहीं कराया है और मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्थ कराया है। इससे स्पष्ट है कि सासादन गुणस्थानवाला जीव सासादनको प्राप्त करते य प्रारम्भिक कालमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करता और इसिछए वह मर कर एकेन्द्रियोंमें जन्म भी नहीं छेता। किन्तु ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि होकर प्रथम समयमें ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर सकता है यह मिय्यात्वके अवक्तञ्यवन्धके स्पर्शनसे ही स्पष्ट है। पीतलेश्याके साथ तिर्यञ्च मारणान्तिक संगुद्धात करें तो कुछ स्पर्शन कुछ कम देवोंमें मनुष्य यदि वटे चौदह राजुप्रमाण होता है। इसीसे अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कम डेढ़ वटे चौद्ह राजुप्रमाण कहा है। यहाँ संयत मनुष्योंको और संयतासंयत तिर्यख्रों और मनुष्योंको मारणान्तिक समुद्धात करनेके प्रथम समयमें असंयत कराके यह रपर्शन लाना चाहिए। किन्तु ऐसे तिर्यञ्जां और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्धातके समय देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यवन्य नहीं होता, इसिछए इनके अवक्तव्यवन्यका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके पहलेसे ही इन प्रकृतियांका वन्ध होता रहता है। पदालेश्यामें कुछ कम नौ वटे चौदह राजुप्रमाण स्परीन नहीं होता, क्योंकि इस लेर्यावाले जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते, इसलिए कुछ प्रकृतियोंको छोड़-कर इस लेक्यामें शेष सब प्रकृतियोंके सम्भव पद्कि बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जिन प्रकृतियोंके सम्वन्धमें विशेषता है उसका खुळासा इस-प्रकार है-अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध नहीं करनेवाले तिर्युख्य और मनुष्य देवांमें मारणान्तिक समुद्धात करनेके प्रथम समयमें असंयत होकर इनका वन्ध करें यह सम्भव है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच वटे चोदह राजुप्रमाण है, अतः यहाँ इनके अवक्तव्य पदके वन्यक जीवो का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यक्क और मनुष्य देवों में जन्म छेनेके प्रथम समयमें औदारिकद्विकका नियमसे अवक्तव्यवन्य करते हैं और पद्मलेक्यामें ऐसे जीवों का भी रपर्शन ु कम पाँच राजुप्रमाण होता है, अतः यह भी उक्त प्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यवन्थके लिए जो युक्ति पीत लेखामें दी है वहीं यहाँ भी जान लेनी चाहिए। तद्नुसार इनके अवक्तव्यवन्धका स्परान क्षेत्रके समान कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

५३२. गुरुलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, देव-गति, पञ्चेन्द्रियज्ञाति, तीन शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु-चतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके वन्यक जीवाने कुछ तिण्णिप० छचो० । अवत्त० खेत्तभंगो । देवाउ०-आहार०२ सन्वपदा ओघं । सेसाणं सन्वपदा छचो० ।

५३३. अब्भवसि० मदि०भंगो । णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्वं णस्थि ।

५३४. खड्ग०-उवसम० ओधि०भंगो । णवरि अपचक्खाण०४ अवत्त० खेत-भंगो । देवगदि०४-आहार०२ सव्वप० खेत्त० । मणुसगदिपंचगस्स य अवत्त० खेत्त-भंगो । उवसमे तित्थकरं सव्वपदा खेतं ।

कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवायु ओर आहारकद्विकके सब पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों में से चार प्रत्याख्यानावरणको व देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेप सब प्रकृतियों का अवक्तव्यपद उपशमश्रीणमें प्राप्त होता है, प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यपद संयत मनुष्यके संयतासंयत होने पर प्राप्त होता है और देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद संज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य जीवों के प्राप्त होता है, अतः इस पद्की अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि संज्ञी जीवोंका स्पर्शन अधिक है परन्तु इनके देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद स्वस्थानमें ही बनता है और इस अपेक्षासे इनका स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अतः यह भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

433. अमञ्जोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका अवक्तञ्यपद नहीं है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद उन जीवोंके होता है जो अपरके गुणस्थानोंसे उतरकर मिथ्यात्वमें आते हैं। किन्तु अभव्य सदा मिथ्यादिष्ट ही होते हैं, अतः इनके मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका निषेध किया है।

५३४. श्रायिकसम्यक्त और उपरामसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्र समान है। तथा उपरामसम्यक्वमें तीर्थद्वर प्रकृतिके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ— उक्त दोनों सम्यक्तोंमें अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्रव्यपद उन्हीं जीवों के होता है जो अपरके गुणस्थानवाले मनुष्य अविरतसम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः इनके अवक्रव्य-पदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्यों या तिर्थक्कों देव होने पर प्रथम समयमें मनुष्यगति पद्धकका अवक्रव्यपद होता है और उपशमश्रीणसे मरकर देव होने पर उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके प्रथम समयमें मनुष्यगतिपद्धकका अवक्रव्यपद होता है। यतः इन जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इन दोनों सम्यक्तोंमें मनुष्यगति पद्धकके अवक्रव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। तीर्थद्धर प्रकृतिका वन्ध करनेवाले उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातसे अधिक नहीं होते, अतः इसके सव पदोंका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१. आ॰ प्रती अपचन्खाण०४ खेतमंगी इति पाठः।

५३५. सास्मा ध्विमाणं तिण्णिप० अह-नारह०। दीआउ०-मणुसग०-मणुसाणु० उचा० सव्वप० अहचो०। देवाउ० ओवं। देवगदि०४ तिण्णिप० पंचचो०। अवत्त० खेत्त०। सेसं सव्वपदा अह-नारह०। णवरि इत्थि०-पुरिस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुमग-दूम० दोसर-आदे०-अणादे०-णीचा० अवत्त० अहचो०। ओरा०- ओरालि०अंगो० अवत्त० पंचचो०।

५३६. सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिप० अह० । देवगदि०४ तिण्णिप० खेत्त० । सेसाणं सन्वपदा अह० ।

५३५. सांसादनसम्यक्त्वमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के वन्धक जीवाने कुछ कम बाठ वटे चौदह राजु और कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चोत्रिक स्व पदों के वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। देवगित-चतुष्कके तीन पदों के वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगित, सुभग, दुभग, दो स्वर, आदेय, अनादेय और नीचगोत्रके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा औदारिकशरीर औदारिक आद्वोपाङ्गके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा औदारिकशरीर औदारिक आद्वोपाङ्गके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ आयुक्त वन्ध मारणान्तिक समुद्धातके नहीं होता। तथा सासादन-सम्यन्दृष्टि जीव सर कर नर्कमें नहीं जाता और सासादन सम्यन्दृष्टियों के एकेन्द्रियों मारणान्तिक समुद्धात करते समय मनुष्यगितिद्वक व उचगोत्रका वन्ध नहीं होता, इसिलिए यहाँ इन सव प्रकृतियों के सव पदीं के बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्वञ्चोंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय देवगितचतुष्कके तीन पदोंका ही वन्ध होता है। उसमें भी सासादनसम्यन्दृष्टि तिर्वञ्च सहस्रार कल्प तक ही मर कर उत्पन्न होते हैं, अतः यहाँ देवगितचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ पाँच वटे चौदह राजुप्रमाण और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि सासादनसम्यन्दृष्टि मनुष्य सहस्रार कल्पसे आगे भी उत्पन्न होते हैं पर इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अतः तीन पदोंकी अपेक्षा कहे गये उक्त स्पर्शन के समय लाकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अतः तीन पदोंकी अपेक्षा कहे गये उक्त स्पर्शन के समय आवत्वव्यवन्ध नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन आठ वहे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

43६. सन्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुववन्यवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरते ही हैं और न ही इनमें मारणान्तिक

भरे मिच्छा मदिवभंगो। णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्यं णित्य । असणीसु धुवि-गाणं तिण्णप स्ववलोव । सदिदिदंडओ ओघं। दोआउ०-वेउव्छव-ओराव्यंगो खेत्रव । मणुसाउव तिरिक्खोधं । अणाहारव कम्मइनभंगो ।

एवं फोसणं समत

कालाणुगमो ।

५३८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अविह०वंधगा केवचिरं कालादो होदि ? सव्वद्धा। अवत्त० केव० ? ज० ए०, उ० संखेज सम०। थीणगि०३-मिच्छ०-अहक०-ओरा० तिण्णिप० सव्वद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० आविह० असंखे०। दोवेदणीय-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-

संगुद्धात होता है, इसिंछए इनमें देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके अपने अपने पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कका बन्ध तियुद्ध और मनुष्य करते हैं और यहाँ इनका स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५३% मिथ्यादृष्टि जीवाम मत्यद्वानी जीवाके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है। असंज्ञियोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदाके वन्धक जीवाने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भन्न ओघके समान है। दो आयु, विकियकपट्क और औदारिक आङ्गोपाङ्गका भन्न क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुक्ता भन्न सामान्य तिर्यक्ष्त्रोंके समान है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवाके समान मङ्ग है।

निशेषार्थ असंज्ञियोंमें पञ्चीन्द्रय असंज्ञी जीव ही नरकाय, देवायु और वैक्रियकपट्क-का वन्ध करते हैं और नारिकयोंमें व देवामें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण है, इसलिए तो इन आठ प्रकृतियोंके सब पदाँका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है और औदारिक आङ्गोपाङ्गका सब पदाँकी अपेक्षा क्षेत्र ही सब लोक है, इसलिए स्पर्शन तो उतना होगा ही। यह देखकर इसके सब पदाँका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार स्पर्शन समिति हुआ।

कालानुगम ।

प३८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ब्रानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा काल है । अवक्तत्र्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा काल है । अवक्तत्र्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । स्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्य, आठ कपाय और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सर्वदा काल है । अवक्तत्र्यपदके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यात्वें भागप्रमाण है । दो वेदनीय, सात नोकपाय, तिर्यक्षायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक बाहोन

छस्तंठा०-ओरा०अंगो०-छस्तंव०-दोआण०-पर०-उस्ता०-आदाउङ्गो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिपदा सन्बद्धा। तिष्णिआछ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पिढदो० असंखे०। अविह०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवित० असंखे०। वेउ०-छ० भुज०-अप्प० सन्बद्धा। अविह०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवित० असं। एवं तित्य०। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेजस०। आहार०२ भुज०-अप्प० सन्बद्धा। अविह०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेजस०। एवं ओघमंगो कायजोगि-ओरा०-णवंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति।

पाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्यास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि-दस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तीन आयुओं के मुजगार और अल्पतर पदके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तत्र्यपदके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। विक्रियिक छहके भुजगार और अल्पतरपदके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तत्र्यपदके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार तीर्थेंद्धर प्रकृतिकी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तत्र्यपदके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारिक-दिकके भुजगार और अल्पतरपदके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तत्र्यपदके वन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार ओयके समान काययोगी, आदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, अच्छान दशैनी, अव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके प्रारम्भके तीन पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सव जीव करते हैं, इसिंछए इनका सव काल कहा है। मात्र इनका अवक्तव्यपद उपरामश्रेणिसे उतरते समय होता है या उपरामश्रेणिमें मरण कर देव होने पर प्रथम समयमें होता है, इसिंडए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यदि एक समयमें नाना जीव उपशमश्रीण पर आरोहण करके एक साथ अवक्तव्यपद्के पात्र होते हैं तो एक समय होता है और कमसे संख्यात समय तक उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उसी क्रमसे अवक्तव्यवन्थके पात्र होते हैं तो संख्यात समय होता है। मात्र इन प्रकृतियोंमें प्रत्या-ख्यानावरण चार भी हैं सो इनके अवक्तव्यवन्यका काल विरत जीवोंको नीचे लाकर प्राप्त करना चाहिए। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदांका सर्वेदा काळ कहा है उसका कहीं तो पूर्वोक्त कारण है और कहीं उनका किसी न किसीके निरन्तर वन्ध होना कारण हैं। इसलिए यह उस प्रकृति-के वन्य स्वामीका विचार कर छे आना चाहिए। जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल न्यूनाधिक है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—पहुले स्यानगृद्धि आदिके अवक्तव्यपद्का काल एक जीव-की अपेका एक समय वतला आये हैं। यदि नाना जीव इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद करें तो कमसे कम एक समय तक करते हैं, क्योंकि सासादनसे टेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानकी राशि पल्यके असंख्यार्वे भागप्रमाण है। उसमेंसे कुछ जीव यदि मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें आते हैं तो एक समयमें आकर अन्तर भी पड़ सकता है, इसलिए तो इन प्रकृतियों-के अवक्तव्यपदका जयन्य काल एक समय कहा है और यदि निरन्तर मिथ्यात्व आदि गुण-स्थानको प्राप्त होते रहें तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे । इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट काळ आविछके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रत्येक

५३९. तिरिक्खेस धुविगाणं तिण्णिप० सन्बद्धा । सेसं ओधं । एवं ओरालि०मि०-०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारए ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवद्वि० ज० ए०, उ० संखेजस० ।

५४०. अवगद०-सुहुमसंप० सन्वपग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०।

आयुका वन्ध काल अन्तर्मुहूर्त है और इसमें भुजगार आदि तीन पदोंका जघन्य काल एक समय है। साथ ही नारकी, मनुष्य और देवोंका प्रमाण असंख्यात है। यह सब देखकर नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके दो पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीर्थं इर प्रकृतिके अन्य तीन पदोंका काल तो इसी प्रकार है पर अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। वात यह है कि जो तीर्थं इर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य नरकमें उत्पन्न होते हैं या उपशमश्रीण पर चढ़ते हैं उन्हीं के तीर्थं इर प्रकृतिका अवक्तव्य वन्ध होता है। किन्तु ये संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, अतः तीर्थं इर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यही युक्ति आहारकि अवक्तिलय और अवक्तव्यपदके कालके विषयमें जाननी चाहिए। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्रकृतणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

५३९, तिर्युक्रोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। शेष भङ्ग लोघके समान है। इसी प्रकार लोदारिकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभन्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगितपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुद्दते है। अवस्थित और अवक्तन्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ इन मार्गणाओं उपरामश्रोण नहीं होती, इसलिए इनमें श्रुववन्धवाली प्रकृतियों के सव पहों के वन्धक जीवों का काल सर्वदा कहा है। जो सम्यग्दिए तिर्यक्ष और मनुष्य औदारिकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक होते हैं उन्हों के देवगति-पश्चकका इन मार्गणाओं में वन्ध होता है, इसलिये इनमें सुजगार और अल्पतर पदके वन्धक जीवों का जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। एक साथ नाना जीव इन मार्गणाओं को प्राप्त हुए और उन्हों ने एक समय तक सुजगार और अल्पतरपदका वन्ध किया तो जधन्य काल एक समय वनता है तथा निरन्तर क्रमसे यदि नाना जीव इन मार्गणाओं को प्राप्त होते रहते हैं तो इन पदों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त वनता है। परन्तु ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही मार्गणाओं को प्राप्त होते हैं, अतः इन मार्गणाओं में उक्त प्रकृतियों के अवस्थित और अवक्तत्यपदका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि कार्मणकाय-योगमें और अनाहारक मार्गणामें दो दो समयके फरकरों जीवों को प्राप्त कर भुजगार और अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल लाना चाहिये, अन्यथा उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त प्राप्त होना सम्भव नहीं है। शेष कथन सुगम है।

५४०. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्यरायसंयत जीवों में सब प्रकृतियों के भुजगार और

अवगद् अवज्ञ भाग स् , उ ० संसेखस ।

५४१, सन्तपृहंदि०-पुढ०-आउ०-तेउ०-बाउ० तेसिं च सन्त्रसृहुमाणं वादरपृढ०-आउ०-तेउ०-बाउ० तेसिं चेव अपज० सन्त्रवणफादि०-णियोद०-बादरपत्ते० तस्सेव अपज० मणुसाउ० तिरिक्खोधं। सेसाणं सन्वपदा सन्बद्धाः। सेसाणं णिरयादि याव सिण्ण ति जासिं णाणाजीवेहि भंगविचए भयणिजा तासि अप्यप्पणो हिदिसुजगार-भंगो। अवहि०-अवत्त० भयणिजा सेसपदा[ण] भयणिजा याओ ताओ ओधं णिरय-भंगो। एसिं अवत्त० संखेजा तासि ओयं तित्थयरभंगो। यासि सन्वपदा संखेजा आहारसरीरभंगो।

% एवं कालं समत्तं क्ष अंतराणुगमो ।

५४२. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-फ०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अविद्वरिधगंतरं केवचिरं कालादो होदि १ णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं० । थीण-

अल्पतरपद्के वन्यक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है। अप-गतवेदी जीवोंमें अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओं को कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक जीव प्राप्त होते हैं, इसिलये इनमें सब प्रकृतियों के अवस्थित और अवन्तव्यपदका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

५४१. सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन पृथिवी आदि चारांके सब सूक्ष्म, वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवांमें मनुष्यायुका मङ्ग सामान्य तियञ्चोंके समान है। शेप सब प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्धक जीवांका काल सर्वदा है। नरकगतिसे लेकर संज्ञी तक शेप मार्गणाओंमें जिनका नाना जीवोंकी अपेक्षा मङ्गविचय मजनीय है उनका अपने अपने स्थितिवन्धके भुजगारके समान काल है। जिनके अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं तथा शेष पद भजनीय नहीं हैं उनका ओघसे नरकगतिके समान भङ्ग है। तथा जिनके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव संख्यात हैं उनका ओघसे तथिङ्कर प्रकृतिके समान भङ्ग है और जिनके सब पदोंके वन्धक जीव संख्यात हैं उनका ओघसे आधारक श्रीरके समान भङ्ग है।

, इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

५४२. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भग्न, जुगुण्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरूलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार अल्पतर और अवस्थित-पदके बन्धक जीवांका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदके बन्धक

[🤾] आ॰ प्रतो अ तो॰ । अविहे॰ अवतः इति पाठः ।,

गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णिप० णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० रादिंदियाणि । सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगिद्-पंचजा०-छसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्ञो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिप० णित्थ अंतरं । अपचक्खाण०४ तिण्णिप० णित्थ अंतरं । अपत्र ज० ए०, उ० चोह्स रादिंदियाणि । एवं पचक्खाण०४ । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० पण्णारस रादिंदियाणि । एवं पचक्खाण०४ । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० चढुवीसं मृद्धुनं । अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । वेउ०छ० मुज०-अप्प० णित्थ अंतरं । अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं आहार०२ । तित्थ० मुज०-अप्प०-अवद्वि० देवगदिभंगो । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुथतं । ओरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । सेसपदाणं णित्थ अंतरं । एवं आध्रमंगो कायजोगि-ओरा०-णवंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहा- एए ति ।

जीवोंका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। स्यान-गृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंके वन्यक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके चारों पदोंके बन्धक जीवों-का अन्तरकाल नहीं है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंके वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तर्यपदके वन्यक जीवोंका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपद्के वन्यक जीवोंका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। तीन आयुओं के भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौवीस मुहूर्त है। अवस्थितपदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोकप्रमाण है। वैक्रियिकपट्कके भुजगार और अल्पतर पदके वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित-पर्के वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोकप्रमाण है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्भुहुर्त है। इसी प्रकार आहारकद्विकके विषय में जानना चाहिये। तीर्थेह्नर प्रकृतिके भुज-गार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग देवगतिके समान है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवांका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण है। औदारिकशरीरके अव-क्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेप पर्दें वन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, ओदारिक-काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, अचक्षदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेपार्थ—प्रथम दण्डकमें और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके तीन पदोंका निरन्तर वन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके पाया जाता है, इसिल्ये इन पदोंके अन्तर कालका निपेध किया है। मात्र उपशमश्रीणका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्व-

५४३. णिरए तित्थ० ओवं। अथवा अवत्त० ज० ए०, उ० पित्रो० असंखे०। सेसाणं भ्रुज०-अप्प० णित्थ अंतरं। अवट्टि० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा।

प्रमाण है, इसिंछये इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष-पृथक्त्वप्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वमार्गणाका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। तदनुसार सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी इतना ही अन्तर है, अतः स्त्यानगृद्धि तीन आदिके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पदोंका एकेन्द्रिय आदि जीव वन्ध करते हैं, अतः इनके चारों पदोंके अन्तरकालका निपेध किया है। अप्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके अन्तरका निषेध क्षानावरणके समान जानना चाहिये। तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ संयतासंयत गुण-स्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। तदनुसार पाँचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंसे च्युत होकर जीव इतने ही काल तक अविरत अवस्थाकों नहीं प्राप्त होता, अतः अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरातप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उपरामसम्यक्तके साथ विरत जीवका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसका अभिप्राय इतना है कि विरत जीव इतने ही फाल तक विरताविरत गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसल्ए प्रत्याख्याना-वरणके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। नरक, मनुष्य और देवगतिमें यदि कोई भी जीव उत्पन्नन हो तो कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक चौवीस मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता। इसके अनुसार इन आयुओंके वन्धमें भी इतना अन्तर पड़ सकता है, इसलिए इन तीन आयुओं के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और चत्कृष्ट अन्तर चौवीस मुहूर्त कहा है। मात्र इनके अवस्थितपदका परिणामोंके अनुसार अन्तर होता है इसिंछए वह जघन्यरूपसे एक समय और उत्कृष्टरूपसे असंख्यात छोकप्रमाण कहा है। वैक्रियिकपट्कके भुजगार और अल्पतरपदका वन्ध नाना जीव करते ही रहते हैं, इसिछए इनके उक्त दो पदांके अन्तरकालका निपेध किया है। इसी प्रकार तीर्थक्कर और औदारिकशारीरके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके अन्तरकालका निषेध घटित कर छेना चाहिए। तथा वैक्रियिकपट्कके अवस्थितपद्के अन्तरकालको तीन आयुओंके समान घटित कर लेना चाहिए। वैक्रियकषट्क और औदारिकशरीर परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्में होता है। तथा तीर्थेङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें व दूसरे तीसरे नरकमें होता है। उसमें भी उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्वप्रमाण है, इसल्लिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। यहाँ गिनाई गई काययोगी आदि मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

५४३. नारिक्योंमें तीर्थह्नर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। अथवा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण।

अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । थीणगिद्धिदंडओ ओघमंगो । सत्तमाए दोगिद-दो-आणु०-दोगो० थीणगिद्धिमंगो ।

५४४. तिरिक्षेस धुविगाणं भुज०-अप्प०-अवष्टि० णित्थ अंतरं । सेसं ओघं ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अन्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारए ति । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० मासपुध० । अवद्वि० ज० ए०, उ० असंसे० लो० । णवरि तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० वासपुध० ।

अवक्तन्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मात्र सातवीं पृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ—हम पहले ही वतला आये हैं कि तीर्थद्धर प्रकृतिका अवक्तन्यपद नरकमें भी सम्भव है, इसलिए यहाँ ओघ प्रह्मणा वन जाती है। किन्तु एक उपदेश ऐसा भी है कि तीर्थद्धर प्रकृतिका वन्य करनेवाला जांव दूसरे और तीसरे नरकमें अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इस उपदेशके अनुसार तीर्थद्धर प्रकृतिके अवक्तन्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेप प्रकृतियोंका वन्य यहाँ निरन्तर होता है, इसलिए उनके भुजनार और अल्पतर पदके अन्तरका निषेध किया है और अवस्थितपदका अन्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। तथा परावर्तमान या अध्रुववन्धिनी प्रकृतियोंके अवक्तन्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातवें नरकमें तिर्थद्धगति, तिर्थद्धगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका वन्य मिथ्यादृष्टिके तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उचगोत्रका वन्य सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए स्यानगृद्धिके समान भङ्ग वन जाता है।

५४४. तिर्यक्रोंमें ध्रुववन्धवाठी प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद्के बन्धक जीवोंका अन्तरकाठ नहीं है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकिमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन छेश्यावाछे, असव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकिमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतर पद्के बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासप्रथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितपद्का जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोक प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करम्झितके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर विशेषता है।

विशेषार्थ—सम्यन्दृष्टि नारकी, मनुष्य और देव मर कर औदारिकमिश्रकाययगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न हों तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और
अधिकसे अधिक मासप्रथक्तके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, इसिलए इन मार्गणाओंमें देवगितचनुष्कके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासप्रथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा तीर्थद्धर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले नारकी और देव उक्त तीन मार्गणाओंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न होते हैं तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षप्रथक्त्वके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, अतः इन मार्गणाओंमें तीर्थद्धर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जबन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर ५४५. अवगद्र-सुहुमसं० अप्पसत्थाणं भुज०-अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुध्र० । अप्प० ज० ए०, उ० छम्मासं० । पसत्थाणं भुज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । अप्प०-अवत्त ० ज० ए०, उ० वासपुध्र० । सुहुमसं० अवत्त० णत्थि अंतरं ।

५४६. आभिणि०-सुद०-ओघि० मणुसगिद्षंचग०-देवगिद०४ भुज०-अप्प० णित्थ अंतरं । अविद्वि ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुध० । णविर ओघिणा० ज० ए०, उ० वासपुध० । एवं ओघिदं०-सुकले०-सम्मा० खद्दग०-वेदग० । उवसम० एदाओ पगदीओ ज० ए०, उ० वासपुध० । सेसाणं

वर्षप्रथक्त्वप्रमाण कहा है। इसका यह अभिप्राय है कि वर्षप्रथक्त्वके अन्तरसे कोई न कोई जीव तीर्थक्कर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला देव और नरक पर्यायसे आकर इस भूमण्डलको सुशोभित करता है। विदेहोंमें निरन्तर तीर्थक्कर होते हैं, इसलिए यह असम्भव भी नहीं है। फिर भी यहाँ यह प्रथक्त शब्द ७ और ८ का वाची न होकर वहुत्व अर्थको व्यक्त करनेवाला है ऐसा हमें प्रतीत होता है। शेष कथन सुगम है।

५४५. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके सुजगार और अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व-प्रमाण है। अल्पतरपद्के वन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। प्रशस्त प्रकृतियोंके सुजगार पद्के वन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अल्पतर और अवक्तव्य पद्के वन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्वप्रमाण है। मात्र सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपद्के वन्धक जीवोंका अन्तरकाछ नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ पर अप्रशस्त प्रकृतियोंका भुजगार और अवक्तव्यवन्य उपशमश्रेणिमें उत्तरते समय होता है, इसिलए इनके भुजगार और अल्पतर पदके वन्यक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा क्षप्रकृष्टिमें इनका अल्पतरवन्य होता है इसिलए इस पदके वन्यक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। यद्यपि उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय इन प्रकृतियोंका अल्पतर वन्य होता है पर उपशमश्रेणिसे क्षपकश्रेणिका अन्तरकाल कम है, इसिलए यह अन्तर क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा लिया है। प्रशस्त प्रकृतियोंका अन्तर इससे भिन्न प्रकारसे लाना चाहिए। अर्थात् क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा प्रशस्त प्रकृतियोंके भुजगारवन्यका और उपशमश्रेणिकी अपेक्षा इनके अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सूक्ष्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सूक्ष्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका नहीं होता।

५४६. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवामें मनुष्यगतिपद्धक और देवगतिचतुष्कके भुलगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासप्थक्तवप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें जघन्य अन्तर एक सासप्थक्तवप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें जघन्य अन्तर एक लिया अल्पा अन्तर एक सामय उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्थक्तवप्रमाण है। इसी प्रकार अवधिद्यानी, ग्रुक्कवेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, स्वायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण है।

णिरयादि यात्र सिण्णि त्ति अवत्त० अप्पप्पणो द्विदिश्वजगारअवत्तव्वभंगो काद्ववो। सेसपदा कालेण साधेदव्वं। तेऊए देवगदि०४ अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुघ०। ओरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अडदालीसं ग्रहुतं। एवं पम्माए वि। णविर ओरालि०-ओरा०अंगो० अवत्त० ज० ए०, उ० पक्खं०।

एवमंत्रं समत्तं।

भावाणगमो 🐇

५४७. भावाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं सुज्ञ०-अप्प०-

नरकगितसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओं में अवक्तव्यपदका भङ्ग अपने अपने स्थितिबंधके भुजगारके अवक्तव्य भङ्गके समान करना चाहिए। शेष पदोंको कालके अनुसार साध लेना चाहिए। पीतलेश्यामें देवगितचतुष्कके अवक्तव्य पदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रप्ट अन्तर मासप्ट्यक्त्वप्रमाण है। औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रप्ट अन्तर अङ्तालीस मुहूर्त है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर और ओदारिक आङ्गी-पाङ्गके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रप्ट अन्तर एक पक्षप्रमाण है।

विशेषार्थ आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगति-पद्मकके अवक्तव्यपद्की प्राप्ति दो प्रकारसे होती है। प्रथम तो उपरामश्रेणिसे मरकर देव होने पर और दूसरे चतुर्थ गुणस्थानसे मरकर नारकी होने पर या चतुर्थादि किसी भी गुणस्थानसे मरकर देव होने पर । इसका अभिप्राय यह है कि चतुर्थगुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकायप्रयोगका जो अन्तर है वही यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदका अन्तर है। जीवस्थान अन्तर प्ररूपणामें यह जघन्य रूपसे एक समय और उत्कृष्ट रूपसे मासपृथक्त्वप्रमाण वतलाया है। इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपद्का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण लिया गया है। पहले औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यपदका अन्तर वतला ही आये हैं। वहीं यहाँ घटित कर छेना चाहिए। मात्र अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगतिपञ्चक और देव-गतिचतुष्कका यह उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है, क्यांकि कोई अवधिज्ञानी अधिकसे अधिक इतने काल तक चैक्रियिकमिश्रकाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी न हो यह संभव है। अवधिज्ञानीके समान ही उपशमसम्यग्दृष्टिमें यह अन्तर जानना चाहिए। पीत-छेर्यामें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्य पदका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगीके समान ही घटित कर लेना चाहिए। परन्तु पीतलेक्यामें वैकियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहूर्त है, इसलिए यहाँ औदारिकशरीरके अवक्तन्य पदका उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहूर्त कहा है और पद्मलेश्यामें वैकियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर एक पन्नप्रमाण है, इसलिए पद्म-छेर्यामें औदारिकद्विकके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर एक पक्षप्रमाण कहा है। शेष कथन

्रइस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ। 😁

भावातुगंम

५४% भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब

१. ता० प्रतौ णवरि ओराहि० अङ्गो० इति पाठः ।

अवद्धि०-अवत्त०वंधगा ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए ति । एवं भावं समत्तं ।

अपावहुआण्गमो

५४८. अप्पावहुगं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-चण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्व-त्यांवा अवत्त० । अवद्वि० अणंतगु० । अप्प० असंखेजगु० । भुज० विसे० । सादा-साद०-सत्तणोक०-तिणिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०- छस्संघ०-दो-आणु०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० सव्वत्योवा अवद्वि० । अवत्त० असंखेजगुणा । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं तिण्णिआउ०-चेउ-व्वियछ० । आहार०२ सव्वत्योवा अवद्वि० । अवत्त० संखेज०गु० । अप्प० संखे०गु० । भुज० विसे० । तित्य० सव्वत्योवा अवत्त० । अवद्वि० असंखेजगु० । अप्प० असं० ० । भुज० विसे० । एवं ओयमंगो कायजोगि-ओरालि०, णवरि ओरालिए तित्यकरं आहारसरीरमंगो, अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ।

प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंका कौनसा भाव है ? आदियक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम

५४८. अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ द्शेनावरण, मिथ्यात्व, सोलह् कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव अनन्तगुणे है। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार पदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय, असाता-वेदनीय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, आदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रुसादि दस युगल और दो गोत्रके अवस्थित पद्के वन्यक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपर्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपर्के वन्धक जीव असंख्यात्गुणे हैं। इनसे भुजगारपद्के। वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार तीन आयु और वैक्रियिकपटककी अपेक्षा जानना चाहिए। आहारकद्विकके अवस्थितपदके वन्यक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपद्के वन्यक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्यक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। तीर्थं दूर प्रकृतिके अवक्तत्र्यपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपद्के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के चन्यक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपद्के यन्यक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी और आंदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीथेङ्करप्रकृतिका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। तथा ओचके समान ही अचक्षदर्शनी, भन्य आर आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

५४९. णिरए धुवियाणं सन्वत्थोवा अविष्ठि । अप्प० असंखे०गु० । भुज० विसे० । थीणगिद्धिदंडओ ओघं । णविर अविष्ठि० असंखेजगु० । मणुसाउ० आहार-सरीरभंगो । सेसाणं पगदीणं ओघं सादभंगो । एवं सत्त पुढवीसु । णविर सत्तमाए दोगिदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो ।

५५० तिरिक्खेस धुविगाणं सन्तरथोवा अविह । अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसं ओवं। पंचिदियतिरिक्ख० धुविगाणं तिरिक्खोवं। सेसाणं पि एवमेव। णविर अविह ० जिम्ह अणंतगुणं तिम्ह असं०गुणं कादन्वं। पंचिं०तिरि०पज्जत्त—जोणिणीस ओरालि० सादमंगो। पंचिं०तिरि०अपज्ज० धुविगाणं णेरइगभंगो। सेसाणं सन्वरथोवा अविह ०। अवत्त० असं०गु०। [अप्प० असं०गु०।] भुज० विसे०। एवं सन्वअपज्ज०-एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च।

५५१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सन्वत्थोवा अवत्त०। अविद्दि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। दोआउ०-वेउन्वियछ०-आहार०२-तित्थ० आहार-

५४६. नारिकयोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार पदके वन्धक जीव विशेषता है कि यहाँ विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्य पदके वन्धक जीवोंसे अवस्थितपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुका भङ्ग आहारकशारीरके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें दो गित, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ स्यानगृद्धिदण्डकसे स्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्क ये आठ प्रकृतियाँ ही गई हैं।

५५०. तिर्यक्चोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपद्के वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। पक्चेन्द्रियतिर्यक्चोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यक्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि जहाँ अवस्थितपद्के वन्धक जीव अनन्तगुणे कहे हैं वहाँ असंख्यातगुणे कहना चाहिए। पद्मेन्द्रियतिर्यक्च पर्याप्त और पद्मेन्द्रिय तिर्यक्च योनिनियोंमें औदारिकशर्रारका भङ्ग सातावेद्र-नीयके समान है। पद्मेन्द्रियतिर्यक्च अपर्याप्तकोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुज-गारपद्के वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और जीवोंके जानना चाहिए।

५५१. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुष्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके

स०भंगो । साददंडओ ओघं । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि संखेजं कादव्वं । एवं सव्वद्व० । णवरि धुवियाणं अवत्त० णत्थि । सेसाणं 'देवाणं णेरहगभंगो ।

५५२. पंचिदि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अविह० असंखेजगु०। अप्प० असंखेजगु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। पंचिदियपजत्तएसु वि एसेव। णवरि ओरालि० सादभंगो। एवं तस०-तसपज्ज०।

५५३. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-देव०-ओरा०-वेउ०-तेजा०-क०-वेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-वादर-पज्ञ०-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सच्वत्थोवा अवत्त०। अविद्व० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भ्रुज० विसे०। सेसाणं ओद्यं। दोवचि० तसपज्जत्तभंगो। ओरालि०मि० पंचिं०तिरि०-अपज्ञ०भंगो। 'णवरि मिच्छ० अवत्त० ओद्यं०। देवगदि-पंचिंदि० सन्वत्थो० अविद्व०। अप्प० संखेज्जगु०। भ्रुज० विसे०। एवं कम्मइ०-अणाहार०। वेउन्वि०का० देवभंगो। णवरि तित्थ० णिरयभंगो। एवं वेउ०-मि०। आहार०-

वन्यक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु, वैक्रियिकपट्क, आहारकद्विक और तीर्थं द्वर प्रकृतिका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात करना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। शेष देवोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

४५२. पञ्चेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोठह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर वर्णचतुष्क, अगुरुठ्यु, उपघात, निर्माण, तीथङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अविध्यतपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंमें भी यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए।

५५२. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुण्सा, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कामणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थं हुर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। दो वचनयोगी जीवों में त्रसपर्याप्त जीवों के समान भङ्ग है। औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। तथा देवगित और पञ्चेन्द्रियजाति के अवस्थितपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर पदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवों में जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी

आहारिम० सन्बद्धभंगो । णवरि देवाउ०-तित्थ० मणुसि०भंगो ।

५५४- इत्थिवे० पंचणा०-चढुदंस०-चढुसंज०-पंचंत० सव्वत्थो० अविह०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। पंचदंस०-िमच्छ०-वारसक०-भय०-ढु०-तेजा०-क०-वण्ण-४-अगु०४-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त०। अविह० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं सव्वत्थो० अविह०। अवत्त० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। आहारदुगं तित्थ० मणुसि०भंगो। एवं पुरिस०। णविर तित्थ० ओघं।

५५५. णवुंसमे पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० इत्थिभंगो। पंचदंस०-मिच्छ०-वारसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त०। अविद्व० अणंतगु०। अप्प० असं०गु०। भ्रज० विसे०। सेसाणं ओघं। अवगद० अप्पसत्थाणं सव्यत्थो० अवत्त०। भ्रज० संखेजगु०। अप्प० संखेजगु०।

जीवों में देवों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग नारिकयों के समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों में सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवायु और तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियों के समान है।

५५४. स्नीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्यलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके वन्यक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्यक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्यक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हें। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हें। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हें। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हें। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हें। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हें। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आहारक-दिक और तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनयोंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

५५५. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका भङ्ग स्रीवेदी जीवोंके समान है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्घु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हें। प्रशस्त प्रकृतियोंमें अवक्तव्यपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हें। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हें। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हें। इनसे भुजगार

१. ता॰ प्रतौ सव्वत्यो॰ [अवत्त॰]। अवद्वि॰ अप्प॰ इति पाठः।

पसत्थाणं सन्वत्थो० अवत्त०। अप्प० संखेजगु०। भुज० संखे०गु०। एवं सुहुमसं०। णवरि अवत्त० णत्थि।

५५६. कोधे णवुंसगभंगो। साणे पंचणा०-चढुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० सव्वत्थो० अविह०। अप्पद० असं०गु०। ग्रुज० विसे०। पंचदंस०-भिच्छ०-तेरसक०-भय०-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० सव्वत्थो० अवत्त०। अविह० अणंतगु०। अप्प० असं०गु०। ग्रुज० विसे०। सेसं ओवं। एवं मायाए वि। णविर पढमदंडओ पंचणा०-चढुदंस०-दोसंज०-पंचंत०। विदियदंडओ पंचदंस० निमच्छ०-चोह्सक०-भयदु०-ओरा०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०। लोसे एवं चेव। णविर पढमदंडओ पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० सव्वत्थो० अविह०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। विदियदंडओ पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० सव्वत्थो० अविह०। उपप० असं०गु०। भुज० विसे०। विदियदंडओ पंचदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०। उविर ओवं।

५५७. मदि-सुदेसु धुवियाणं सन्वत्थो० अविष्टि० । अप्प०४ असं०गु० । भुज०

पदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपद नहीं है।

५५६. क्रोधकपायमें नेपुंसकवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। मानकपायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संन्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थित पदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, तेरह कषाय, भय, जुगुप्सा औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुछघु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्यक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मायाकपायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तराय रूप है। दूसरा दृण्डक पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, चोदह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरूल्यु, उपघात और निर्माणरूप है। लोभकषायमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके अवस्थितपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर-पद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपद्के वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दूसरा दण्डक पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्सा रूप होकर आगे यह ओघके समान है।

५५% मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें श्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थित पदके वन्यक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे

१. ता. प्रतौ सन्तरथो० [अवत्त०] । अविहे० अप्प० इति पाठः । २. ता प्रतौ विदियदंडओ । ओधं पंचदंस०, आ. प्रतौ विदियदंडओ ओयं । पंचदंस० इति पाठः ।३. ता प्रतौ सन्तरथो० [अवत्त०] ।अविहे० । अप्प० इति पाठः । ४. ता० प्रतौ सन्वरथो० [अवत्त०] । अविहे० अप्प० इति पाठः ।

विसे० । मिच्छ० ओरालि० सेसाणं च ओघं । विभंगे धुविगाणं मदि०भंगो । सिच्छ०-देव०-ओरालि०-वेड०-वेड०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-वाद्र-पञ्ज०-पत्ते० सन्वत्थो० अवत्त० । अविद्वि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसं ओघं ।

५५८. आभिणि०-सुद्०-ओधि० पंचणा०छदंस०-चारसक०-पुरि०-भय-दु०-दोगदि-पंचि०-चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-चङ्जरि०-चण्ण०४-दोआणु०-अगु०४- पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त०। अविदि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सादासाद०-चदुणोक्त०-देवाउ०-धिरादितिण्णियु० ओघं। मणुसाउ०-आहार०२ मणुसि०भंगो। एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइ्ग०-वेदग०-उवसम०। णवरि खइ्गस० दोआउ० आहारसरीरभंगो। उव-सम० आहार०२-तित्थ० मणुसि०भंगो। मणपञ्जव० ओधिभंगो। णवरि संखेङां काद्व्वं। एवं संजद०।

५५९. सामाइ० छेदो० पंचणा०-चढुदंस०-लोभसंज०-उचा०-पंचंत० सन्वत्थो० अविह०। अप्प० संखेजजा०। भुज० विस०। सेसं दोदंस०-तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय-दु० सन्वत्थो० अवत्त०। उविर मणपजन्नभंगो। एवं परिहार०। णविर धुविगाणं

भुजगारपद्के वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्व और औदारिकशरीर तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओधके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। मिथ्यात्व, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, वादर, पर्याप्त ओर प्रत्येकके अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५५८. आभिनियोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीयोमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कपाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, दो गित, पञ्चेन्द्रयज्ञाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपाङ्ग, वज्रपभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुछघु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, देवायु और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायु और आहारकद्विकका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार अवधिद्रश्ती, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि और उपश्चमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग आहारकश्चरीरके समान है। तथा उपश्मसम्यग्दृष्टियोंके आहारकद्विक और तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। सनःपर्ययञ्चानियोंके अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिए। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

५५९. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण, लोभसंच्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेप दो दर्शनावरण, तीन संच्वलन, पुरुपवेद, भय और जुगुप्साके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भक्न है। इसी प्रकार परिहार- अवत्त० णित्य । संजदासंज० अणुदिसमंगो । देवाउ० ओवं । तित्थ० मणुसि०मंगो । असंजदे धुविगाणं तिरिक्खोघं । सेसाणं ओघं । चक्खु० तसपज्जत्तमंगो ।

५६०. किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो । किण्ण०-णील० तित्थ० वेउन्वि०मि० मंगो । काउ० णिरयभंगो तित्थग० । तेउ० देवमंगो । णवरि थीणगि०३-मिच्छ०-त्रार-सक०-देवग०-ओरालि०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० सन्वत्थोवा अवत्त० । अविष्ठ असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । दोआउ० ओयं । मणुसाउ० देवमंगो । आहारदुगं ओघं । एवं पस्माए वि । णवरि ओरा०अंगो० देवगदिभंगो ।

५६१. सुक्काए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-दोगदि-पंचि०-चदु-सरीर-दोअंगो०-चणा४-दोआणु०-अगु०४-तस०-४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सन्वत्थो० अवत्त०। अविद्या असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। दोआउ०-

विद्युद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें अनुदिशके समान भङ्ग है। मात्र देवायुका भङ्ग ओघके समान है। तथा तीर्थेट्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। असंयतोंमें ध्रववन्ध वाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतमें शेष दो दर्शनावरण आदि दण्डकमें जुगुप्सा तक प्रकृतियाँ गिनाई हैं, शेष नहीं गिनाई हैं। वे ये हैं—देवगति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरु-लघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीथङ्कर। इस प्रकार दो दर्शनावरणसे लेकर तीर्थङ्कर तक इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। तथा इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका तथा अन्य सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। यह एक कथनका तात्पर्य है।

५६०. कृष्ण, नील और कापीत लेक्यामें असंयतोंके समान भङ्ग है। मात्र कृष्ण और नीललेक्यामें तीर्थक्करप्रकृतिका भङ्ग वैकियिकिमश्रकाययोगी जीवोंके समान है और कापीत-लेक्यामें तीर्थक्करप्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। पीतलेक्यामें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, वारह कृषाय, देवगति, औदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थक्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पन्तरपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पन्तरपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। आहारकिष्ठकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेक्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकाङ्गोपांगका भङ्ग देवगितके समान है।

५६१. शुक्तलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, पश्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपांग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरु-लघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तन्यपद्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपद्के वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतर पद्के वन्धक

१. ता॰ प्रतौ णित्य स्रंत॰ । संजदासंज॰ इति पाठः ।

आहार-२ मणुसि० भंगो । सेसाणं आणदभंगो ।

५६२. अञ्मवसि० मदि०भंगो । णवरि सिच्छ० अवत्त० णित्य । एवं मिच्छा०-असिण ति । सासण०-सम्मामि० देवभंगो । णवरि अप्पप्पणो धुवपगदीओ परियत्ति-याओ च णादव्याओ भवंति । सण्णी० मण०भंगी । एवं अप्पावहुगं समत्तं ।

एवं भुजगारगंथो समत्तो

पद्गिक्खेदो समुक्तिणा

५६३. एत्तो पद्णिक्खेवे ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगदाराणि । तं जहा-सम्रुक्तित्तणा सामित्तं अप्पावहुगे ति । सम्रुक्तित्तणा दुविधा-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुनि०-ओवे० आदे०। ओघे० सन्वयगदीणं अत्थि उक्तस्सिया बह्वी उक्त० हाणी उक्कस्सगमवहाणं । एवं याव अणाहारए त्ति णेदव्यं । णवरि अवगद्०-सुद्दमसंप० अत्थि उक्क वड्डी उक्क हाणी । एवं जहण्णगं पि ।

एवं समुक्तित्तणा समत्ता

सामित्तं

५६४. सामित्तं दुवि०–जह०–उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-

जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु और आहारकद्विककाः भङ्ग मनुष्यितियोंके समान है। शेप प्रकृतियोंका भंग आनतकल्पके समान है।

५६२. अभन्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी ध्रुवप्रकृतियाँ और परिवर्तमान प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। संज्ञी जीवोंमें सनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अल्पवहुत्व समाप्त हुआ। इस प्रकार भुजगारवन्ध समाप्त हुआ।

पद्निक्षेप सम्रत्कीर्तना

५६३. आगे पदनिक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं। यथा-समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पवहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। चक्रप्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानि है। इसी प्रकार जघन्य समुत्कीर्तना जानना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीतेना समाप्त हुई।

स्वामित्व

५६४. स्वामित्व दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असाता-

तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पस्त्थव० ४-तिरिक्खाणु ०-उप०-थावर०-अथिरादिपंचणीचा०-पंचंत० उक्कस्सिया वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स यो चढुद्वाणिययवमज्झस्स उविर अंतोकोडाकोडिहिदिवंधमाणो अंतोम्रहुतं अणंतगुणाए सेढीए विट्ठित्ण उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्सदाहं गदो तदो उक्कस्सयं अणुभागवंथो तस्स । उक्कसिया हाणी कस्स ? यो उक्कस्सयं अणुभागं वंधमाणो मदो एइंदियो जादो तदो तप्पाओग्गजहण्णए पिट्ठितो तस्स उक्कस्सया हाणी । उक्करसयमवद्वाणं कस्स ? यो उक्कसमं अणुभागं वंधमाणो सामारक्खएण पिट्ठिमेग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पिट्ठितो तस्स उक्करसगमवद्वाणं । एवं हस्स-रदीणं । णविर तप्पाओग्गजहण्णए पिट्ठितो तस्स उक्करसगमवद्वाणं । एवं हस्स-रदीणं । णविर तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो ति भाणिद्व्या । साद०-जस०-उच्चा० उक्क० वट्ठी० कस्स० ? अण्ण० खवगस्स सुहुमसं० चिरमे उक्कस्सगे अणुभागवंथे वद्दमाण-गस्स तस्स उक्क० वट्ठी । उक्क० हाणी कस्स ? यो उवसामयो से काले अकसाई होहिदि ति मदो देवो जादो तप्पाओग्गजहण्णए पिद्दो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवद्वाणं कस्स ? अण्ण० अप्पमत्तसंजदस्स अक्खवग-अणुवसमगस्स सव्वविद्यदस्स अणंतदुगु-णेण वट्ठिद्य अविद्वस्स उक्करसमवद्वाणं । इत्थि०-पुरिस०-तिण्णिजादि-चटुसंटा०-चटु-संघ०-सुहुम-अपञ्ज०-साधार० उक्क० वट्ठी क० ? अण्ण० यो चटुद्वा०यव० उविरं अंतोकोडाकोडिहिदिं वंधमाणो अंतोस्रहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वट्ठित्युण तदो तप्पाओग्ग-

वेदनीय, सिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्येख्नगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्वगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्दृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके उपर अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका वन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा उत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ है और तब उद्घरष्ट अनुसागबन्ध किया है ऐसा अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंको उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। च्त्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव सरकर एकेन्द्रिय हो गया और वहाँ तत्प्रायोग्य जयन्य अनुभागवन्यको प्राप्त हुआ वह उक्त प्रकृतियोंकी चत्कृष्ट हानिका स्वामीहै । चत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? चत्कृष्ट अनुसागका वन्धं करनेवाला जो अन्यतर जीव साकार उपयोगसे निवृत्त होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध करने लगा है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार हास्य और रितका स्वामित्व कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट ऐसा कहना चाहिए। साताबेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक सूचमसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनन्तर समयमें अकपायी होगा कि इसी वीच मर कर देव हो गया और तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट् अवस्थानका स्वामी कौन है ? अक्षपक और अनुपशामक अन्येतर जो अप्रमत्त-संयत सर्वावशुद्धि जीव अनन्तगुणी बृद्धिके साथ अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अव-स्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सृक्म, अपर्याप्त और साधारणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो चतुःस्थानिक यवमध्यके अपर अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका वन्य करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणी श्रीणक्रपसे

१. ता० आ० प्रत्योः ऋणसत्यवि० ४ तिरिक्खाणु० इति पाटः ।

संकिलेसेण तप्पाओग्गडकस्सं गदो तप्पाओग्गडकस्सगं अणुभागं पर्वधो तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स ? यो तप्पाओग्गडकस्सगं अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पंडिमग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्त० हाणी। तस्सेव से काले उक्त० अव-द्याणं । णिरयाउग० उक्क० बड्डी कस्स ? यो तप्पाओग्गजहण्णगादो संकिलेसादो तप्पा-ओग्गडकस्ससंकिलेसं गदो तदो उक्त ० अगुभागं पर्वधो तस्स उ० वड्डी । उक्त० हाणी क॰ ? यो उक्त॰ अणुभा॰ वंधमाणो सागारक्खएण पडिशग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उक्त० अवदाणं। तिण्णिआउ०-आदा० उ० वड्ढी क०? यो तप्पाओग्गजहण्णगादो विसोधीदो उक्तस्सविसोधि गदो तदो तप्पाओग्गउक्क०अणुभागं पर्वधो तस्स उक्क० वहुा । उ० हा० क० ? यो तप्पाओग्गउक्कस्सगं अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उ० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं। णिरयग०-असंप०-णिरयाणु०-अप्पस०-दुस्स० उक्क० बह्बी क० ? यो चढुट्टा०यवमज्झ० उवरिं अंतोकोडा० वंधमाणो उकस्स-संकिलेसेण उक्तस्सयं दाहं गदो तदो उक्तस्सअणुभागवंधो तस्स उक्त० वड्ढी । उ० हाणी कस्स ? यो उक्त० अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिडभगो तप्पाओग्ग-जहण्णए पदिदो तस्स उक्त० हाणी । तस्सेव से काले उक्त० अवट्टाणं । मणुसगदि-

वृद्धिको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंके द्वारा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगके क्षय होनेसे निवृत्त होकर तलायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्क्रप्ट अवस्थान होता है। नरकायुकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्षेशसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्षेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह नरकायुकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्त्रामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुसागका वन्य करनेवाला साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभम्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। तीन आयु और आतपकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य विद्युद्धिसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्य करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रति-भम होकर तत्प्रायोग्य जयन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। नरकगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरक-गत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो चतुः-स्थातिक युवसध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिका वन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट संछेशके द्वारा उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागनन्थ करता है वह उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कोन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका वन्थ करनेवाला जीव साकार उप-योगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट

[्]र. ता॰ प्रती ग्रादाउनो॰ उ॰ वड्डी, ग्रा॰ प्रती ग्रादाउनो॰ वड्डी इति पाठः।

पंचग० उक्क० बड्डी कस्स ? यो जहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्तगं विसोधि गदो तदो उक्क० अणु० पर्वधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी करस ? यो उक्कस्सं अणुभा० वंधमाणो सागारवखएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । देवग०-चेउ०-आहार०-चेउ०-आहार० अंगो०-देवाणु० उक्त० वड्ढी क० ? अण्ण० खवग० अपुन्त्रकरणपरभवियणामाणं वंधचरिमे वद्दमाणगस्स तस्स उक्त० वड्ढी । उक्त० हाणी कस्स ? उवसामयस्स परिवदमाण-यस्स परभवियणामाणं दुसमय०वंधगस्स उक्क० हाणी । उ० अवदा० क० ? अण्ण० अखवग० अणुवसामयस्स सागार-जागार० सन्वविसुद्धस्स अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्डिद्ण अविंदरस तस्स उक्त० अवहाणं । पंचिं०-तेजा०-क०-समच०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०-णिमि०-तित्थ० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्ण० खवग० अपुट्यकर० परभवियणामाणं वंधचरिमे वद्दमाणगस्स तस्स उक्क० बङ्घी । उक्क० हाणी कस्स ? यो उवसामाणं से काले परभवियणामाणं अबंधगो होहिदि त्ति तदो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्त० हाणी। उक्त० अवहाणं सादभंगो । उज्जो० उक्त० वड्ढी क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरहगस्स मिच्छादिद्विस्स सन्त्राहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सन्त्रविसु० अणियद्दि-करणे वहुमाणगस्स से काले सम्यत्तं पडिविजिहिदि त्ति तस्स उक्त० वङ्गी । उक्त०

वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध कर रहा है वह उत्क्रप्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्क्रप्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्क्रप्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट ह। तिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक-आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो क्षपक अपूर्व-करणमें परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके वन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाला जो उपशामक परभव-सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके वन्धके द्वितीय समयमें स्थित है वह उत्कृट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? अक्षपक और अनुपराामक तथा साकार-जागृत और सर्विविशुद्ध अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तराणी श्रेणिरूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्करकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जी अन्य-तर क्षपक जीव अपूर्वकरणमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्ष्कृट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनन्तर समयमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंका अवन्धक होगा कि इसी वीचमें तत्त्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भंग सोतावेदनीयके समान है। उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मिथ्याद्दष्टि, सब पर्या-प्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्विविशुद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव आत्रात्तिकरणमें रहते हुए तदनन्तर समयमें सम्यक्वको प्राप्त होनेवाला है वह उत्कृष्ट वृद्धिका

हाणी कस्स ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए पोरइगस्स मिच्छादिद्विस्स सन्वाहि पज्ज० पज्जत्तग० तप्पाओग्गडकस्सिगादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्सगमवद्वाणं ।

पंचणोक - तिरिक्ख - हुंड - असंपत्त - अप्पसत्यवण्ण - असाद - मिच्छ - सोलसक - पंचणोक - तिरिक्ख - हुंड - असंपत्त - अप्पसत्यवण्ण - छ - तिरिक्खाण - उप - अप्प सत्य - अधिरादि छ - णीचा - पंचंत - उक वड्डी क ? यो चढु इा व्यवमन् सस्स उविरें अंतोको डाको डि हि दिं वंधमाणो अंतो मुहुत्तं अणंत गुणाए से ढीए वड्डि द्ण उक स्सगं दाहं गदो तदो उक्त अणुभागं पवंधो तस्स उक्त वड्डी । उक्त हाणी कस्स ? यो उक्त अणु वंधमाणो सागारक सएण पित्र मणुस - पंचिदि - ओरा - तेजा - कि हाणी । तस्सेव से काले उक्त अवहाणं । साद - मणुस - पंचिदि - ओरा - तेजा - कि समच - ओरा - वंधो - वज्जिर - पसत्य - ४ - मणुसाणु - अगु - ३ - पसत्य - तस - ४ - स्मच - ओरा - वज्जिर - पसत्य - ४ - मणुसाणु - अगु - ३ - पसत्य - तस - ४ - स्मच - ओरा - तिर्थ - उच्चा - उक्त वड्डी हाणी अवहाणं च ओघं मणुसगदि मंगो । इत्थि - पुरिस - दो आउ - चढु संठा - चढु संघ - उज्जो अोध मंगो । हस्स - रिव दे स्तिय दे संगो । [एवं] सत्तमाए । उविरमासु छसु उज्जो तिरिक्खा उभंगो । सेसमेसेव ।

स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? मिथ्याद्यष्टि और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विद्युद्धिको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और वही तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

५६५. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, तिर्येञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त-वर्णचतुष्क, तिर्येख्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तः-कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिका वन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तराणित श्रेणिक्रमसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने-वाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जधन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट 'अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-चतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्जर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थहर और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामीका भङ्ग ओघसे मनुष्यर्गातके समान है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, दो आयु, चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। हास्य और रितका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियोंमें उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। शेप पूर्वीक्त प्रकार ही है।

१. ग्रा॰ प्रतौ सेसमेवमेव इति पाठः।

५६६. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-हुंड०-अप्पसत्य०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्य०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णि वि णेरइयमंगो । सादा०-देवग०-पसत्यसत्तावीसं उचा० तिण्णि वि णेरइयसाद-भंगो । इत्य०-पुरिस०-हस्स-रिद्-तिरिक्ख०-चदुजादि-चदुसंठा०-पंचसं०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ओघं इत्यमंगो । चदुआउ०-आदावं ओघं । मणुसगदिपंचग-उज्जो० तिरिक्खाउभंगो । अथवा वादरतेउ०-वाउ० उज्जो० उक्क० विह्न-हाणि-अवहाणं यदि कीरिद तेसिं सादभंगो तिण्णि वि । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ । णवरि उज्जो० तिरिक्खाउभंगो ।

५६७. पंचिदि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०- एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाण०-उप०-थावर०४-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक० बड्ढी क० १ यो तप्पाओग्गजह०संकिलेसादो उक० संकिलेसं गदो तदो उक० अणुभा० बंघो तस्स उक० बड्ढी। उक० हाणी कस्स० १ यो उक्क० अणुभा० बंघमाणो सागारक्खणण पडिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अबद्वाणं। सादा०-मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा० अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा०

५६६. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नरकगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। सातावेदनीय एक, देवगित आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उचगोत्रके तीनों ही पदोंका भङ्ग नारिकयोंके सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, तिर्यञ्चगित, चार जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका भङ्ग ओघसे स्त्रीवेदके समान है। चार आयु और आतपका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक और उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। अथवा वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव उद्योतको उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानको यदि करता है तो इनके तीनों ही पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है।

५६७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकांमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर चतुष्क, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्यायोग्य जघन्य संक्रेशसे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन हे ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिमन्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्क, वअपर्यमनारीचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

रं ता॰ प्रतौ यदि किरे (कोर) दि तेसिं पि सादमंगो । तिण्णि वि एवं पंचिदियतिरिक्त । र

उक्कः वड्ढा कस्स १ यो जह विसोधीदो उक्कः विसोधि गदो तदो उक्कः अणुः पवंधो तस्स उक्कः वड्ढा । उक्कः हाणी कः १ यो उक्कः अणुभाः वंधमाणो सागारक्खण्ण पिट-भग्गो तप्पाओग्गजहः पिद्दो तस्स उक्कः हाणी । तस्सेव से काले उक्कः अवद्वाणं । इत्थिः पुरिसः -हस्स-रिद-तिण्णिजाः -चदुसंठाः -पंचसंवः —अप्पसत्थः -दुस्सरः तिण्णि वि णाणावरणभंगो । णवरि तप्पाओग्गसंकिलिहो काद्व्यो । दोआउः -आदावः ओवं । उज्जोः तिरिक्खाउभंगो । एवं सव्वअपज्ञत्तगाणं एइंदिः -विगलिः -पंचकायाणं च । णवरि एइंदिएस तेउ-वाउकाइएस उज्जोः सादभंगो ।

५६८. मणुस०३ खवियाणं वड्डि-अवहाणं ओघं देवगदिभंगो। सेसं पंचिदि० तिरि०भंगो।

५६९. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-[सोलसक०-]पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णेरइगमंगो । सेसाणं पि णेरइगमंगो । णवरि आदाउजो० तिरिक्खाउमंगो । भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णि वि देवोघं । सेसाणं पि देवमंगो । णवरि

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट चृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुमागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट चृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुमागका वन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिमग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुस्वरके तीनों ही पदोंका मंग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्षिष्टके कहना चाहिए। दो आयु और आतपका मंग ओघके समान है। उद्योतका मंग तिर्यञ्चायुके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अप्रिकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उद्योतका मंग सातावेदनीयके समान है।

५६८. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंकी वृद्धि और अवस्थानका भंग ओघसे देवगतिके समान है। शेप भंग पञ्चेन्द्रिय तियञ्चोंके समान है।

५६९. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तियञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तियञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका मंग नारिकयोंके समान है। शेप प्रकृतियोंका मंग भी नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आतप और उद्योतका मंग तियञ्चायुके समान है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिपी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तियञ्चगित, एकेन्द्रिय-जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्थञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका मंग सामान्य देवोंके समान है।

असं०-अप्पसत्य०-दुस्त० इत्थिमंगो। सणक्कुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविभंगो। आणद याव उविरमगेवज्ञा ति पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्य०४-उप०-अप्पसत्य०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० बड्ढी कस्स० १ यो तप्पाओग्गजहण्णगादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पवंघो तस्स उक्क० बड्ढी। उक्क० हाणी क० १ यो उक्क० अणुभा०वंघमाणो सागारक्खएण पिंडमग्गो तप्पाओग्गजह० पिंडदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। साददंडओ णिरयमंगो। हित्यवेददंडओ पंचिं०तिरि०अपज्ञ०भंगो। [मणुसाउ० देवोघं।] अणुदिस याव सव्बद्घ ति पंचणा०-छदंस०-असादा०-वारसक०-पुरिस०-अरिव-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० बड्ढी कस्स १ यो जह० संकि० उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पंघो तस्स उक्क० बड्ढी। उक्क० हा० क० १ यो उक्क० अणु० वंघमाणो सायारक्खएण पिंडमग्गो तप्पाओग्गजह० पिंददो तस्स उक्क० बड्ढी। तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। साददंडओ देवोघं। हस्स-रदि० उक्क० बड्ढी क० १ यो तप्पाओग्गजह० अणुभागं वंघमाणो तप्पाओ० जह० संकिलेसादो तप्पा० उक्क० संकिलेसं गदो तप्पाओग्गजह० अणुभागं वंघमाणो तप्पाओ० जह० संकिलेसादो तप्पा० उक्क० संकिलेसं गदो तप्पाओ० उक्क० अणुभागवंघो तस्स उक्क० वड्ढी।

शेप प्रकृतियोंका भंग भी समान्य देवोंके समान है। इतनी विशेपता है कि असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका भंग स्त्रीवेदके समान है। सनत्कुमारसे छेकर सहसार कल्पतकके देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भंग है। आनतकल्पसे लेकर उपरिम यैवेयक तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिसम् होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीयदण्डकका भंग नार्राकयों के समान है। स्त्रीवेददण्डकका भंग तिर्युख अपर्याप्तकोंके समान है। मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सवीर्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कषाय, पुरुपवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अञ्चभ, अयशः-कीर्ति और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जयन्य संक्रेशसे उत्कृष्ट संक्षेत्रको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुमागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जयन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्क्रप्ट हानिका खामी है ।तथा वही अनन्तर समयमें उक्तृष्ट अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय दण्डकका भंग सामान्य देवोंके समान है। हास्य और रतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जवन्य संक्षेत्रासे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्षेत्राको प्राप्त होकर

उ० हा० क० ? यो तप्पा० उक्क० अणु० वंधमाणो सागारक्णएण पडिभगो तप्पा० जह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवटाणं। मणुसाउ० ओघं।

५७०. पंचिं०-तस०२ ओघभंगो । णवरि पंचणा०दंडओ उक्क० वड्डी ओघं० । हाणी अवहाणं सागारक्खएण पिडमग्गो ति भाणिदव्यं । पंचमण०-पंचविच० खिवगाणं पगदीणं मणुसिमंगो । सेसं पंचिं०भंगो । कायजोगि० ओघं । ओरालि० मणुसमंगो । णवरि उज्जो० तिरिक्ख०भंगो । ओरालियमि० पंचणाणावरणादिसंकिलिह्यगदीणं उक्क० बड्डी क० १ यो से काले सरीरपज्जची जाहिदि ति जहण्णगादो संकिलेसादो उक्कस्सगं संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० प्यंघो तस्स उ० वड्डी । उ० हा० क० १ यो उ० अणु० वंधमाणो दुसमयसरीरपज्जितं जाहिदि ति सागारक्खएण पिडमग्गो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । सादादीणं सव्वविसुद्धाणं उक्क० वड्डी क० १ यो जहण्णगादो विसोधीदो उक्क० विसोधिं गदो तदो से काले सरीरपज्जितं जाहिदि ति उक्क० अणु० प्यंघो तस्स उक्क० वड्डी । एवं सेसाणं पि तप्पाओग्ग-संकिलिहाणं तप्पाओग्गाविसुद्धाणं च एसेव आलावो कादव्यो । एवं वेउव्वियमि०-आहारिमस्साणं पि । णविर अप्पप्पणो पगदीओ कादव्याओ । वेउव्व० देवोघं ।

तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है।

५७०. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरणदण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। हानि और अवस्थान जो साकार उपयोगसे प्रतिभन्न हुआ है उसके कहना चाहिए। पाँचों मनोयोगी और पाँचों यचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। काययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यितियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तियुद्धोंके समान है। औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि संक्रिप्ट प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि इसके पूर्व समयमें जघन्य संक्षेत्रसे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव दो समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शरीर पर्याप्तिके समयसे दो समय पूर्व साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनेन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी हैं। सातावेदनीय आदि सर्वविद्युद्ध प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर अगले समयमे शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शरीरपर्याप्तिके समयसे पूर्व समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी तत्प्रायोग्य संक्षिप्ट और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध जीवोंके यही आलाप करना चाहिए। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ करनी चाहिए। वैकियिक

णवरि उज्जो० सत्तमभंगो । आहार० सन्त्रहभंगो ।

५७१. कम्मइ० पंचणा०-णवदं०-असादा '०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० तिरिक्ख '०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पस्त्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस्त्थ०-थावरादि०४-अधिरादिछ०-णोचा०-पंचंत० उक्क० वह्दी क० १ यो 'जहण्णगादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु०वंधमाणो पागारक्खएण पहिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवद्वाणं क० १ अण्ण० वादरएइंदियस्स उक्किस्स्यां हाणि कादूण अवद्विदस्स तस्स उ० अवद्वाणं । सादादीणं पसत्थाणं पगदीणं मणुसगदि-पंचग० उक्कस्सविद्व-हाणी देवोघं। उक्क० अवद्वाणं णाणावरणभंगो। देवगदिपंचग० अवद्वाणं णित्थ। सेसाणं तप्पाओग्गसंकिलिट्वाणं तप्पाओग्गविसुद्धाणं च एसेव आलावो काद्व्यो। णवरि तप्पाओग्गसंकिलिट्व-तप्पाओग्गविसुद्ध ति भाणिद्व्यं। एवं अणाहार०।

५७२. इत्थिवेदे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पस०४—दोआणु०उप०-अप्पसत्थ०-थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी हाणी अवद्वाणं ओघं णिरयगदिमंगो। सादा०-जस०-उचा० उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० खवग० अणियद्विवादरसांपराइगस्स काययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग हैं। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग सातवीं पृथिवीके समान है। आहारककाययोगी जीवोंका भंग सर्वार्थसिद्धिके समान है।

५७१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तियंद्धगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्यादिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तियंद्धगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र ओर पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य संक्षेरासे उत्कृष्ट संक्षेराको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने वाला जो जीव साकार उपयोगका क्ष्य होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर वादर एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट हानि करके अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके और मनुष्यगतिपञ्चकको उत्कृष्ट वृद्धि और हानिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । देवगितपञ्चकका अवस्थानपद नहीं है । रोप प्रकृतियोंका तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध जीवोंके यही आलाप करना चाहिए । इतनी विरोपता है कि तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

५७२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौदर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपचात, अप्रशस्त विद्यायोगति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग ओवसे नरकगतिके समान है। साता-वेदनीय, यशकीर्ति और उचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कोन है ? जो अन्यतर क्षपक जीव

१. ता. प्रती णवदंस० सादा० इति पाटः । २. ग्रा. प्रती सोलसंक० विरिक्त इति पाटः ।

चरिमे उक्तस्सए अणुभागवंधे वद्दमाणगस्स तस्स उक्त० वड्ढी। उक्त० हाणी क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० अणियद्दिवादर०दुसमयं वंध० उ० हा०। अवद्वाणं ओघं। सेसाणं पि खविंगाणं मणुसि०भंगो। सेसाणं पगदीणं पंचिं०तिरि०भंगो। उज्जो० आदावभंगो।

५७३. पुरिसेसु साद०-जस०-उचा० उक्त० वड्ढी अवटा० इत्थि०भंगो। उ० हा० क० १ यो उवसम०अणियद्दी से काले अवंधगो होहिदि त्ति मदो देवो जादो तस्स उ० हाणी। सेसं पंचिंदियपजन्तभंगो। णवरि तिरिक्खाउभंगो।

५७४. णवुंसगे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्य०४-दोआणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अधि-रादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिपदा ओघं णिरयगदिभंगो। खविगाणं इत्थिभंगो। इत्थिवेददंडओ चदुजादीए घेप्पदि। उज्जो० ओघं। सेसं इत्थिभंगो।

५७५. अवगद० अप्पसत्थाणं उक्क० वर्डि क० ? अण्ण० उवसा० परिवद० अणिय० दुचरिमे' वंथादो चरिमे अणुभागवंधे वद्दमाणस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति तस्स उ० वर्डि । उक्क० हा० क० ? अण्ण० खवग० अणिय० पढमादो अणु-भागवंधादो विदिए अणुभा० वद्दमा० तस्स० उ० हाणी । साद०-जस०-उच्चा० उक्क०

अनिवृत्ति वादरसाम्परायके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्हृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्हृष्ट हानिका स्वामी कीन है? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक जीव अनिवृत्ति-करण वादर साम्परायके द्वितीय समयमें वन्ध कर रहा है वह उत्हृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। शेप क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग भी मनुष्यिनियोंके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग आतपके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चिन्द्रिय तियद्भोंके समान है। उद्योतका भङ्ग आतपके समान है।

५७३. पुरुपवेदी जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव अनन्तर समयमें अवन्धक होगा कि अवन्धक होनेके पूर्व समयमें मरकर देव हो गया वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। शेप भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तियञ्चायुके समान भङ्ग है।

५७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, नरकगित, तिर्येद्धगित, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंका भङ्ग ओघसे नरकगितके समान है। क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्वीवेदी जीवोंके समान है। स्वीवेददण्डकको चार जातियोंके साथ प्रहण करना चाहिए। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। शेप भङ्ग स्वीवेदी जीवोंके समान है।

५७४. अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो गिरनेवाल अन्यतर उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव दिचरम समयमें होनेवाले बन्धसे अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागवन्धमें अवस्थित है और जो अगले समयमें सवेदी होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपक प्रथम अनुभागवन्धसे दितीय अनुभागवन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। साता-

१. त्रा. प्रतौ परिवद० दुचरिमे इति पाठः ।

वड्ढी ओघं। उ० हा० क० १ अण्ण० उवसाम० परिवद० सुहुमसं० दुसमयवंध-गस्स तस्स उ० हा०। एवं सुहुमसंपराइ०।

५७६. कोधादि०४ ओघं। णवरि सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० वड्ढी अवहाणंओघं। उ० हा० क० १ अण्ण० यो उवसाम० कोधसंजलणाए से काले अवंधगो होहिदि ति मदो देवो जादो तप्पाओग्गजह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। एवं माणे मायाए। लोमे ओघं।

५७७. मिद-सुदे पहमदंडओ हस्स-रिदंडओ ओघं। सादा० देवगिदिपसत्थ-सत्तावीसं उचा० उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुसस्स सागार—जागार० सन्वविसुद्ध० संजमाभिमुहस्स चिरमे समए उक्कस्सने अणुभागवंधे वट्टमाणस्स तस्स उ० वड्ढी। उ० हाणी क० ? अण्णदरस्स संजमादो परिवदमाणगस्स दुसमयवंधगस्स तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्टाणं क० ? यो तप्पाओग्गउक्क० विसोधीदो सागारक्खएण पिड-भगो तप्पाओ० जह० पिददो तस्स उक्क० अवट्टाणं। एवं संजमाभिमुहाणं। मणुसगिद-पंच० उक्क० वड्ढी क० ? सम्मत्ताभिमुहस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी क० ? सम्मत्तादो परिवद० दुसमयवंध० तस्स उ० हाणी। अवट्टाणं सादभंगो। सेसं

वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्ऋष्ट वृद्धिका स्वामी ओवके समान है। उत्ऋष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाले जिस अन्यतर उपशामकने सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें दूसरे समयमें वन्ध किया है वह उत्ऋष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयतके जानना चाहिए।

५०६. क्रोधादि चार कपायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर उपशामक क्रोधसंज्वलनके वन्धसे अनन्तर समयमें अवन्धक होगा कि मरा और देव होकर तत्यायोग्य जधन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार मान और मायाकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। छोभ-कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

५७०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डक और हास्य-रितदण्डक ओघके समान है। सातावेदनीय, देवगित आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर मनुष्य साकार-जागृत, सर्विवशुद्ध संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? संयमसे गिरनेवाले जिस अन्यतर जीवने दो समय तक वन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर जधन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इस प्रकार संयतके अभिमुख होकर उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके च्युत होकर जिसने दो समय तक वन्ध किया है वह उक्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भन्न सातावेदनीयके

२. ग्रा. प्रतौ कोघसंजलणा वि से इति पाठः ।

ओवं । विभंगे पसत्थाणं मदिर्भंगो । सेसाणं पंचिंदियभंगो ।

५७८. आभिणि०-सुद०-ओथि० पंचणा०-छदंस०-असाद०-चारसक०-पुरिस०-अरिद सोग-भय-दु०-अप्पत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० एक० वर्ही क० ? अण्ण० असंज० सागार-जा० णियमा उक्क०संकिलिहस्स मिच्छत्ताभिमुह० चिरमे एक० अणुभा० वृह्मा० तस्स एक० वर्ष्टी । एक० हाणी क० ? यो तप्पा-ओग्गएकस्सगादो संकिलेसादो पिडभग्गो तप्पाओग्गजह० पिददो तस्स ७० हा० । तस्सेव से काले एक० अवहाणं । हस्स-रदीणं सत्थाणे तिण्णि वि कादच्चाणि । सेसाणं ओवं । मणपञ्जवे पटमदंदओ ओधिणाणिभंगो । णवि असंजमाभिमुह० । एवं हस्स-रदीणं पि । सेसं ओवं । एवं संजद-सामाह०-छेदो० । णवि सामा०-छेदो० साद०-जस०-एचा० एक० वर्ष्टी अवहाणं ओवं । एक० हाणी क० ? अण्ण० एवसाम० परिवद० विदियसमयअणियिहि०संजदाणं । सच्चाणं हाणी मणुसिभंगो । पिरहार० एटमदंदओ मणपञ्जवभंगो । णविर वर्ष्टी सामाहय-च्छेदोवहावणाभिमुहस्स । सेसाणं सत्थाणं काद्व्वं । संजदासंजदे पटमदंद० वर्ष्टी ओधि०भंगो । हाणी अवहाणं सत्थाणं । साददंदओ वर्ष्टी संजमाभिमुह० । हाणी अवहाणं सत्थाणे । असंजदे

समान है। रोप ओघके समान है। विभङ्गज्ञानी, जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। रोप प्रकृतियोंका भङ्ग पछ्रोत्रियोंके समान है।

५७८. आमिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, वारह कपाय, पुरुपवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कोन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि साकार-जागृत है, नियमसे उत्कृष्ट संक्षेत्र परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्दृष्ट हानिका स्वामी कान है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्षेश्से प्रतिभन्न होकर तत्यायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। हास्य और रितके तीनों ही पद स्वस्थानमें करने चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयमके अभिमुख जीवके उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामित्व कहना चाहिए। इसी प्रकार हास्य और रितका भी कहना चाहिए। शेप भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जिस गिरनेवाले उपशामकने अनिवृत्तिकरणमें दो समय तक वन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। यहाँ सब प्रकृतियोंकी हानिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। परिहार-विद्युद्धिसंयत जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वृद्धि सामायिक और छेदोपस्थापनासंयतके अभिमुख हुए जीवके होती है। शेप प्रक्र-तियोंका भङ्ग स्वस्थानमें करना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें प्रथम दण्डककी वृद्धिका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसकी हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं। सातावेद-

१. ता. आ. प्रत्योः ओधिविमंगो इति पाठः।

पहमदंडओ ओवं । साददंडओ मदि०भंगो । णवरि अंसंजदसम्यादिहिस्स कादव्वा । सेसं ओवं ।

५७९. चक्खु दं० तसपज्जत्त भंगो । अचक्खु० ओघं । ओघिदं०-सम्मा०-खइग० ओघि०मंगो । णवरि खइगे पढमदंडए वड्ढी सत्थाणे काद्वा ।

५८०. किण्णाए पहमदंडओ णबुंसगभंगो । साददंडओ णिरयभंगो । इत्थि³०-पुरिस०-हस्स-रिद-चढुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-थावरादि०४ णबुंसगभंगो । देवगदिपंच० उक्क० बड्डी कि० १ यो तप्पा०जह०विसोधिं गदो उक्क० अणु० पवंधो तस्स उक्क०बड्डी । उक्क० हा० क० १ यो तप्पा०उक्क०अणुभा० वंधमाणो सागारक्खएण पिडभग्गो तप्पाओ० ज० पिडदो तस्स उक्क० हा० । तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। सेसं ओघादो साधेद्व्वं।

५८१. णील-काऊणं पढमदंडओ साददंडओ इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-चढुसंठा० चढुसंघ० णिरयभंगो । णिरय०-चढुजादि-णिरयाणु०-थावरादि०४ उक्क० वड्ढी कस्स १ यो तप्पाओग्गजह०संकिलेसादो उक्क०संकिलेसं गदो तदो उ० अणुभा० पवंधो तस्स उक्क० बढ्ढी । उ० हा० क० १ यो उक्क० अणुभा० वंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पा०

नीयद्ण्डककी दृद्धिका स्वामी संयमके अभिमुख हुआ जीव है। हानि और अवस्थान स्व-स्थानमें होते हैं। असंयत जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टिके करना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५७९. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रथम दण्डकमें वृद्धि स्वस्थानमें करनी चाहिए।

५८०. कृष्णलेखामें प्रथम दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। सातावेदनीयदण्डकका मंग नारिकयोंके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थावर आदि चारका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। देवगितपञ्चककी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कीन है ? जिसने तत्प्रायोग्य विश्विद्धको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कोन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जयन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। शेप सब ओयके अनुसार साथ लेना चाहिए।

५८१. नील और कापोत लेखामें प्रथम दण्डक, साता दण्डक तथा स्त्रीवेद, पुरुपवेद, दास्य, रित, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग नारिक्योंके समान है। नरकगित, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कीन है १ जिसने नद्यायोग्य जयन्य संक्षेत्रसे उत्कृष्ट संक्षेत्रको प्राप्त होकर तत्यायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कीन है १ उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो

र. आ. मती संजदानंजिदे पदमदंदको कोचं इति पाटः । २. ता.आ. प्रत्योः सहग० वेद्ग० कोचि० भंगे इति पाटः । ३. ता. प्रती णिरवमंगी । देवगदिपंच० उद्य० इति पाटः । ४. ता. प्रती णवंसक-भंगे । यहो फ० इति पाटः । ५. आ. प्रती कोचेण इति पाटः ।

जह० पिंद्रो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। देवगदि०५ किण्णमंगो। णवरि काऊए तित्थयरं णिरयभंगो। सेसं^२ आउगादीणं ओघादो साधेदव्यं।

५८२. तेऊए पहमदंडओ सोधम्मभंगो। साद० उक्क० वड्डी कस्स १ यो तप्पा०जहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्सगं विसोधी गदो तदो उक्क० अणु० पर्वधो तस्स उक्क०
वड्डी। उ० हाणी क० १ यो उक्क० अणुभा० मदो देवो जादो तदो तप्पाओग्गजह०
पांडदो तस्स उक्क० हाणी। अवद्याणं ओवं। पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४अगु०२-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० साद्भंगो। देवगादि०उक्क० परिहारमंगो। सेसं सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि पदमदंडओ
सहस्सारमंगो। उज्ञो० तिरिक्खाउभंगो। सुक्काए खिनगाणं ओवं। पदमदंडगादि०
आणद्भंगो।

५८३. भवसि० ओवं। अन्भवसि० पढमदंडओ ओवं। साददंडओ णिरयभंगो। पसत्थाणं कादन्वं। णवरि चढुगदि० सन्वविसुद्धो ति। उज्जो० सादभंगो। सेसं ओवं।

जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जयन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। देव-गितपञ्चकका भङ्ग कृष्णलेक्याके समान है। इतनी विशेषता है कि कापोतलेक्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। शेष आयु आदिका भङ्ग ओघके अनुसार साध लेना चाहिए।

५८२. पीतलेक्यामें प्रथम दण्डक सौधर्मकल्पके समान है। सातावेदनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है शिलसने तत्यायोग्य जघन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है शिल्कृष्ट अनुभागवा वन्य करनेवाला जो जीव मर कर देव हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चिन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। देवगितकी उत्कृष्ट बृद्धिका भङ्ग परिहारविद्युद्धिसंयत जीवोंके समान है। शेप भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्मलेक्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक सहस्रारकल्पके समान है। तथा उद्योतका भङ्ग तिर्थञ्चायुके समान है। शुक्क-लेक्यामें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। प्रथम दण्डक आदिका भङ्ग आनतकल्पके समान है।

५८३. भन्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभन्योंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका अङ्ग नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंका करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चारगितके सर्वविशुद्ध जीवके करना चाहिए। उद्योतका भंग सातावेदनीयके समान है। शेष भंग ओघके समान है।

१. आ. प्रतौ देवगदि०५ णवरि इति पाठः । २. ग्रा. प्रतौ णिरयमंगो । किण्णभंगो । सेसं इति पाठः ।

५८४. वेदग० साददंडओ तेउ०भंगो । सेसं ओधि०भंगो । उवसम० ओधि०भंगो । णविर सादा०-जस०-उचा० उक्क० वड्डी क० ? अण्ण० सुहुमसंप० उवसाम० चिरमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी । एवं सन्वाणं उवसामगाणं सादादीणं पसत्थाणं । सासणे पढमदंडओ सन्वसंकिलिट्टस्स । साददंडओ सन्वविसुद्धस्स । पुरिसदंडओ तण्पाओ०संकि० । तिण्णि आऊणि ओघं । सम्मामि० पढमदंडओ उक्क० वड्डी क० ? सम्मत्ताभिमुह० तस्स उक्क० वड्डी । उ० हा० क० ? सम्मत्ताभिमुह० चिमसमय-वंधगस्स तस्स उक्क० हा० । अवट्टाणं सहाणे । साददंडओ उक्क० वड्डी क० ? सम्मत्ताभिमुह० तस्स उक्क० वड्डी । उक्किस्सिया हाणी अवट्टाणं सत्थाणे । मिच्छादिही० मिद्व०भंगो ।

५८५. असण्णीसु अव्भविभागो । णविर पहमदंडए उक्क० वड्डी क० ? यो तप्पाओग्गजह० संकि० उक्क०संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पर्वधो तस्स उक्क० वड्डी । उ० हाणी अवद्वाणं सागारक्खएण पडिभग्गो । आहार० ओघं ।

एवं उकस्ससामित्तं समत्तं

५८६. जहण्णए पगदं। एत्तो जहण्णपदणिक्खेवसामित्तस्स साथणहं अडपद-भूदसमासलक्खणं वत्तइस्सामो। तं जहा—मिच्छादिद्विस्स या अणंतभागफदग-

५८४. वेद्क सम्यक्त्वमें सातावेद्नीय दण्डकका भंग पीतलेक्याके समान है। शेष भंग अविधिन्नानी जीवोंके समान है। उपशमसम्यक्त्वमें अविधिन्नानी जीवोंके समान मंग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है श जो अन्यतर सूक्तमसम्परायिक उपशामक जीव अन्तिम अनुभागवन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार सव उपशामकोंके सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका कहना चाहिए। सासादन सम्यक्त्वमें प्रथम दण्डक सर्वसंक्रिष्टके, सातावेदनीयदण्डक सर्वविद्युद्धके और पुरुपवेदवण्डक तत्प्रायोग्य संक्षिण्टके कहना चाहिए। तीन आयुका भंग ओवके समान है। सम्यग्निथ्यात्वमें प्रथम दण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है श जो मिथ्यात्वके अभिमुख हे वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें वन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख होतर अन्तिम समयमें वन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख होतर अन्तिम समयमें वन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख हे वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है श जो सम्यक्तिक अभिमुख

५८५. असंज्ञियोंमें अभव्योंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिसने तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका स्वामी साकार उपयोगके क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ जीव होता है। आहारकोंमें ओघके समान भंग है।

इस प्रकार उक्टप्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

५८६. जयन्यका प्रकरण है। यहाँ जयन्यपदिनक्षेपके स्वामित्वका साधन करनेके लिए अर्थपदको संक्षेपमें चतलाते हैं। यथा—मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तभागस्पर्दकृद्धि है, संयतकी परिवड्ढी संजदस्स या अणंतभागफदगपरिवड्ढी मिच्छादिद्विस्स या अणंतभागपरिवड्ढी सा अणंतगुणा । एदेण अहपदभूदसमासलक्खणेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० जहण्णिगा वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स उवसा० परिवद० दुसमयसुहुमसं० तस्स जह० वड्डी । जह० हा० क० ? अण्ण० सुहुमसंप० खवगचरिमे जह० अणु० वट्ट० तस्स जह ० हाणी । जह ० अवहा० क० ? अण्ण० अप्पमत्तसं० अक्खवग० अणुवसमग० सागार-जा० सव्वविसुद्धस्स उक्तस्सविसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वङ्किद्ण अवङ्किद्स्स जह० अवङ्घाणं । णिदाणिदा-पचलापचला-थीणागि०-मिच्छ०-अणंताणु० जह० वड्ढी क० ? अण्ण संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा परिवदमाणगस्स दुसमयमिच्छादिहिस्स तस्स जह० वड्ही। ज० हा० कः ? अण्णः मणुसस्स वा ,मणुसीए वा मिच्छादिष्टिः सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत-गदस्स सागार-जा॰ सन्त्रविसु॰ से काले संजमं पडिविजिहिदि ति तस्स ज० हा०। ज॰ अवट्टा॰ क॰ ? अण्ण॰ पंचिदियस्स मिच्छाद्विस्स सन्वाहि पञ्जत्तीहि पञ्जतगदस्स सागार-जा० तप्पाओग्गडकस्सगादो विसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्डिद्ण अवद्विदस्स तस्स जह० अवद्वा०। णिदा-पयलाणं जह० वह्नी अवद्वाणं णाणावरण-भंगो । जह० हा० क० ? अण्ण० खवग० अपुन्वकरणस्स णिद्दा-पयलाणं वंधचरिमे बद्दमा० तस्स जह० हाणी। सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० जह० वड्ढी कस्स ? अण्ण० सम्मादिहिस्स वा मिच्छादिहिस्स वा परियत्तमाणमिज्झम-

ज़ो अनन्तभाग स्पर्धकवृद्धि है तथा मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तभागवृद्धि है वह अनन्तगुणी है। संक्षेपमं कहे गये इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओव और आदेश। ओवसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिस गिरनेवाले अन्यतर उपशामकने सूक्ष्म साम्परायमें दो समय तक वन्ध किया है वह जवन्य वृद्धिका स्वामी है। जवन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक जीव अन्तिम अनुभागवन्धमें अवस्थित हे वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव साकार-जागृत है, सर्वविद्युद्धि है, इत्दृष्ट विद्युद्धसे प्रतिभग्न हुआ है और अनन्तभागदृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव संयमसे, संयमासंयमसे और सुम्यक्त्वसे गिर कर दो समयवर्ती मिथ्यादृष्टि है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कीन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियांसे पर्याप्त, साकार जागृत ओर सर्वविद्युद्ध जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त करेगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव तत्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर अनन्तमागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। निद्रा और प्रचलाकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जीव निद्रा और प्रचलाके वन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान है वह जघन्य हानिका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी जघन्य वृद्धि [हानि और अवस्थान] का स्वामी कौन है ?

परिणामस्स अणंतभागेण विद्धृद्ण विद्धी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमवद्दाणं। अपचक्खाण०४ ज० विद्धी क०? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा परिवद्माणस्स दुसमयअसंजदसम्मादिष्टिस्स तस्स जह० विद्धी। ज० हा० क०? अण्ण० असंज० सव्वाहि पञ्जतीहि पञ्जतगदस्स सागार-जा० सव्विद्धि० से काले संजमं पिट्टविजिहिदि ति तस्स [ज०] हाणी। ज० अवद्या० क०? अण्ण० असंज० सव्वाहि पञ्जतीहि पञ्ज० सागा० सव्विवसु० उक्क०विसोधीदो 'पिट्टभग्गस्स अणंतभागेण विद्धृद्ण अविद्वस्स तस्स ज० अवद्याणं। पचक्खाण०४ ज० विद्धी क०? अण्ण० संजमादो परिवद्माणस्स दुसमयसंजदासंजदस्स ज० विद्धी। ज० हा० क०? अण्ण० संजदासंजदस्स सागार-जा० सव्विवसु० से काले संजमं पिट्टविजिहिदि तस्स ज० हा०। ज० अवद्या० क०? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गउक०विसोधीदो पिट्टमगस्स अणंतभागेण विद्धिद्ण अविद्वस्स तस्स ज० अवद्याणं। चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-दि-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप० ज विद्धी अवद्याणं णाणावरणभंगो। ज० हा० क०? अण्ण० खवग० अपुव्वक० अणियिद्दस्स । णविर अपप्पपणो पाओग्गं णादव्वं। इत्थि०-णव्वंस० ज० विद्धी क०? अण्ण० चदुगिदयस्स पंचि० सिण्ण० मिच्छा० सव्वाहि० सागार-जा० तप्पाओ विद्यो हाइद्ण हाणी

जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव है वह अनन्तभाग वृद्धिरूपसे वृद्धि अनन्तभागहानिरूपसे हानि और इनमेंसे किसी एक जगह अवस्थानका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन हे ? संयमसे और संयमासंयमसे गिरनेवाला जो अन्यतर दो समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व विशुद्ध जो अन्य-तर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानहा स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट विद्युद्धिसे प्रतिभम्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला जो दो समयवर्ती संयतासंयत जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जवन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर संयतासंयत जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। चार संज्वलन, पुरुपवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि अपने अपने प्रायोग्य जानना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जवन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सव पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-जागृत और तत्त्रायोग्य विद्युद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और मिथ्यादृष्टि जीव है वह अनन्तभागृष्टृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागृहानिके द्वारा हानि

१. त्रा॰ प्रतौ संजमादो परिवदमाणस्स इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ वड्डिवूण उ) अ) वहिदस्स, आ॰ प्रतौ वड्डिवूण उविहेदस्स इति पाठः। ३. ता॰ ग्रा॰ः प्रत्योः सागारजा॰ कसाओ॰ इति पाठः।

एकदरत्थमवद्वाणं। अरदि-सोग० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० पमत्त०संज० सागा० तप्पा० विसु॰ अर्णतभागेण विह्निद्ण विद्वी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमवद्दाणं । णिरय-देवाउ० ज० वर्द्धी कः ? अण्ण ० तिरिक्ख ० मणुस ० जहण्णिगाए पञ्जगत्तणिव्यत्तीए णिव्यत्तमाणगस्स सिन्झिमपरिणासस्स अणंतभागेण विह्निदृण विद्वी हाइदृण हाणी एक० अवद्वाणं। तिरिक्त-मणुसाऊणं ज० बङ्घी क० ? अण्ण० तिरिक्त नणुस० जहण्णियाए अपजत्तग-णिन्वत्तीए णिन्वत्तमाणगस्स मिन्झम० अणंतभागेण वहिंदूण वहुदी हाइदूण हाणी एक० अवद्या० । णिरयग०-देवग०ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० भणुस० परि-यत्तमाणमन्त्रिम० अणंतभागेण वहिंदूण बहुी हाइदूण हाणी एक० अवद्वा०। एवं तिण्णिजादि-दोआणु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार०। मणुस० १-छस्संठा०-छस्संघ०-मणु०-साणु०-दोविहा०-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदे०-अणादे०-उच्चा० ज० वर्डि क० ? अण्य च चुरादि भिच्छादि परिय मिन्झम अणंतभागेण बह्दिण बह्दी हाइद्ण हाणी एक० अवद्वा०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० बङ्की क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए पोरइगस्स मिच्छादि० सन्वाहि पञ्ज० सागार-जा० तप्पा०उक्क०-विसोर्धादो पडिभग्गो अणंतभागेण विहृद्ण वह्नी । तस्सेव से काले ज० अवहा० । ज० हा० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढर्वीए मिच्छादि० सन्त्राहि पञ्ज० सागा० सन्त्र-और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। अर्रात और शोककी जघन्य र्राद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जो अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव है वह अनन्त भागवृद्धि के द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। नरकायु और देवायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्ति-मान और मध्यम परिणामवाला ऐसा अन्यतर जो तिर्येख्न और मनुष्य है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्तक निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला जो अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य है वह अनन्तमागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। नरकगित और देवगितकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन हैं ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्येक्च और मनुष्य अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार तीन जाति, दो आनुपूर्वी, सूद्रम अपर्याप्त और साधारणकी अपेक्षा स्वामित्व जानना चोहिए। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय और उचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामो कौन है ? अन्यतर चार गितका पिर्वतिमान मध्यम परिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी और नोचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत ऐसा अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिमम् होकर अनन्तभागवृद्धि करता हुआ जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकारजागृत और सर्वविद्युद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी अनिवृत्तिकरणके

१. ता॰ प्रतौ साद॰ मणुस॰ इति पाठः।

विसु॰ अणियद्विकरणे चिरमे ज॰ अणु॰ वङ्॰ तस्स ज॰ हा॰ । एइंदि॰-श्रावर॰ ज॰ वहुरि क॰ ? अण्ण॰ तिगदि॰ परिय॰मिन्झि॰ अणंतभागेण चिहुद्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकः अवद्वाणं । पंचिं०-तेजा॰-क॰-पसत्थ४-अगु॰३-तस॰४-णिमि॰ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ चहुगदि॰ पंचि॰ सिण्ण॰ मिच्छा॰ सन्वाहि प॰ सागा॰ णियमा उक्तस्ससंकिल्डिस्स अणंतभागेण चिहुद्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकद॰ अवद्वाणं । ओरालि॰-ओरालि॰-अंगो०-उज्जो॰ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ णेरइ॰ वा देवस्स वा मिच्छादिहिस्स सन्वाहि प॰ सागा॰ णिय॰ उक्त॰ संकि॰ अणंतभागेण चिहुद्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकः अवद्वाः । वेउ॰-वेउ॰अंगो॰ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ मणुस॰ पंचिं० तिरिक्स॰-जोणिणीयस्स वा सिण्णि॰ मिच्छादि॰ सन्वाहि पज्ज॰ सागा॰ णियमा उक्त॰ संकि॰ अणंतभागेण चिहुद्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकः अवद्वाणं । आहार॰२ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ अप्पमत्तसं॰ पमत्तामिम्रह॰ सागार॰ सन्वसंकि॰ अणंतभागेण चिहु-द्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकः अवद्वाणं । आदा॰ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ ईसाणंतकप्प॰देवस्स मिच्छा॰ सन्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज॰ सागार-जा॰ णिय॰ उक्त॰-संकिलि॰ अणंतभागेण चिहुद्ण वर्द्धी हाइद्ण हाणी एकः अवद्वाणं । तित्थ॰ ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ प्रमस्स वा सणुसीए वा असंजदसम्मादिहिस्स सन्वाहि एज्ज॰ वर्द्धी क॰ ? अण्ण॰ मणुसस्स वा सणुसीए वा असंजदसम्मादिहिस्स सन्वाहि एज्ज॰

अन्तिम समयमें जघन्य अनुभागवन्य करता है वह जघन्य हानिका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरकी जघन्य बृद्धि किसके होती हैं ? जो अन्यतर तीन गतिका परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानमें अवस्थानका स्वामी होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धि का स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और निसमसे उत्कृष्ट संक्षेशयुक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्त-भागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। औदारिकशरीर, ओंदारिक आंगोपांग और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्दृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानि द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआंगोपांगकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियांसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश-युक्त अन्यतर मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका,अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। आहारकदिककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त प्रमत्तसंयतके अभिमुख अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। आतपकी जवन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियांसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशानकल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जवन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जवन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभन्न हुआ

सागा०-जा० उक्कस्ससंकिलेसादो पिडभग्गस्स अणंतभागेण विह्निद्ण विड्नि । तस्सेव से काले ज० अवट्ठा०। ज० हा० क० १ अण्ण० असंजदसम्मादिद्विस्स सन्वाहि पज्ज० सागा० तप्पा०संकिलि० मिच्छत्ताभिष्ठ० चरिमसमयअसंज० तस्स ज० हाणी।

५८७. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-नारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ० [४-उप०-पंचंत०] ज० वह्ही क० १ अण्ण० असंजद० सन्नाहि पञ्ज० सागार० सन्नित्यु० अणंत०भागेण विहुद्ग वह्ही हाइद्ग हाणी एक० अवद्वाणं । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० वह्ही क० १ अण्ण० सम्मत्तादो परिवद्मा० दुसमय-मिच्छा० तस्स ज० वह्ही । ज० हा० क० १ अण्ण० मिच्छा० सन्नाहि प० सागा० सन्निवि० से काले सम्मत्तं पिडविजिहिदि त्ति तस्स ज० हा० । ज० अवद्वा० क० १ अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०उक्तिस्तगादो विसोधि गदो अणंतभागेण वह्हिद्ण अविद्वदस्स तस्स ज० अवद्वा० । सादासाद०-धिरादितिण्णियु० ओघं । इत्थि०-णवुंस० ज० तिण्णि वि क० १ अण्ण० मिच्छादि० ओघभंगो । अरदि-सोग० ज० क० १ अण्ण० सम्मादिद्विस्स तिण्णि वि० । तिरिक्ख०-मणुसाऊणं ज० वह्ही क० १ अण्ण० मिच्छा० जहण्णिगाए पञ्जत्तणिच्व० णिव्यत्तमा० अणंतभागेण विह्हिष्ण वह्ही हाइद्ण हाणी

अन्यतर असंयत असंयतसम्यग्दिष्ट मनुष्य और मनुष्यिनी अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर असंयतसम्यग्दिष्ट जीव अन्तिम समयमें जघन्य हानिका स्वामी है।

५८७. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर असंयतसम्यग्द्दि जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वसे गिरकर जिसे मिथ्यात्वमें दो समय हुए हैं ऐसा अन्यतर जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मिथ्याद्दष्टि जीव अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करेगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत जो अन्यतर मिथ्याद्दष्टि जीव तत्शायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जवन्य अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भंग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य तीनों ही पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्याद्दिके ओघके समान भंग है। अरित और शोकके तीनों पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यग्दिष्ट तीनों ही पदोंका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका खामी कौन है ? जघन्य पर्याप्ति निवृत्तिसे निवृत्तमान अन्यतर मिथ्याद्दण्ट अनन्त-भागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी

१. ता॰ प्रतौ चरिमे समयं ग्रसंज॰ इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः अप्पसत्य॰ प्रज॰ वहुी॰ इति पाठः ।

एक० अबहाणं। तिरिक्ख०३ ओघं। मणुसगादिदंडओ ओघं। पंचिं०-ओरा० तेजा०-क०-ओरा०अंगो० नपसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वर्ही क० १ अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पञ्ज० सागा०-जा० सव्वसंकि० अणंतभागेण विहृद्ण वर्ही हाइद्ण हाणी एक० अवहाणं। एवं उजो०। तित्थ० ज० वर्ही क० १ अण्ण० असंज० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण विहृद्ण वर्ही हाइद्ण हाणी एक० अवहाणं। एवं छसु पुढवीसु। णवारे तिरिक्ख०३ मणुसगदिभंगो। सत्तमाए मणुसग०-मणुसाणु०-उचा० ज० वर्ही क० १ अण्ण० असंजद० सागार-जा० तप्पाओग्गउकस्ससंकिलेसादो पिडभग्गो अणंतभागेण विहृद्ण वर्ही। तस्सेव से काले ज० अवहाणं। ज० हा० क० १ अण्ण० असंज ० मिच्छत्ताभिसु० तस्स ज० हाणी।

५८८. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अद्वक०-पंचणो०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० विद्वी क० १ अण्ण० संजदासंज ० सागार-जा० सन्वविसु० अणंतभागेण विद्वि-दूण विद्वी हाइदूण हाणी एक० अवद्वाणं। श्रीणगिद्धिदंदओ ओघं। साददंदओ ओघं। इत्थि०-णवुंस० ओघं। अरदि-सोग० ज० विद्वी हाणी अवद्वाणं क० १ अण्ण०

एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। तिर्युख्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्य-गतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जधन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्याद्दष्टि जीव अनन्तभागद्दद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार च्योतका स्वामित्व जानना चाहिए। तीर्थेङ्करप्रहतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार छहों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि विर्येख्वगतित्रिकका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। सातवीं पृथिवोमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी ओर उचगोत्रकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्द्रिष्ट जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्द्रष्टि जीव जघन्य हानिका स्वामी है।

५८८. तिर्येख्नोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी ज्ञान्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संयतासंयत सम्यग्हिए जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा ज्ञान्य वृद्धिका, अनन्तभागवृत्तिके द्वारा ज्ञान्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें ज्ञान्य अवस्थानका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदृण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदृण्डकका भङ्ग ओघके समान है। अरित और शोकको

१. आ॰ प्रती ओरा॰ ओरा॰ ग्रंगो॰ इति पाठः।

संजदासंज । अपचक्खाण ०४ तिण्णि वि ओघं। णविर हाणी संजमासंजमं पिहवर्जन्सस्त । चढुआउ ०-तिण्णिगदि—चढुजा०-छस्संठा०—छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४-मिन्झिछयुगलाणि तिण्णि उच्चा० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० मिन्छादि० पिरय०मिन्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० -णीचा० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० वादरतेउ०-वाउ०जीवस्स सन्वाहि प० अणंतभागेण तिण्णि वि। पंचि०-वेउन्वि०-तेजा०—क०-वेउन्वि०अंगो०—पसत्थ०४-अगु०३—तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० पंचि० सिण्ण० मिन्छा० सागा० सन्वसंकि० अणंतभागेण विहुद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एकदर० अवटाणं। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-आदाउजो० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० पंचि० सिण्ण० मिन्छा० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण विहुद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एकद० अवटाणं। एवं पंचि०तिरिक्ख०३। णविरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयभंगो।

५८९. पंचिं०तिरि०अपञ्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-७प०-पंचंत० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सण्णिस्स सन्वविसु० अणंत-

जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयतासंयत जीव उक्त तीनों पदोंका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीनों ही पदोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि संयमासंयमको प्राप्त होनेवाला जीव जघन्य हानिका स्वामी है। चार आयु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायो गति, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और उचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धि, अनन्त-भागहानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। तिर्येख्नगति, तिर्येद्भगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ अन्यंतर वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभावृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। औदारिकशरीर, ओदारिक-आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रा-योग्य संक्रेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

५८९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोछह कषाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिक्एसे जघन्य वृद्धिका,

१. ता॰ प्रतौ तिण्णिवि॰। तिरिक्खाणु॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ बहुी क॰ १ पंचि॰ इति पाठः।

भागेण बिहुद्ण बड्ढी हाइद्ण हाणी एकद० अबद्घा० । सादासाद०-दोगिद-पंचजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० परिय०मिट्सम० अणंतभागेण बिहुद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एक अबद्घाणं । इत्थि०-णवुंस०-अरिद-सोग० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० तप्पा०विसु० अणंतभागेण बिहुद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एक अबद्घाणं । दोआउ० ओवं । ओरा०-तेजा०-क०-[ओरालि०अंगो०-]पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० पंचिं० सिण्ण० सागा० णिय० उक्क० संकि० अणंतभागेण बिहुद्ण बड्डी हाइद्ण हाणी एक अबद्घा० । पर०-उस्सा०-आदाउजो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण तिण्णि वि । एवं सव्वअपज ०-[सव्वएइंदि०-] सव्व-विगलिं०-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिएसु तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं । तेउ-वाऊणं पि तिरिक्खगदितिगं णाणा०भंगो ।

५९०. मणुस०३ खविगाणं ओषं। सेसं पंचि०तिरि०भंगो। तित्थ० ओषं०। ५९१. देवेसु पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-अरिद-सोग०-[दो]आउ० णिरयभंगो। दोगदि-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-

अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो थानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें ज्ञघन्य अवस्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरित और शोककी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिक्एपसे जघन्यवृद्धिका, अनन्तभाग-हानिरूपसे जवन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमें जवन्य अवस्थानका स्वामो है। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, पञ्चीन्द्रय, साकार-जागृत और नियमसे , उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव अनन्त-भागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमं जघन्य अवस्थानका स्वामी है। परघात, उच्छास, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट जीव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थितरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्युख्यगति, तिर्युख्यगत्यानुपूर्वी और नीच-गोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवाँमें भी तिर्यञ्च-गतित्रिकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

५९०. मनुप्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेप भंग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके समान है। तीर्थहर प्रकृतिका भंग ओघके समान है।

४९१. देवोंमें प्रथम दण्डक, स्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, स्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक और दो आयुर्जोका भंग नारिकयोंके समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह

थावर०-तिण्णियुग०-दोगो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० परियत्तमाणमिन्झम० अणंत-भागेण तिण्णि वि० । पंचिं०-ओरा०अंगो०-तस० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सणक्कुमार याव उविरमदेवस्स मिच्छा० सागा० सन्वसंकि०अणंतभागेण तिण्णि वि० । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क०संकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । आदा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० ईसाणंतदेव० सागा० सन्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । उज्जो० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा० सन्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० । तित्थ० णिरयभंगो । भवण०-वाण०-जोदिसि० सोधम्मीसा० देवोघं । णविर पंचिं०-तस० परि०मिन्झ० अणंतभागेण तिण्णि वि० । ओरालि-सरीरअंगोवंग० तप्पाओग्गसंकिलिद्दस्स तिण्णि वि० ।

५९२. सणक्कुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवनेवज्ञा ति पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णवंस०-अरिद-सोग०-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० मिच्छादि० सागा० सन्वसं०

संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर, तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव क्रमसे अनन्तभागरूप वृद्धि, हानि और अवस्थान रूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्रिप्ट अन्यतर सनत्कुमारसे लेकर उपरिम शैवेयकतकका भिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभाग-बृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका खामी है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्षेरायुक्त जीव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानद्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। आतपकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्वेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों है ही पदोंका स्वामी है। उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागत और सर्वसंक्रेशयुक्त देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। तीर्थं द्वरप्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशानकल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसंके तीनों ही पदोंका स्वामी परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव क्रमसे अनन्तमावृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे होता है। औदारिकशरीर आङ्गोपांगके तीनों ही पदोंका स्वासी तत्प्रायोग्य संक्रिप्ट देव होता है।

५९२. सनत्कुमारसे छेकर सहसार कल्पतक प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत-कल्पसे छेकर नौव प्रवेयकतकके देवोंमं प्रथम दण्डक, स्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अर्रात, शोक और मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्य-गति, पद्धिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य दृद्धिका अणंतभागेण तिण्णि वि०। छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा० मिन्झिमाणि तिण्णियुगलाणि दोगोदस्स च ज० वर्ड्ही कस्स ? अण्ण० मिन्छा० परिय०मिन्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि०। [तित्थ० देवोघं।]

५९३. अणुदिस याव सन्बद्द० त्ति पहमदंदओ साददंदओ अरिद-सोग-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० बह्हो क० १ अण्ण० सागा० सन्बसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि० ।

५९४. पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायओगि० ओघं। ओरालि० ओघं। णविर तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं। ओरालि०मि० पढमदंडओ सम्मादिद्विस्स। थीण-गिद्धिदंडओ पंचिं० सिण्णि० सव्विवसु०। तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं। एवं सेसा० ओघभंगो। णविर से काले सरीरपञ्जित्तं जाहिदि ति भाणिदव्वं। वेडव्वि० देवोघं। णविर तिरिक्खगदितिगं ओघं। वेडव्वियमि० पढमदंडओ सम्मादिद्विस्स। थीण-गिद्धिदंडओ मिच्छादि० सागा० सव्विवसु० से काले सरीरपञ्जित्तं जाहिदि ति अणंत-

स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्व संक्षेत्रयुक्त अन्यतर देव कमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भंग सामान्य देवोंके समान है।

५९३. अनुिंदशसे छेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें प्रथम दण्डक, सातावेदनीय दण्डक, अरित, शोक और मनुष्यायुका मंग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्यगित, पञ्चेन्द्रियजाति, अ.दारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआंगोपांग, वज्जर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुछघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंद्धर और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर साकार-जागृत और सर्व संक्षेशयुक्त देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है।

५९४. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसिंद्वक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव है। स्यानगृद्धिदण्डकका स्वामी पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और सर्वेविशुद्ध जीव है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भंग भोघके समान है। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह स्वामी है ऐसा कहना चाहिए। वैकियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव है। जो मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्वविशुद्धि जीव अनन्तर

र. ता॰ प्रती सेसा॰ । ग्रोधि॰ ग्रोघं णवरि सेस (से) काल (ले) सरीरपजर्ति, आ॰ प्रती सेसा॰ ग्रोधिमंगो । णवरि से काले सरीरपजर्ति इति पाठः । भागेण तिण्णि वि० । सेसं देवोघभंगो । आहार०-आहारमि० सन्बद्धभंगो । कम्मइ० पढमदंडओ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चढुगदि० सम्मादि० । सेसाणं देवभंगो । एवं अणाहारए ति ।

५९५. इत्थिवेदे मदंडओ अणियद्विखनग०। थीणगिद्धिदंडओ ओघं। साद-दंडओ तिगदियस्स। अट्ठक० ओघं। इत्थि०-णवंस० तिगदि०। अरदि-सोगं ओघं। चढुआउ-दोगदि-तिण्णिजा०-दोआणु०-थावरादि०४—आहार२-तित्थ० ओघं०। दोगदि-एइंदि०-छस्संठाण-[छस्संघ०-दोआणु०-] दोविहा०—मिन्झिल्लतिण्णियु०-दोगो० तिगदि०। पंचिं०-वेउन्वि०-वेउन्वि०अंगो०-तस० ज० वड्डी क० १ अण्ण० दुगदिय० सन्वसंकि०। ओरा०-[ओरालि०अंगो०-] आदाउजो० ज० वड्डी क० १ अण्ण० देवीए संकिलिट्ठ०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०२-वादर-पज्रत्त-पत्ते०-णिमि० ज० वड्डी क० १ अण्ण० तिगदिय० तप्पा०संकिलि०। [सेसं ओघं।] पुरि-सेस पढमदंडओ इत्थिवेदभंगो। सेसं पंचिंदियभंगो। णवरि तिरिक्खगदितिगं मणुसिभंगो।

५९६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो । दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-थावरादिध-

समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अनन्तर अवस्थानरूपसे स्त्यानगृद्धिदण्डकके तीनों ही पदोंका स्वामी है। शेष भंग सामान्य देवोंके समान है। आहारक-काययोगी और आहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जयन्य वृद्धिका स्वामी कीन है श अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भंग देवोंके समान है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

५९५. स्त्रीवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव है। स्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका स्वामी तीन गतिका जीव है। आठ कपायोंका भङ्ग ओघके समान है। स्रीवेद और नपुंसकवेदका स्वामी तीन गतिका जीव है। अरित और शोकका भङ्ग ओघके समान है। चार आयु, दो गित, तीन जाित, दो आनुपूर्वी, स्थावर आदि चार, आहारकिहक और तीर्थेट्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। दो गित, एकेन्द्रियजाित, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रके तीनों पदोंका स्वामी तीनों गितका जीव है। पञ्चेद्रियजाित वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? सर्वसंक्षिष्ट अन्यतर दो गितका जीव तीनों पदोंका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? सर्वसंक्षिप्ट अन्यतर देवी तीनों पदोंकी स्वामी है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट अन्यतर तीन गितका जीव तीनों पदोंका स्वामी है। शेष भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्थेच्च-गितित्रकका भंग मनुष्यितियोंके समान है।

५९६. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथमदण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चारके तीनों पदोंके स्वामी परिवर्तमान मध्यम

हुगद्यि तिरिक्ख मणुस परिय मिन्सिम १ । मणुसगदिदं छो तिगद्यि । तिरिक्ख ०३ ओघं। पंचिं ० —तेजा ० -क ० -पसत्य ०४ -अगु ०३ -तस४ -णिमि० तिगदियस्स सन्यसंकि । ओरालि० -ओरा० अंगो० छजो० णेरइग० सन्वसंकि०। वेउ० —वेउ० अंगो० ओघं। आदावं दुगदिय ०। सेसं ओघं।

५९७. अवगद्वेदे पहमदंडओ ओघं। साद०-जस०³-उचा० ज० वही क० १ अण्ण० विदियसमयअवगद्वेदे०। ज० हा० क० १ अप्प० उपसाम० परिवद० दुसमय०³सहुमसंप०। एवं सहुमसंप०। कोघादि०४ पहमदंडओ इत्थिभंगो। सेसं ओघं।

५९८. मदि०-सुद० पहमदंडओ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मणुसस्स संजमादो परिवदमाणस्स दुसमथवंथस्स तस्स ज० वड्ढी । ज० हा० क० ? अण्ण० मणुसस्स सागा० सन्वविसु० संजमाभिष्ठ० चिरमे अणु० वट्ट० तस्स ज० हाणी । ज० अवट्टा० कस्स० ? अण्ण० पंचि० सण्णि० सन्वाहि प० तप्पा०उक्क०विसोधीदो परिभगस्स अणंतभागेण वड्ढिद्ण अवद्विदस्स तस्स ज० अवट्टा० । सादादिदंडओ ओयं चढुगदि-यस्स । सेसाणं पि ओयं । एवं विभंग० ।

परिणामवाले दो गतिके तिर्ये और मनुष्य हैं। मनुष्यगतिदण्डक तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। तिर्ये अगतित्रिकका भंग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु त्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिप्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशारीर, औदारिक आंगोपांग और उद्योतके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिप्ट नारकी है। वैक्रियिकशारीर और वैक्रियिकआंगोपांगका भंग ओघके समान है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी दो गतिका जीव है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

५९% अपगतवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेददीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर द्वितीय समयवर्ती अपगतवेदी जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशमश्रीणिसे गिरनेवाला द्वितीय समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। क्रोध आदि चार कषायवाले जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्वीवेदी जीवोंके समान है। शेप भङ्ग ओघके समान है।

५९८ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिर कर द्वितीय समयमें वन्य करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य वृद्धिका स्वामी है । जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविद्युद्ध और संयमके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें अनुभागवन्य करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य हानिका स्वामी है । जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और तत्यायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिसे प्रतिभन्न हुआ जो अन्यतर पञ्चित्र्य संज्ञी जीव अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय आदि दण्डकका मङ्ग चार गतिके जीवके ओवके समान है । शेप प्रकृतियोंका भङ्ग भी ओवके समान है । इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए ।

१. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः मणुस॰ ३ परिय॰मञ्ज्ञिम॰ इति पाठः । २. ता॰ ग्रा॰-प्रत्योः ग्रोघं । सुद॰ जस॰ इति पाठः । ३ ग्रा॰प्रती ग्रण्ण॰ उवसमपदम॰ दुसमय॰ इति पाठः ।

५९९. आभिणि०-सुद०-ओधि० पढमदंडओ ओघं। सादासाद०-थिरादितिण्णियु० चढुगदि०। सेसाणं पि संजमाभिग्रहाणं ओघं। मणुसगदिपंचग० ज०
वड्ढी क० ? अण्ण० देव० णेरह० गा० तप्पा०उक्कस्तसंकिलेसादो पिडमग्गस्स
अणंतभागेण विड्ढिद्ण अविड्ढिद्स्स। तस्सेव से काले ज० अवद्वाणं। ज० हा० क० ?
अण्ण० सागा० उक्क०संकि० मिच्छत्ताभिग्र० चिरमे अणु० वट्ढ० तस्सेव ज० हाणी।
मणुसाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० देव-णेरइ० जहण्णियाए पञ्जत्तिण्वक्तीए ज०
परिय०मिन्झम० [अणंतभागेण विड्ढिद्ण वड्ढी] हाइद्ण हाणी एकद० अवद्वाणं।
देवाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० ज० पञ्जत्तिण्व० ज०
परियमिन्झम०। देवगदि०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुसस्स मणुस
गिद्मंगो। पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०तस०४-सुमगसुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चढुगदि० तिण्णि वि
मणुसगदिगंगो। एवं ओधिदंसणि-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादिद्वि
ति। णविर खइगे पसत्था० सत्थाणे ज० वड्डी क० ? अण्ण० सन्वसंकि० अणंतभागेण
तिण्णि वि०। मणपञ्जव० खविगाणं ओघं। सेसाणं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-

५९९. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलके तीनों पदोंका स्वामी चारों गतिका जीव है। शेप संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भी भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्रुशसे प्रतिभन्न हुआ अन्यतर देव और नारकी जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जवन्य अवस्थानका स्वामी है। जवन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्हृष्ट संक्षेत्रायुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ जो अन्यतर जीव अन्तिम अनुभागवन्धमें अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान तथा परिवर्तमान सध्यम परिणाम-वाला अन्यतर देव और नारकी अनन्तभागवृद्धिके साथ जघन्य वृद्धिका स्वामी है, अनन्तभाग-हानिके साथ जघन्य हानिका स्वामी है तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। देवायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और जघन्य परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्येश्च और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। देवगतिचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्येख्न और मनुष्यके मनुष्यगतिके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुछघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका खामी कौन है ? अन्यतर चारों गतिका जीव तीनों ही पदोंका स्वामी है जो मनुष्यगतिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेद्कसम्यग्दृष्टि, उपश्मसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यक्तवमें प्रशस्त प्रकृतियोंकी स्वस्थानमें जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सर्वसंक्षिप्ट जीव अनन्तभाग वृद्धि, हानि और तदनन्तर अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियांका भक्न ओवके समान है। शेप प्रकृतियांका भक्न अवधिकानी जीवांके समान

छेदो०-परिहार०-संजदासंज०। णवरि किंचि विसेसो णादन्त्रो।

६००. असंजदेस पढमदंडओ मणुसस्स असंजदसम्मादिहिस्स । सेसं मदि०भंगो ओघो व । चक्छु० तसपज्जत्तभंगो । अचक्छु० ओघं ।

६०१. किण्णाए पहमदंडओ णिरयोयं। एवं विदियदंडओ। सादादिदंडओ तिगदियः। इत्थिः णवंसः तिगदियः। अरिद-सोगः णेरइसस्स सम्मादिः। चढुः आउः आयं। दोगदि—चढुजाः वोआणुः ण्यावरादिः ४दंडओ णवंसगभंगो। तिरिक्खगदितियं आयं। मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स। पंचिं ०दंडओ तिगदियस्स संकिलेसंः। ओराः आराः अरोः उक्कः सोकिः। सिच्छादिः सन्वसंकिः। वेउः वेउः अंगोः दुगदियस्स मिच्छाः उक्कः संकिः। आदाः दुगदियः तप्पाः संकिः। तित्थः आयं। णीलः-काऊणं किण्णभंगो। णवरि तिरिक्खगदितियः एइंदियभंगो। पंचिंदियदंडओ णिरयभंगो। वेउन्विः वेउन्विः अंगोः आदाः जः दुगदियः तप्पाः संकिः। दोगदि—चढुजादि—दोआणुः —थावरः ४—णवंसग—मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स कादन्वं।

६०२. तेउले० पढमदंडओ परिहारभंगो। विदियदंडगादिसंजमाभिमुहाणं

है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इनमें जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए।

६००. असंयतोंमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है। शेष भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों और ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

६०१. कृष्ण लेक्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार दूसरे दण्डकका भङ्ग जानना चाहिए। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके तीनों पढ़ोंका स्वामी तीनों गतिका जीव है। अरित सौर शोकके तीनों पदोंका स्वामी सम्यग्दृष्टि नारकी है। चारों आयुओंका भङ्ग ओवके समान है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चार दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। तिर्युख्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिद्ण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। पर्ख्येन्द्रयजातिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी संक्षिप्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके तीनों पदांका स्वामी सर्वसंहिष्ट मिथ्यादृष्टि नारकी है। वैक्रियकशरीर और वैक्रियकआङ्गोपाङ्गके तीनों पदोंका स्वामी उत्कृष्ट संक्रेशयुक्त मिथ्यादृष्टि दो गतिका जीव है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्षिप्र दो गतिका जीव है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्गा ओघके समान है। नील और कापोत लेक्यामें कृष्णलेक्याके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तियं व्यगतित्रिकका भङ्ग एके-न्द्रियोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिवण्डकका भंग नारिकयोंके समान है। वैकियकशरीर, वैकियिकआंगोपांग और आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्षिप्ट दो गतिका जीव है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, स्थावर चतुष्क, नपुंसकवेददण्डक और मनुष्यगति-दण्डकके तीनों पदांका स्वामित्व तीन गतिके जीवांके कहना चाहिए।

६०२. पीतलेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयतींके समान है। द्वितीय

ओधं। साददंडओ तिगदिय०। इत्थि०-णबुंस० देव० तप्पा०विसु० तिण्णि वि। अरिद-सोग० ओधं। दोगदि-दोजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-धावरादितिण्णियु० देवस्स। देवगदि०४ ज० वड्ढी क० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सन्वसं०। ओरालि० याव णिमि० ति सोधम्मभंगो । ओरा०अंगो० देवस्स तप्पा०संकिलि०। तित्थ० देवस्स। एवं पम्माए वि। णवरि पंचिदियदंडओ सहस्सारभंगो।

६०३. सुकाए खविगाणं संजमाभिम्रहाणं च ओवं। साददंडओ तिगदिय०। सेसाणं पि आणदभंगो। देवगदि०४ पम्मभंगो।

६०४. भवसि० ओवं। अञ्भवसि० पहमदंडओ ज० क० १ अण्ण० चहुग० सन्त्रित्य । सेसाणं ओवं। सासणे पहमदंडओ चहुग० सन्त्रित्य । सादादिदंडओ चहुग०। पंचिं०-ओरा०दंडओ चहुग० सन्त्रसंकि०। तिरिक्खगदितियं सत्तमाए सन्त्रित्य । सिन्छादि० मिद०भंगो। असण्णी० पहमदंडओ सन्त्रविसु०। सेसं ओवं। आहार० ओवं। एवं जहण्णयं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

दण्डक आदि संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीन है। खीवेद और नपुंसकवेदके तीनों ही पदोंका स्वामी तथायोग्य विद्युद्ध देव है। अर्रात और शोकका भङ्ग ओघके समान है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वा, दो विहायोगित और त्रस व स्थावर आदि तीनों युगलांके तीनों पदोंका स्वामी देव है। देवगितचतुण्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? अन्यतर सर्वसंक्षिष्ट तिर्यक्ष और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। औदारिकशरीरसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका भंग सौधर्म कल्पके समान है। ओदारिक आंगोपांगके तीनों पदोंका स्वामी यथायोग्य तत्यायोग्य संक्लिप्ट देव है। तीर्थङ्करप्रकृतिका स्वामी देव है। इसी प्रकार पद्मालेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पद्धोन्द्रयजातिदण्डकका भंग सहस्नार कल्पके समान है।

६०३. शुक्ललेश्यामें क्षपक और संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भंग ओचके समान है। सातावेदनीय दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। शेष प्रकृतियोंका भी भंग आनत कल्पके समान है। देवगतिचतुष्कका भंग पद्मलेश्याके समान है।

६०४. भव्योंमें ओचके समान भंग है। अभव्योंमें प्रथम दण्डकके तीनों जघन्य पदोंका स्वामी कौन है ! सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव स्वामी है। शेष प्रश्तियोंका भंग ओघके समान है। सोसादनसम्यक्यमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध चारों गतिका जीव है। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्व संक्तिष्ठ जीव है। पर्व्वोन्द्रयज्ञाति और औदारिकशरीरदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्व संक्तिष्ठ चारों गतिका जीव है। तिर्वञ्चगतित्रिकके तीनों पदोंका स्वामी सातवीं पृथिवीका सर्वविशुद्ध नारकी है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है। असंज्ञी जीवोंमें प्रथम दण्डकके तानों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध जीव है। शेष भंग ओवके समान है। आहारक जीवोंमें ओवके समान भंग है। इस प्रकार जवन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

१. त्रा॰ पतौ तिण्णि वि त्रोघ इति पाठः । २. आ. पतौ णिमि॰ इत्थि॰ सोधम्मभंगो इति पाठः।

अपाबहुअं

६०५. अप्पावहुगं दुवि०-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०- एइंदि०-हुंड-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० सन्वत्थोवा उक्क० वर्डो । उक्क० अवहा० विसेसाधिया । उक्क० हाणी विसे० । सादा० देवग०-पंचि०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उचा० सव्वत्थो० उक्क० अवहा० । उक्क० हाणी अणंतगु० । उक्क० वट्टी अणंतगु० । इत्थि०-पुरिस०-चदु-आउ०-दोगदि-तिण्णिजादि-ओरालियसरीर-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०- दोआणु०-आदा०-अप्पसत्थ०-सुहुम ०-अपञ्ज०-साधार०-दुस्सर० सव्वत्थोवा उक्क० वट्टी । उ० हाणी अवहाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसा० । उज्जो० उक्क० हाणी अवहा० दो वि तुल्लाणि थोवाणि । उ० वट्टी अणंतगु० ।

६०६. णेरइएसु सन्वपगदीणं सन्वत्थोवा उ० वड्ढी । उ० हा० अवद्वाणं च दो वि तुल्लाणि विसे० । उज्जो० ओघं । एवं सत्तमाए । उवरिमासु छसु उज्जोवं इत्थिभंगो । सेसा एवमेव । सन्वतिरिक्ख-सन्वअपज्ञ०-सन्वदेवस्स एइंदि०-विगलिं०-पंचका-याणं ओरालियमि०-वेउ०-आहार ०-आहारमि०-पंचले०-अञ्भव०-सासण०-

अल्पवहुत्व

६०५. अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओय और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोछह कपाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है । सातावेदनीय, देवगति, पञ्चिन्द्रयजाति, वैक्तियक्शरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्नसंस्थान, दो आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुउधुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्तनगुणी है । स्रीवेद, पुरुपवेद, चार आयु, दो गिति, तीन जाति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतुप, अप्रशस्त विहायोगिति, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । उद्योतकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । उद्योतकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है ।

६०६. नारिकयोंमें सन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सनसे थोड़ी है। इससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर निशेष अधिक हैं। उद्योतका मंग ओघके समान है। इसी प्रकार सातनीं पृथिनीमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिनियोंमें उद्योतका मंग स्त्रीनेदके समान है। शेप प्रकृतियोंका मंग भी इसी प्रकार है। सन तिर्यद्ध, सन अपर्याप्त, सन देन, एकेन्द्रिय, निकलेन्द्रिय, पाँचों स्थानरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाय-

१. आ॰ प्रतौ अप्यसत्य॰४ सुहुम॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ पंचकायाणं च । ओरालियमि॰ वेड॰ वेड॰मि॰ आहार॰ इति पाठः।

असण्णि० णेरइगमंगो । णवरि दोण्हं मिस्साणं आउ० ओघं । सेसाणं सन्वत्थो० उ० हाणी अवट्ठाणं च । उक्क० वड्ढी अणंतगु० । एवं वेउन्वियमि० । एदेसिं उज्जोवं जाणिदन्वं ।

६०७. मणुस०३-पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचविं निःशां ०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-चक्खुदं०-सुक्क०-सिण्ण० खिवगाणं ओवं। सेसाणं णिरयभंगो। उज्जो० ओवं। णविं मणुस०-[३] इत्थि०-पुरिस०वजेस् । कायजोगि-कोधादि०४-मिद०-सुद०-विभंग०-असंज०-अचक्खु०-भविंस०-मिच्छादि०-आहारए ति ओवभंगो। कम्मइ० देवगदिपंचग० सन्वत्थो० वही। हाणी विसे०। सेसाणं पगदीणं सन्वत्थो० अवहा०। वही अणंतगु०। हाणी वि ाधिया। अवगद० सन्वाणं सन्वत्थो० उ० हाणी। उ० वही अणंतगु०। एवं सुहुमसं०। आभिणि०-सुद०-ओधि० मिच्छत्ताभिग्रहाणं सन्वत्थो० उ० हाणी अवहाणं च। उ० वहवी अणंतगु०। खिवगाणं ओवं। एवं मणपञ्जव ०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०-ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-चेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णविं खड्गे अप्पसत्थ० ओवं इत्थिवेदभंगो।

एवं उकस्सं समत्तं।

योगी, आहारककाययोगी, आहारकिमश्रकाययोगी, पाँच ठेरयावाठे, अभव्य, सासादनसम्य-ग्रहिष्ट और असंज्ञी जीवोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो मिश्रयोगोंमें आयुका भङ्ग ओवके समान है। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार वैक्रियिकिमश्र-काययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इनके उद्योत भी जानना चाहिए।

६०७. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिक-काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, नक्षुदर्शनी, शुक्ठलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओवके समान है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंको छोड़कर कहना चाहिए। काययोगी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अचक्रुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंमें ओवके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। शेप प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अवस्थान सवसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तराणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सूदमसाम्परायिक-संयत जीवोंमें जानना चाहिए। आभिनिवोधिकज्ञानी, शुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वके अभिमुख प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सबसे स्तोक है। इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तराणी है। क्षपक प्रवृतियोंका भद्भ ओघके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि जपश्मसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवांके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका सङ्ग ओघसे स्रीवेदके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पवहुत्व समाप्त हुआ।

१. आ॰ प्रतौ पंचमण॰ ओरा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ ओवं । मणपळ॰ इति पाठः ।

६०८. जह० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-सिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-अप्पसत्थव०४-उप०-पंचंत० सन्वत्थो० ज० हा०। ज० वड्ही' अणंतगु०। सादासाद०-चदुणोक०-चदुआउ०-तिगदि-पंचजा०-पंचसरीर-छस्संठा०-तिण्णिअंगो०-छस्संघ०-पसत्थ०४-तिण्णिआणु०-अगुरु०३-आदा-उज्ञो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-[णिमि०] उच्चा ० ज० वड्ही हाणी अवद्वाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि। तिरिक्खगदितिगं तित्थ० सन्वत्थो० ज० हाणी। चङ्घी अवद्वाणं च दो वि तु० अणंतगु०। एवं ओधभंगो सणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरा०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि४-मदि०-सुद०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सिच्छा०-सण्णि-आहारए ति। णवरि सणुस०३-ओरा०-इत्थि०-पुरिस० तिरिक्खगदितिग० सादभंगो।

६०९. णिरएसु थीणागिद्धि०३-सिच्छ०-अणंताणु०४-तिरिक्ख०३ ओघं। सेसाणं तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं सत्तमाए । एवमेव ल्लसु उवरिमासु । तिरिक्ख०३ सादभंगो । तिरिक्खेसु णिरयभंगो । अपचक्खाण०४ ओघं । सन्वदेव०-वेउन्वि०-वेउन्वि०-मि० णिरयभंगो । सन्वअपञ्ज०-एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च तिण्णि वि तु० । ओरा०

६०८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— ओघ ओर आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्य, सोछह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात ओर पाँच अन्तरायकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि अनन्तराणों है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, चार आयु, तीन गित, पाँच जाति, पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुछयुत्रिक, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि इस युगछ, निर्माण ओर उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही तुल्य हैं। तियञ्चगतित्रिक और तीथङ्करको जघन्य हानि सबसे स्तोक है। जघन्य वृद्धि च अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर उससे अनन्तराणे हैं। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चित्रिक प्रतिवर्ग, असदिक, पाँचों मनोयोगो, पाँचों चचनयोगी, काययोगी, ओदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, सत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, सञ्य, मिथ्या-दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोगी, छोवेदी और पुरुपवेदी जीवोंमें तिर्थञ्चगतित्रिकका मंग सातावेदनीयके समान है।

६०९. नारिकयोंमें स्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तिर्यक्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। शेप प्रकृतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं। इसी प्रकार सातवीं पृथिवींमें जानना चाहिए। इसी प्रकार पहलेकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्चगतित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है। तिर्यक्चोंमें नारिकयोंके समान भंग है। अप्रत्याख्यानावरण चारका भंग ओघके समान है। सब देव, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भंग है। सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विक्रलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके तीनों ही

१ ता॰ प्रती ज॰ हा॰ । वड्डी इति पाठः । २, ता॰ आ॰ प्रत्योः तसादिदोण्णियु॰ उच्चा॰ इति पाठः ।

मि०-आहार०-आहारमि०तिण्णि वि० तु० । कस्मइ०-अव्भव °०-सासण०-असण्णि०-अणाहारए ति णिरयभंगो ।

६१०. आभिणि०-सुद०-ओघि० पहसदंडओ ओघं। सणुस० सन्वत्थो० ज० हाणी। वड्डी अवड्डाणं दो वि तु० अणंतगु०। एवं सन्वसंकिलिट्डाणं पगदीणं। एवं सणप०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०-ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०- उचसम०-सम्मामि०। अवगदवे०-सुहुमसं० सन्वत्थो० ज० हाणी । जि० वड्डी अज्ञाणं अणंतगु०। परिहार०-तेउ०-पम्म० अप्पसत्थाणं पगदीणं सन्वत्थो० ज० हाणी। वड्डी अज्ञाणं अणंतगु०।

एवं पदणिक्खेवे ति समत्तं । वड्ढी समुक्तित्तणा

६११. बिहुवंधे ति तत्थ इमाणि अणियोगदाराणि णादन्वाणि भवंति । तं जहा-समु-कित्तणा याव अप्पावहुगे ति । समुक्तित्तणा दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सन्वपगदीणं अत्थि छबिहु० छहाणि० अविद्वि० अवत्तन्ववंधगा य । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचि०-तस० २-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि-ओरा०-आभिणि-सुद-ओधि०-मणपञ्ज०-संज०-चक्खु०-

पद तुल्य हैं । औदारिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं। कार्मणकाययोगी, अभव्य, सासादनसम्य-ग्टप्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें नारिकयोंके समान भंग है।

६१०. आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। मनुष्यगितकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार संक्षेत्रासे जघन्य अनुभागवन्धको प्राप्त होनेवाली सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सन्य-ग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए। अपगतवदी और सूरमसाम्परायसंयत जीवोंमें जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। परिहारिवशुद्धिसंयत, पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और अवस्थान अनन्तगुणी है।

इस प्रकार परनिक्षेप समाप्त हुआ। दृद्धि समुत्कीर्तना

६११. वृद्धिवन्धका प्रकरण है। उसमें ये अनुयोगद्वार ज्ञातन्य हैं। यथा—समुत्कीर्तनासे ठेकर अल्पवहुत्व तक। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—ओघ और आदेश। ओघसे सव प्रकृतियोंकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तत्र्यपदके वन्धक जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककायोगी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षु-

१. ता प्रतौ आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० तु० अन्मव०. आ० प्रतौ आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० । अन्मव० इति पाठः । २. ता० प्रतौ सुहुमसं० ज० (स) व्यत्थो० हा०. आ० प्रतौ सुहुमसं० सव्यत्थो० हाणी इति पाठः ।

अचक्ख ०-ओधिदं ०-सुक्ले ०-भवसि ०-सम्मा ०-खइग ०- उवसम ०-सिण्ण-आहारए ति ।

६१२. णिरएसु धुविगाणं अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवडि०। सेसं ओघभंगो। णवरि पढमाए तित्थ० अवत्त० णित्थ। एवं सन्त्रणेरइय-पंचिं०तिरि०अपज्ञ०-देवा०, तित्थ० धुवमंगो, सन्त्रएइंदि०-विगलिं०-पंचका०-ओरा०मि०-वेड०-वेड०मि०-आहार० भेआहारमि०-कम्मइ०-मिद०-सुद०-विभंग०-परिहा०-संजदासंज०-असंज०-पंचले०-अन्यव०-सासण०-सम्मामि०-असण्णि-अणाहारि ति। ओरालि०मि०-कम्मइ ०-आणाहार० देवगदिपंचग० अवत्त० णित्थ १३। वेडिव्यिमि०-किण्ण० अन्ति० तित्थय० १३ अवत्त० णित्थ।

६१३. इत्थि०-पुरिस०-णबुंस०-कोघे पंचणा०-चढुदं०-चढुसंज०-पंचंत० अत्थि० छन्नि छन्नि छन्नि अविष्ठि । सेसाणं ओघं । माणे तिण्णिसंज० मायाए दोसंज० लोमे पंचणा०- चढुदंस०-पंचंत० अत्थि छन्नि छन्नाणि० अविष्ठि । सेसं ओघं । अनगदनेदे सन्नाणं अत्थ अणंतगुणविष्ठि० हाणि० अवत्तव्यवंधगा य । एवं सुहुमसंप० । णविर

दर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्केरयावाले, भन्य, सम्यग्द्रष्टि, क्षायिकसम्यग्द्रष्टि, उप-शमसम्यग्द्रष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

६१२. नारिकयोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपद्के वन्यक जीव हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद् नहीं है। इसी प्रकार सव नारकी, पञ्चीन्द्रिय तिर्थञ्च अपर्याप्त और देवोंमें जानना चाहिये। मात्र देवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। तथा इसी प्रकार सव एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, विक्रियिककाययोगी, विक्रियिककाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुवाज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहार्रावशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, पाँच लेश्यावाले, अभव्य, सासाद्तसम्यन्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके देवगतिपञ्चकका अवक्तव्यपद नहीं है, तेरह पद हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कृष्णलेश्या और नील्लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके तेरह पद हैं, अवक्तव्यपद नहीं है।

६१३. स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी और क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संन्वलन और पाँच अन्तरायकी छद वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपद्के वन्यक जीव हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संन्वलन और पाँच अन्तरायकी, माया कपायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संन्वलन और पाँच अन्तरायकी तथा लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपद्के वन्धक जीव हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवामें सब प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपद्के वन्यक जीव हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता

१. ता॰ प्रतौ ओरा॰ वेडिव्यका॰ वेडिव्यिक आहार॰ इति पाठः। २. ग्रा॰ प्रतौ ओराहि॰ कम्मइ॰ इति पाठः। ३. आ॰ प्रतौ वेडिव्यि॰ किण्ण॰ इति पाठः। ४. ता॰ प्रतौ अवगद्वेदेवेद (१) सञ्चाणं इति पाठः।

अवत्त० णत्यि । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चढुदंस ०-लोभसंज०-उचा०-पंचंत० अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवद्वि०वंथगा य ।

एवं सम्रक्षित्तणा ता

६१४. सामित्ताणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्डि० छहाणि० अवड्डि० क० ? अण्ण०। अवत्त० क० ? अण्ण० उवसा० परिवद० मणुसस्स वा मणुसीए वा पढमसमयदेवस्स वा। एदेण कमेण भुजगारसामित्तभंगो अवसेसाणं सन्वाणं। एवं याव अणाहारए त्ति णादन्वं।

कालो

६१५. कालाणुगमेण दुवि०। ओघे० सव्यपगदीणं पंचवड्ठि० पंचहाणिवंधगा केवचिरं कालादो होदि ? ज० ए०, उ० आवि० असंखे०भागो। अणंतगुणवड्ठि-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो०। अवद्वि० ज० ए०, उ० सत्तद्व ०। अवत्त० ज० [उ०] ए०। एवं याव अणाहारए ति णेद्व्वं।

है कि इनमें अवक्तत्र्यपद नहीं है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संन्वलन, उचगोत्र और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके वन्धक जीव हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है।

इस प्रकार समुत्कीतना समाप्त हुई।

स्वामित्व

६१४. स्वामित्वानुगमकी अपेना निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुक्क, अगुरुछपु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि, और अविस्थितपद्के वन्धक जीव कौन है! अन्यतर जीव वन्धक है। अवक्तव्यपद्के वन्धक जीव कौन हैं? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और प्रथम समयवर्ती देव अवक्तव्यपद्का वन्धक है। शेष सवका इसी क्रमसे सुजगारानुगमके स्वामित्वके समान भङ्ग है। अनाहारक तक इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

काल 🦠

६१५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिके वन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित-पदके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है। अवक्ष्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

[ः] १. आ० प्रती पंचणा० पंचदंस० इति पाठः ।

अंतरं

६१६. अंतराणुगमेण दुवि०। ओघेण पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचविह्न०-हाणिवंधंतरं केविचरं कालादो १ ज० ए०, उ० असंखेजा' लोगा। [अविह्न० एसेव मंगो।] अणंतगुणविह्न-हाणिवंधं-तरं ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। तित्यय० पंचविह्न-हाणि-अविद्वि० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। एवं अवत्त०। णविर जह० अंतोग्र०। अणंतगुणविद्व-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो०। एदेण क्रमेण भ्रजगारमंगो कादन्वो। एवं याव अणाहारए ति णेदन्वं।

विशेषार्थ—यहाँ जितने पद कहे हैं उन सक्का एक जीवकी अपेक्षा जयन्य काल एक समय होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा प्रारम्भकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिका उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण, शेप दो वृद्धि-हानियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त, अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात आठ समय और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे उक्तप्रमाण कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायोग्य एक जीवकी अपेक्षा काल घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर

६१६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच क्षानावरण, छह दर्शनावरण, चार संन्वलन, भय, जुगुण्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुक, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिवन्यका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवस्थितपदका यही भद्ग है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि वन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अवक्तव्य वन्धका भी अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक विशेषता कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सामिक अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी क्रमसे भुजगारप्रकृपणाके समान अन्तरकाल करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि पाँच ज्ञानावरणादिकी पाँच वृद्धि और पाँच हानि एक समयके अन्तरसे हों और अनुभागवन्यके परिणामोंके अनुसार असंख्यात छोकप्रमाण काछके अन्तरसे हों, इसिछए इन वृद्धियों और हानियोंका जयन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोकप्रमाण कहा है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका एक समय अन्तर तो स्पष्ट है पर उत्कृष्ट अन्तर जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है उसका कारण यह है कि ये दोनों यदि नहीं होती हैं तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काछतक ही नहीं होती,

१. ता॰ प्रती पंचंत॰ । [उक्क॰ हाणि अवत्त॰ वंधतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह॰ एग॰ उक्क॰] श्रमंखेला, श्रा॰ प्रती पंचंत॰ उक्क॰ हाणी॰ वंधतरं केवचिरं कालादो ? ज॰ ए॰, उ॰ असंखेला इति पाठः ।

२. ता. आ, मत्योः अद्वपोग्गङः । एवं पंचवट्टि-हाणि अवट्ठि० एसेव मंगो तित्य• इति पाठः ।

णाणाजीवेहि भंगविचओ

६१७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि०। ओघेण पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालिय०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छविड्ड-छहाणि-अविद्वि० णियमा अत्थि। सिया एदे य अवत्तगे य। सिया एदे य अवत्तन्वगा य। तिण्णि आउ० सन्वपदा भयणिजा। वेउन्वियछ०-आहारदुगं तित्थय० अणंतगुणविड्ड-हाणि० णिय० अत्थि। सेसपदा भयणिजा। सेसाणं सन्व-पगदीणं सन्वपदा भयणिजा। एवं भ्रजगारभंगो कादन्वो। एवं अणाहारए ति णेदन्वं।

भागाभागो

६१८. भागाभागाणुगमेण दुवि०। ओघेण पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचवड्ढि-हाणि-अवट्वि०

अन्तर्मुहूर्तकालके वाद ये नियमसे होती हैं। इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपरामश्रेणिसे उत्तरते समय या उत्तरते समय मर कर देव होनेपर होता है। किन्तु यहाँ जघन्य अन्तर प्राप्त करना है इसलिए अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो वार उपरामश्रेणि पर आरोहण कराके इनका बन्ध करानेसे जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त ले आवे। तथा उपरामश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-पुद्रल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्रल परिवर्तन प्रमाण कहा है। इनके अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंके ही समान है। तीर्थद्वर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तेतीस सागर होनेसे यहाँ इसकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन इस्प्र ही है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

६१७. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके वन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये होते हैं और एक अवक्तव्यपदका वन्धक जीव होता है। कदाचित् ये होते हैं और अनेक अवक्तव्यपदके वन्धक जीव होते हैं। तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकद्दिक और तीर्थद्ध रप्रकृतिकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके वन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इस प्रकार सुजगारके समान भङ्गकरना चाहिए। इसी प्रकार आनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

भागाभाग

६१८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच चृद्धि, पाँच हानि और अवस्थिततद्के वन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं १

२. ता. प्रतौ भयणिचा । स्राहार२ तित्य० इति पाठः ।

सन्त्रजीवाणं के० ? असंखे० । अणंतगुणविह्न० दुभागो सादिरे० । अणंतगुणहा० दुभागो देस्० । अवत्त० अणंतभागो । सेसाणं पगदीणं एसेव भंगो । णविर अवत्तन्त्र० असंखे०भा० । आहार०२ पंचविह्न '-पंचहाणि-अविद्वि०-अवत्त० संखेज । अणंतगुणविह्नि हाणी० णाणा०भंगो । एवं सजगारभंगो कादन्त्रो । एवं याव अणाहारए ति णेदन्त्रं ।

परिमाणं

६१९. परिमाणं दुवि० । ओघेण पंचणा०-छदंसणा०-अहुक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छबड्डि-छहाणि-अबिडि० केत्तिया ? अणंता । अवत्त० केत्तिया ? संखेजा । थीणगि०३-मिच्छ०-अहुक०-ओरालि० एवं चेव । णबरि अवत्त० असंखे० । तिण्णिआउ०-वेउन्वियछ० छबड्डि-छहाणि-अबिडि०-अवत्त० केत्तिया ? असंखे० । आहार०२ सन्वपदा के० ? संखेजा । तित्थय० तेरसपदा के० ? असंखेजा । अवत्त० के० ? संखे० । सेसाणं सादादीणं चोहसपदा केत्ति० ? अणंता । एवं भुजगारसंगो कादन्वो । एवं याव अणाहारए ति णेदन्वं ।

असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनन्तगुणदृद्धिके वन्धक जीव सव जीवोंके साधिक द्वितीय भाग-प्रमाण हैं। अनन्तगुणहानिके वन्धक जीव सव जीवोंके कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। शेप प्रकृतियोंका यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सव जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सव जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके वन्धक जीवोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इस प्रकार भुजगारभंगके समान करना चाहिए। इसी प्रकार आनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

परिमाण

६१९. परिमाण दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह दृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। स्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कपाय और औदारिकशरीरके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। हतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं। तीन आयु और वैक्रियक छहकी छह दृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष साता-वैदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। शेष साता-वैदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इस प्रकार भुजगार-भक्षके समान करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

१. आ. प्रती त्र्याहार॰ पंचवड्डि इति पाठः । २. ता॰ प्रती सेसाणं चोदसपदा इति पाठः । ३. ता॰ प्रती सुजगारभंगो याव इति पाठः ।

खेतं

६२०. खेत्ताणुगमेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्डि-छहाणि—अवट्ठि० केवडि खेत्ते १ सन्वलोगे। अवत्त० केव० १ लो० असंखे०। तिण्णिआउ०-वेउन्विय-छ०-आहारदुग-तित्थ० छवड्डि-छहाणि-अवट्ठि०-अवत्त० केव० १ लो० असंखे०। सेसाणं चोइसपदा के० १ सन्वलोगे। एवं भ्रजगारभंगो याव अणाहारए ति णेदन्वं।

फोसणं

६२१. फोसणाणुगमेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छबिह्न-छहाणि-अबिहि० केबि खेत्तं फोसिदं १ सव्बलोगो । अवत्त० के० खेत्तं फोसिदं १ लो० असंखे०। थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४ तेरसपदा सव्बलो०। अवत्त० अहचो०। मिच्छत्त० तेरसपदा णाणा०-भंगो। अवत्त० अह-बारह०। अपचक्खाण० ४ तेरसपदा सव्बलो०। अवत्त० छचो०। दोआउ०-आहारदुगं चोहसपदा लोग० असंखे०। मणुसाउ० चोहसपदा

क्षेत्र

६२०. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोछह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके वन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। शेष प्रकृतियोंके चौदह पदोंके वन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्र है। इस प्रकार भुजगार-भङ्गके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

स्पर्शन

६२१. स्वर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह दृद्धि, छह हानि और अवस्थित-पदके वन्यक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्यानगृद्धित्रक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तेरह पदोंके वन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मिथ्यात्वके तेरह पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके वन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके वन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके वन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वा आयु और आहारकद्विकके चौदह पदोंके वन्यक जीवोंने स्वक्त स्पर्शन किया है । दो आयु और आहारकद्विकके चौदह पदोंके वन्यक

अहुचो॰ सन्वलो॰ । दोगदि-दोआणु॰ तेरसपदा छचो॰ । अवत्त ॰ खेत्त॰ । ओरा॰ तेरसपदा णाणा॰भंगो । अवत्त ॰ वारह॰ । वेड न्वि॰-वेड ०अंगो॰ तेरसपदा वारह॰ । अवत्त ॰ खेत्त ॰ । तित्थ॰ तेरसपदा अहुचो॰ । अवत्त ॰ खेत्तभंगो । सेसाणं सादादीणं चोदसपदा सन्वलो॰ । एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदन्वं ।

जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चौदह पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजु और सव लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हो गित और दो आनुपूर्विके तेरह पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिक-शरीरके तेरह पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैकिथिकशरीर और वैकिथिक आक्षा-पाइके तेरह पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम वारह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन पदोंके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने क्षेत्रके समान है। तेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक सुजगार भङ्गके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिके तेरह पदांका वन्ध एकेन्द्रियादि सव जीव करते हैं। इसलिए उक्त पटोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धिदण्डक, मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण चार 'और औदारिकशरीरकी अपेक्षा उक्त तेरह पर्वेंके विन्यक जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें निरते समय होता है, तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है, इसलिए इस पदको अपेक्षा रपर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। चारों गतियामें सम्यग्दृष्टि जीवोंके सासादन गुणस्थानके प्राप्त होनेपर स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्यपद होता है। यतः यह स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राज्यमाण है, क्योंकि इसमें देवोंके विहारवत्त्वस्थान स्पर्शनकी प्रधानता है। इसिछए यह उक्त प्रमाण कहा है। विरत या विरताविरत जीव मर कर उपपादके समय भी अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्य पद करते हैं और इनका स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौद्ह राजुप्रमाण है, अतः उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन एक प्रमाण कहा है। सासादन जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चीदह राजु और कुछ कम,वारह वटे चौदह राजुप्रमाण है और इनका मारणान्तिक समुद्धात के समय मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मिथ्यात्वका अवक्तत्र्यवन्य सम्भव है, अतः मिथ्यात्वके अवक्तत्र्यपदका स्पर्धन उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु और देवायुका वन्ध स्वस्थानमें असंज्ञी आदि और आहारकद्विकका वन्य अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके सब पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्धन छोकके असंख्यात्वे भागप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका वन्ध स्वस्थानमें एकेन्द्रियादि जीव और विहारवत्स्वस्थानमें देव करते हैं, इसिंछए इसके सब पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब छोकप्रमाण कहा है। मात्र अभिकायिक और वायकायिक जीव मनुष्यायुका वन्ध नहीं करते इतना विशेष जानना चाहिए। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीव भी वन्य करते हैं,

कालो

६२२. कालाणुगमेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छत्रिह्न-छहाणि-अविहिदवंधगा केविचरं कालादो होति ? सन्बद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० संखेज ०। थीणगि०३-मिच्छ०-अहक०-ओरा० तेरसपदा सन्बद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० आविल० असंखे०। सादादिदंडयस्स चोदसपदा सन्बद्धा। तिण्णिआउ० पंचविह्न-पंचहाणि-अविह०-अवत्त० ज० ए०, उ० आविल० असंखे०। अणंतगुणविह्न-हाणि० ज० ए०, उ० पलि० असं०। वेछन्वियछ० वारसपदा ज० ए०, उ० आविल० असं०। अणंतगुणविह्न-

अतः इन प्रकृतियों के तेरह पदों के वन्यक जी वों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके चन्धक जी वों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मनुष्यों और तिर्यञ्चों के देवों और नारिकयों में एत्पन्न होने पर प्रथम समयमें औदारिक रारीरका अवक्तव्यपदके बन्धक जी वों का स्पर्शन कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण होने से इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जी वों का स्पर्शन कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण होने से इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जी वों का स्पर्शन कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नार्रा इसके तेरह पदों के बन्धक जी वों का स्पर्शन कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता इसि छए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। स्वस्थानिवहारके समय देवों के ती थें क्षर प्रश्निका बन्ध सम्भव है, अतः इसके तेरह पदों की मुख्यतासे स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इसका अवक्तव्यपद जो दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न हो कर इसका बन्ध करने लगते हैं उनके या उपशम्त्र शेणिसे गिरते समय या ऐसे मनुष्यों के इसके बन्धक समय मर कर देव होने पर होता है। यतः ऐसे जीव संख्यात हैं अतः इसके अवक्तव्यपद जो ब्रिक्त समय मर कर देव होने पर होता है। यतः ऐसे जीव संख्यात हैं अतः इसके अवक्तव्यपद को क्षिण्या स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेप साता वेदनीय आदि प्रकृतियों के चौदह पर्हों का बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियों के सब परों की अपेक्षा स्पर्शन सब लोक क्रमाण कहा है। शेप कथन मुजगार अनुयोगहार को लक्ष्य में रखकर घटित कर लेना चाहिए।

६२२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ! सर्व काल है । अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कपाय और औदारिकरारीरके तेरह पदोंके बन्धक जीवका सब काल है । अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सातावेदनीय आदि दण्डकके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्त-गुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । विक्रियिक छहके वारह पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । वैक्रियिक छहके वारह पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य

हाणि० सन्बद्धा । एवं तित्थय० । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेज० । आहार०२ पंचविद्ध-पंचहा० ज० ए०, उ० आवित्ति० असंखे० । अणंतगुणविद्ध-हाणि० सन्बद्धा । अविद्ध०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेज० । एवं भुजगारभंगो याव अणा-हारए ति णेदन्यं ।

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके वन्यक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार तीर्थद्धरकी अपेक्षासे भी काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारकद्विककी पाँच वृद्धि और पाँच हानिके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके वन्यक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके वन्यक जीवोंका जयन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरणादिका एकेन्द्रियादि सव जीव तेरह पदोंके साथ वन्ध करते हैं, इसिंछए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्वदा काल कहा है। आगे जिन प्रकृ-तियोंके जिन पदोंका काल सर्वदा कहा है वहाँ भी यही समझना चाहिए कि उन प्रकृतियोंके विवक्षित पदोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा वन्ध होता रहता है। अतः यहाँ इस कालको छोड़कर शेप कालका खुलासा करते हैं-पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यवन्य उपरामश्रेणिसे गिरते समय होता है और प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यवन्ध विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है। ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक या लगातार संख्यात समय तक ही यह किया करते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद् गुणस्थान प्रतिपन्न जीव नीचे उतरते समय यथायोग्य करते हैं और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद असंज्ञी आदि जीव करते हैं। ये असंख्यात होते हैं, इसलिए यह भी सम्भव है कि इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद एक समय तक करें और दूसरे समयमें कोई भी जीव अवक्तव्यपद करनेवाले न हों और यह भी सम्भव है कि असंख्यात समय तक क्रमसे नाना जीव इस पदको प्राप्त होते रहें। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। किन्तु अनन्तगुणवृद्धि और अनन्त-गुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है और क्रमसे व्यवधान रहित होकर अन्तर्भुहूर्तके वाद निरन्तर नाना जीव इन पदांको असंख्यात वार प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिक-छहके बारह पर्वेका जघन्य काल एक समय तो स्पष्ट ही है, क्योंकि प्रत्येक पद एक समय तक होकर दूसरे समयमें न हो। किन्तु इनका उत्कृष्ट काल जो आवलिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है सो उसका कारण यह है कि अवक्तत्र्यपदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल तो एक ही समय है और अवस्थितपदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल सात आठ समय है, इसिलए छगातार असंख्यात समय तक भी इन पदोंके होने पर उस सब कालका जोड़ आविछके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा परन्तु शेष दस पदोंमें से प्रयेक पदका एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भी यह काल उतना ही कहा है सो इसका भाव यही है कि आवलिके असंख्यातवें भागको भी असंख्यातसे गुणा करने पर जो उत्दृष्ट काल प्राप्त होता है वह भी आवलिके असंख्यातवें

अंतरं

६२३. अंतराणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०--उप०-णिमि०--पंचंत० छवड्डि-छहाणि-अविद्वदंधंतरं णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधतं० । थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तेरसपदा० णित्थ अंतरं । [अवत्त०] ज० ए०, उ० सत्तरादिंदियाणि । सादादीणं चोहसपदा० णित्थ अंतरं । अपचक्खाण०४ तेरसपदा णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० चोहसरादिंदियाणि । एवं पचक्खाण०४ । णविर अवत्त० ज० ए०, उ० पण्णारसरादिं-दियाणि । तिण्णि आउ० पंचविड्ड-पंचहाणि-अविड्ड० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अणंतगुणविड्ड-हाणि-अवत्त० ज० ए०, उ० चदुवीसं ग्रहुत्तं० । वेउव्वियछ०-आहार०२ पंचविड्ड-पंचहाणि-अविड्ड० ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अणंतगुण-अविद्वर्ण पंचविद्व-पंचहाणि-अविद्वर्ण ज० ए०, उ० असंखेजा लोगा । अणंतगुण-

भागप्रमाण ही है। इसीसे इन पदांका जयन्य काल एक समय और उत्हृष्ट काल आविलके व्यसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीथ द्धर प्रकृतिका सब पदांका वैक्रियिकपट्क समान होने से वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र इसका अवक्तन्यपद करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, अतः इसके अवक्तन्यपदका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। आहारकिंद्रिककी पाँच दृद्धि और पाँच हानि लगातार संख्यात वार ही सम्भव हैं, इसलिए इन पदोंका उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि एक आविलके असंख्यातवें भागको संख्यातसे गुणित करने पर भी आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण ही काल उपलब्ध होता है। इनका जयन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। तथा इनका अवक्तन्य और अविश्वत पद अधिकसे अधिक संख्यात वार होगा, इसलिए इन दोनों पदोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इसी प्रकार भुजगार अनुयोग-द्वारको ध्यानमें रखकर मार्गणाओंमें भी यह काल समय कहा है। इसी प्रकार भुजगार अनुयोग-द्वारको ध्यानमें रखकर मार्गणाओंमें भी यह काल समझ लेना चाहिए।

अन्तर

६२३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्यलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलयु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह दृद्धि, छह हानि और अवस्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। स्यानगृद्धि तीन मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके तेरह पदांका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। सातावेदनीय आदिके चौदह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अप्रत्याच्यानावरण चारके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। इसी प्रकार प्रत्याच्यानावरण चारके सव पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वौवीस मुहूर्त है। वैक्रियिक छह और आहारिकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जोक प्रमाण है।

वड्डि-हाणि० णित्य अंतरं । अवत्त ० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं तित्यय० । णविर अवत्त ० ज० ए०, उ० वासपुघ० । एवं भ्रुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तीर्थद्धर प्रकृतिके सब पदांका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष प्रथक्तवप्रमाण है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ-यहाँ जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका अन्तर काल नहीं कहा है। इसका भाव इतना ही है कि उन प्रकृतियोंके उन पर्दोंके यन्यक जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं। तथा जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय कहा है उसका भाव यह है कि उन प्रकृतियोंके उन पर्दोंका एक समयके अन्तरसे भी वन्य सम्भव है। मात्र विचार उन प्रकृतियोंके उन पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका करना है जो अलग अलग कहा है। उपशम-श्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है इसिंछए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है। उपशामसम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है, इसिंटए स्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी चारके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात कहा है। तात्पर्य यह है कि कदाचित् सात दिन रात तक कोई भी तीसरे आदि गुणस्थानवाला जीव सासादन और मिथ्यात्व गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसिछए यह अन्तर वन जाता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ विरताविरत गुणस्थानको प्राप्त न होनेका अन्तर चौदह दिन रात और विरत अवस्थाको प्राप्त न होने का उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसके अनुसार कोई विरताविरत अविरत अवस्थाको चौदह दिनरात तक और कोई विरत विरताविरत अवस्थाको पन्द्रह दिनरात तक नहीं प्राप्त होता यह सिद्ध होता है, क्योंकि आयके अनुसार ही व्यय होता है ऐसा नियम है, अतः अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्य-पदका उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरात और प्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर परिणामोंको ध्यानमें रख कर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इन गतियांमें यदि कोई उत्पन्न न हो तो अधिकसे अधिक चौबीस मुहूर्तका अन्तर पड़ता है। तदनुसार इन आयुओंका वन्य भी इतने काल तक नहीं होता, इसलिए इनकी अनन्तराणहृद्धि, अनन्तराणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा है। वैकियिक छह और आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर भी वन्यपरिणामींके अनुसार असंख्यात छोकप्रमाण कहा है। परन्तु अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे कोई न कोई जीव इनका अवस्य ही वन्ध प्रारम्भ करता है, इसिंछए इनके अवक्तत्र्यपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थद्वर प्रकृतिका कुल विचार उक्त प्रकृतियोंके ही समान है। मात्र इसके अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट अन्तरमें अन्तर है। बात यह है कि तीर्यद्वर प्रकृतिका अवक्तव्यवन्ध इतने प्रकारसे प्राप्त होता है—कोई सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्यद्वर प्रकृतिके वन्धका प्रारम्भ करे, उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला जीव उत्तरते या मर कर देव होकर पुनः वन्ध प्रारम्भ करे और तीर्थंह्नर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला अविरत-सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर व मर कर दूसरे व तीसरे नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मृहूर्तमें सन्यग्दृष्टि हो पुनः वन्ध प्रारम्भ करे। इन सबका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण होनेसे इसके अवक्तव्यपद का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। शेष कथन सुराम है।

भावो

६२४. भावाणुगमेण दुवि०। ओघे० सन्वपगदीणं सन्वपदाणं वंधगा ति को भावो १ ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए ति णेदन्वं ।

अप्पाबहुअं

६२५. अप्पावहुगं दुवि० । ओवे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-चण्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सन्वत्थो० अवत्त० । 'अविद्वि० अणंत० । अणंतभागविद्वि-हा० दो वि० तु० असं०गु० । असं-खेजभागविद्वि-हा० दो वि तु० असं०गु० । संखेजभागविद्वि-हाणि० दो वि० तु० असं०गु० । संखेजगुणविद्वि-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । असंखेजगुणविद्वि-हाणि० दो वि तु० असंखे०गु० । अणंतगुणहाणि० असं०गु० । अणंतगुणविद्वि विसे० । एवं तित्थय० । णविर अविद्वि० असं०गु० । आहार०२ सन्वत्थो० अविद्वि० । अणंतभाग-विद्वि-हाणि० दो वि तु० संखेजगु० । असंखेजभागविद्वि-हाणि० दो वि तु० संखे०-गु० । संखेजभागविद्वि-हाणि० दो वि तु० संखेजगु० । संखेजगुणविद्वि-हाणि० दो वि

भाव

६२४. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ व आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

अल्पंबहुत्व

६२५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुळ्घु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अनन्तभाग-वृद्धि और अनन्तभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार तीर्थद्धर प्रकृतिकी अपेक्षासे अल्पवहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशे-पता है कि यहाँ पर अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विकके अवस्थितपद्के वन्धक जीव सवसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि भीर अनन्तभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे है। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके वन्धक जीव दोनों हो तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यात- अवत्त ० संखे अगु० । अणंतगुणहा० संखे अगु० । अणंतगुणव इं विसे० । सेसाणं सादादीणं सन्वत्थो० अविह० । अणंतभागविह्न-हा० दो वि० तु० असं०गु० । असंखे अभागविह्न-हाण दो वि तु० असं०गु० । संखे अभागविह्न-हाणि०दो वि तु० असं०गु० । संखे अभागविह्न-हाणि०दो वि तु० असं०गु० । असंखे अगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । असंवे अगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । असंवे अगंतगुणहा ० असं०गु० । अणंतगुणविह्नि विसे० । पोरह० ध्रविगाणं सन्वत्थो० अविह० । उविर स्लोवं । [थीणगिद्धिं इं अो] तित्थ० सन्वत्थो० अवत्त० । अविह० असं०गु० । सेसाणं ओवं । एवं सत्तस पुढवीस । णविर सत्तमाए दोगदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो एदेण कमेण सुजगारमंगो याव अणाहारए ति पोद्वं ।

एवं वड्डिवंघे ति समत्तमणियोगदाराणि ।

अज्झवसाणसमुदाहारो

६२६. अञ्झवसाणसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगदाराणि—पगदि-समुदाहारो हिदिसमुदाहारो तिन्त्रमंददा ति ।

गुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके वन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणदृद्धिके वन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष सातावेदनीय आदिके अवस्थितपदके वन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके वन्यक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असं-ख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असं-ख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके वन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुण-हानिके वन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणहानिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणदृद्धिके वन्धक जीव विशेष अधिक है। नारिकयोंमें ध्रववन्धवाळी प्रकृतियोंके अवस्थित-पर्के वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मुलोधके समान भङ्ग है। स्यानगृद्धिदण्डक और तीर्थद्धरप्रकृतिके अवक्तव्यपद्के वन्यक जीव सबसे स्तोक है। इनसे अवस्थितपदके वन्यक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे शेव पदों व शेष प्रकृतियोंके सव पदोंका भङ्ग ओयके समान है। इसी प्रकार साता पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिचीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। इसी क्रमसे अनाहारक मार्गणा तक भुजगार भङ्गके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धिवन्ध अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहार

६२६, अध्यवसानसमुदाहारमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—प्रकृतिसमुदाहार, स्थिति-समुदाहार और तीत्रमन्दता।

पयिंडसमुदाहारो पमाणाणुगमो

६२७. पगदिसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णाद्दव्वाणि भवंति'-पमाणाणुगमो अप्पावहुगे ति । पमाणाणुगमेण पंचणाणावरणीयाणं केविड-याणि अणुभागवंधव्झवसाणहाणाणि ? असंखेजा लोगा अणुभागवंधव्झवसाण- हाणाणि । एवं सव्वपगदीणं । एवं याव अणाहारए ति णेदव्वं । णविर अवगद०-सुहुमसंप०एगेगं परिणामहाणं ।

एवं पमाणाणुगमो समत्तो

अपाबहुअं

६२८. अप्पावहुगं दुवि०-सत्थाणअप्पावहुगं चेव परत्थाणप्पावहुगं चेव। सत्थाणप्पावहुगं पगदं। दुवि०। ओघे० सव्ववहूणि केवलणाणावरणीयस्स अणुभाणगवंधव्झव साणद्वाणाणि। आभिणि० अणुभागवंध० असंखेजगुणहीणाणि। सुदणाणा० अणुभागवंध० असं०गुणही०। ओधिणाणा० अणुभा० असं०गु०ही०। मणपज्ज³० अणुभागवंध० असं०गुणही०।

६२९. सन्ववहूणि केवलदंस० अणुभागवंध०। चक्खु० अणुभागवंध० असं०-गुणही०। अचक्खु० अणुभा० असं०गुणही०। ओधिदं० अणुभागवंध० असं०गुणही०। थीणगिद्धि० असं०गुणही०। णिद्दाणिद्दा० अणुभा० असं०गुणही०। पयलापयला०

प्रकृतिसमुदाहार प्रमाणानुगम

६२७. प्रकृतिसमुदाहारमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व । प्रमाणानुगमसे पाँच ज्ञानावरणीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान कितने हैं ? असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं । इसी प्रकार सव प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपगतन वेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें एव एक परिणामस्थान होता है ।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ। अल्पवहुत्व

६२८. अल्पवहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पवहुत्व और परस्थान अल्पवहुत्व। स्वस्थान अल्पवहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे केवलज्ञानावरणीयके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं। इनसे आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अत्ञ्ञानावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अविधिज्ञानावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६२९. केवलदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे चक्षु-दर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अचक्षुदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान ध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्यानगृद्धिके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन

१. ता॰ प्रतौ इमाणि दव्याणि भवंति इति पाठः । २. त्रा॰ प्रतौ केवडियाणि त्रणुभागवंधज्झवसाण-हाणाणि १ एवं इति पाठः । ३. आ. प्रतौ सुदणाणा॰ अणुमागवंध॰ असं०गुणही॰ । मणपज॰ इति पाठः ।

अणु० असं०गुणही० । णिद्दा० असं०गुणही० । पयला० असं०गु०ही ।

६३०. सन्ववहृणि ' सादस्स अणुभागवंघ० । असादा० अणुभा० असं०गुणही० ।

६३१. सन्ववहूणि मिच्छ० अणुभागवं० । अणंताणुवं०लोमे अणुभा० असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । संजलणलोमे असं०गुणही० ।
माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । पचक्खाण०लोमे अणु० असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । अपचक्खाणलोमे अणु०
असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे० विसे० । माणे विसे० । णवंस० असं०गु० ।
अरिद० असंवे०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० ।
इत्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०गु० । रिद० असं०गु० । हस्स० असं०गु० ।

हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रांके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३०. सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे असातावेद-नीयके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३१. मिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मायामें विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मानमें विशेप हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संन्वलनमायामें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान विशेष हीन हैं। इनसे संन्वलन क्रोधमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेप हीन हैं। इनसे संन्वलनमानमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण छोभमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातगुणे होन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरणमानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अप्रत्या-ख्यानावरण लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्याना-वरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन है। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्या-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन है । इनसे रतिके अनुभाग-बन्बाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं।

आ. प्रतौ णिद्दा० असं•गुणही० । सव्यवदृष्णि द्रति पाठः ।

६३२. सन्ववहूणि देवाउ० अणुभाग०। णिरयाउ० अणुभा० असं०गुणही०। मणुसाउ० असं०गुणही०। तिरिक्खाउ० असं०गुणही०।

६३३. सन्ववहृणि देवग० अणुभा० । मणुस० असं०गुणही० । णिरय० असं०गुणही० । तिरिक्खग० असं०गुणही० । सन्ववहृणि पंचिदि० अणुभा० । एइंदि०
असं०गुणही० । वीइंदि० असं०गुणही० । तीइंदि० असं०गुणही० । चदुरिं० असं०गुणही० । सन्ववहृणि कम्मइ० अणुभा० । तेजा० असं०गुणही० । आहार० असं०
गुणही० । वेउन्वि० असं०गुणही० । ओरा० असं०गुणही० । सन्ववहृणि समचदु०
अणुभा० । हुंड० असं०गुणही० । णग्गोद० असं०गुणही० । सादि ० असं०गुणही० ।
सुज्ज० असं०गुणही० । वामण० असं०गुणही० । सन्ववहृणि आहार०अंगो०
अणुभा० । वेउन्वि०अंगो० असं०गुणही० । [ओरालिय०अंगो० असं०गु०ही० ।]
संघडणाणं संठाणभंगो । सन्ववहृणि पसत्थवण्ण०४ अणुभा० । अप्पसत्थव०४ असं०-

६३२. देवायुके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान सबसे वहुत हैं। इनसे नरकायुके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३३. देवगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकगतिके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे तिर्यञ्चगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातगुणे हीन हैं। पंचेन्द्रियजातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे एकेन्द्रियजातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे द्वीन्द्रिय जातिके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे त्रीन्द्रियजातिके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चतुरिन्द्रियजातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। कामणशरीरके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे आहारकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्य-वसानस्थान असंख्यातगुणे दीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। समचतुरस्रसंस्थानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे हुण्डसंस्थानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे न्ययोधपरि-मण्डल संस्थानके अनुभागबन्धाध्ववसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्वातिसंस्थानके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कुञ्जक संस्थानके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वामन संस्थानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। आहारक आङ्गोपाङ्गके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहत हैं। इनसे वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। संहननोंका भङ्ग संस्थानोंके समान है। प्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत है। इनसे अप्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है।

[ं] १. ता. प्रतौ सादा॰ इति पाठः 📙

गुणही । गदिमंगो आणुपुन्ती । एत्तो सन्त्रयुगलाणं सन्त्रवहूणि पसत्थाणं अणुभा । तप्पडिपक्लाणं अणुभा ० असं०गुणही ० ।

६३४. सन्ववहूणि विरियंतरा० अणुभा० । हेट्ठा० दाण० असं०गुणही ० । एवं ओघभंगो-पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-इत्थि०-पुरिस०-णवंस०-कोघादि०४-मिद्०-सुद्०-विभंग०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अवभवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए ति ।

६३५. णिरएसु यत्तियाओ पगदीओ अत्थि तासिं मूलोवं। एवं सत्तसु पुढवीसु०। तिरिक्खेसु सव्ववहूणि णिरयाउ० अणुभा०। देवाउ० असं०गुणही०। मणुसाउ० असं०गुणही०। तिरिक्खाउ० असं०गुणही०। सव्ववहूणि देवगदि० अणुभा०। णिरयग० असं०गुणही०। तिरिक्खा० असं०गुणही०। मणुसग० असं०गुणही०। सेसाणं मूलोवं। एवं सव्वतिरिक्खाणं सव्वअपज्ञ०-एइंदि०-विगिलिं० पंचकायाणं च। मणुस०३ गदीओ तिरिक्खगदिभंगो। सेसं मूलोवं। देवाणं मूलोवं। ओरालि० मणुसभंगो। ओरा०मि० तिरिक्खगदिभंगो। वेउ०-वेउ०मि० देवगदिभंगो। आहार०-आहार०मि० सव्वद्वभंगो। कम्मइ० ओरालि० मिस्सभंगो। एवं

चार आनुपूर्वियोंका भङ्ग चार गतियोंके समान है। सब युगलोंमें सब प्रशस्त प्रकृतियोंके अनु-भागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं।

६३४. वीर्यान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे वहुत हैं। पीछे दानान्तराय तक प्रतिलोम कमसे प्रत्येकके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन असंख्यातगुणे हीन असंख्यातगुणे हीन हैं। इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचन-योगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिथ्या-दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

६३५. नारिकयों जितनी प्रकृतियाँ हैं उनका भङ्ग मूळोघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियों जानना चाहिए। तिर्यक्कां नरकायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे वहुत हैं। उनसे देवायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। उनसे तिर्यक्कायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। उनसे तिर्यक्कायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्कायिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्कातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्कातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग मूळोघके समान है। इसी प्रकार सब तिर्यक्का, सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें चार गतियोंका भङ्ग तिर्यक्कायतिके समान है। तथा शेष भङ्ग मूळोघके समान है। देवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। वोदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। ओदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भङ्ग है। बोहारिककाययोगी और विक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भङ्ग है। वाहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाय-

१. ता. था. प्रत्योः हेट्ठा हुंड० असं०गुराही० इति पाठः।

अणाहारए ति । अवगद० ओवं । एवं सुहुमसंप० । आभिणि-सुद्-ओधि०-मणपज्ञ०-संज०-सामा०-छेदो०-ओधिदं०-सुक्क०-सम्मा०-खइग०-उवसम० ओवं । णवरि अप्प-प्पणो पगदीओ णाद्व्याओ । परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वहमंगो ।

६३६. णील-काऊणं सन्ववहृणि देवग० । मणुसग० असं०गुणही० । णिरयग० असं०गुणहीणाणि । [तिरिक्खग० । असं०गु०] । एवं आणु० । तेउले० देवमंगो । एवं पम्माए वि । मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि० सन्वपयिड-अणुभागवंधज्ज्ञवसाणहाणाणि तिरिक्खगदिभंगो । सासणे णिरयमंगो । सम्मामि० वेदग०भंगो । एवं सन्वपगदीणं याव अणाहारए ति णेदन्वं । चदुवीसमणियोगहाराणि अप्पावहुगेण साधेदृण कादन्वं । णवरि जिम्ह अणंतगुणहीणाणि तिम्ह अणुभागवंधज्ञ्ञव-साणहाणाणि असंखेजगुणहीणाणि कादन्वाणि । एदेण वीजेण सत्थाणप्पावहुगं । एवं अणाहारए ति णेदन्वं ।

एवं सत्थाणप्पावहुगं समत्तं।

६३७. परत्थाणप्पाबहुगं पगदं । दुवि० । ओघेण एत्तो चदुसिट्टपिडिगो दंडगो---

योगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, ग्रुकुलेद्यावाले, सम्यग्द्दि, क्षायिकसम्यग्दि और उपशम-सम्यग्दि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दिष्ट जीवोंमें सर्वार्थ-सिद्धिके समान भङ्ग है।

६३६. नील और कापोतलेश्यामें देवगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे मतुष्यगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्षगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंकी अपेक्षा अल्पवहुत्व जानना चाहिए। पीतलेश्यामें द्वोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। मत्यहानी, श्रुताहानी, विभङ्गहानी, असंयत, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंही जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तिर्यक्षगितके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। चौवीस अनुयोगद्वार अल्पवहुत्वके अनुसार साध कर करने चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर अनन्तगुणे हीन हैं वहाँ पर अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन करने चाहिए। इस वीजसे स्वस्थान अल्पवहुत्व है। इस प्रकार अनाहारक तक जानना चाहिए।

्रह्स प्रकार स्वस्थान अल्पवहुत्व समाप्त हुआ।

६३७. परस्थान अल्पवहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-

१. ता. प्रतौ असण्णि॰ पि तिरिक्लगिद्भंगो, आ. प्रतौ असण्णि॰ पितिरिक्लगिद्-भंगो इति पाठः।

मिच्छ० असं०गु०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० तिण्णि वि तु० असं०गु०। असादा० विसे०। अणंताणु०लोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। संजलणलोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे विसे०। माणे० विसे०। पचक्खाणलोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। अपचक्खाणलोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। आभिणि०-परिभो० असं०गु०। चक्खु० असं०गु०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०गु०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०गु०। मणपञ्ज०-दाणंत० असं०गु०। धीणागि० विसे०। णवुंस० असं०गु०। इत्थि० असं०गु०। पुरिस० असं०गु०। अरिद० असं०गु०। पुरिस० असं०गु०। अरिद० असं०गु०। पुरिस० असं०गु०। अरिद० असं०गु०। पुरिस० असं०गु०।

यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवल्ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान विशेप होन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी छोभके अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संब्वलन लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे संज्वलन मायाके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे प्रत्या-र्यानावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनु-भागवन्याध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे अप्रत्यारनावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिमोगान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसात स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अवश्वदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुसाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिद्रश्नावरण और टाभान्तरायके अनुभागवन्याभ्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययद्यानावरण और दानान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे स्वानगृद्धिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागवन्याद्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्थीवेदके अनुमागवन्याच्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदके अनुमागवन्याध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरितके अनुमागवन्थास्यवसान स्थान असंस्कात-

णिद्दा० असं०गु०। पयलापयला० असं०गु०। णिद्दा० असं०गु०। पयला० असं०गु०। णीचा० असं०गु०। अजस० विसे०। तिरिक्ख० असं०गु०। रिद्द० असं०गु०। हस्स० असं०गु०। मणुसाउ० असं०गु०। तिरिक्खाउ० असं०गु०। एवं सत्तमाए पुढवीए। णवरि मणुसाउ० णित्थ। सेसासु पुढवीसु णीचा०-अजस० तुल्लाणि णादन्वाणि। यथा पढमपुढवीए तथा देवगदीए सन्वेसु वि कप्पेसु। एवं वेउन्वियमि०। णवरि णीचा०-अजस० णिरयोघं। वेउन्वियमि० आउ० णित्थ।

६३९. तिरिक्षेसु सन्ववहृणि अणुभा० साद०। जस०-उच्चा० असं०गु०। देवग० असं०गु०। कम्म० असं०गु०। तेजा० असं०गु०। वेउन्वि० असं०गु०। मिन्छ० असं०गु०। केवलणा०-केवलदंस०-विरियंत० असं०गु०। असादा० विसे०। अणंताणु०लोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०।

गणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीत हैं। इनसे निद्रांके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुमागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यद्भगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके सनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यख्रायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातराणे हीन हैं। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग नहीं है। शेष पृथिवियोंमें नीचगोत्र और अयशःकीर्तिके अनुभागवन्धाध्य-वसान स्थान तुल्य जानने चाहिए। जिस प्रकार प्रथम पृथिवीमें है उसी प्रकार देवगतिमें तथा सव कल्पोंमें भी जानना चाहिए। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नीचगीत्र और अयशःकीर्तिका भन्न सामान्य नारिकयोंके समान है। तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें आयुका भक्क नहीं है।

६३९. तिर्यक्चोंमें सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वेवगितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान
स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैकियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।
इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान
तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान
स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं।

सन्ववहूणि अणुभागवंधन्क्षवसाणद्वाणाणि साद०। जस०-उचा० अणुभागवंध० असं०गुणहीणाणि। देवगदि० अणुभा० असं०गुणही०। कम्म० असं०गुणही०। तेजा०
असं०गुणही०। आहार० असं०गुणही०। वेउन्ति० असं०गुणही०। मणुस० असं०गुणही०। ओरा० असं०गु०। मिन्छ० असं०गु०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत०
तिण्णि वि तु० असं०गु०। असादा० विसेसहीणाणि। अणंताणुवं०लोमे असं०गु०।
माया० विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०। संजलणलोमे० असं०गु०। माया०
विसे०। कोधे विसे०। माणे० विसे०। पचक्खाण०लोमे० असं०गु०। माया०
विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०। अपचक्खाणलोमे० असं०गु०। माया०
विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०। आभिणि०-परिभो० दो वि तु० असं०गु०।
चक्खा० असं०गु०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० असं०गु०। ओधिणा०

ओघ और आदेश । ओघसे यहाँ चौसठ पदिक दण्डक है । यथा—सातावेदनीयके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं । इससे यशकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसरारीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे आहारकशरीरके अनु-भागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्ध्यावसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवळज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्तान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही प्रकृतियोंके परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी छोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन है। इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है। इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है। इनसे अनन्ता-नुवन्धी मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभके अनुभाग-बन्धाध्यवसान त्यान असंख्यातगुणे हीन हैं। इन्से संज्वलन सायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेप हीन हैं। इनसे संन्वलन क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। ्इनसे संन्वलन मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण त्तोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है । इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन है । इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागवन्याध्ययसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है। इनसे आभिनि-वोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागवन्धावध्यानस स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनान

अधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० । मणपज्ञ०-दाणंत० दो वि तु० असं०गु० । थीणिगि० विसे० । णवंस० असं०गु० । इत्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०गु० । उरिद० असं०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० । णिद्दाणिद्दा० असं०गु० । पयलापयला० असं०गु० । णिद्दा० असं०गु० । पयला० असं०गु० । णीचा० असं०गु० । अजस० विसेसही० । णिरयग० असं०गु० । तिरिक्खग० असं०गु० । रिद० असं०गु० । हस्स० असं०गु० । देवाउ० असं०गु० । णिरयाउ० असं०गु० । स्मर्था असं०गु० । एवं ओच-भंगो पंचि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-इत्थि०-पुरिस०-णवंस०-कोधा-दि०४-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारए ति ।

६३८. आदेसेण णिरयगदीए सन्ववहूणि साद०। जस०- उचा० असं०गु०। मणुस० असं०गु०। कम्म० असं०गु०। तेजा० असं०गु०। ओरा० असं०गु०।

वरण और लाभान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्यानगृद्धिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नरकगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीनः हैं। इनसे तिर्युद्ध-गतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे देवायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यख्रायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार ओवके समान पर्ळोन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

६३८. आदेशसे नरकगितमें सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे वहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। इनसे तेजसशरीरके अनुभागवन्धाः

संजलणलोमे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। प्वं प्रचक्खा०लोमे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। एवं अपचक्खाण०४। आभिणि०-परिमो० असं०गु०। चक्खु० असं०गु०। सुद०-अचक्खु०-मोगंत० असं०गु०। ओधिणा०-ओधिदं०-लामंत० असं०। मणपज्ञ०-दाणंत० असं०। थीण० विसे०। णवंस० असं०। इत्थि० असं०। पुरिस० असं०। अरिद० असं०। प्रात्ति० असं०। प्रात्ति०। णिदाणिदा० असं०। प्रात्ति०। प्राति०। प्रात्ति०। प्राति०। प्राति०। प्राति०। प्राति०। प्राति०। प्रा

इनसे अनन्तानुवन्धी क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानु-वन्धी मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संन्वलनमायाके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संब्बलन क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संच्वलन मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोमके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थानोंका अल्पबहुत्व है। आगे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागवन्धांध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागवन्धधयवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवाधज्ञानावरण, अविधदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्त-रायके अनुमागवन्वाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे स्त्यानगृद्धिके अनुमाग-षन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं! इनसे नपुंसकवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनु-भागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुमागवन्धाध्यवसानः स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे अयशकीर्तिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन है । इनसे नरकगतिके अनुभागवन्धाध्यवन सान स्थान असंत्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकायुके अनुभागवन्धाध्यव-

णिरयाउ० असं० | देवाउ० असं० | मणुस० असं० | ओरा० असं० | मणुसाउ० असं० | एवं सन्वतिरिक्खाणं | णवरि पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणीसु णाणत्तं | अजस०-णीचा० सरिसाणि | एदं णाणत्तं | यथा जोणिणीसु तथा मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु च | णवरि णाणत्तं | देवाउ० अणुभा० वहूणि | णिरयाउ० थोवाणि |

६४०. पंचिं०तिरि०अपज्ञ० सन्ववहूणि अणुभाग० मिच्छ०। सादा० असं०। जस०-उचा० असं०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० असं०। असादा० विसे०। अणंताणु०लोभे० असं०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। एवं संजलण०४-पचक्खाण०४-अपचक्खाण०४। आभिणि०-परिभो० असं०। चक्खु० असं०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०। मणप०-दाणंत ० असं०। थीण० विसे०। णवंस० असं०। इत्थि० असं०। पुरिस०

वसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे सनुष्यातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार सव तिर्यञ्चोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्त्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नानात्व है। अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान समान हैं। यही नानात्व है। जिस प्रकार योनिनी तिर्यञ्चोंमें अल्पवहुत्व है। उसी प्रकार मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्नु इतना नानात्व है कि देवायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान थोड़े हैं।

६४०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे वहुत हैं। इनसे सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवळज्ञानावरण, केवळदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी कोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी कोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अन्तानुवन्धी मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होनोंके समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अतुत्रज्ञानानरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके परस्पर समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिन्दर्शनावरण और लोभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके परस्पर समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानवरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके

१. आ० पती असं० । मणुस० दाणंत० इति पाठः ।

असं० | अरिद० असं० | सोग० असं० | भय० असं० | दुगुं० असं० | णिदाणिहा० असं० | पयलापयला० असं० | णिदा० असं० | पयला० असं० | अजस०-णीचा० दो वि तु० असं० | तिरिक्ख० असं० | रिद० असं० | हस्स० असं० | मणुसग० असं० | ओरा० असं० | मणुसाउ० असं० | तिरिक्खाउ० असं० | एवं मणुसअपअत्त-सव्वएहंदि०-सव्विगिलिंदि०-पंचि०-तस०अपज०-पंचकायणं च | णविर एहंदिए तेउ०-वाउ० णाणत्तं । णीचा० वहुगाणि । अजस० विसेसही० । एवं णाणत्तं ।

६४१. ओरालियका० मणुसगदिभंगो । ओरा०मि० सव्ववहृणि साद० । जस०-उचा० असं० । देवग० असं० । कम्म० असं० । तेजा० असं० । वेउच्वि० असं० । मिच्छ० असं० । सेसासु० णवरि पंचिदियतिरिक्सभंगो । एत्तियाओ अस्थि ।

परस्पर तुल्य होकर असंख्यातग्णे हीन हैं। इनसे स्त्यानागृद्धिके अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे खीवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुपवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे भयसे अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे जुगुष्सांके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयदाःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्येख्यातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभाग-वन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुमागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे ओदारिकशरीरके अनुमागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यद्वायुके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इसी प्रकार मनुष्य अवर्यात, सब एकेन्द्रिय, सव विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्योप्त, त्रस अपर्याप्त और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें नानात्व है। अर्थात् इनमें नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान वहुत हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इस प्रकार नानात्व है।

६४१. औदारिककायोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगीत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कामणशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। अगो शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्थक्कोंके समान है। इस प्रकार अल्पवहुत्व है।

६४२. वेउव्वियका० णिरयमंगो । आहार १०-आहार०मि० सव्ववहृणि साद०। जस०-उचा० असं०। देवग० असं०। कम्म० असं०। तेज० असं०। वेउ० असं०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० असं०। असादा० विसे०। संजलण-लोमे १० असं०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। आभिणि०-परिभोग० असं०। चम्खु० असं०। सुद०-अचम्खु०-भोगंत० असं०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०। मणपञ्ज०-दाणंत० असं०। पुरिस० असं०। अरिद० असं०। सोग० असं०। मय० असं०। दुगुं० असं०। णिद्दा० असं०। पयला० असं०। अजस० असं। रिद० असं०। हस्स० असं०। देवाउ० असं०। एवं मणपञ्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। एदेस आहारसरीरं अत्थ। संजदासंज० परिहार०भंगो। णवरि

६४२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे वहुत हैं। इनसे यशःकीति और उच्चगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कामणशरीरके अनुसागवन्याध्यवसान स्थान् असंख्यातगुणे हीन् हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुसागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे संज्वलन मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संन्त्रलन मानके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षदर्शनावरणके अनुभाग-वन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचसुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अविधन्नानावरण, अवधिद्र्यनावरण और लाभान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मन:पर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे पुरुषवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे अरितके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन।हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशकीर्तिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे रितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवायुके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविद्युद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः णिरयभंगो । एवं वेडन्वियमि॰ । आहार॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ संजलणं लोभे इति पाठः ।

पचक्खाण०४ अत्थि।

६४३. कम्म० ओषं । णवरि चदुआउ०-आहार०-णिरयगदि वज सेसं काद्वं । एवं अणाहार० । अवगद० ओषं । एवं सुहुमसं० । मदि०-सुद०-असंज०-अव्भव०-मिच्छा० ओषं । एवं विभंग० । आभिणि०-सुद०-ओधि०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ओषं । णवरि अप्पप्पणो पगदिविसेसो णाद्व्यो ।

६४४. किण्ण-णील-काऊणं ओघं। तेउ० ओघं। णिरयाउ०-णिरगदि वज । एवं पम्माए वि। सुक्काए 'ओघो। दोआउ०-णिरय०-तिरिक्खगदि वज । असण्णीस सव्ववहृणि यिच्छ०। सादा० असं०। जस०-उच्चा ० असं०गुणही०। देवग० असं०गुणही०। कम्म० असं०गुणही०। तेजा० असं०गुणही०। वेउव्वि० असं०गुणही०। उविर तिरिक्खोघं। एवं परत्थाणप्यावहुगं समत्तं।

एवं पगदिसमुदाहारो समत्तो ।

कि इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके प्रत्याख्यानावरणचतुष्क हैं।

६४३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चार आयु, आहारकशरीर और नरकगितको छोड़ कर शेषका अल्पवहुत्व करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपश्मसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतिविशेष जाननी चाहिए।

६४४. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। पीतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। मात्र नरकायु और नरकगितको छोड़कर यह अल्पवहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार ग्रुक्तलेश्यामें भी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार ग्रुक्तलेश्यामें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि दो आयु, नरकगित और तिर्यद्मगितको छोड़कर यह अल्पवहुत्व कहना चाहिए। असंज्ञियोंमें मिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान समसे बहुत हैं। इनसे सातावेदनीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे देवगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे देवगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे विक्रियकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे वैक्रियकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे वैक्रियकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इससे आगे सामान्य तिर्यक्राके समान भङ्ग है। इस प्रकार परस्थान अल्पवहुत्व समाप्त हुआ।

२. आ॰ प्रतौ वि । णवरि सुकाए इति पाटः । २. ता॰ प्रतौ साद० अ [ज] स॰ उचा॰ इति पाटः ।

डिदिससुदाहारो पमाणाणुगमो

६४५. हिदिसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दराणि-पमाणाणुगमो सेहि-पह्रवणाणुगमो ति । पमाणाणुगमो दुवि० । ओवे० मदियावरणस्स जहण्णियाए हिदीए असंखेजा लोगा अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि । विदियाए हिदीए असंखेजा लोगा अणुभाग० । तदियाए हिदीए असंखेजा लोगा अणुभाग० । एवं असंखेजा लोगा असंखेजा लोगा एवं याव उक्तस्सियाए हिदी ति । एवं अप्पसत्थाणं । पसत्थाणं पगदीणं विवरीदं णेदव्वं । एवं याव अणाहारए ति णेदव्वं ।

एवं पमाणाणुगमं समत्तं

सेढिपरूवणा

६४६. सेिंदिपरुवणाणुगमो दुविधो-अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च । अणंत-रोवणिधाए दुवि० । ओषे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णिरय०-तिरिक्ख०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप० '-अप्प-सत्थ०-थावर०-सुहुम०-अपज्ञ०-साधार० '-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० एदेसिं सच्व-त्योवा जहण्णियाए द्विदीए अणुभा० । विदियाए द्विदीए अणुभा० विसे० । तदीए दिदीए अणुभा० विसे० । एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव उक्कस्सियाए

स्थितिसमुदाहार

६४५. स्थितिसमुदाहारका प्रकरण है। उसके विषयमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं — प्रमाणानुगम और अणिप्ररूपणानुगम। प्रमाणानुगम दो प्रकारका है — ओघ और आहेश। ओघसे मितज्ञानावरणकी जयन्य स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। द्वितीय स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार अप्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये। तथा प्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें विपरीत क्रमसे ले जाना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

श्रेणिप्ररूपणा

६४६. श्रेणिप्ररूपणानुगम दो प्रकारका है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओय और आदेश । ओयसे पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोछह कपाय, नौ नोकपाय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायागति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनकी जयन्य स्थितिमें अनुभागवन्याध्यवसान स्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें अनुभागवन्याध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिके अनुभागवन्याध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार उत्ह्रष्ट स्थिति तक विशेष अधिक

१. आ॰ प्रतौ अप्यसत्थ॰४ आदाउजो॰ उप॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ सादा॰ इति पाठः ।

हिदि ति । सादा०-मणुसग०-देवग०-पंचि०-पंचसरीर-समचदु०-तिण्णिअंगो०-वजरि०-पसत्थ०४-दोआणु०-अगु०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ निणिम०-तित्थ०-उचा० सन्वत्थोवा उक्तिस्सियाए हिदीए अणुभागवंधव्सवसाण०। समऊणाए हिदीए अणुभा० विसे०। विसमऊणाए हिदीए अणुभा० विसे०। तिसमऊणाए हिदीए अणुभा० विसे०। एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव जहाण्णियाए हिदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि। तदियाए हिदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि। तदियाए हिदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि। तदियाए हिदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि। एवं असं०गु० असंखेजगुणाणि। एवं असं०गु० असंवेजगुणाणि। तिदयाए हिदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि। एवं असं०गु० असंवेजगुणाणि। एवं असंवेजगुणाणि। तिद्याए हिदीए अणुभा० असंवेजगुणाणि। एवं असंवेजगुणाणि। तिद्याए हिदीए अणुभा० असंवेजगुणाणि। तिद्याए हिदीए अणुभा० असंवेजगुणाणि। तिद्याए हिदीए अणुभा० असंवेजगुणाणि। तिद्याए हिदीए अणुभा० असंवेजनिण याव अणाहारए ति णेदववं।

एवं अणंतरोवणिधा समत्ता।

६४७. परंपरोवणिधाए मदियावरणस्स जहण्णियाए हिदीए अणुभागवंधज्झवसाण-हाणेहितो तदो पिलदोव० असंखेजिदिभागं गंतूण दुगुणविद्धदा। ए [वं दुगुणविद्धदा] दुगुण-विद्धदायाव उक्किस्सियाए हिदि ति । एगहिदिअणुभाग वंधज्झवसाणदुगुणविद्ध-हाणिहाणं-तराणि असंखेजाणि पिलदोवमवग्गमूलाणि । णाणाहिदिअणुभागवंधज्झवसाणदुगुण-विद्ध-हाणिहाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदणयस्स असंखेजिदिभागो। णाणाहिदिअणुभा०-

विशेप अधिक अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। सातावेदनीय, मनुष्यगित, देवगित, पञ्चिन्द्रयजाित, पाँच शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, वर्ष्रपमनराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थं छुर और उचगोत्रकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तो समय कम स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तीन समय कम स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष अधिक विशेष अधिक अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। चार आयुआंकी जघन्य स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सवसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। इस प्रकार इस वीलपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

्रइस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

६४% परम्परोपनिधाकी अपेक्षा मितज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके अनुभागवन्धाध्यव-सान स्थानोंसे छेकर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकत्प जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक दूने दृने अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान जानने चाहिए। एकस्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पत्योपमके असं-ख्यात प्रथम वर्गमूछ प्रमाण है। नानास्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानि स्थानान्तर अङ्गुछके प्रथम वर्गमूछके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थिति-

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः पसत्य॰४ तस॰४ थिरादिछ॰ इति पाटः । २. आ॰ प्रती एराट्ठिदि ति अणुभाग- इति पाठः ।

दुगुणबङ्घि-हाणि० थोवाणि । एगद्विदिअणुभागवंधन्झवसाणदुगुणबङ्घि-हाणिहाणंतराणि असंखेजगुणाणि । एवं आउगवज्ञाणं सन्वअप्पसत्थपगदीणं सो चेव भंगो ।

६४८. सादस्स उक्कस्सियाए द्विदीए अणुभागवंधन्सवसाणेहिंतो तदो पिलदोव-मस्स असंखेजिदिभागो ओसिक्वदूण दुगुणविह्वता। एवं दुगुणविह्वता दुगुण० याव जहिण्या द्विदित्ता। एगिहिदिअणुभाग०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतराणि असंखेजिण पिलदो-वमवग्गमूलाणि । णाणाहिदिअणुभा०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदण-यस्स असंखेजिदिभागो। णाणाहिदिअणुभागवंध०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतराणि योवाणि। एयदिदिअणुभा०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतरं असंखेजिगुणं। एवं आउगवजाणं सव्वपसत्थपगदीणं सो चेव भंगो। एदेण वीजेण एवं अणाहारए ति णेदव्वं। एवं परंपरोविणिधा समन्ता।

अणभागवंधज्झवसाणहाणाणि

६४९. याणि चेव अणुभागवंधन्झवसाणहाणाणि ताणि चेव अणुभागवंध-हाणाणि । अण्णाणि पुणो परिणामहाणाणि ताणि चेव कसाउदयहाणाणि त्ति भणंति । मदियावरणस्स जहण्णिगे कसाउदयहाणे असंखेळा लोगा अणुभागवंधन्झव-

अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं । इनसे एकस्थितिअनुभाग-वन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार आयुके सिवा सव अप्रशस्त प्रकृतियोंका वही भङ्ग है ।

६४८. सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थानोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प पीछे जाने पर वे दृने होते हैं। इस प्रकार जयन्य स्थितिके प्राप्त होने तक वे दूने दृने होते जाते हैं। एकस्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुण-वृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर अङ्गुलके प्रथम वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकस्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार आयुओंके सिवा सव प्रशस्त प्रकृतियोंका वहीं भङ्ग है। इस वीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेपार्थ—यहाँ सव प्रकृतियोंकी जघन्यादि या उत्कृष्टादि किस स्थितिमें रहनेवाले अनुभागवन्थके कितने अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान हैं और वे किस स्थान पर जाकर दूने या आधे होते हैं इस वातका प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार किया गया है। इसे परम्परोपनिधा कहते हैं, क्योंकि इसमें एकके वाद दूसरी स्थितिके अनुभागअध्यवसानस्थानोंका विचार न कर परम्परया इस वातका विचार किया गया है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई।

अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान

६४९. जो अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान हैं वे ही अनुभागवन्धस्थान हैं। तथा अन्य जो परिणामस्थान हैं वे ही कपायउद्यस्थान कहे जाते हैं। मितज्ञानावरणके जघन्य कपाय-उद्यस्थानमें असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। दूसरे कपाय उदय-

२. ता॰ प्रतौ हाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलाणि इति पाटः।

साणद्वाणाणि । विदियाए कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभागवंधव्यवसाणहाणाणि । तिदए कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभागवंधव्यवसाणहाणाणि ।
एवं असंखेजा लोगा असंखेजा लोगा यात्र उक्तस्सिया कसाउदयहाणं ति । एवं
अप्पसत्थाणं सव्वपगदीणं । सादस्स उक्तस्सए कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभाग० । समऊणाए कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभा० । विसमऊणाए
कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभा० । तिसमऊणाए कसाउदयहाणे असंखेजा लोगा अणुभा० । एवं असंखेजा लोगा असंखेजा लोगा यात्र जहण्णियं कसाउदयहाणं ति । एवं सव्वासिं पसत्थाणं पगदीणं । एवं एदेण वीजेण कसाउदयहाणाणि यात्र अणाहारए ति णेदव्यं ।

६५०. तेसिं दुविधा पह्नवणा-अणंतरोत्रणिधा परंपरोवणिधा च । अणंतरोवणिधाए सन्वासिं [अ] पसत्थपगदीणं णिरयाउगवज्ञाणं सन्वत्थोत्रा जहण्णियाए द्विदीए जहण्णए कसाउद्यहाणे अणुभागवंधज्ञ्ञवसाणहाणाणि । जह० द्विदीए विदियकसाउद्य० विसेसाधियाणि । जह० द्विदीए तिदए कसाउद्य० विसेसाधियाणि । एवं विसे० विसे० याव जहण्णिया० द्विदीए उक्तस्सयं कसाउद्यहाणं ति । एवं याव उक्तस्सियाए द्विदीए उक्तस्सियं कसाउद्यहाणं ति । सन्वपसत्थाणं पगदीणं तिण्णि-

स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। तीसरे कषाय उदय-स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभाग-वन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार सब अप्रशस्त प्रकृतियोंके जानना चाहिए। साता-वेदनीयके उत्कृष्ट कषायउद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। एक समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। दो समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। तीन समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार जयन्य कपाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंके विपयमें जानना चाहिए। इस प्रकार इस वीजपदके अनुसार अनाहारकमार्गणा तक कषायउद्यस्थान जानने चाहिए।

६५०. इनकी प्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा नरकायुको छोड़कर सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य कथाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान सबसे थोड़े होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके दूसरे कपाय उद्यस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके तीसरे कथाय उद्यस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कथाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष अधिक विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कपाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तीन आयुओंको छोड़ कर सब प्रशस्त

१. ता॰ प्रतौ विदियाए उक्कत्सर्ठाण असंखेळा इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ कसाउदयर्ठाणाणि असंखेळा इति पाठः। २. आ॰ प्रतौ जह॰ विदियकसाउदय॰ इति पाठः।

आउगवजाणं सन्वत्थोवा उक्कस्सियाए हिदीए उक्कस्सिए कसाउदयहाणे अणुभागवंध-ज्झवसाण । उक्क हिदीए समऊणे कसाउद विसे । उक्क हिदी विसमऊणे कसाउ विसे । उक्क हिदी तिसमऊ विसे । एवं विसे विसे याव जहण्णयं कसाउदयहाणं ति । एवं याव जहण्णियाए हिदीए जहण्णयं कसाउदयहाणं ति ।

६५१. णिरयाउ० कसाउदयहाणे अणुभागवंधव्झवसाणहाणाणि थोवाणि । विदिए कसाउद्यहाणे अणुभा० असं०गु० । तिद् कसाउदयहाणे अणुभा० असं०गु० । एवं असंखेजगुणाणि असंखे०गु० याव उक्क०हिदि ति । तिण्णं आउगणां उक्कस्सियाए कसाउदयहाणे अणुभागवंधव्झवसाणहाणाणि थोवाणि । समऊणे कसाउद् अणुभा० [अ] संखेजगुणाणि । विसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । तिसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । तिसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । एवमसंखेजगुणाणि असं०गु० । याव जहण्णयं कसाउदयहाणं ति । एवं एदेण वीजेण याव अणाहारए ति णेद्वं ।

६५२. परंपरोवणिधाए दुवि०। ओघे मदियावरणादीणं णिरयाउगवजाणं सन्वअप्पसत्थपगदीणं जहण्णियाए द्विदीए जहण्णए कसाउदयहाणे जहण्णगं अणुभाग-बंधज्झवसाणहाणेहितो तदो असंखेजा लोगं गंत्ण दुगुणविद्वता। एवं दुगुणविद्वता दुगुणविद्वता याव उक्कस्सिया द्विदीए उक्कस्सिए कसाउदयहाणे ति । सादादीणं

प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान सवसे थोड़े होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके एक समय कम कपाय उद्यस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके दो समय कम कपाय उद्यस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके तीन समय कम कपाय उद्यस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कपाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष हीन विशेष हीन होते हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थितिके जघन्य कपाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए।

६५१. तरकायुके जघन्य कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान स्तोक हैं। इनसे दूसरे कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे तीसरे कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे हैं। तीन आयुओं के उत्कृष्ट कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान थोड़े हैं। उनसे एक समय कम कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दो समय कम कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे तीन समय कम कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जघन्य कपाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान उद्यस्थान प्राप्त क्यां अनुसागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान हैं। इस प्रकार इस वीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

६५२. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे नरकायुके सिवा मितज्ञानावरण आदि सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उद्यस्थानमें जघन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थानोंसे छेकर असंख्यात छोकप्रमाण स्थान जाकर दिगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कपाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक दिगुणी दिगुणी वृद्धि होती है। तीन आयुक्षोंके सिवा सातावेदनीय आदि सब प्रशस्त प्रकृ-

तिणां आउगवजाणं सन्वपसत्थपगदीणं उक्षस्सियाए द्विदीएं उक्षस्सएं कसाउदयद्वाणे अणुभा०हिंतो तदो असंखेजा लोगं गंतूण दुगुणविह्व० । एवं दुगुणविह्वता याव जहिण्णियाए द्विदीए जह० कसाउदयद्वाणे ति । एगअणुभागवंधज्ज्ञवसाणदुगुणविह्व-हाणिहाणंतरं असंखेजा लोगा । णाणाअणुभा०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतराणि आविहि० असंखेजिदिभागो । णाणा०अणुभा०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्व-हाणिहाणंतरं असंखेजिगुणं । एवं आउगवज्ञाणं पगदीणं एदेण वीजेण याव अणाहारए ति णेदव्वं । एवं परंपरोविणधा समत्ता ।

एवं हिदिसमुदाहारो समत्तो । तिञ्चमंददाए अणुकड्डी

६५३. एत्तो तिन्त्रसंद्दाए पुन्तं समिणिङ्गं अणुकिङ्गं वत्तरंस्सामो । तं जहा-सण्णीिह पगदं । अन्भवसिद्धियपाओग्गं जहण्णो वंधमे सिद्ध्यात्ररणस्स जहण्णिद्धित-वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधन्त्रवसाणङ्घाणाणि विद्धियाए हिदीए तदेगदेसो वा अण्णाणि च । तिद्धाए हिदीए तदेगदेसो वा अण्णाणि च । एवं पिहदोवसस्स असंखेङिदिसागो तदेगदेसो वा अण्णाणि च । एवं जहण्णियाए हिदीए अणुकङ्गी । जिम्ह जहण्णियाए हिदीए अणुकङ्गी णिहिदा तदो से काले विद्याए हिदीए अणुकङ्गी णिहियदि । जिस्न विद्याए हिदीए अणुकङ्गी णिहिदा तदो से काले 'तिद्याए हिदीए

तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिक उत्कृष्ट उद्यस्थानमें अनुभाग अध्यवसान स्थानोंसे छेकर असंख्यात छोक-प्रमाण स्थान जाकर द्विगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार जयन्य स्थितिके जयन्य कवाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणी द्विगुणी वृद्धि होती है। एक अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात छोकप्रमाण हैं। नाना अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आविष्ठके असंख्यातचें भाग प्रमाण हैं। नाना अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार आयुके सिवा सब प्रकृतियोंका इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई। इस प्रकार स्थितिसमुदाहार समाप्त हुआ।

६५३. आगे तित्रमन्दका पहले विचार करना है। उसमें अनुष्टिको वतलाते हैं।
यथा—संज्ञी जीव प्रष्टत हैं। अभव्योंके योग्यः जयन्य वन्यकमें मितज्ञानावरणकी जयन्य
स्थितिका वन्य करणेवाले जीवके जो अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। द्वितीय स्थितिमें
उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। तीसरी स्थितिमें उनका
एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्यके असंख्यातवें
भागप्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होने तक उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान
स्थान होते हैं। इस प्रकार जयन्य स्थितिमें अनुकृष्टि जाननी चाहिए। जयन्य स्थितिमें
जहाँ अनुकृष्टि समाप्त होती है उससे अनन्तर समयमें द्वितीय स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती
है। जहाँ दूसरी स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती है उससे अनन्तरसमयमें तीसरी स्थितिमें

१. ता॰ प्रतौ ति स्तादीणं (१) तिण्णं इति पाठः ।

अणुकड्डी णिद्धियदि । एवं याव उकस्सिया द्विदि त्ति । यथा मदियावरणस्स तथा-इमासि । तं जहा—पंचणा० णवदंस० मोहणीयस्स छव्वीसं अप्पसत्थव०४ उप० पंचंत०। एस अणुकड्डि वंघ० ।

६५४. एत्तो सादस्स अणुक्किं वत्तइस्सामो । तं जहा—सादस्स उक्कस्सयं हिदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधव्झवसाणहाणाणि तदो समऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च । विसमऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च । विसमऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च । एवं जाव जहण्णयं असादवंधपाओग्गसमाणं ति ताव ताणि च अण्णाणि च । तदो जहण्णयादो असादवंधहाणादो याव समऊणा हिदी तिस्से जाणि अणुभागवंधव्झवसाणहाणाणि ताणि उविरक्षाणि हिदीणं अणुभागवंधव्झवसाणहाणे-हिंतो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो समऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो हुसमऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो हुसमऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो वहण्णयादोअसादवंधसमऊणादो जा समऊणा हिदी तिस्से हिदीए अणुक्कडी झीणा। तदो से काले समऊणाए हिदीए अणुक्कडी झीयदि । जिम्ह समऊणाए हिदीए अणुक्कडी झीणा। तदो से काले हुसमऊणाए हिदीए अणुक्कडी झीयदि । चिस्ह विसमऊणाए हिदीए अणुक्कडी झीणा तदो से काले हुसमऊणाए हिदीए अणुक्कडी झीयदि । यम्ह विसमऊणाए हिदीए

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार मितज्ञानावरणकी अनुकृष्टि कही है उसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी जाननी चाहिए। यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मोहनीयकी छन्वीस प्रकृतियाँ, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपद्यात और पाँच अन्तराय। यह अनुकृष्टिका वन्य करनेवालेके कहना चाहिए।

६५४. आगे सातावेदनीयकी अनुकृष्टिको वतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं उससे एक समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य असातावेदनीयके वन्धके योग्य स्थानोंके समान स्थानोंके प्राप्त होने तक वे और दूसरे स्थान होते हैं। आगे जघन्य असाता-वेदनीयवन्यस्थानके समान स्थितिवन्धसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक उसके जो अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान हैं वे ऊपरकी स्थितियोंके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थानोंसे एकदेश रूप होते हैं और अन्य होते हैं। आगे एक समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और दूसरे अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसके आगे दो समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति विकल्पों तक प्रत्येक स्थितिविकल्पमें पूर्व पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर एक समय कम जघन्य असातावेदनीयके समान वन्धसे जो एक समय कम स्थिति है उस स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हो जाती है। आगे अनन्तर समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हो जाती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है उससे अनन्तर समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ दो समय

१. ता॰ प्रतौ ताणि च विसमऊणाए इति पाठः।

अणुकड्डी झीणा तदो से काले तिसमऊणाए हिदीए अणुकड्डी झीयदि। एवं याव सादस्स जहण्णियाए हिदि ति। एवं यथा सादस्स तथा मणुस०-देवग०-समचदु०-वज्जिर०-मणुस०-देवग०तप्पाओग्गाणु०-पसत्थवि०-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-उचा० एस भंगो १५।

६५५. एचो असादस्स अगुकड्डिं वत्तइस्सामो । तं जहा-असादस्स जहाणिया हिदी बंधमाणो जाणि अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि विदियाए हिदीए अण्णाणि च । एवं याव सागरोवससद्प्रथत्तं ताणि च अण्णाणि च । एसा परुवणा कदमासिं^ड ? असाद्वंधहिदीणं इमासि एसा परूवणा। तं जहा^ह—याओ हिदीओ वंधमाणो असादस्स जहण्णयं अणुभागं वंधदि तासि हिदीणं एसा परुवणा । एदेसि हिदीणं या उक्कस्सिया हिदी तिस्से याणि अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि तदो सम-एवं विसमउत्तराए तद्गद्सो च अण्णाणि च । उत्तराए हिंदीए^ए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पिलदोवमस्स असंखेलिदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो असादस्स जह० अणुभागवंधपाओग्गाणं हिंदीणं याव उकसिया हिदी तिस्से हिदीए अगुकड्डी झीयदि । यम्हि असादस्स जहण्णयं अगुभागवंधपाओ-ग्गाणं हिदीणं उकस्सियाए हिदीए[®] अणुक्कड्डी झीणा तदो से काले समउत्तराए हिदीए कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है उससे अनन्तर समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुइष्टि चीण होती है। इस प्रकार सातावेदनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयकी अनुकृष्टि कही है उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रपेभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वा, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, द्युम, सुमग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चेगोत्रका यही भङ्क जानना चाहिए।

६५५. आगे असातावेदनीयकी अनुदृष्टिको वतलाते हैं। यथा—असातावेदनीयकी जयन्य स्थितिको बाँधनेवाले जावके जो जयन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं दूसरी स्थितिको बाँधनेवाले जावके वे और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सौ सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्ररूपणा किन स्थितियोंकी है ? इन असातावेदनीय वन्य स्थितियों की यह प्ररूपणा है। यथा—जिन स्थितियोंकी बाँधते हुए असातावेदनीयका जयन्य अनुभाग बाँधता है उन स्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। तथा इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्योपमके असंख्याववे भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येकके पूर्व अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर असातावेदनीयकी जो जयन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर असातावेदनीयकी जो जयन्य अनुभागवन्धायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थिति होती है उस स्थितिकी अनुकृष्टि स्थितिकी अनुकृष्टि स्थिण होती है। जहाँ असातावेदनीयकी जयन्य अनुभागवन्धप्रयोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि स्थिण होती है। जहाँ असातावेदनीयकी जयन्य अनुभागवन्धप्रयोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि स्थिण होती है। जहाँ असातावेदनीयकी जयन्य अनुभागवन्धप्रयोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि स्थिण होती है। जहाँ एक समय

१. ता॰ प्रती यथा सुदस्त तथा इति पाटः । २. ता॰ प्रती जहण्णियाए हिदिबंधमाणो इति पाटः । २. ता॰ प्रती एसपरुवणा कदमासि इति पाटः । ३. ता॰ प्रती एसपरुवणा कदमासि इति पाटः । ४. ता॰ प्रती तं जहा इति स्थाने पायः सर्वत्र तं यथा इति पाटः । ५. ता॰ प्रती हिदीए इति पाठो नास्ति । ६. ता॰ प्रती –पाञोग्गाणं हिदीए इति पाटः ।

अणुकड्डी शीयित । यिन्ह समउत्तराए द्वितीए अणुकड्डी शीणा तदो से काले विसम-उत्तराए अणुकड्डी शीयित । यिन्ह विसमउत्तराए द्वितीए अणुकड्डी शीणा तदो से काले तिसमउत्तराए द्वितीए अणुकड्डी शीयित । एवं यात्र असादस्स उक्कितया द्विति ति । णिरय०-एइंदि०-वीइं०-तीइं०-चंदुरिं०-पंचसंठा०-पंचसंय०-णिरयाणु०-अप्पसत्थ० - थावर०-सहुम-अपज्ञ०-साधार०-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस० एवं असादमंगो ।

६५६. एत्तो तिरिक्खगदिणासाए अणुकाङ्कं वत्तइस्सामो । तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स सन्वजहाण्णयं हिदिं वंधमाणयस्स याणि अणुभागवंधन्झवसाणहाणाणि तदो विदियाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो तदियाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो तदियाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पिलदोवसस्स असंखेळिदिमागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो जहाण्णियाए हिदीए अणुकड्डी छिज्जदि । जिम्ह जहाण्णियाए हिदीए अणुकड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुकड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुकड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुकड्डी छिज्जदि । एवं याव अन्भवसिद्धिपाओग्गजहण्णहिदिचरिगसस्यं अपत्ता ति । तदो अन्भवसिद्धियाओग्गजहण्णयं हिदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधन्झवसाणाणि विदियाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च । तदियाए हिदीए ताणि च अण्णाणि

अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है उससे अनन्तर समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है उससे अगले समयमें तीन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इसी प्रकार असाता-वेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। नरकगित, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, सूद्रम, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अञ्चम, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका थङ्ग इसी प्रकार असातावेदनीयके समान है।

६५६. आगे तिर्यञ्चगितनामकर्म ही अनुकृष्टि वतलाते हैं। यथा—सातवीं पृथिवीमें सबसे जयन्य स्थितिका वन्य करनेवाले नारकीं के जो अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इनसे तीसरी द्वितीय स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिवक्तर्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें पूर्व पूर्व अनुभागवन्याध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं। तब जाकर जयन्य स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ जयन्य स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है उससे अगले समयमें एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जयन्य स्थितिका अन्त्य समय जय तक न प्राप्त हो तब तक जानना चाहिए। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जयन्य स्थितिका वन्य करनेवाले जीवके जो अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं उनसे द्वितीय स्थिति वे और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सो सागर प्रथक्त प्रमाण स्थिति विकल्पोंक ग्राप्त होने तक प्रत्येकमें वे और अन्य

१. ता० प्रतौ असंखेजदिभागे इति पाठः ।

च। एवं याव सागरोवमसदपुथतं ताव ताणि च अणाणि च। एसा परूवणा कदमासिं ? तिरिक्खगदिणामाए यासिं वंधिहिदीणं इमासिं एसा परूवणा। तं जहा—याओ हिदीओ वंधमाणो तिरिक्खगदिणामाए जहण्णयं अणुभागं वंधिद तासिं हिदीणं एसा परूवणा। एदासिं हिदीणं या उक्कस्सिया हिदी तिस्से याणि अणुभागवंधिज्ञन्वसाणाणि तदो समउत्तराए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। विसमउत्तराए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। विसमउत्तराए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो अव्भवसिद्धिपाओग्गजह० अणुभाग० जह० वंधुक्कस्सियाए हिदीए अणुक्कड्डी झीयदि। जिम्ह अव्भवसि० जह० अणुक्कड्डी झीणा तदो जा समउत्तरा हिदी तिस्से अणुक्कड्डी झीयदि। यिन्ह समउत्तराए हिदीए अणुक्कड्डी झीणा तदो से काले विसमज्ञतराए हिदीए अणुक्कड्डी झीणा तदो से काले विसमज्ञतराए हिदीए अणुक्कड्डी झीयदि। एवं याव तिरिक्खगदि- णामाए उक्कस्सियाए हिदीए ति। तिरिक्खाणु०-णीचागो० तिरिक्खगदिभंगो।

६५७. एत्तो ओरालियसरीरणामाए अणुकड्डिं वत्तइस्सामो । तं जहा-ओरालिय-सरीरणामाए उक्तस्सियं द्विदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवं० तदो सयऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । विसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तिसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पलिदो० असंखेजिदिभागो

अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्ररूपणा किन स्थितियोंकी है ? तिर्यक्चगितनामकर्म-की इन वन्धिस्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। यथा—जिन स्थितियोंकी वाँघते हुए तिर्यक्चगित नाम-कर्मके जघन्य अनुभागका वन्ध करता है उन स्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं उससे एक समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमेंसे प्रत्येक स्थितिके पूर्व पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्धाध्यवसान युक्त जघन्य वन्धोत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जिस स्थानमें अभव्यसिद्धप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है उससे अगले समयमें तोन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार तिर्यक्चगिति नामकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भक्ष तिर्यक्चगतिके समान है।

६५७. आगे औदारिकशरीर नामकर्मकी अनुकृष्टिको वतलाते हैं। यथा—औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य करनेवाले जीवके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं उससे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः यादि वंघि दीणं इति पाटः।

तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो उक्कस्सियाए द्विदीए अणुक्कड्डी ओच्छिज्जदि'। जिम्ह उक्कस्सिए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले समऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिज्जदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिज्जदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिज्जदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी वोच्छिज्जदि । एवं याव ओरालियसरीरस्स जहण्णियाए द्विदि ति । पंचण्णं सरीराणं तिण्णमंगोवंगाणं पसत्थ०४ अगु० पर० उस्सा० आदाउज्जो० णिमि० तित्थयरस्स च ओरालियस०भंगो ।

६५८. एत्तो पंचिदियणामाए अणुक्कि वत्तइस्सामो। तं जहा—पंचिदियणामाए उक्किस्सयं द्विदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधन्त्रवसाणाणि तदो समऊणाए
द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो विसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि
च। तदो तिसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पिल० असंखेज्जिदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो उक्किस्सियाए द्विदीए अणुक्कृ णिहायदि।
यिम्ह उक्किस्सियाए द्विदीए अणुक्कृ णिहिदा तदो से काले समऊणाए द्विदीए अणुक्कृ णिहिदा तदो से काले विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कृ णिहायदि। यिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुक्कृ णिहिदा

पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों में से प्रत्येक स्थितिके पूर्व पूर्व अनुभागवन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। इस प्रकार औदारिकशरीरकी जयन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुकृत्यु, परघात, उच्छृास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है।

६५८. आगे पछ्रोन्द्रयजातिकी अनुकृष्टिको वतलाते हैं। यथा—पछ्रोन्द्रयजातिकी उत्रृष्ट स्थितिको वाँधनेवालेके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं उनसे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। उनसे दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। उनसे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तव जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त हम स्थितिकी

१. ता॰ प्रतौ अणुकड्डी वा छिजदि इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ तदो समऊणाए इति पाठः । ६. ता॰ प्रतौ याम्ही इति पाठः ।

तदो से काले तिसमऊणाए हिंदीए अणुक्कड्डी णिद्वायदि । एवं याव अद्वारससागरीवमकोडाकोडीओ समउत्तराओ ति । तदो अद्वारससागरोवमकोडाकोडीओ पिटिपुण्णं
वंधमाणयस्स याणि अणुमागवंधन्क्कवसाणाणि तदो समऊणाए द्विदीए ताणि य
अण्णाणि य । विसमऊणाए द्विदीए ताणि य अणाणि य । तदो तिसमऊणाए द्विदीए
ताणि य अण्णाणि य । एवं याव पिटिपक्खणामपाओग्गजहण्णगो द्विदिवंधो ताव
ताणि य अण्णाणि य । तदो पिटिपक्खणामाए जहण्णगादो द्विदिवंधादो समऊणाए
द्विदीए याणि अणुमाग० उविरक्षणां अणुभागवंध० तदेगदेसो य अण्णाणि य । तदो
विसमऊणा० द्विदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो
विसमऊणा० द्विदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो
विसमऊणा० द्विदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो
अन्भवसिद्धियपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि । जिस्ह पिटिपक्खणामपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि । जिस्ह पिटिपक्खणामपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि । जिस्ह पिटिपक्खणामपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि । जिस्ह समऊणा० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि ।
जिम्ह समऊणाए द्विदीए अणुक्रड्डी क्षीणा तदो से काले विसमऊणा० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीयदि । जिम्ह विसमऊणा० द्विदी० अणुक्रड्डी क्षीणा तदो से काले तिसमऊणा०
द्विदी० अणुक्ष० क्षीयदि । एवं याव पंचिदियणामाए जहण्णिया द्विदि ति । एवं तस-वादर-पञ्ज-पत्तेय० ।

एवं अणुक्रड्डी समत्ता।

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने तक जानना चादिए। अनन्तर पूरे अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण वाँवनेवालेके जो अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं उनसे एक समय कम स्थितिका वन्ध करनेवाले जीवके वे और अन्य अनुभागवन्धा-ध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कस स्थितिका चन्च करनेवालेके वे और अन्य अनुमाग-वन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिका वन्ध करनेवालेके वे और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जघन्य स्थिति-वन्यके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। आगे प्रतिपक्ष नामके जघन्य स्थितिवन्थसे एक समय कम स्थितिके जो ऊपरकी स्थितियोंके अनुभागवन्था-ध्यवसान स्थान हैं उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। आगे दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्यके असंख्यातचें भाग प्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व पूर्वके अनुभाग अध्यवसान स्थानांका एकरेश और अन्य अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान होते हैं। तव जाकर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जयन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिकी अनु-कृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है उससे अगले समयसे तोन समय कम स्थितिको अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जयन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इस प्रकार त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रकृतिके विषयमें जानना चाहिए।

इस प्रकार अनुकृष्टि समाप्त हुई।

तिव्वमंदो

६५९. एत्तो तिन्त्रमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा-मदियावरणस्स जहणियाए हिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो थोवो । विदियाए हिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदि-याए हिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । एवं पिल० असं० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदो जह० हिदी० ६ कस्सपदे उक्क० अणुभा० अणंतगु० । तदो यिम्ह हिदा जहण्णा तदो समउत्तराए हिदीए जह० अणंतगुणो । विदि० उक्क० अणु० अणंतगुणो । इत्तरस्य जहण्णाणु० अणंतगु० । तदियाए हिदीए जह० अणु० अणंतगु० । इत्तरस्य जह० अणु० अणंतगु० । एवं पेद्व्यं याय उक्किस्सियाए हिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदो उक्किस्सियाए हिदीए पिलदोवमस्स असंखे०भागं ओसिकद्ण जिम्ह हिदो उक्कस्सो तदो समउत्तराए हिदीए एकि अणुभागो अणंतगुणो । विसमय० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । तदो तिसमय० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । एवं याव मदियावरणस्स उक्क० हिदी० उक्कर्सिपदे एक० अणु० अणंतगु० । एवं याव मदियावरणस्स उक्क० हिदी० एकस्सपदे एक० अणु० अणंतगु० । पंचणा०-णवदंस०-मोहणीयळ्ळीस-अप्प०सत्थ०४-एप०-पंचंत० एदेसि मदियावरणभंगो ।

तीत्र-मन्द

६५९. आगे तीव्रमन्दको वतलाते हैं। यथा—मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके जघन्य पद्में जयन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। इससे दूसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तग्णा है। इससे तीसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे जयन्य स्थितिके उत्कृष्ट पद्में उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे पहले अन्तकी जिस स्थितिमें जयन्य अनुसाग अनन्तगुणा कह आये हैं उससे एक समय अधिक स्थितिमें जयन्य अनुभाग अनन्तराणा है। इससे प्रारम्भकी द्वितीय स्थितिमें उत्क्रष्ट अनुभाग अनन्तराणा है। इससे आगेकी दूसरी रिथितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे प्रारम्थकी तीसरी स्थितिमें उत्कृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा हैं। इससे आगेकी तीसरी स्थितिमें जघन्य अनुमाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। आगे उत्कृष्ट स्थितिसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पीछे जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है उससे एक समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। इससे दो समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। इससे तीन समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार मतिज्ञानावरणको उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पद्में उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरण, नो दुर्शनावरण, छव्वीस मोहनीय, अवशस्त वर्णचतरक, उपघात और पाँच अन्तराय इनका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है।

विशेपार्थ—यहाँ मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिवन्धसे छेकर उत्कृष्ट स्थितिवन्धके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुभाग कितना होता है इसका विचार किया गया है। विचार करते हुए यहाँ जो कुछ वतलाया गया है उसका भाव यह है कि प्रथमसे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण

१. ता॰ प्रतौ जिम्ह हिंदी उक्तस्सो इति पाट।

६६०. एत्तो सादस्स तिव्यमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—सादस्स उक्कस्स० हिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुमागो थोवो। समऊणाए हिदीए जह० अणु० तित्तयो चेव। विसमऊ० हिदीए जह० अणु० तित्तयो चेव। विसमऊ० हिदी० जहण्णाणु० तित्तयो चेव। एवं याव जहण्णगो असादवंथसमाणो ति ताव तित्तयो चेव। तदो जहण्णगादो असादवंथादो या समऊणा हिदी तिस्से हिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगु०। विसमऊ० हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। तिसमऊ० हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एदेण कमेण जहण्णगा असादवंथसमाणसादवंथगाणं आदिं काद्ण असंखेजाओ हिदीओ णिव्यग्गणकंडयस्स असंखेजिदिभागो एत्तियमेत्तीओ हिदीओ तासिं जहण्णाणुभागो अणंतगुणाए सेढीए णेदव्या। तदो णियत्तिद्व्यं सादस्स उक्किस्सयाए हिदीए उक्कस्सपदे उक्क० अणु० अणंतगु०। विसमऊ० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। विसमऊ० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं णिरंतरं उक्कस्यं आदिं काद्ण असंखेजाओ हिदीओ एत्तियमेत्तं णिव्यग्गणकंडयं तित्तय-

स्थितियों में जयन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। फिर पल्यके असंख्यातवें भागके अन्तमें जो स्थिति विकल्प है उसके जयन्य अनुभागसे जयन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों के आगेकी स्थितिमें जयन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे जयन्य स्थितिसे आगेकी द्वितीय स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों के आगेकी दूसरी स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों के आगेकी तीसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंसे आगेकी तीसरी स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार इसी कमसे उत्कृष्ट स्थिति तक अनुभागका कम जानना चाहिए। मात्र जहाँ उत्कृष्ट स्थितिमें जयन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त होता है वहां इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पूर्वकी स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है और आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमें पूर्व पूर्व स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे आगे आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है।

६६०. आगे सातावेदनीयके तीन्न-मन्दको वतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके जयन्य पर्में जयन्य अनुभाग स्तोक है। एक समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही अनुभाग है। अनन्तर जयन्य असातावेदनीयके वन्यसे जो एक समय कम स्थिति है उस स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इस कमसे असातावेदनीयके वन्यके समान सातावेदनीयके वन्यकोंसे ठेकर असंख्यात स्थितियाँ, जो कि निवर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इतनीमात्र उन स्थितियोंका जयन्य अनुभाग अनन्तरगुणित श्रेणिक्पसे ठे जाना चाहिए। इसके वाद ठाटकर सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे हो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे हो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे हो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा के। इस प्रकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इस प्रकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इस प्रकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका स

मेत्तीणं द्विदीणं या उक्तस्सअणु० अणंतगुणो अणंतगुणाए सेढीए पोदन्त्रं। तदो जाहितो द्विदीहिंतो एयंतसादपाओग्गजहण्णगं अणुभागं भाणिद्रण णियत्तिदा उक्कस्सियाए हिदीए उक्तस्सियमणुभागस्स तदो एत्तो हिदीदो णियत्तो तदो हिदीदो या समऊ '० द्विदी तिस्से द्विदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्तस्सियादो द्विदीदो णिव्यग्गण-कंडयमेत्तीओ हिदीओ ओसिकदण जा हिदी तिस्से हिदीए उक्क० अणु० अणंत-गु०। तदो पुण णिच्चरगणकंडयमेत्तीणं उक्क० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेढीए^२ णिरंतरं णेदव्यं । तदो प्रण हेट्ठादो एकिस्से द्विदीए जह० अणु० अणंतगु० । तदो पुण उक्तस्सगादो दुगुणणिन्यगगणकंडयमेत्तीओ हिदीओ ओसिक्दिण या हिदी तिस्से हिदीए उक्तः अणुः अणंतगुः । तदो णिव्यग्गणकंडयमेत्तीणं उक्तः अणुः अणंत-गुणाए सेढीए णिरंतरं णेदव्यं । तदो पुण एकिस्से हिदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्क० द्विदीदो तिगुणणिन्यग्गणकंडयमेत्तीओ द्विदीओ ओसिक्करण जा द्विदी तिस्से हिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो णिच्चग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं उ० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं णेदव्वं । एवं हेड्डादो³ एकिस्से हिदीए जहण्णाणुभागस्स उवरिमाणं द्विदीणं असंखेळाणं उक्तस्सगा अणुभागा । एवं ओघसिळ-माणा हेट्टिमहिदीणं जहण्णाणुभागेहि उवरिमाणं हिदीणं उक्तस्साणुभागेहि ताव आगदं याव असादस्स समाणं जहण्णयं हिद्विंधं णिव्वग्गणकंडगेण अपत्ता ति । तदो हेट्टिमाए दिदी० जह० अणु० अणंतगु०। तदो उवरिमाणं हिदीणं जम्हि हिदीदो

प्रमाण असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है जो उत्तरोत्तर अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। अनन्तर जिस स्थितिसे एकान्त सातावेदनीयप्रायोग्य जघन्य अनुमागको कहकर और छोटकर उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग कहा था उस स्थितिसे एक समय कम जो स्थिति है उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर उत्कृष्ट स्थितिसे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियां हटकर जो स्थिति है उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग पूर्वोक्त जघन्य अनुभाग-वाली स्थितिसे अनन्तराणा है। फिर अभि निवर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का । उत्क्रप्ट अनुभाग अनन्तराणित श्रेणिरूपसे उत्तरोत्तर अनन्तराणा अनन्तराणा है। तद्नन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे द्विगुणे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे आगे निर्वर्गणा-काण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। तद्ननन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे तिगुणे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग निरन्तर अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। इस प्रकार अधरतन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम असंख्यात स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभाग हैं। इस प्रकार कम कम से घटाते हुए अधस्तन स्थितियोंके जघन्य अनुभागों और उपरिम स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभागोंसे तव तक आये हैं जब तक असाताके समान जघन्य स्थितिवन्धको एक निवर्गणाकाण्डकके द्वारा नहीं प्राप्त हुए हैं। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अंतुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम स्थितियोंके जिस स्थानमें उत्कृष्ट अतु-

१. ता॰ आ॰ प्रत्यो॰ य समऊ॰ इति पाठः । २. अणंतगुणो सेढीए इति पाठः । ३. ता॰ आ॰ प्रत्योः अद्वादो इति पाठः । ४. ता॰ आ॰ प्रत्योः द्विदिवंधणिन्वगणकंडगेण इति पाठः ।

उक्तस्सो तदो समऊणाए हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो विसमऊ० हिदी० उ० अणु० अणंतगु०। ताव अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं आगदं याव असादस्स जहण्णगो हिदिवंधो। तदो जहण्णगादो असाद०हिदवंधादो उक्क०'अणुभागेहिंतो जहण्णगादो असाद० णिव्वग्गणकंडयमेत्तीओ हिदीओ ओसिकद्ण या हिदी तिस्से हिदीए ज० अणु० अणंतगु०। तदो जह०दो असाद० हिदीदो सयऊ० हिदी० उ० अणु० अणंतगु०। तेण परं हेहिमाए हिदीए जहण्णगो अणुभागो उविरमाए हिदीए उक्कस्सओ अणुभागो एगेगा ओगसिदा जहण्णगो अणुभागो उविरमाए हिदीए उक्कस्सओ अणुभागो एगेगा ओगसिदा जहण्णादो असाद०दो समाणं आढत्ता ताव णीदं याव सादस्स जह०हिदी० जह० पदे ज० अणु० अणंतगु०। तदो सादस्स जह०हिदी० जह० पदे ज० अणु० अणंतगु०। तदो सादस्स जह० हिदी० उ० अणु० अणंतगु०। दुसमऊ० हिदी० उ० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं णेदच्चं याव सादस्स जहण्णगो हिदिवंधो ति। एवं यथा सादस्स तथा मणुसग०—देवग०—समचदु०—च्जारि०—दोआणु०—पसत्थ०—थिर—सुभन सुभग-सुस्सर-आदेज्ञ०-जस०-उज्ञा०।

भाग स्थित है उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समयकम स्थितिका उत्कृष्ट अनुमाग अनम्तराणा है। इस प्रकार असातावेदनीयके जघन्य स्थिति-वन्धके प्राप्त होने तक अनन्तराणित श्रेणिरूपसे निरन्तर आया है। अनन्तर जघन्य असाता-वेदनीयके समान स्थितिवन्धके उत्क्रप्ट अनुभागसे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिवन्धसे निर्वर्गणकाण्डकमात्र स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिवन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम स्थितिका उस्कृष्ट अनुभाग इस प्रकार एक एक कम होता हुआ जघन्य असाताके समान स्थितिवन्यसे छेकर सातावेदनीयके जघन्य स्थितिवन्ध तक जघन्य पर्में जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक कहना चाहिए। अनन्तर सातावेदनीयका जघन्य अनुभाग जहाँ स्थित है उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ ऊपर जाकर जहाँ उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणा है। इस प्रकार सातावेद्नीयके जघन्य स्थितिवन्थके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त्गुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर ले जाना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयका तीत्रमन्द कहाँ है उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्जपेमनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायो-गति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीति और उच्चगोत्रका जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सातावेदनीय प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए इसकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे लेकर ज्ञान्य स्थितिवन्ध तक अनुभाग उत्तरोत्तर यथाविधि अधिक प्राप्त होता है। खुलासा इस प्रकार है—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिमें ज्ञान्य अनुभाग सबसे स्तोक है। एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें ज्ञान्य अनुभाग उतना ही है। दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें ज्ञान्य अनुभाग उतना ही है। दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें ज्ञान्य अनुभाग उतना ही है। तोन

१. आ॰ प्रती हिदिबंधी उक्क॰ इति पाठः । २. आ॰ प्रती एंगेगा ओवंसिदा । ३. ता॰ प्रती श्रसाद॰ दो समाणं श्रदत्ता तावणिदं याव, श्रा॰ प्रती श्रसाद॰ दो समाणं श्रदत्ता तावणिदं याव, श्रा॰ प्रती श्रसाद॰ दो समाणं श्रादत्ता तावणिदं याव, श्रा॰ प्रती श्रसाद॰ दो समाणं श्रादत्ता तावणिदं याव इति पाठः ।

६६१. एत्तो असादस्स तिन्त्रमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—असादस्स जहण्णियाए हिदीए जह० पदं जह० अणु० थोवो । विदियाए हि० जह० अणुभा० तित्तयो चेव । तिदियाए हि० जह० अणु० तित्तयो चेव । एवं याव सागरोवमसदपुथत्तं ताव जह० अणु० तित्तयो चेव । तदो याओ हिदीओ वंधमाणो असादस्स जह० अणु० वंथिद तासिं हिदी० या उक्कस्सिया हिदी तिस्से समउत्तराए हिदीए जह० अणु० अणंत-

समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार असातावेदनीयके जघन्य स्थितिवन्धके समान सातावेदनीयका स्थितिवन्ध प्राप्त होने तक जितने स्थितिविकल्प हैं उन सवका जघन्य अनुभागवन्य समान है। फिर इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियाँके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। फिर यहाँ अन्तकी स्थितिमें जो जघन्य अनुभाग प्राप्त हुआ है उससे उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा है। फिर जहाँ जघन्य अनुभाग छोड़ा था उससे एक समय कम स्थिति-का जघन्य अनुसाग अनन्तगुणा है। फिर इससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंके वाद दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरितन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा तव तक कहना चाहिए जव तक असाता-वेदनीयके जघन्य वन्थके समान सातावेदनीयके वन्धमें एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थिति शेष रह जाय । अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और उससे उपरितन निर्वर्गणा काण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा होकर यहाँ अन्तमें उत्कृष्ट अनुमार्गसे असातावेदनीयके जयन्य वन्यके समान सातावेदनीयका स्थितिवन्ध प्राप्त हो जाता है। फिर यहाँ असातावेदनीयके जयन्य वन्धके समान सातावेदीयका जो स्थितिवन्ध प्राप्त हुआ है उसकी अन्तिम स्थितिसे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थिति हटकर जो अधस्तन स्थिति है उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और इससे असातावेदनीयके जघन्य स्थितिवन्यके समान सातावेदनीयके स्थितिवन्धमें एक समय कम करके प्राप्त हुए स्थितिवन्धका उत्कृष्ट अनु-भाग अनन्तगुणा है। फिर अधस्तन एक एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम एक एक स्थितिका उत्कृष्टं अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा कहते हुए वहाँ तक जाना चाहिए जब जाकर सातावेदनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त हो जावे। पुनः इससे एक निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ अपर जाकर वहाँ स्थित स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। पुनः एक एक स्थिति कम करते हुए जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा कहना चाहिए । यह सातावेदनीयका तीत्रमन्द् है । इसी प्रकार यहाँ मृलमें गिनाई गईं अन्य प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

६६१. इससे आगे असातावेदनीयका तीत्रमन्द वतलाते हैं। यथा—असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। द्वितीय स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागरप्रथक्त्वप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग उतना ही है। इससे आगे जिन स्थितियोंको वाँधता हुआ असातावेदनीयके जघन्य अनुभागका वन्य करता है उन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा

गु०। तदो विदियहिदी० [जह०] अणु० अणंतगु०। तदो तदियहि० जह० अणु० अणंतगु०। एवं पलिदो० असंखे०भागमेत्तीओ हिदीओ णिव्वग्गणकंडयस्स असंखेज-भागमेत्तीणं जह० अणु० भाणिदृण तदो णियत्तिदव्यं । असादस्स जह० द्वि० उ० पदे उ० अणु० अणंत्रगु०। एवं णिव्यग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं उ० अणु० अणंत-गुणाए सेडीए णिरंतरं णेदन्वं। तदो उचरिमाए द्विदीए जिस्से जह० अणुभागे भाणिद्ण णियत्तेद्ण हेहिमाणं उक्त० अणुभा० भाणिदा तिस्से हिदीए या सम-उत्तरा हिदी तिस्से हिदीए जहण्णाणुभा० अणंतगु० । तदो पुण हेहिमादो णिव्यग्गण-कंडयमेत्तीणं हिदीणं जासिं उक्त० अणु० अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वं। तदो पुण उक्स्से हिदी० ज० अणु० अणंतगु० । तदो हेहिमाणं णिन्नग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं उक्कः अणुः अणंतगुः सेडीए णेद्व्यं । एदेण कमेण उवरिमाए हिदीए एकिस्सेः जह० अणु० हेट्टिमाणं असंखेजाणं हिदीणं उक्क० अणुभा० णेद्व्या ताव याव ओघ-जहण्णाणुभागियाणं उक्त० हिदी० उक्त० अणुभागं पत्तो ति । ओवजहण्णाणुभागिया णाम कस्स सण्णा ? याओ हिंदीओ वंधमाणो असादस्स जहण्णअणुभागे वंधदि तदो एसा हिदी ओचजहण्णाणुभागिया णाम सण्णा। तीए हिदीए ओचजहण्णाणु-भागियसण्णाए याधे ओघजहण्णाणुभागियाणं चरिमाए द्विदीए उ० अणु० अणंतगु० ताघे ओघं जह० अणु०याणं उचरि णिव्यग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं जह० अणुभागा भणिदा होति । एत्तो पाए उविरमाणं अभिणदाणं द्विदीणं जह० दिदी० जह० अणु०

है। उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण रियतियाँ जो कि निर्व-र्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं उनका जघन्य अनुभाग कह कर वहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो उसके जघन्य अनुभागसे छोटकर असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट पद्में उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डक भात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिह्नपसे निरन्तर हे जाना चाहिए। अनन्तर आगेकी जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर और लौटकर अधस्तन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा है उस स्थितिसे जो एक समय अधिकवाली स्थिति है उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग श्रेणिरूपसे छे जाना चाहिए। इससे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधस्तन निवर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे छे जाना चाहिए । इस क्रमसे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुमाग और अधस्तन असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुमाग ओघ जघन्य अनुमागवाली स्थितियोंमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए। ओघ जघन्य अनुभागवाछी स्थिति यह किसकी संज्ञा है ? जिन स्थितियोंका वन्ध करनेवाला जोव- असातावेदनीय के जघन्य अनुभागका वन्ध करता है, अतः उस स्थितिकी ओघ जयन्य अनुभागवालो यह संज्ञा है। ओघ जयन्य अनुभाग संज्ञावाळी उस स्थितिके जिस स्थानमें ओघ जघन्य अनुमागवाळी स्थितियोंमें से अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है वहाँ ओष जयन्य अनुभागवाळी उपरिम निर्वगणाकाण्डमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा गया है। इससे आगे नहीं कही गई उपरिम स्थितियोंमें से

१. ता॰ प्रती स्रोवजहण्णाणुभागियाणं उक्क॰ इति पाठः ।

अणंतगु०। हेडिमाणं एकिस्से द्विदीए उक्क० अणुभा० अणंतगु०। एदेण कमेण एकेका द्विदी ओगसिदा आगदं याव असादस्स उक्क० द्विदीए जहण्णपदे जह० अणु० अणंतगु० ताघे असादवंध० द्विदी० णिट्ठावणियाणि णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं द्विदीणं उक्क० अणु० ण भाणिदव्या। सेसाणं सव्वासिं द्विदीणं उक्क० अणु० भणिदा। तदो यासिं द्विदीणं उक्कर्सअणुभा० ण भणिदा तासिं द्विदीणं जहण्णिया द्विदी तिस्से द्विदीणं उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो समजत्तराए द्विदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तिसमउ० द्वि० उ० अणु० अणंतगु०। विसमउत्तराए द्विदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तिसमउ० द्वि० उ० अणु० अणंतगु०। एवं अणु०वंध० उक्क० अणु० अणंतगु० ताव याव उक्क० द्वि० उ० पदे उ० अणु० अणंतगु०। णिरयगदि-चढुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्प-सत्थ०-थावर-सुहुम-अपज्ञ०-साधार०-अधिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस० एवं आ सादमंगो २८।

जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधस्तन स्थियियों से एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस कमसे एक एक स्थिति कम होती हुई जब असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है यह स्थान प्राप्त होता है तब जाकर असातावेदनीयकी चन्धस्थितियों द्वारा निष्ठापित निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, शेष सब स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है, इसिछए जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है। इसिछए जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिकवाळी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिकवाळी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिकवाळी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इसि प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इसि स्थानके प्राप्त होने तक अनुभागवन्धकी अपेत्ता उत्तर्धिक स्थानके स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा जानना चाहिए। इसि प्रकार असातावेदनीयके समान नरकगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, सूत्तम, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनावेय और अयशःकीर्तिका तीव्रमन्द जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पहले असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिसे लेकर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग समान कहा है। इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डककी असंस्थातवें भागप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग प्रत्येक स्थितिकी अपेक्षा अनन्तगुणा कहा है। फिर यहाँ अन्तमें प्राप्त हुई स्थितिके जघन्य अनुभागसे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा है। फिर इस जघन्य स्थितिके आगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा कहा है। इस प्रकार जघन्य स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहकर यहाँ अन्तकी स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे जिस स्थितिके जघन्य अनुभागसे लोटकर जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा था उस स्थितिसे अगली स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। पुनःइससे अधस्तन दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। पुनः इससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग ओर अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता हुआ ओघ जघन्य अनुन

१. आ॰ प्रतौ ओघसिद्धा आगदं इति पाठः।

६६२. एतो तिरिक्खगदिणामाए तिन्यमंदं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरहगस्स तिरिक्खगदिणामाए सन्वजहण्णयं हिदिं वंधमाणस्स जह० हि० ज० पदे जह० अणु० थोवा । विदिया० हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एवं जह० अणु० अणंतगुणाए सेडीए गदा याव ताव णिन्वग्गणकंडयमेत्तीओ हिदीओ। तदो ज० हि० उ० पदे० उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो यदो णियत्तो तदो समउत्तराए हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। विदिया० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं णिन्वग्गणकंडयमेत्तेण अणंतरेण उविद्याए हिदीए जह० अणुभा० हेहियाए हिदीए उक्क० अणु०। एवं णीदं याव ताव अन्भव०पाओग्गजहण्णयस्स हिदिवंधस्स हेहादो समऊणाए हिदि ति । तदो अन्भव०पाओग्गजहण्णाहिदिवंधस्स हेहा णिन्वग्गणकंडयमेत्तीणं हि० उक्क० अणु० ण भणिदा। सेसं सन्वं भणिदं। हेहिमाणं हिदीणं एदाओ च हेहिमा० हिदीओ ण सन्वाओ णिरंतराओ संपत्तीदो। णविर पह्रवणाए दु णिरंतराणि भणिदं संपत्तीदो। अन्भव०पाओग्ग० हेहा याणि हिदिवंधहाणाणि ताणि

भागवाली स्थितियों में से उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक गया है। पुनः आगे जिस स्थिति तक जघन्य अनुभाग कहा गया है उससे अगली स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्त-गुणा है। तथा इससे अधस्तन जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है उससे अगली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागके अनन्तगुणे प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ सब स्थितियोंका जघन्य अनुभाग तो कहा जा चुका है पर अन्तकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागसे जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है उन स्थितियोंमें से जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। पुनः इससे आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। पुनः इससे आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक यही कम जानना चाहिए। इस प्रकार आसातावेदनीयको अपेक्षा तीत्रमन्दका विचार किया। इसी प्रकार मूलमें गिनाई नरकगित आदि अन्य प्रकृतियोंको अपेक्षा तीत्रमन्दका विचार होनेसे उनका कथन असातावेदनीयके समान जाननेकी सूचना की है।

६६२. आगे तिर्यञ्चगित नाम कर्मके तीव्रमन्दको वतलाते हैं। यथा—सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चगित नामकर्मकी सबसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले नारकीके जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणि-रूपसे गया है। उससे जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे, जहाँसे लोटे हैं उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दूसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिवन्धके पूर्व एक समय कम स्थितिक प्राप्त होने तक निर्वर्गणाकाण्डकमात्रके अन्तरालसे उपित स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इसी कमसे ले जाना चाहिए। यहाँ अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिवन्धके पूर्वको निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, रोप सब कहा गया है। अधस्तन स्थितियोंमेंसे ये सब अधस्तन स्थितियाँ निरन्तर नहीं प्राप्त होती हैं। इतनी विशेषता है कि प्रकृषणामें इनकी निरन्तर प्राप्ति कही गई

१. आ॰ प्रती जह॰ हि॰ पदे इति पाटः ।

पिले असं०भा० सेवियं पुण परुवणं काद्णं णिरंतरं याव अन्भव०पाओगाज० हि॰ वं० समऊणे ति । तदो अन्भव०पाओ०जहण्णादो हिद्दिणं णिन्वगण् कंडयमेत्तीओ हिदीओ ओसिकद्ण या हिदी तिस्से हि॰ उक्कः अणुभागेहिंतो अन्भव०पाओग्गजह॰ हि॰ जह॰ अणु॰ अणंतगु॰। तदो समउत्तराए हिदीए जह॰ अणु॰ तित्तया चेव । विसमउ॰ हि॰ ज॰ अणु॰ तित्तया चेव । तिसमउत्तराए हिदीए तित्तया चेव । एवं सागरोवमसदपुधत्तमेत्तीणं तुल्लो जह॰ अणु॰ वं०। तदो यासि हिदीणं तुल्लो जह॰ तासि णाम सण्णा परियत्तमाणजहण्णाणुभागचंघपाओग्गं णाम। तदो परियत्तमाणजह॰ वं० पाओग्गा॰ उक्कः हिदीदो जह॰ अणुभागेहिंतो समउ॰ हि॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। तिसम॰ हि॰ जह॰ अणंतगु॰। एवं असंखेजहिदि॰ णिन्वग्गणकंडयस्स असंखेजिदिमागो एत्तियमेत्तीणं हिदीणं यासि जह॰ अणंतगु॰ सेडीए णेदन्वा। तदो णियत्ति-दन्वं अन्भव॰पाओग्गजहण्णं हिदिवंघस्स हेद्वादो णिन्वग्गणकंडयः तासि जा ज॰ हिदी तिस्से उ॰ अणुभा॰ अणंतगु॰। तदो समउ॰ हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं णीदं यात्र ताव अन्भव॰पाओ॰ ज॰ हि॰ समऊणा ति । तदो अन्भव॰पाओ॰ ज॰ वंध-

हैं। अभव्यप्रायोग्य स्थितिवन्धसे अधस्तन जो स्थितिवन्धस्थान हैं वे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं परन्तु अभव्यप्रायोग्य जवन्य स्थितिवन्यसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक निरन्तर रूपसे प्ररूपणा की है फिर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिवन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ पीछे जाकर जो स्थिति है उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे अभन्यप्रायोग्य ज्ञचन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागर पृथक्तवप्रमाण स्थितियोंका जयन्य अनुसागवन्य तुल्य है। यहाँ जिन स्थितियोंका जघन्य अनुसाग तुल्य है उनकी परिवर्तमान जवन्यानुभागवन्यप्रायोग्य संज्ञा है। फिर परिवर्तमान जवन्य अनुभागवन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें से उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागसे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असंख्यात स्थितियों तक जानना चाहिए। ये असंख्यात स्थितियाँ निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इतनी मात्र स्थितियोंका जघन्य अनु-भाग अनन्तग्णित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। फिर हौटकर अभव्यप्रायोग्य जधन्य स्थिति-वन्यसे अधस्तन जो निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ हैं उनमेंसे जो जघन्य स्थिति है, उसका उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए। फिर अभव्यप्रायोग्य जधन्य स्थितिवन्धसे एक

१. ता॰ प्रती पुण पमाणं कादृण इति पाठः । २. ता॰ प्रती हिवं[घा]दो णिव्वग्गण- इति पाठः । ३. ता॰ प्रती विसमक हि॰ इति पाठः । ४. ग्रा॰ प्रती वृत्ता इति पाठः ।

समऊणादो उक्कस्सए हि अणुभागेहिंतो यदो हि॰ ज॰ मणिद्ण णियत्तो तत्तो समउ॰ जह॰ अणंतगु॰। तदो पुण जहण्णाणुभागवंधपाओग्गाणं ज॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। समउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं णिव्यग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं उ॰ अणु॰ अणंतगु॰ सेहीए णेदव्वं। तदो पुणो जिस्से हि॰ ज॰ अणु॰ भणिद्ण णियत्ता तदो समउ॰ ज॰ अणंतगु॰। तदो परियत्तमाण [जहण्णाणुभाग] वंधपाओग्गाणं हिदीणं णिव्यग्गणकंडयमेत्तीणं उ॰ अणु॰ अणंतगु॰ सेहीए णेदव्वा। एदेण कमेण उविस्माणं हिदीणं एकिस्से वि॰ ज॰ वं॰पाओग्गाणं च हिदीणं णिव्यग्गण॰मेत्तीणं हिदीणं एकि॰ अणु॰ अणंतगु॰ सेहीए णेदव्वा याव ज॰ अणु॰ वंधपाओग्गाणं उक्कस्सियं हिदिं पत्तो त्ति। एदेण कमेण ज॰ अणु॰ वं॰पाओग्गाणं च हिदीणं पाय्यगण॰मेत्तीणं ज॰ भणिदाणं पुण "भणिद। तदो ज॰ अणु॰ वं॰पाओग्गाणं उक्कस्सगे यत्तो हिदीदो उक्कस्सगेहि अणुभागेहिंतो उविर यासिं हिदीणं जह॰ ण भणिदा तासिं हिदीणं या सव्यज॰ हिदी तिस्से हि॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेद्दो एकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेद्दो एकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेद्दो एकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेद्दो एकिस्से हि॰

समय कम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे, जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर लौटे थे उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य अनुभागवन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमें जो जघन्य स्थिति है उसका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त-गुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। फिर जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर लौटे थे उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुसाग अनन्तगुणा है। फिर परिवर्तमान जघन्य अनुसागवन्ध-प्रायोग्य स्थितियांमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ आगे जाकर जिस स्थितिका उत्कृष्ट अनु-भाग अनन्तगुणा कहा था उससे आगेकी निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। इस क्रमसे जघन्य वन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक उपरिम स्थितियोंमेंसे एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और जघन्य वन्ध-प्रायोग्य स्थितयोंमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूप-से ले जाना चाहिए। इस कमसे जघन्य वन्धप्रायोग्य स्थितियोंसे जो उपरिम स्थितियाँ हैं उन स्थितियोंमें से निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है परन्तु उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है, इसलिए जघन्य अनुभागवन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुमागसे, आगे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग नहीं कहा है उन स्थितियोंमें जो सवसे जघन्य स्थिति है उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थिति-का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है उससे एक

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः समउ॰ इति स्थाने समऊ॰ इति पाठः । त्राग्रे ऽपि 'उ' स्थाने 'ऊ' दृश्यते । २. ता॰ प्रतौ परियत्तमाणवं इति पाठः।

एकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। इतरत्थ ज॰ अणंत॰। हेट्टादो एकिस्से हि॰ उ॰ अणंतगु॰। एवं णीदं यान तिरिक्खगदिणामाए उक्क॰ हिदीए ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। तदो पिछ॰ असं॰भागमेत्तं ओसिकदृण जिम्ह हिदा उक्कस्सा तदो समउत्तराए हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसम॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं अणुभागवंध॰ अणंत॰ यान तिरिक्खगदिणामाए उक्किस्सियाए हि॰ उक्क॰पदे उक्क॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं तिरिक्खाणु॰-णीचा॰।

६६३. एत्तो अरालिय० तिन्त्रमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—ओरालियसरीरणामाए उक्तस्सियाए हि० ज० हिदी० ज० अणु० थोवा । समऊ० ज० अणु० अणंतगु० । विसमऊ० ज० अणु० अणंतगु० । एवं पिल० असं० ज० अणंतगु० । तदो
उक्तस्सियाए हिदी० उ० अणु० अणंत० । तदो जिम्ह हिदा ज० हि० ज० अणु०
तदो समऊ० अणंत० । उक्तिसियादो हि० समऊ० हि० उक्त० अणु० अणंतगु० ।
तदो हेहादो एिक्सिसे हि० ज० अणंत० । तदो उक्तिसियादो विसम० उ० हि० उक्त०
अणु० अणंत० । एवं हेहदो एिक्सिसे जह० उविस्माए एिक्सिसे हि० उ० अणु०

समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्रुष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यद्भगतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक छ जाना चाहिए। पुनः यहाँसे पत्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण पीछे हटकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यद्भगतिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य अनन्तगुणा है। इसी प्रकार तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी अपेक्षासे जानना चाहिए।

विशेषार्थ यहाँ मूळमें किस स्थितिका जघन्य और किस स्थितिका उत्हृष्ट अनुभाग कितना है इसका खुळासा किया ही है। तथा पहले हम मितज्ञानावरणादि प्रकृतियों के समय ही खुळासा कर आये हैं, अतः यहाँ विशेष नहीं छिख रहे हैं। इसी प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

६६३. आगे औदारिकशरीरका तीत्रमन्द वतलाते हैं। यथा—औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट रिथितिका जघन्य पर्में जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों तक उत्तरोत्तर एक एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार यहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो। उसके जघन्य अनुभाग स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थितिहें उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम एक स्थितिका उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतो इतरथा इति पाठः । २. आ॰ प्रतो तिरिक्लागु॰ एत्तो इति पाठः ।

एगेगे वा सिज्झमाणा गदा ताव याव ओरालि० जहण्णियाए हि० जहण्ण० अणु० अणंत०। तदो जहण्णादो हिदीदो पिल० असं०मेचीओ हिदी० अव्सरसरिद्ण यिन्ह हिदा उक्कस्सं तदो समऊ० हि० उ० अणु० अणंत०। विसमऊ० हि० उक्क० अणु० अणंत०। तिसमऊ० हि० उ० अणंत०। एवं ताव णीदं याव ओरालि० जहण्णायाए हि० उ० पदे उ० अणु० अणंत०। एवं पंचसरीर-तिण्णंअंगो०-पसत्य०४— अगु०३-आदाउजो०-णिमि०-तित्थ० ओरा०भंगो० ।

६६४. एत्तो पंचिं० तिन्त्रमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा-यथा वीसंसागरोवमकोडा-कोडोओ वंधमाणस्स उक्क० द्विदी० जहण्णपदं जह० अणु० थोवा । समऊ० द्वि० ज० अणंत० । विसम० ज० अणंत० । तिसम० ज० अणंत० । एवं णिन्त्रगणकंडय-मेत्तीणं द्वि० ज० अणु० अणंत० सेडीए णेद्न्या । तदो उक्कस्सियाए द्वि० उ० पदं उक्क० अणु० [अणंत०] । तदो णिन्त्रगणकंडयमेत्तीओ दिदीओ ओसिक्कदृण जम्हि द्विदा जह० तदो समऊ० जह० अणु० अणंत० । तदो उक्कस्सियादो द्वि० समऊ० द्वि० उक्क० अणु० अणंत० । तदो हेद्वादो एकिस्से द्वि० ज० अणंत० । तदो उक्कस्सियाए दिदी०

अनुभाग एक एक स्थितिमें प्राप्त होता हुआ औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक गया है। फिर जघन्य स्थितिसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियाँ उपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित हैं उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उस प्रकार औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए। इस प्रकार पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, निर्माण और तीथङ्कर प्रकृतिका तीव्रमन्द औदारिकशरीरके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ आँदारिकशरीरका तीन्न-मन्द वतलाया है। यह प्रशस्त प्रकृति है, इसिलए उत्कृष्ट स्थितिका जयन्य पदकी अपेक्षा जयन्य अनुभाग सबसे स्तोक वतलाया है। आगे जिस कमसे जिस स्थितिमें जयन्य और उत्कृष्ट अनुभाग प्राप्त होता है उसका स्पष्टी-करण मूलमें किया ही है।

६६४. आगे पञ्चित्त्रियजातिके तीव्रमन्दको वतलाते हैं। यथा—वीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण रियतिका वन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुमाग सवसे स्तोक है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। इस प्रकार निवर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियों को जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणित श्रिणिरूपसे ले जाना चाहिए। इस प्रकार निवर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियों में अन्तिम स्थितिका जो जघन्य अनुमाग प्राप्त हुआ है उससे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे निवर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ नीचे जाकर जिस स्थितिमें जघन्य अनुमाग स्थित है उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तर्गुणा है। उससे जिन्नेकी एक स्थितिका

१. ता० प्रती तित्थ० ओरा० । एनी इति पाठः।

दुसमऊ० उ० अणु० अणंत०। तदो हेटदो एकिस्से द्वि० ज० अणु० अणंत०। तदो उकस्सियादो तिसमऊ० हि० उक० अणु० अणंत०। एवं हेट्टदो एकिस्से ट्वि० ज० अणंत०। उचरि एकिस्से हि० उ० अणंत०। एवं ओघसिजमाणं ताव गदा याव अहारससागरोवमकोडाकोडीओ समउत्तरा ति । अहारसण्णं सागरोवमकोडाकोडीणं उवरि समउत्तरा द्विदि आदि कादण णिव्वरगण० मेत्तीणं दिदीणं उकस्सा अणुभागा ण भणिदा । उवरि सेसं सन्वं भणिदं । तदो अङ्घारसण्णं साग० पडिपुण्णं ज० ज० अणु० अर्णत० । तदो समऊ० ज० अणु० तत्तिया चेव । विसम० ज० तत्तिया चेव । तिसम० ज० तत्तिया चेव। एवं याव जहण्णियाए एइंदियणामाए हिदिबंधो ताव तत्तिया चेव । तदो परियत्तमाणजहण्णाणुभागवंधपाओग्गाणं जहण्णियाए द्विदी० जह० अणुभागेहिंतो तदो समऊ० ट्विदीए ज० अणु० अर्ण०। विसम० ज० अर्णत०। तिसम० ज० अणंत०। एवं असंखेजाओ हि० णिव्वित्तेदण णिव्वराणकंडयस्स असंखेजिदिभागो तत्तियमेत्तीणं हिंदीणं ज० अणंत० सेडीए णेदव्या । तदो अङ्गारसण्णं सागरो० उवरि यासि हिदीणं उक्तस्सिया अणुभागा ण भणिदा तासि सन्ब-कस्सियाए द्विदीए उ० अणु० अर्णत० । समऊ० उक् ० अणु० अर्णत० । विसमऊ० उक्कः अणुः अणंतः । तिसमञः उक्कः अणुः अणंतः । एवं याव अद्वारसकोडा-कोडीणं समउत्तरादो त्ति ताव उक्क० अणु० अणंत० सेडीए णेदन्वं । तदो अङ्गारस-

जघन्य अनुसाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। उससे नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्क्रष्ट स्थितिसे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार नीचेकी एक रियतिका जघन्य अनुसाग अनन्तगुणा है और ऊपरकी एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार ओघके अनुसार सिद्ध होता हुआ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक अनुसाग गया है। यहाँ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंसे लेकर ऊपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है, ऊपरका शेप सब अनुभाग कहा है। आगे पूरे अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिके जघन्य पदमें जयन्य अनुसाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। इससे दो समय कम स्थितिका जयन्य अनुभाग उतना ही है। उससे तीन समय कम स्थितिका ज्ञान्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार एकेन्द्रियजाति नामकर्मके ज्ञान्य स्थितिवन्थके समान स्थितिवंधके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग उतना ही है। आगे परिवर्तमान जघन्य अनुभागवन्ध योग्य प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिवन्धके जघन्य अनुभागसे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निवर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। उससे अठारह कोड़ाकोड़ी सागरके उपर जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है उनमेंसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण

कोडाकोडीणं समउत्तराए हि० उक्तस्सएहि अणुभागेहिंतो परियत्तमाणजहण्णाणुभागवंघपाओग्गाणं हिदीणं हेहादो याओ हिदीओ जहण्णाणुभागो भणिदछोगाओ
तासि या जहण्णिया हिदी तिस्से हेिहमाणंतराए ज० अणु० अणंत०। तदो अहारससाग०कोडाकोडी० उ० अणु० अणंत०। तदो पुण णिव्वग्गण०मेत्तीणं उ० अणु०
अणंतगु० सेडीए णिरंतरं णेदव्वं। तदो पुण हेहदो एकिस्से हि० ज० अणंत०।
उविर णिव्वग्ग०मेत्तीणं हि० उ० अणु० अणंत०। एदेण कमेण हेहादो एकिस्से हि०
ज० अणुभा० उविर्याणं णिव्वग्गण०मेत्तीणं उक्त० अणुभा० अणंतगु०। एवं ताव याव
परियत्तमाणजहण्णाणुभागपाओग्गा० जहण्णियाए हि० उक्त० पदे उ० अणु० अणंत०।
ताथे तिस्से हिदीए हेहादो याओ हिदीओ तासि णिव्वग्ग०मेत्तीणं जहण्णाणुभागा
भणिदा होति। उक्तस्सने अणुभागेहिंतो एइंदियणामाए जहण्णादो हिदिवंधादो णिव्वगाणकंडयमेत्तीओ ओसिकद्ण या हिदी तिस्से हिदीए ज० पदे ज० अणु० अणंत०।
तदो एइंदियणामाए जहण्णगादो हिदिवंधादो समऊणाए हिदीए उ० अणु० अणंत०।
तेण परं हेहिमाए हि० जहण्णाणुभा० उविरमा० हि० उ० अणु० एगेगं
ओघसिज्झमाणएइंदियणामाए जहण्णगादो हिदीदो आढत्ता ताव णीढं याव पंचिदियणामा० जहण्णियाए हि० पदे जह० अणु० अणंत०। तदो णिव्वग्ग०कंडयमेत्तीओ हि०

स्थितियोंमें अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणित श्रेणिरूपसे ले जाना जाहिए। फिर एक समय अधिक अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितियोंमेंसे अन्तिम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे परिवर्तमान जघन्य अनुभागवन्धके स्थितियोंके नीचे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है उनमें जो जघन्य स्थिति है उससे नीचेकी अनन्तर स्थितिका जयन्य अनुभाग अनन्तराणा है। उससे अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर उससे निवर्गणा काण्डक-प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। उससे पुनः नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस क्रमसे नीचेकी एक स्थितिका और अपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार परिवर्तमान जघन्य अनुभागवंधप्रायोग्य जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पद्में उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। फिर इस स्थितिसे नीचे जो स्थितियाँ हैं उनमेंसे निर्वर्गणा-काण्डकप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा गया है। पुनः जिसका अन्तमें उत्कृष्ट अनु-भाग कहा है उससे एकेन्द्रियजाति नामकमके जघन्य स्थितिवन्थसे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ इटकर जो स्थिति है उस स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एकेन्द्रिय जातिनामकर्मके जघन्य स्थितिवन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे आगे नीचेकी स्थितिका जंघन्य अनुभाग और ऊपरकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुसार इस प्रकार एक एक स्थितिका ओचके अनुसार सिद्ध होता हुआ एकेन्द्रियजाति नामकर्मकी जवन्य स्थितिवंधसे लेकर पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जवन्य स्थितिका जवन्य पद्में जवन्य अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थान के प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए। फिर निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण

१ ता॰ प्रतौ होति ट्रिट्रीए तदा एड्रियणामाए जहण्णगादो ट्रिट्रियंबादो उक्कस्सगे, आ॰ प्रतौ होति द्विरोए एड्रियणामाए जहण्णगादो ट्रिट्रियंबादो उक्कसगे इति पाटः। अव्भुस्सरिदृण जिम्ह द्विदा उ० तदो समऊणाए द्वि० उ० अणु० अणंत० । विसम० उ० अणु० अणंत० । एवं याव पंचिदियणामाए जहण्णियाए द्विदीए उ० अणु० अणंतगुणो ति । यथा पंचि० णामाए तथा वादर-पजत्त-पत्ते०-तस० तिव्वमंददा कादव्वा । एवं तिव्वमंददा ति समत्तमणियोगदारं । एवं अञ्झवसाणसप्रदाहारो समत्तो

जीवसमुदाहारो

६६५. जीवसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि अङ्क अणियोगदाराणि—एगङ्घाणजीव पमाणाणुगमो णिरंतरङ्घाणजीवपमाणाणुगमो सांतरङ्घाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीव-कालपमाणाणुगमो बङ्किपरुवणा यवमञ्झपरुवणा फोसणपरुवणा अप्यावहुगे ति ।

६६६. एयद्वाणजीवपमाणाणुगमेण एकेकिम्ह द्वाणिम्ह जीवा केत्तिया ? अणंता । णिरंतरहाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदाणि हाणाणि । सांतरहाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि णिरंतरहाणाणि । णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण एकेकिम्ह हाणिम्ह णाणा जीवा केविचरं कालादो होति ? सव्बद्धा ।

६६७. विद्विपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणुयोगदाराणि-अणंतरोवणिधा परंपरो-विषया चेदि । अणंतरोवणिधाए जहण्णए अन्झवसाणद्वाणे जीवा थोवा । विदिए अन्झव-साणद्वाणे जीवा विसेसाधिया । तिदए अन्झवसाणद्वाणे जीवा विसेसाधिया । एवं

स्थितियाँ उपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है उससे एक समय कम स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पञ्चिन्द्रिय जाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पञ्चिन्द्रिय जाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार पञ्चिन्द्रियजाति नामकर्मका कथन किया है उसी प्रकार वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और त्रस नामकर्मकी तीत्र-मन्द्रताका कथन करना चाहिए।

इस प्रकार तीव्रमन्दता नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार अध्यवसानसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ। जीवसमुदाहार

६६५. जीवसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये आठ अनुयोगद्वार होते हैं —एकस्थान-जीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पवहुत्व।

६६६. एकस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक एक स्थानमें जीव कितने हैं अनन्त हैं। निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके विरहसे रहित सब स्थान हैं। सान्तर-स्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके अन्तरसे रहित सब स्थान हैं। नानाजीवकालप्रमाणा-नुगमकी अपेक्षा एक एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है।

६६७, वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा, जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। द्वितीय अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें जीव विशेष अधिक विशेष

विसेसाधिया विसेसाधिया याव यवमन्स ति । तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा याव उकस्सिए अन्सवसाणहाणे ति ।

६६८. परंपरोवणिधाए जहण्णए अन्झवसाणहाणे जीवेहितो तदो असंखेजा लोगा गंतूण दुगुणविद्धदा। एवं दुगुणविद्धदा दुगुणविद्धदा याव यवमन्झं। तेण परं असंखेजा लोगं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सअन्झव-साणहाणं ति।

६६९. एयजीवअञ्झवसाणदुगुणविह्न-हाणिद्दाणंतरं असंखेजा लोगा। णाणाजीव-अञ्झवसाणदुगुणविह्न-हाणिद्वाणंतराणि आविल० असंखे०। णाणाजीवेहि दुगुणविह्न-हाणि० थोवाणि। एयजीवअञ्झवसाणदुगुणविह्न-हाणिद्दाणंतराणि असंखेजगुणाणि।

६७०. यवसन्झपरूवणदाए द्वाणाणं असंखेजदिशागे यवसन्झं । यवसन्झस्स हेट्ठादो द्वाणाणि थोवाणि । उवरिं द्वाणाणि असंखेजगुणाणि ।

६७१. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवेण उक्कस्सए अन्झवसाणहाणे फोसण-कालो थोवो । जहण्णए अन्झवसाणहाणे फोसणकालो असंखे अगुणं । कंड यस्स फोसण-कालो तित्तयो चेव । यवमन्झे फोसणकालो असंखे अगुणं । कंड यस्स उविरं फोसण-कालो असंखे अगुणं । यवमन्झस्स उविरं कंड यस्स हेहदो फोसणकालो असंखे अगुणं । कंड यस्स उविरं यवमन्झस्स हेहदो फोसणकालो तित्तयो चेव । यवमन्झस्सुविरं फोसण-कालो विसेसाधिओ । कंड यस्स हेहदो फोसणकालो विसेसाधियो । कंड यस्सुविरं फोसणकालो विसेसाधियो । सन्वेसु वि हाणेसु फोसणकालो विसेसाधिओ ।

अधिक हैं। इससे आगे उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक जीव विशेष हीन विशेष हीन हैं। ६६८. परम्परोपनिथाकी अपेक्षा जवन्य अध्यवसानस्थानमें जो जीव हैं उससे असख्यात लोकप्रमाण स्थान जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक दूने दूने जीव होते हैं। उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते हैं।

६६९. एकजीवअध्यवसानिह गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं। नाना-जीवअध्यवसानिह गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आर्वालके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाजीव-अध्यवसानस्थानिह गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकजीवअध्यवसानिह गुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर प्रत्येक असंख्यात गुणे हैं।

६७०. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेक्षा स्थानोंके असंख्यातवें भाग जाकर यवमध्य होता है। यवमध्यके अधस्तन स्थान स्तोक हैं और उपरिम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

६०१. रपर्शनप्रस्पणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवका उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल स्तोक हैं। इससे जघन्य अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। काण्डक का स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे यवमध्यके उत्पर और काण्डकसे नीचे स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर और यवमध्यसे नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे साम्बर्शन स्थानोंमें स्पर्शन काल विशेष अधिक है।

६७२. अप्पावहुगे ति उकस्सए अन्झवसाणद्वाणे जीवा थोवा। जहण्णए अन्झव-साणद्वाणे जीवा असंखेजगुणा। कंडयजीवा तित्तया चेव। यवमन्झे जीवा असंखेज-गुणा। कंडयस्सुविर जीवा असंखेजगुणा। यवमन्झस्सुविर कंडयस्स हेद्ददो जीवा असंखेजगुणा। कंडयस्सुविर यवमन्झस्स हेद्ददो जीवा तित्तया चेव। यवमन्झस्सुविर जीवा विसेसा०। कंडयस्स हेद्ददो जीवा विसे०। कंडयस्सुविर जीवा विसे०। सन्वेसु दाणेसु जीवा विसेसाधिया। एवं जीवसमुदाहारे ति समत्तमणियोगदाराणि।

> एवं उत्तरपगदिअंशुभागवंधो समत्तो एवं अशुभागवंधो समत्तो

६७२. अल्पवहुत्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। काण्डकके जीव उतने ही हैं। इनसे यव-मध्यमें जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके उपर जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके उपर और काण्डकसे नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके उपर और यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके उपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकसे नीचे जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकके उपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार जीवसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ । इस प्रकार उत्तरप्रकृतिअनुभागवन्ध समाप्त हुआ । इस प्रकार अनुभागवन्ध समाप्त हुआ ।

भारतीय ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशन

१. महाचन्ध | महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]-प्रथम भाग, हिन्दी अनुवाद सहित

२. महावन्ध महाधवल सिंदान्तशास्त्र -द्वितीय भाग

- तृतीय भाग ३. महावन्ध

७. मद्नपराजय [भाषानुवाद तथा ७८ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना]

११. तत्त्वार्थवृत्ति [श्रुतसागर स्रिरचित टीका] हिन्दी सार सहित

१६. केवलज्ञानप्रइतचूडामणि [प्रश्नशास्त्रका अद्वितीय प्रन्य]

१९. थिरुकुरल-तामिल भाषाका पञ्चम वेद [तामिल लिपि]

२१. तत्त्वार्थवार्तिक [राजवार्तिक] भाग १ [हिन्दी सार सहित]

२७. जैनशासन [जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर रचना]

२८. कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न [अध्यात्मवादका अद्भुत ग्रन्थ]

८. कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय यन्थसची

९. न्यायविनिश्चयविवरण [प्रथम भाग] १०: न्यायविनिश्चयविवरण [द्वितीय भाग]

१४. उत्तरपुराण तेईस तीर्थङ्करोंका पुण्य चरित्र

२२. तत्त्वार्थवार्तिक [राजवार्तिक] भाग २ [

२६. आधुनिक जैन कवि [परिचय एवं कविताएँ]

२९. हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास

१२. आदिपुराणं माग १]

१३. आदिपुराण [भाग २]

१५. नाममाला संभाष्य [कोश]

१७. समाष्यरत्नमंजूषा [छन्दशास्त्र]

१८. समयसार—[श्रंग्रेजी]

२०. वसुनिन्दि-श्रावकाचार

२३. जातक [प्रथम भाग]

२४. जिनसहस्रनाम

२५. सर्वार्थसिद्धि

४. महावन्ध ५. महावन्ध

]-चतुर्थ भाग

-ो-पंचम भाग

६. करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र]—[द्वितीय संस्करण] हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रंथ

[प्राकृत, संस्कृत ग्रंथ]

{ [भगवान् ऋषभदेवका पुण्य चरित्र

िहिन्दी ग्रन्थ न

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस-५

विकास के बार कार के बार क

मुद्रक-नयासंसार प्रेस, भदैनी, बनारस । कैलाश प्रेस, सोनारपुरा, बनारस ।

११)

११)

111)

८)

१३) ः१५)

१५)

१६)

१०)

१०)

१०)

₹11)

४)

२)

८)

8)

ሂ)

१२)

१२)

3)

४)

१२)

₹111)

रा॥=)

₹)